प्राथमिकशाला शिक्षक के लिए मनोविज्ञान

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

अगस्त 1993 : श्रावण 1915
PD 5T– PM

प्रकाशन सहयोग

सी. एन. राव *अध्यक्ष*, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी : *मुख्य सम्पादक*
पूरन मल : *सम्पादक*

यू. प्रभाकर राव : *मुख्य उत्पादन अधिकारी*
सुरेन्द्रकान्त शर्मा : *उत्पादन अधिकारी*
ति. ति. श्रीनिवासन : *सहायक उत्पादन अधिकारी*
प्रमोद रावत : *सहायक उत्पादन अधिकारी*
कर्ण कुमार चड्ढा : *कलाकार*

आवरण

कुमार चड्ढा

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	चिनलापक्कम, क्रोमपेट	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	**मद्रास 600064**	**अहमदाबाद 380014**	**24 परगना 743179**

मूल्य रु. 51.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा शगुन कम्पोज़र्स, 92-बी, गली नं. 4, कृष्णा नगर, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली 110029 द्वारा लेजर टाइपसैट होकर, न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, 5 ई, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली 110055 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के पाठ्यक्रम राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की अनुशंसाओं के अनुरूप पुनर्गठित हो चुके हैं। इनके सफल क्रियान्वयन के लिए सहायक सामग्री की आवश्यकता है। "अध्यापक शिक्षा, विशेष शिक्षा तथा विस्तार सेवा विभाग" ने इन पाठ्यक्रमों के लिए उपयुक्त पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का चुनौतीपूर्ण कार्य हाथ में लिया है। "प्राथमिकशाला शिक्षक के लिए मनोविज्ञान" पुस्तक इसी शृंखला में एक कड़ी है। अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सभी सामग्रियों के समान इसे केवल परीक्षा हेतु पाठ्यपुस्तक के रूप में ही नहीं, अपितु अध्यापक-मार्गदर्शिका के रूप में भी लिया जाना चाहिए।

मैं अध्यापक शिक्षा, विशेष शिक्षा तथा विस्तार सेवा विभाग और इस पुस्तक की रचना से जुड़े सभी व्यक्तियों के सहयोग के लिए आभारी हूँ।

डा. के. गोपालन
निदेशक
नई दिल्ली — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

मैं पहुँचा हूँ इस भयानक नतीजे पर,
मैं ही हूँ कक्षा में निर्णायक तत्व।
मेरा ही उपागम रचता है वातावरण,
मेरी भृकुटी से बनता है कक्षा का मौसम
शिक्षक के नाते मेरे पास है शक्ति अपार
दुखद या सुखद बनाने की, बच्चे का जीवन,
करके शर्मिंदा या प्रमुदित,
पहुँचा के चोट या लगा के मरहम।
सभी परिस्थितियों में मेरी ही अनुक्रिया
करती है निर्णय—संकट बढ़ेगा या घटेगा,
बच्चा मानवीय होगा या अमानवीय बनेगा।

—बीट्रिस ग्रॉस और रोनैल्ड ग्रॉस की अंग्रेजी कविता
'विल इट ग्रो इन ए क्लासरूम' से

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

प्रस्तावना

"प्राथमिकशाला शिक्षक के लिए मनोविज्ञान" अंग्रेजी में लिखी पुस्तक 'Psychology for the Elementary School Teacher' का अनुवाद है। इसका अनुवाद प्रो. एस. एन. त्रिपाठी ने किया है।

इस पुस्तक को तैयार करने में अध्यापक प्रशिक्षण के कार्यक्रम को ध्यान में रखा गया है। साथ ही उन कठिनाइयों, समस्याओं और चुनौतियों को भी महत्व दिया गया है, जिनका सामना, शिक्षक को समय-समय पर कक्षा या विद्यालय में करना पड़ता है। इसलिए पुस्तक की सामग्री को सैद्धान्तिक के बजाय अधिक व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें जो उदाहरण दिये गये हैं वह हमारे स्कूलों के वातावरण एवं परिस्थितियों से ही लिए गये हैं जिनमें हमारे शिक्षक कार्य करते हैं।

पुस्तक लिखने का एक और उद्देश्य इसकी सामग्री को रुचिकर, सुगम और पठनीय बनाना था। इस आशय से इसमें प्रचुर मात्रा में उदाहरण दिये गये हैं और भाषा को सरल रखने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक छः भागों में विभाजित है।

भाग 1 छात्र-शिक्षकों का मनोविज्ञान से परिचय कराता है और अध्यापक के कार्य में इसके महत्व की व्याख्या करता है।

भाग 2 इसमें बाल-विकास की, प्राथमिकशाला के संदर्भ में विवेचना की गई है।

भाग 3 इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताएं, उनसे उत्पन्न समस्याएं और शिक्षक के कार्य में उनके निहितार्थ (implication) के बारे में चर्चा की गई है।

भाग 4 इसमें अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया का वर्णन है। यहां बताया गया है कि विभिन्न प्रकार के अधिगम कैसे धारित होते हैं और उन्हें कैसे आगे बढ़ाया जा सकता है।

भाग 5 इसमें प्राथमिकशाला में संदर्शन व निर्देशन की विवेचना की गई है।

भाग 6 यह उन कारकों से संबंधित है जो शिक्षक को प्रभावशाली बनाते हैं। पुस्तक पढ़ने से ऐसा आभास होता है कि कुछ बिन्दुओं की पुनरावृत्ति की गई है। इसका आंशिक कारण यह है कि कुछ विचारों की कई

दृष्टिकोणों से विवेचना की गई है, और कुछ विचारों की पुनरावृत्ति उनके महत्व को ध्यान में रखते हुए आवश्यक समझी गई। आशा की जाती है कि जब छात्र-शिक्षक इन विचारों को कई बार पढ़ेंगे या सुनेंगे तो स्कूल में अपना कार्य करते समय इन्हें भूलेंगे नहीं और इन विचारों का अपने कार्य में व्यावहारिक रूप से प्रयोग करेंगे।

पूरी पुस्तक में शिक्षक शब्द का प्रयोग किया गया है उसमें शिक्षिकाएं भी आ जाती हैं। इसी प्रकार बच्चों के लिए पुल्लिग का उपयोग किया गया है इसमें लड़कियां भी सम्मिलित हैं। ऐसा केवल सुविधा के लिए किया गया है।

मैं उन सब के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की रचना में कार्य किया। पुस्तक के विभिन्न अध्याय लिखने का कार्य श्रीमती फ्रैनी जेड. तारापौर, कु. रविता देवेन्द्रनाथ, श्रीमती लीला एच. मनहास, डॉ. श्री एम. रामामूर्ति, श्री प्रमोद भाई यू. जोशी, प्रो. एस. एन. त्रिपाठी और अध्यापक शिक्षा विभाग से डॉ. ईवलिन मार और कुमारी चंचल मेहरा ने किया। श्री हरभजन सिंह इस ग्रुप के सदस्य थे, उन्होंने सभी कार्यशालाओं में भाग लिया। श्री हरभजन सिंह और श्री जोशी का प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण का अनुभव इस कार्य में बहुत उपयोगी रहा। ग्रुप के सभी सदस्यों के लिए, अपने सुझावों को एक दूसरे की मदद करने का और आलोचनाओं को अच्छी भावना से ग्रहण करने का एक सुखद अनुभव रहा।

कु. इन्दिरा मलानी और श्रीमती प्रमिला पाठक, जो दोनों बालविकास की विशेषज्ञ हैं, के सामयिक सुझावों ने पुस्तक को अधिक प्रभावकारी बनाया। मैं इन दोनों का आभारी हूँ।

मैं डॉ. चन्द्रकला धर का भी आभारी हूँ। उनके विषय के गहन अध्ययन पर आधारित सुझाव बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। मैं प्रो. पी. के. राय के समय-समय पर दिये गये व्यावहारिक सुझावों के लिए आभारी हूँ जो इस पुस्तक को लिखने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।

चित्रों के लिए हम शिक्षण साधन विभाग, और क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भोपाल के प्रो. एस. एन. त्रिपाठी और श्री. वी. के जैन के ऋणी हैं।

पुस्तक की रूपरेखा और निर्देशन बिन्दु डॉ. ईवलिन मार और कुमारी चंचल मेहरा ने तैयार किये। उन्होंने विभिन्न लेखकों से सम्पर्क करके कई कार्यशालाएं आयोजित कीं। डॉ. ईवलिन मार ने प्रो. एस. एन. त्रिपाठी और कुमारी चंचल मेहरा के सहयोग से प्रकाशन के लिए प्रतिलिपि तैयार की। हिन्दी संस्करण की छपाई का काम कुमारी चंचल मेहरा ने देखा। मैं इन सब के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

एन. के. जंगीरा

अध्यक्ष

अध्यापक शिक्षा, विशेष शिक्षा तथा विस्तार सेवा विभाग

विषय-क्रम

भाग–1

भूमिका

पुस्तक का यह संक्षिप्त भाग इस बात पर जोर देता है कि मनोविज्ञान मानव के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है। शिक्षक के लिए मनोविज्ञान की जानकारी का महत्व और आवश्यकता, शिक्षा में और बच्चों के साथ शिक्षक के दिन-प्रति-दिन के कार्य में इसकी प्रासंगिकता की विवेचना की गई है। मनोविज्ञान की विधियों की प्रारंभिक जानकारी को भी समाविष्ट किया गया है।

अध्याय 1

मनोविज्ञान : मानव व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन

चंचल मेहरा

अनन्तकाल से मानव अपने आप को तथा अपने साथियों को समझने का प्रयास करता आ रहा है। उसकी यह भी कोशिश रही है कि वह मानव व्यवहार का भविष्यकथन कर सके। वह जानना चाहता है कि विभिन्न परिस्थितियों में, चाहे वे वैयक्तिक हों या सामूहिक, मानव किस प्रकार विचार करता है, उसकी क्या भावनाएं होती हैं, वह क्या कार्य करता है, और इस व्यवहार के पीछे क्या कारक होते हैं। मानव व्यवहार और उसे प्रभावित करने वाले कारक मनोविज्ञान की विषय सामग्री हैं।

मानव एक जटिल प्राणी है और इस जटिलता का एक कारण यह भी है कि स्वभाव से वह एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता। घर में, स्कूल में, कार्यक्षेत्र में, सामाजिक उत्सवों में, और अनेक परिस्थितियों में वह अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। हो सकता है कि कुछ व्यक्तियों के साथ वह सरलता से सम्पर्क स्थापित कर ले और कुछ अन्य के साथ इतनी सरलता से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सके। वह शिशुओं, बच्चों, किशोरों, वयस्कों और वृद्धों के सम्पर्क में आएगा और बातचीत करेगा। विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के सम्पर्क में आने पर वह अपने व्यवहार में उपयुक्त परिवर्तन करेगा। इतना ही नहीं, विभिन्न व्यक्तियों के प्रति उसके व्यवहार और अनुक्रियाओं में विभिन्नताएं दिखाई देंगी। एक व्यक्ति को छोटे बच्चों का साथ पसन्द हो सकता है, क्योंकि उसे उनके साथ वार्तालाप करने में और खेलने में आनन्द आता है। एक दूसरा व्यक्ति अपनी आयु के व्यक्तियों के बीच ही खुश रहता है। एक तीसरे को अपने से अधिक उम्र वालों का साथ पसन्द है। उसकी रुचि उनके विचारों तथा जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण को समझने में है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का विभिन्न परिस्थितियों के प्रति अपना नज़रिया होता है। सभी परिस्थितियों में व्यवहार व्यक्ति की पृष्ठभूमि, क्षमताएं, अभिवृत्तियों और भावात्मक स्थिरता से नियन्त्रित होता है। मानव का अध्ययन, जो इतना जटिल प्राणी

है, सरलता से नहीं किया जा सकता। वास्तव में आकस्मिक अवलोकन ने अकसर भ्रामक निष्कर्षों को जन्म दिया है। सही अध्ययन करना हो तो इसके लिए वैज्ञानिक विधि अपनानी होगी, जिसमें सावधानी से योजना बना कर योजनाबद्ध तथा नियंत्रित विधि से अध्ययन करना होगा।

मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा बाल-मनोविज्ञान है। इसके अन्तर्गत बालक के समुचित विकास के लिए मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग शिक्षा में तथा अन्य परिस्थितियों में किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों की रुचि बालक के संपूर्ण विकास में है। शिक्षक को विकास के विभिन्न पहलुओं का, जैसे शारीरिक, गामक, मानसिक, भावात्मक, सामाजिक विकास का अध्ययन शिक्षक को सावधानी से करना होगा जिससे वह बच्चे के स्वस्थ और आनन्दमय विकास में योग दे सके। बच्चे का अध्ययन उसके पर्यावरण से अलग करके नहीं किया जा सकता। अध्ययन पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में ही करना होगा। वह एक विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट प्रकार से व्यवहार करता है। बच्चा किसी परिस्थिति में शर्मीला और पलायनवादी हो सकता है, और किसी अन्य में खूब बातूनी और निर्भीक। अपने से छोटी आयु के बच्चों के साथ किसी कार्य के करने में या उनके साथ खेलने में वह अपना अधिपत्य उन पर जमा सकता है, किन्तु अपने से अधिक आयु के बच्चों के साथ खेलते समय वह काफी आज्ञाकारी और विनयशील हो सकता है। एक छात्र जो स्कूल में पढ़ाई मे काफी अच्छा है किन्तु हो सकता है कि घर में इसके बिल्कुल विपरीत हो, विशेषकर जब वह अपनी तेज़ तर्रार माँ के निरीक्षण में पढ़ाई कर रहा हो। शिक्षक से डरा हुआ बच्चा कक्षा में अच्छा कार्य नहीं कर पाता, किन्तु घर पर उसी कार्य को करने में वह नहीं पिछड़ता। इसलिए, यह स्पष्ट है कि बच्चे की कार्य कुशलता पर पर्यावरण और कार्य करने की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। बच्चे के विकास में उसकी शैक्षिक उपलब्धि, कक्षा और स्कूल का सामाजिक वातावरण, सामाजिक संघर्ष जिनका सामना बच्चे को करना पड़ रहा हो, कक्षा में और कक्षा के बाहर शिक्षक और अन्य छात्रों के बीच आदान-प्रदान, आदि का प्रभाव पड़ता है।

विकास और वृद्धि के सामान्य सिद्धान्त बच्चों के व्यवहार प्रतिरूपों और विभिन्न परिस्थितियों में उनकी अनुक्रियाओं को समझने में शिक्षक की मदद करते हैं। इनके द्वारा शिक्षक यह भी समझ सकता है कि विभिन्न समूहों और विभिन्न व्यक्तियों के प्रति बालक जो व्यवहार करता है उसके पीछे कौन से कारक हैं। यदि शिक्षक बालक के प्रति समझ और संवेदनशील व्यक्त करता है तो दोनों के बीच एक विश्वास का संबंध स्थापित होता है। यदि शिक्षक के व्यवहार में ये गुण कायम रहते हैं तब यह संबंध और भी दृढ़ होता जाता है। जो शिक्षक मनोविज्ञान समझता है

और बच्चों के साथ दिन-प्रति-दिन के जीवन में इसे अपनाता है, वह इन कारकों के महत्व को अधिक अच्छी तरह समझ सकेगा।

यदि उपरोक्त कारकों को अपनाया जाता है तो शिक्षा की प्रक्रिया आनन्ददायक और आकर्षक होगी। यह बालक के स्वस्थ विकास में सहायक होगी। बालक को स्कूल की गतिविधियों में स्वैच्छिक रूप से भाग लेने में प्रोत्साहन मिलेगा। शिक्षक का नियत कार्य है कि वह समग्र बालक को उसके सामाजिक पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में देखे। जैसे-जैसे शिक्षक इस बात को समझने लगेगा उसके लिए बालक के विकास में मदद करना सरल होता जाएगा। शाला का पर्यावरण बालक के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। स्वस्थ और आनन्दायक पर्यावरण बालक के विकास में सहायक होता है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि शिक्षक मनोविज्ञान पढ़े, विशेषकर बाल-मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान।

विभिन्न योग्यताओं, अभिवृत्तियों तथा विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर से आने वाले स्कूल के बच्चों को समझने में और उनके साथ व्यवहार करने में मनोविज्ञान शिक्षक की सहायता करता है। इसके द्वारा वह उन कारकों को समझ सकेगा जो बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं। अपने दिन-प्रति-दिन के कार्य में तथा कक्षा के बाहर भी शिक्षक मनोविज्ञान का उपयोग बच्चों के हित में कर सकेगा।

शिक्षा में मनोविज्ञान

शिक्षक का मुख्य विषय छात्र है। शैक्षिक विषय यद्यपि बहुत महत्वपूर्ण हैं, फिर भी उस सम्पूर्ण योजना में जो बच्चे के स्वस्थ विकास में संबंधित है, वे द्वितीय स्थान पर ही आते हैं। शिक्षकों को छात्र को समझने में मदद करने से वे छात्र के व्यवहार को उसके घर की पृष्ठभूमि और विकास के परिप्रेक्ष्य में संवेदनापूर्वक देख सकेंगे। शिक्षक को ऐसे प्रश्नों में रुचि लेनी चाहिए जैसेः वृद्धि और विकास की प्रक्रिया क्या है? बच्चों के सर्वोत्तम विकास के लिए शिक्षक क्या कर सकता है? पढ़ाने की उपयुक्त विधियां क्या हैं? बच्चों को कैसे प्रेरित किया जाए? किन परिस्थितियों में पुरस्कार दण्ड से अधिक प्रभावशाली है? यह पुस्तक इस प्रकार के प्रकरणों को स्पष्ट करती है, और यह दर्शाती है कि मनोविज्ञान ऐसी समस्याओं का हल ढूँढने में किस प्रकार शिक्षक की मदद करता है।

हमें प्रारंभ में ही समझ लेना चाहिए कि मनोविज्ञान मानव व्यवहार से संबंधित अमूर्त सिद्धान्तों की कोई नियमावली नहीं है। इसका आधार मानव व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है जिसमें और अनेक कारकों, जैसे शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक और भावात्मक विकास, आपसी संबंध, पर्यावरण, बौद्धिक विकास, इत्यादि के प्रभाव को समझना होता है। मनोविज्ञान के सिद्धान्तों और नियमों का ज्ञान मानव व्यवहार

पर प्रकाश डालता है। बच्चों का अध्ययन, जैसा अकसर होता है, केवल एक प्रतिवेदन तैयार करने के लिए नहीं होना चाहिए। व्यवहार को हम ऐसी श्रेणियों में बांट नहीं सकते जैसे "अच्छा" और "बुरा", "अनुरूप" और "प्रतिकूल", इत्यादि। व्यवहार के अर्थ हैं बच्चे की वे अनुक्रियाएं और प्रतिक्रियाएं जो उस परिस्थिति में होती हैं जिनमें बच्चा अपने को पाता है। बच्चे के व्यवहार को हम अलग करके एकाकी रूप में नहीं देख सकते। इसे तो हमें उस पर्यावरण से संबंधित करके देखना होगा जिसमें बच्चा जी रहा है। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि जो अपेक्षाएं उससे की जा रही हैं उनका वह सामना किस प्रकार कर रहा है, और किस प्रकार पर्यावरण से समंजित करने में हम उसकी मदद कर सकते हैं जिससे वह अपनी अन्तर्निहित संभावनाओं का पूर्णरूपेण विकास कर सके।

व्यवहार परिवर्तन में मनोविज्ञान सहायक होता है

शिक्षक को याद रखना चाहिए कि बच्चों के व्यवहार का अवलोकन करने में उसका सर्वप्रथम कर्तव्य बच्चे की मदद करना है। उसे उन छात्रों पर विशेष ध्यान देना चाहिए जिनका विकास सही ढंग से नहीं हो रहा है। शिक्षक का कर्तव्य है कि बच्चों के समुचित विकास के लिए स्कूल में उचित पर्यावरण और पर्याप्त अवसर प्रदान करे।

मोहन और सुनील का दृष्टान्त लीजिए। मोहन तेज लड़का है और अन्य बच्चों के प्रति वह बहुत संवेदनशील है और समझदारी का व्यवहार करता है। पढ़ाई में जब कमजोर बच्चे मदद मांगते हैं वह उनकी सहायता करता है। उसके सहपाठी ही नहीं बल्कि बड़े बच्चे और शिक्षक भी उसकी सराहना करते हैं। इसके विपरीत सुनील एक लड़ाकू लड़का है और अपना बहुत सा समय अन्य बच्चों को चिढ़ाने और उन पर अपना रोब जमाने में लगाता है। इसके कारण वह अकेला रह जाता है क्योंकि कोई भी बच्चा दूसरे का रोब जमाना पसन्द नहीं करता। कक्षा में और कक्षा के बाहर भी, अन्य बच्चे उसके साथ से कतराते हैं। इसके कारण उसकी लड़ने की प्रवृत्ति और भी अधिक भड़कती है। यदि सुनील अपने व्यवहार में परिवर्तन करे और दूसरों को छेड़ना या उन पर रोब जमाना छोड़ दे, वह अपना समय अन्य उपयोगी कार्यों में लगा सकता है।

मोहन के लिए शिक्षक को केवल यह देखना है कि उसका विकास भली प्रकार हो रहा है और उसको ऐसा कार्य दिया जाए जिसमें वह अपनी क्षमताओं का समुचित उपयोग कर सके। किन्तु सुनील के लिए शिक्षक को अधिक सक्रिय भूमिका का निर्वाह करना पड़ेगा जिससे वह सुनील के व्यवहार परिवर्तन में मदद कर सके। शिक्षक सुनील के व्यवहार का विश्लेषण करके पता लगा सकता है कि जिस प्रकार

का व्यवहार वह करता है उसके पीछे कारण क्या है। शिक्षक को उसकी पृष्ठभूमि, उसके खेल के साथी, उसका भावात्मक और सामाजिक विकास, उसकी रुचियां और अभिवृत्तियां, उसका बौद्धिक स्तर, उसका अपने परिवार के सदस्यों से संबंध का पता लगाना होगा। वह उससे मैत्रीपूर्ण और संवेदनशील ढंग से बात कर सकता है। यदि शिक्षक उसे अपने व्यवहार को समझने में मदद करता है, उसे अनुभूति कराता है कि उसके व्यवहार से दूसरों को असुविधा, शर्मिंदगी, और कभी-कभी तकलीफ होती है तो संभवतया वह छात्र को अपने व्यचहार को बदलने में मदद कर सकेगा। यदि शिक्षक की मदद से सुनिल अवांछित आदतों को त्याग देता है, वह समूह को अधिक स्वीकार्य हो सकेगा।

ऐसे बच्चे से संपर्क करने में शिक्षक को बहुत सावधानी बरतनी होगी। यदि वह आलोचनात्मक रुख अपनाता है तो यह सुनील के भविष्य को और भी खराब कर सकता है। इसके विपरीत यदि वह कारण का पता करके समझदारी के बरताव करता है तो वह सुनील का भला करेगा। ऐसी स्थिति में सुनील समुदाय का एक उपयोगी और होनहार सदस्य बन सकेगा, और समुदाय की मान्यताओं के अनुरूप अपने व्यवहार को ढाल सकेगा। व्यवहार परिवर्तनशील है और यदि लग कर प्रयास किया जाए तो इसमें परिवर्तन लाया जा सकता है। क्योंकि मनोविज्ञान बच्चों के व्यवहार को समझने में शिक्षक की मदद करता है वह अपने संवेदनशील बरताव द्वारा उनके आचरण को ढाल सकता है।

कक्षा शिक्षण में मनोविज्ञान

मनोविज्ञान शिक्षक को छात्रों के अनुरूप शिक्षण को ढालने में मदद करता है। कुमारी अंजना कक्षा को पढ़ा रही है किन्तु उनका पढ़ाया हुआ विषय बहुत से छात्रों की समझ में नहीं आता। शिक्षिका को पता करना चाहिए कि इसका क्या कारण है। हो सकता है कि सामान्य बच्चों के लिए पाठ बहुत कठिन हो। यह भी हो सकता है कि पढ़ाने की विधि सीखने के लिए उपयुक्त न हो। इनके अलावा और कारण भी हो सकते हैं ऐसी स्थिति में शिक्षिका को कारण का पता करना चाहिए और अपने तौर तरीकों में परिवर्तन लाना चाहिए। या तो उसे विषय-वस्तु को सरल करना होगा, या पढ़ाने की विधि बदलनी होगी, या विषय को किसी अन्य समय, जब शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बच्चे अधिक चौकस हों, पढ़ाना होगा। शिक्षिका के व्यवहार में बदलाव उन कारकों पर निर्भर करेगा जो सीखने की प्रक्रिया में बाधा डाल रहे हैं।

शिक्षक के व्यवहार में परिवर्तन सदैव आवश्यक नहीं हैं। कभी-कभी पर्यावरण में कुछ परिवर्तन छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने में सक्षम होता है। इस विषय में शिक्षक ही निर्धारक है और उसे ही यह निश्चित करना है कि किन कारकों

को बदला जाए जिससे छात्रों की समझ में विषय-वस्तु आ सके और अधिगम सुगम हो सके। यदि शिक्षक को मनोविज्ञान की जानकारी है तो वह ऐसे परिवर्तन ला सकता है। इस प्रकार छात्रों की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षण को निर्धारित करने में मनोविज्ञान शिक्षकों की मदद करता है।

वैयक्तिक भेद और मनोविज्ञान

मानव एक दूसरे से अनेक बातों में भिन्न होता है, जैसे शारीरिक रूप-रंग, मानसिक क्षमताएं, भावात्मक और सामाजिक अभिवृत्तियां, नैतिक मूल्य, आपसी संबंध और समस्याओं और कठिन परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता। शिक्षक देखता है कि कमला सरलता और तेजी से समझ जाती है जबकि माला को समझने में समय लगता है किन्तु जहां व्यावहारिक कार्य करना है वहां माला तेज़ है। शान्ता जल्दी घबराती नहीं और शान्त रहती है, जबकि बीना चिड़चिड़ी है और छोटी-छोटी बातों पर उत्तेजित हो जाती है। शान्ता बहुत हंसमुख है, सभी उसे पसन्द करते हैं। मीनू खिन्न रहती है और हर समय झुंझलाती रहती है। अन्य बच्चे उसके साथ कोई काम करना पसन्द नहीं करते। शिक्षक को विभिन्न मनोवृत्तियों के बच्चों से सम्पर्क करना होता है, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को समझना होता है और उनकी मदद करनी होती है। यह तभी संभव हो सकेगा जब वह बच्चों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ उनका बौद्धिक स्तर और संवेगात्मक तथा सामाजिक अभिवृत्तियों को समझे। बच्चे के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को देखते-समझते हुए शिक्षक को यह जानना चाहिए कि बच्चा एक समग्र व्यक्तित्व के रूप में क्रियाशील रहता है। इस उपागम के महत्व को कम नहीं समझना चाहिए। इस प्रकार मनोविज्ञान का क्षेत्र और विशेषकर बाल-मनोविज्ञान का क्षेत्र सम्पूर्ण बालक का ज्ञान और समझ है।

मनोविज्ञान और शिक्षक का विकास

कुमारी अर्चना कक्षा में अनुशासन बनाए रखने में बहुत दक्ष है, कुमारी विमला अपने सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और व्यावहारिक समझ के कारण बच्चों में बहुत लोकप्रिय है, कुमारी सरला पढ़ाने में बहुत अच्छी है और जो कुछ वह पढ़ाती है बच्चों की समझ में आ जाता है। प्रत्येक शिक्षिका के अपने गुण हैं और सीमाएं हैं। महत्व की बात यह है कि शिक्षिका कहां तक अपनी क्षमताओं का उपयोग बच्चों के हित को सर्वोपरि रखते हुए और साथ ही साथ अपनी स्वयं की प्रगति के लिए करती है। इस दिशा में मनोविज्ञान का अध्ययन उसकी मदद करेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षक के सभी कार्यों में मनोविज्ञान बहुत उपयोगी है। किन्तु मनोविज्ञान की पुस्तकों को पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है। जिस प्रकार एक माली अपने पौधों की देखरेख करता है इसी प्रकार शिक्षक को जिन बच्चों का उत्तरदायित्व उसे दिया गया है उन पर ध्यान देना चाहिए।

अध्याय 2

बच्चों के अध्ययन की विधियां

चंचल मेहरा

विज्ञान की प्रत्येक शाखा में अनुसंधान की उन विधियों का पालन करना आवश्यक है जो वैज्ञानिकों ने वैध ठहराई हैं। इसके अलावा, विज्ञान की प्रत्येक शाखा की ऐसी विशिष्ट प्रणाली भी विकसित करनी होती है जो उस शाखा के अन्तर्गत अध्ययन के विषय के अनुकूल हो। मनोविज्ञान में भी ऐसी विधियों को विकसित किया गया है। यद्यपि ये मनोविज्ञान के लिए विकसित की गई हैं ये वैज्ञानिक प्रणालियों के अनुरूप हैं। मनोविज्ञान का विषय मानव का व्यवहार है, इसलिए, यह आवश्यक है कि मानव व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन की विधियों से परिचित हुआ जाए। बालमनोविज्ञान में हमारी दिलचस्पी बच्चे, उनकी वृद्धि और विकास, उनका व्यवहार, पर्यावरण जिसमें वे रहते और बढ़ते हैं, उनके खेल और क्रियाओं में है। बच्चा ही अध्ययन का विषय है। शिक्षक का सम्पर्क स्कूल जाने वाली आयु के बच्चों से मुख्यतया होता है इसलिए यहां विवेचना इसी आयु के बच्चों के अध्ययन तक सीमित रखी जाएगी। शिक्षक द्वारा बच्चों का अध्ययन वैज्ञानिक प्रणाली पर आधारित होना चाहिए। इसके मुख्य पद नीचे दिए जा रहे हैं।

1. **समस्या का बोध :** शिक्षक को इस बात का आभास होना चाहिए कि कुछ समस्याएं हैं या कोई विशिष्ट समस्या है जिसके अध्ययन या खोजबीन की आवश्यकता है।
2. **समस्या की पहचान :** उस समस्या का मुख्य बिन्दुओं में विश्लेषण कर सकें। समस्या समूह की हो सकती है या किसी बच्चे विशेष की।
3. **जानकारी, तथ्यों का संकलन :** समस्या का स्वरूप जानने के बाद शिक्षक को विभिन्न स्रोतों से उसके बारे में जानकारी एकत्रित करनी होगी। यह जानकारी बच्चे की पारिवारिक पृष्ठभूमि की, उसके सामाजिक गुट और खेल के साथियों की, उसके माता-पिता, भाई-बहन, मित्रों के स्वभाव और अभिवृत्तियों की, उसकी

शैक्षिक उपलब्धि और स्कूल में आचरण की हो सकती है। यदि समस्या किसी समूह की है तो शिक्षक को देखना होगा कि समूह में किस प्रकार के आपसी संबंध हैं, समूह की रुचियां और अभिप्रेरणाएं क्या हैं, और साथ ही साथ सदस्यों के बारे में वैयक्तिक जानकारी प्राप्त करनी होगी। जानकारी एकत्रित करने का उपयुक्त तरीका समस्या के स्वरूप पर निर्भर करेगा।

4. **जानकारी को संगठित करना :** विभिन्न स्रोतों से एकत्रित की हुई जानकारी को संगठित करना होगा जिससे बालक या समूह के बारे में एक अर्थपूर्ण तस्वीर प्रस्तुत हो सके। शिक्षक इसका उपयोग बालक या समूह जो भी हो उसके हित में कर सकता है। इस प्रकार बालक को अपनी समस्या समझने और हल करने में मदद की जा सकती है। समूह को रचनात्मक क्रियाकलापों की ओर निर्दिष्ट किया जा सकता है।

बाल अध्ययन की विशिष्ट समस्याओं और उनके अध्ययन के लिए उपयुक्त सुझाव इस अध्याय के क्षेत्र में नहीं आते। बाल अध्ययन की कुछ विधियां वयस्कों के अध्ययन में भी लागू की जा सकती हैं क्योंकि बाल व्यवहार वयस्कों के व्यवहार से मूलभूत रूप से भिन्न नहीं हैं। छोटे बच्चे और वयस्क के व्यवहार में अन्तर मात्रा और विभिन्न पहलुओं को महत्व देने में है। किन्तु कुछ विधियों का प्रयोग जो स्कूल की परिस्थितियों में प्रयुक्त होती हैं स्कूल के बाहर उपयोग करना कठिन होगा।

बच्चों के अध्ययन करने की कई विधियां हैं। यहां विवेचन के लिए उनको चुना गया है जिनका उपयोग स्कूल में सरलता से किया जा सकता है।

1 नियमित अवलोकन
2 प्रयोग
3 साक्षात्कार
4 खेल साक्षात्कार
5 व्यक्ति अध्ययन विधि
6 जीवनी विधि
7 समाजमिति

इन विधियों का प्रारंभिक विवेचन नीचे दिया जा रहा है। इनका उपयोग करने के पहले शिक्षक को उनका गहन अध्ययन करना चाहिए। इसमें प्रशिक्षित व्यक्ति के मार्गनिर्देशन की आवश्यकता पड़ सकती है।

नियमित अवलोकन

नियमित अवलोकन के लिए सावधानी और पूर्व निर्मित योजना की आवश्यकता होती है। यह बालक और उसके आचरण का केवल आकस्मिक और निश्चेष्ट

अवबोधन नहीं है। अवलोकन को वस्तुनिष्ठ बनाने और निजी पूर्वाग्रह से मुक्त रहने के लिए सक्रिय प्रयास करना होगा। यह विधि बालक के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए और अभिलिखित करने का एक वस्तुनिष्ठ ढंग है।

हम सब बच्चों के सम्पर्क में आते हैं और उनका अवलोकन अनौपचारिक और आकस्मिक ढंग से करते हैं हम देखते हैं कि बच्चों का एक समूह मैत्रीपूर्ण वातावरण में खेल रहा है। एकाएक सीता रुष्ट हो जाती है और लड़ने लगती है। एक आकस्मिक प्रेक्षक कहेगा कि सीता लड़ती है। यह कथन गलत हो सकता है और इसे स्वीकार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह एक थोथे अवलोकन पर आधारित है। सीता को विभिन्न परिस्थितियों में नियमित अवलोकन करने के बाद ही ऐसा निश्चयात्मक कथन तर्कसंगत होगा कि "सीता झगड़ालू है।" इन अवलोकनों के बाद यह भी निष्कर्ष निकल सकता है कि सीता कभी-कभार ही लड़ती है। इसलिए एक दो अवलोकन के आधार पर कोई निर्णय करना न तो वांछनीय है, न ठीक है।

बच्चों का अवलोकन वैज्ञानिक, सुविचारित, सुनियोजित और विधिवत होना चाहिए। जिस शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह बालक का अवलोकन करेगा, उसके मन में यह स्पष्ट होना चाहिए कि अवलोकन का आशय क्या है, अर्थात, वह किसी बच्चे या बच्चों के समूह का अवलोकन क्यों करना चाहता है। कौन से कारक या व्यवहार के विभिन्न रूपों का वह अवलोकन करेगा। इसी प्रकार अभिलेख का प्रारूप उसके स्वयं के विचारों और इच्छाओं पर आधारित न होकर ऐसा हो जिसमें घटनाएं जैसी घटित होती हैं वैसी ही लिपिबद्ध की जा सकें। शिक्षक को पहले से केवल अध्ययन की जाने वाली बातों को ही निश्चित नहीं करना है अपितु नियमित ढंग से बालक का एक समय अवधि के दौरान अवलोकन करना है। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पहले बहुत से अवलोकन करने होंगे। शिक्षक को इस बात की सुविधा है कि वह विभिन्न परिस्थितियों में जैसे कक्षा में, खेल के मैदान पर, और पाठ्येतर कार्यक्रमों में बच्चों का अवलोकन कर सकता है। बच्चे को इस बात का एहसास नहीं होना चाहिए कि कोई उसका अवलोकन कर रहा है।

शिक्षक को अपने पूर्वाग्रहों से सचेत रहना चाहिए। कभी-कभी शिक्षक का पूर्वाग्रह किसी बच्चे के पक्ष में, या किसी बच्चे के विरुद्ध या किसी विशेष प्रकार के व्यवहार के प्रति हो सकता है। इसका प्रभाव उसके अवलोकन पर नहीं पड़ना चाहिए। बच्चा जो कुछ भी कर रहा है, उसे तटस्थ रह कर देखना चाहिए।

अवलोकन के आलेखन से पहले एक प्रारूप तैयार कर लेना आवश्यक है। प्रारूप से शिक्षक देख सकेगा कि क्या सभी महत्वपूर्ण पक्षों का अवलोकन कर लिया गया है और अमुक व्यवहार कितने बार घटित हुआ। इससे अवलोकनों को वस्तुनिष्ठ

बनाने में भी मदद मिलेगी। अवलोकन का प्रारूप उसके उद्देश्य और उन सभी मुख्य बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए तैयार करना चाहिए जिनके बारे में जानकारी चाहिए। इस कार्य में अन्य अध्यापकों, परामर्शदाता, मनोवैज्ञानिक और निर्देशन-एजेन्सी से सहायता ली जा सकती है। बाल-मनोविज्ञान की मानक पुस्तकों को देखना चाहिए जिनमें ऐसे प्रारूप मिलते हैं।

बच्चों का अवलोकन उनको समझने और संभालने में शिक्षक की मदद करेगा। वह बच्चे के बेहतर निष्पादन, समंजन और स्वस्थ मानसिकता के विकास में निर्देशन दे सकेगा और मदद कर सकेगा।

अवलोकन से सामान्य व्यवहार की प्रवृत्ति के बारे में हमारा ज्ञान बढ़ता है। उदाहरण के लिए, अवलोकन द्वारा हमें पता लगता है कि दो या तीन वर्ष की आयु के बच्चे अपने आप खेलना पसन्द करते है किन्तु साथ ही साथ यह भी चाहते हैं कि उनके पास अन्य बच्चे खेल रहे हों। जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं वे एक दूसरे के साथ खेलते हैं। प्राथमिक शाला के बच्चे सामूहिक और स्पर्धात्मक खेल पसन्द करते हैं।

प्रयोग

अवलोकन में हम बच्चों को सहज परिस्थितियों में देखते हैं। प्रयोग में हम उन्हें पूर्व निर्धारित परिस्थितियों में देखते हैं। प्रायोगिक विधि नियंत्रित परिस्थितियों में नियमित ढंग से अवलोकन हैं।

मनोविज्ञान जानने वाला शिक्षक सामान्य प्रयोग कर सकता है। इसके लिए वह कक्षा को दो दलों में विभक्त करता है। बच्चों को इस तरह बांटा जाता है कि बुद्धि का स्तर जहां तक हो सके दोनों दलों में समान रहे, दोनों दलों में कुशाग्र, औसत और धीमी गति से सीखने वाले छात्रों की संख्या करीब-करीब बराबर रहनी चाहिए।

शिक्षक दोनों दलों को पढ़ाने की अलग-अलग विधियां अपना सकता है। जैसे एक दल को विज्ञान वर्णनात्मक ढंग से पढ़ाया जाए जबकि दूसरे दल को वर्णन के साथ-साथ अवलोकन और सक्रिय विधियों द्वारा पढ़ाया जाए। दोनों दलों की उपलब्धि की तुलना करके शिक्षक पता लगा सकता है कि एक विधि दूसरों से कितनी अधिक लाभप्रद है और क्या दोनों विधियों से प्राप्त परिणामों में सार्थक अन्तर है यदि यह परिणाम निकलता है कि सामान्य वर्णन के मुकाबले अवलोकन और सक्रिय विधि के अपनाने से दल की उपलब्धि अधिक होती है, तो शिक्षक अपनी विज्ञान-शिक्षण विधि में परिवर्तन ला सकता है।

अमुक शिक्षक यह जानना चाहता है कि सामाजिक अध्ययन के छात्रों को यदि यातायात प्रशिक्षण केन्द्र पर भ्रमण के लिए ले जाया जाए तो इसका प्रभाव क्या

होगा। इस प्रयोग में शिक्षक को यह सावधानी बरतनी होगी कि भ्रमण के द्वारा जो ज्ञान बच्चे प्रदर्शित करते हैं वह वर्तमान अनुभव को छोड़कर पूर्व में अध्ययन या अनुभव पर आधारित तो नहीं है।

प्रयोग करने के लिए शिक्षक को कक्षा को दो दलों में विभक्त करना पड़ता है। दोनों दलों में छात्रों की योग्यता और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि करीब-करीब समान होनी चाहिए। एक दल को प्रायोगिक दल कहेंगे (जो केन्द्र को देखने जाएगा), जबकि दूसरे दल को नियंत्रित दल (जो केन्द्र नहीं जाएगा) कहेंगे। यह पता लगाने के लिए कि केन्द्र जाने से छात्रों ने क्या सीखा, शिक्षक को यह पता लगाना होगा कि केन्द्र जाने के पहले छात्रों को कितना ज्ञान था। इसके लिए शिक्षक को एक पूर्व परीक्षण (केन्द्र जाने के पहले दिया गया परीक्षण) देना होगा और केन्द्र देखने के बाद उत्तर परीक्षण (केन्द्र देखने के बाद का परीक्षण) देना होगा। अब शिक्षक प्रायोगिक समूह और नियंत्रित समूह की उपलब्धि की तुलना कर सकता है। इसी प्रकार के प्रयोग अवधान, स्मृति आदि पर किये जा सकते हैं।

प्रायोगिक विधि में यह लाभ है कि एक कारक को छोड़कर सभी कारकों को नियंत्रित किया जाता है। जैसे, उपर्युक्त प्रयोग में आयु, बुद्धि और सामाजिक-आर्थिक स्तर को नियंत्रित किया गया यानि जहां तक संभव हो सका ये दोनों दलों में समान थे। प्रत्येक प्रयोग में केवल एक कारक में अन्तर या परिवर्तन किया गया। एक में यह कारक शिक्षण विधि थी और दूसरे में केन्द्र का भ्रमण था। इस प्रकार यदि दोनों दलों की उपलब्धि में सार्थक अन्तर आता है तो हम कह सकते हैं कि इसके पीछे वह कारक है जो दोनों दलों में भिन्न था। इस प्रकार प्रायोगिक विधि से अन्य विधियों की तुलना में अधिक सही परिणाम प्राप्त होते हैं। किन्तु इसकी सीमाएं हैं। इसे सभी परिस्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता। इसका उपयोग तभी किया जा सकता है जब कुछ निश्चित कारकों को नियंत्रित किया जा सके।

आत्म-प्रतिवेदन

बच्चों के बारे में जानकारी उनसे सीधे प्राप्त की जा सकती है। बड़े बच्चे अपने बारे में लिखित जानकारी दे सकते हैं। इस प्रविधि में शिक्षक का अधिक समय नहीं लगेगा। बच्चों से कुछ प्रश्नों के उत्तर लिखवा कर जानकारी प्राप्त की जा सकती है, या उनसे किसी रूप में स्वतंत्र लेखन प्राप्त किया जा सकता है। पहली विधि का उदाहरण है व्यक्तिगत जानकारी प्रपत्र (Personal Data Blank) और दूसरे का उदाहरण है आत्मकथा। इनकी विवेचना नीचे की जा रही है। बच्चे सही और निसंकोच जानकारी तभी देंगे जब शिक्षक उनके साथ अच्छे संबंध स्थापित करेगा और उन्हें विश्वास होगा कि जानकारी का उपयोग उनके हित में ही होगा। फिर भी

बच्चों को बताना चाहिए कि उन्हें इस बात की छूट है कि जो बात वे नहीं बताना चाहें उसे न बताएं और वही बताएं जो बताना चाहते हैं। आत्म-प्रतिवेदन से जो जानकारी प्राप्त होती है उसकी जांच अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी से करनी चाहिए क्योंकि एक अच्छी छवि प्रस्तुत करने के लिए कुछ बच्चे तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकते हैं।

व्यक्तिगत जानकारी प्रपत्र

व्यक्तिगत जानकारी प्रपत्र ऐसा प्रपत्र है जिसमें वैयक्तिक जानकारी संबंधी प्रश्न होते हैं। यह जानकारी बच्चे के परिवार से संबंधित हो सकती है, जैसे पिताजी का व्यवसाय, भाइयों और बहनों की संख्या और उनमें स्वयं का क्रम स्थान, जैसे, सबसे बड़ा, बीच का या सबसे छोटा, अन्य व्यक्ति जो घर में रहते हैं, इत्यादि। यह भी पूछा जा सकता है कि बच्चे की रुचियां क्या हैं, या स्कूल में उसे किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। बड़े बच्चों के लिए भावी उद्देश्यों के बारे में जानना महत्वपूर्ण है। कौन से प्रश्न रखे जाएं यह प्रपत्र के उद्देश्य पर निर्भर करता है। प्रपत्र बहुत लम्बा नहीं होना चाहिए। उनमें उसी जानकारी के बारे में पूछना चाहिए जिसका बाद में उपयोग किया जा सके।

आत्मकथा विधि

बच्चों से आत्मकथा लिखने को कहा जा सकता है। आत्मकथा संबंधी लेख बच्चे के जीवन, उसकी भावनाओं और अभिवृत्तियों के बारे में उपयोगी जानकारी प्रदान कर सकते हैं। बच्चों को कहा जा सकता है कि वे अपने और अपने जीवन के बारे में स्वतंत्र रूप से जैसा वे चाहें लिखें, या इसके लिए उन्हें एक रूपरेखा भी दी जा सकती है। वारटर्स (Warters 1964) का सुझाव है कि बच्चों का ध्यान दो प्रकार की सामग्री की ओर खींचना उपयोगी रहता है, एक तो वस्तुनिष्ठ सामग्री जो घर, स्कूल और समुदाय के अनुभवों पर आधारित हो और दूसरी व्यक्तिनिष्ठ सामग्री जो उसकी सन्तुष्टियों, आकांक्षाओं, मूल्यों आदि से संबंधित हो।

आत्मकथा के तथ्यों के निर्वचन के लिए कौशल और सावधानी दोनों ही आवश्यक हैं। यह सामग्री केवल तथ्यात्मक जानकारी ही नहीं प्रस्तुत करती है बल्कि बच्चे की मानसिक स्थिति के बारे में भी संकेत देती है कि क्या वह खुश है, निराशावादी या आशावादी है, क्या उसमें दूसरों पर दोषारोपण की प्रवृत्ति है, क्या वह उत्तरदायित्व वहन कर सकता है इत्यादि। किन्तु हर आत्मकथा सामग्री में यह जानकारी प्राप्त नहीं होती और एक दो वाक्यों के आधार पर निष्कर्षों पर पहुंचना ठीक नहीं होगा। जो तस्वीर आत्मकथा से उभरती है उसकी पुष्टि बच्चे के अवलोकन और अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी से करनी चाहिए।

साक्षात्कार

साक्षात्कार एक प्रत्यक्ष संबंध है जिसमें भेंटकर्ता समालाप्य व्यक्ति (interviewee) से किसी आशय से बातचीत करता है। साक्षात्कार से ऐसी जानकारी मिल सकती है जो अवलोकन, प्रयोग और अन्य विधियों से प्राप्त नहीं होती। साक्षात्कार के दौरान भेंटकर्ता जिस बच्चे से मिल रहा है उसकी अभिप्रेरणाओं, अभिवृत्तियों और रुचियों के बारे में पता लगाने का प्रयास करता है। साक्षात्कार एक बच्चे के साथ या बच्चों के समूह के साथ आयोजित किया जा सकता है। अधिकतर भेंट वैयक्तिक स्तर पर होती है और उससे उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। एक खुशमिजाज और प्रिय शिक्षक बच्चों में लोकप्रिय होगा और उनका विश्वास प्राप्त कर सकेगा। वह बच्चों के साथ निकट का संबंध स्थापित कर सकेगा जो सफल साक्षात्कार के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शर्तें, जैसे, एकान्त, शोरगुल से दूर एक आरामदायक कमरा, बैठने की उचित व्यवस्था, और अन्य सुविधाएं भेंट करने के लिए आवश्यक हैं। बच्चे को यह महसूस होना चाहिए कि वह अपनी बात कहने के लिए स्वतंत्र है। संवेगात्मक वातावरण और बाह्य परिवेश शान्त होना चाहिए। बच्चे को यह विश्वास होना चाहिए कि जब वह अपनी बात कह रहा है तो बाहर के अन्य लोग न तो उसे देख रहे हैं न उसकी बात सुन रहे हैं।

उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कार को नियोजित करना होता है। पियाजे ने बच्चों के चिन्तन का अध्ययन करने के लिए साक्षात्कार का प्रयोग किया है। उसके अध्ययन का निम्नलिखित उदाहरण यह दर्शाता है कि साक्षात्कार का प्रयोग बच्चों की सामान्य एवम् नैतिक संकल्पनाओं का पता लगाने के लिए किया जा सकता है।

बच्चे को कहा जाता है, एक बच्चा अन्य बच्चों को जिनके साथ वह खेलता है सदैव नुकसान पहुंचाता है किसी को वह चांटा लगाता है और किसी को पत्थर मारता है। एक दूसरा बच्चा है जो कभी किसी को नहीं सताता। एक दिन खेलते हुए गलती से उससे एक बच्चे को चोट लग जाती है। इस घटना को बताकर बच्चे से पूछा जाता है, "क्या दोनों बच्चों ने समान रूप से नुकसान पहुंचाया ?" 'किसने अधिक हानि की?' यह देखा गया है कि छोटे बच्चे दूसरे लड़के को अधिक दोषी ठहराते हैं क्योंकि उसने दूसरे बच्चे को चोट पहुंचाई, यद्यपि यह अनजाने में पहुंचाई गई। जब बच्चे बड़े होते हैं तब ही वे जानबूझकर किये गये कार्य और अनजाने में हुए कार्य के अन्तर को समझ पाते हैं। यहां पर यह याद रखना चाहिए कि किसी सामान्यीकरण पर पहुंचने के पहले काफी संख्या में बच्चों से साक्षात्कार करना होगा।

कभी-कभी शिक्षक द्वारा किसी विशेष प्रयोजन को लेकर अवलोकन के बाद

बच्चे से साक्षात्कार किया जा सकता है। साक्षात्कार के बाद कुछ बिन्दु स्पष्ट हो सकते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षक यह जानना चाह सकता है कि अमुक परिस्थिति में बच्चे ने विशेष प्रकार का व्यवहार क्यों किया या बच्चे ने अशिष्ट और अशोभनीय व्यवहार क्यों किया। साक्षात्कार से कारण का पता लग सकता है और यह भी पता लग सकता है कि बच्चे को कौन सी बात परेशान कर रही है।

खेल साक्षात्कार

दूसरों के प्रति बच्चे की भावनाएं और अभिवृत्तियां जानने के लिए खेल साक्षात्कार उपयोगी है। इसका प्रयोग छोटे बच्चों के अध्ययन में विशेषकर जब वे गुड़ियों से खेल रहे हों, किया जा सकता है। शिक्षक या अन्वेषक देखता है कि बच्चा गुड़िया से किस प्रकार का आचरण करवाता है, विशेषकर उन गुड्डे-गुड़ियों के प्रति जो माता, पिता, भाई, बहन इत्यादि का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिक्षक बच्चे से पूछ सकता है कि गुड्डे या गुड़ियों की क्या इच्छाएं और भावनाएं हैं। इन प्रश्नों से बच्चा सचेत नहीं होता कि ये प्रश्न उसके परिवार के बारे में हैं क्योंकि वह समझता है कि ये गुड्डे से संबंधित हैं। उसे ऐसा नहीं लगता कि कोई उसकी आन्तरिक इच्छाओं का पता लगाने की कोशिश कर रहा है क्योंकि जो कुछ भी पूछा जा रहा है वह गुड्डे के बारे में है। इसलिए जिन व्यक्तियों का गुड्डे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं उनके बारे में प्रश्नों का उत्तर वह निसंकोच और स्पष्ट देता है। इस प्रकार बच्चे का अपने माता-पिता, भाई-बहन, मित्रों और अन्य व्यक्तियों से संबंध तथा मनमुटाव आदि के बारे में पता लगता है। इसी प्रकार शिक्षिका को बच्चे के सम्पर्क में आने वाले लोगों के प्रति अन्तर्संबंधों, भावनाओं, अभिवृत्तियों आदि का पता लग सकता है। शिक्षिका के लिए खेल साक्षात्कार एक प्रकार का निदानात्मक उपकरण है, विशेष रूप से जहां बच्चों के मनोभाव, संवेग और अभिवृत्तियों का संबंध है।

समाजमिति विधि

समूह के निदान में यानी सदस्यों के परस्पर मनोभावों का पता लगाने में समाजमिति विधि उपयोगी है। इस विधि का उपयोग सरलता से कक्षा में किया जा सकता है। शिक्षक प्रत्येक बच्चे से उसकी पसन्दगी पूछ सकता है, जैसे, वह कक्षा में किस सहपाठी के पास बैठना पसन्द करेगा, या किसके साथ मिलकर कोई कार्य करना पसन्द करेगा। प्रत्येक बच्चे से पहली और दूसरी पसन्द पूछी जा सकती है। इससे शिक्षक पता लगा सकेगा कि कौन से बच्चे लोकप्रिय हैं यानी अधिक बच्चों द्वारा चुने जाते हैं, और कौन बच्चे ऐसे हैं जिन्हें किसी ने नहीं चुना। वह यह भी पता लगा सकता है कि क्या कक्षा में कोई गुट है।

शिक्षक को बच्चों की पसन्दगी पर ध्यान देना चाहिए। जहां तक हो सके उसे

कक्षा में बैठने की व्यवस्था, या सामूहिक कार्य का आयोजन बच्चों द्वारा दी गई पसन्दगी के आधार पर करना चाहिए। यदि बच्चों के समूह उनकी इच्छाओं के आधार पर बनाए जाते हैं तो उनके कार्य में भी अधिक प्रगति होती है।

बच्चों की अनुक्रियाओं का विश्लेषण यह बता सकता है कि उनकी अभिवृत्तियां और मूल्य क्या हैं। शिक्षक यह देख सकता है कि क्या एक ही जाति, समुदाय या सामाजिक-आर्थिक स्तर के बच्चे एक-दूसरे को चुनते हैं या चुनाव समान रुचियों, या किसी अन्य कारक पर आधारित हैं। शिक्षक यह भी पता लगा सकता है कि कौन से बच्चे लोकप्रिय या एकाकी हैं। क्या लोकप्रियता उच्च शैक्षिक उपलब्धि के साथ-साथ चलती है? या खेल में अच्छे होने के साथ? या क्या इसका आधार सामाजिक-आर्थिक स्तर है? किन्तु ऐसे निष्कर्ष निकालने में सतर्कता की आवश्यकता है। जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उनका मिलान साक्षात्कार आदि अन्य विधियों से प्राप्त सामग्री से करना चाहिए। उदाहरण के लिए हो सकता है कि शिक्षक को पता चले कि एक बच्चा जो लोकप्रिय है, खेल में और पढ़ाई में अच्छा है और इससे वह सोचने लगे कि ये ही बच्चे की लोकप्रियता के आधार हैं। किन्तु भेंट करने का पता लगे कि अन्य बच्चे उसे उसके हंसमुख और अच्छे स्वभाव के कारण पसन्द करते हैं।

समाजमिति से बच्चों के समूहों के बारे में बहुत उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। इससे ऐसे क्षेत्रों का भी पता लगता है जिनमें आगे शोध की आवश्यकता है, जैसे, उन कारकों को अध्ययन जिनसे बच्चे लोकप्रिय होते हैं या नापसन्द किए जाते हैं।

व्यष्टि अध्ययन (Case Study)

केस स्टडी किसी इकाई के विविध पक्षों के गहन अध्ययन का प्रतिवेदन है। यह इकाई एक बच्चा, स्कूल या एक विशेष समूह हो सकता है।

केस स्टडी के लिए जानकारी अधिकतर एक कालावधि के बीच, विभिन्न स्रोतों से एकत्रित की जाती है। जानकारी को मिलाकर, समस्या का स्वरूप और अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखकर निर्वचन किया जाता है।

एक बच्चे की केस स्टडी के लिए उसके घर की पृष्ठभूमि, शैक्षिक उपलब्धि, स्वास्थ्य, हाजिरी, विभिन्न कार्यक्रमों में सहभागिता, उसके सबल और दुर्बल पक्ष, उसके सामाजिक संबंध और समंजन, उसकी समस्याओं, अभिलाषाओं और योजनाओं आदि के बारे में जानकारी एकत्रित करनी होगी। शिक्षक को अधिक से अधिक स्रोतों से यथासंभव जानकारी करनी चाहिए। ये स्रोत हैं स्कूल के अभिलेख, तथा बच्चे से उसके माता-पिता और अन्य शिक्षकों से साक्षात्कार। वह समाजमिति और आत्मकथा से उपलब्ध सामग्री का भी प्रयोग कर सकता है। उसे कालावधि में बच्चे का नियमित

अवलोकन करना चाहिए। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री का संश्लेषण करके बच्चों की समस्याओं के कारणों का अंतरिम निर्वचन किया जा सकता है।

एक बच्चे की व्यष्टि अध्ययन (केस स्टडी) की विशेषता यह है कि एक व्यक्ति के रूप में बच्चे पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इससे शिक्षक को बच्चे की पृष्ठभूमि, उपलब्ध सुविधाओं और आगत कठिनाइयों के परिप्रेक्ष्य में देखने का अवसर मिलता है। इस प्रकार इस विधि से शिक्षक को बच्चे को भली-भांति समझने में सहायता मिलती है। व्यष्टि अध्ययन की कमी यह है कि एक तो इसमें बहुत समय लगता है, और दूसरा, एक प्रकरण के आधार पर सामान्यीकरण करना संभव नहीं है। वास्तव में व्यष्टि अध्ययन विधि की एक देन यह है कि इससे शिक्षाशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों को महसूस हुआ कि विभिन्न बच्चों की सतही स्तर पर समान दिखने वाली समस्याएं अलग-अलग कारणों से उत्पन्न हो सकती हैं, और इसलिए बच्चों के प्रति अलग-अलग तरह से व्यवहार करना चाहिए।

यद्यपि एक व्यष्टि अध्ययन से कोई सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता किन्तु यदि कुछ अध्ययन किए जाएं तो एक सीमित सामान्यीकरण संभव है। जैसे, कुछ ऐसे बच्चों का अध्ययन किया जाए जो पढ़ाई में संतोषजनक प्रगति नहीं कर रहे तो यह बात सामने आ सकती है कि अधिकांश ऐसे बच्चे उन घरों से आते हैं जहां पढ़ाई को महत्व नहीं दिया जाता, और इन बच्चों को घर की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता।

बच्चों के अध्ययन करने की अन्य विधियां हैं जिन्हें इस विवेचना में शामिल नहीं किया गया। इसमें से सबसे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक परीक्षण, रुचि और व्यक्तित्व की तालिकाएं हैं जिनके उपयोग के लिए विशेष प्रशिक्षण चाहिए। ऐसी आशा की जाती है कि प्रत्येक शिक्षक एक या दो उपयुक्त विधियों का प्रगाढ़ अध्ययन करेगा और बच्चों के अध्ययन में उनका प्रयोग करेगा। इससे वह अपनी देखरेख में बच्चों को अधिक अच्छी तरह समझ सकेगा और उनकी उचित सहायता कर सकेगा। इससे उसके बाल विकास के ज्ञान और सामान्य शैक्षिक प्रक्रिया की समझ का विकास होगा।

भाग-2

बाल विकास

बाल विकास से शिक्षक को क्या लेना-देना है? क्या एक माली को जो यह नहीं जानता कि पौधे किस प्रकार बढ़ते हैं हम बगीचा सुपुर्द करेंगे? शिक्षकों को, जिन्हें प्रतिदिन कई घण्टे बच्चों की देखभाल करनी पड़ती है, यह जानना आवश्यक है कि बच्चों की वृद्धि और विकास किस प्रकार होता है। इससे वे समझ पाएंगे कि विभिन्न आयु स्तरों पर बच्चों से क्या अपेक्षा करनी चाहिए, अमुक आयु पर क्या प्रसामान्य है और कब बच्चे का व्यवहार प्रसामान्य से विचलित है जो चिन्ता का विषय हो सकता है। शिक्षकों को यह भी समझना चाहिए कि वे जिस प्रकार बच्चों से व्यवहार करते है, जिस प्रकार के वातावरण का संचार करते हैं उस सब का बच्चों पर गहरा प्रभाव पड़ता है और बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए वे बहुत कुछ कर सकते हैं।

आगे आने वाले अध्यायों का संबंध बाल विकास से है। मुख्य बल तो प्राथमिकशाला के वर्षों पर है, किन्तु क्योंकि इस विकास का आधार इससे पूर्व के विकास से है, इसलिए सरसरी तौर से प्रारंभिक विकास को भी शामिल किया गया है। अध्याय 3 में प्रसवपूर्व विकास का वर्णन है, और अध्याय 4 में जन्म से स्कूल आने की आयु तक के विकास का वर्णन है। अध्याय 5 से 10 तक में प्राथमिक शाला के बच्चे के विभिन्न पहलुओं के विकास का वर्णन है। अध्याय 11 से 14 तक सामान्य विकास की चर्चा की गई है। इनमें बताया गया है कि सामान्य विकास कैसे होता है और कौन से कारक इसे प्रभावित करते हैं।

अध्याय 3

प्रसवपूर्व विकास

फ्रेनी जेड तारापौर

मानव शरीर एक अनोखी मशीन है जो अत्यन्त जटिल कार्यों को बहुत समन्वित ढंग से पूरा करती है एक तरह से जो भी कम्प्यूटर हमारे पास हैं, उनमें यह सर्वोत्तम है। जैसे आप इन पंक्तियों को पढ़ रहे हैं, आपकी उंगलियां कागज का स्पर्श कर रही हैं, अपनी आँखें छपे हुए शब्दों को देख रही हैं जिनको आपका मस्तिष्क समझ रहा है, आप कुछ आवाजें सुन रहे हैं जैसे घडी की टिक-टिक या किसी के बोलने की आवाज, आपका मुंह सूख रहा है और आप एक गिलास ठंडा पानी पीना चाहेंगे, जो मध्यान्ह का भोजन आपने किया था उस पर आपके पेट में पाचनक्रिया हो रही है, आपका हृदय धड़क रहा है और शरीर के विभिन्न अंगों में रक्त संचार हो रहा है, आप सांस ले रहे हैं, जिसका मतलब है कि आक्सीजन ग्रहण कर रहे हैं और कार्बन-डाई-आक्साइड निकाल रहे हैं, आपके गुरदे रक्त को शुद्ध कर रहे हैं..... एकाएक झुंझलाहट में आपका हाथ मक्खी को उड़ाने के लिए गाल पर जाता है। ये सब और ऐसे ही अनेक कार्य दिन-प्रति-दिन समक्षणिक रूप से आपके शरीर में हो रहे हैं और इनमें से अनेक ऐसे हैं जिनकी आपको खबर तक नहीं है। इस परम जटिल मशीन के निर्माण में कितना समय लगता है? गर्भ में बच्चे के विकसित होने में 280 दिन या नौ माह लगते हैं। इसके बाद बच्चे का शरीर ऐसे कार्यों को करने में सक्षम हो जाता है जो जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं जैसे श्वसन। इस छोटे शिशु में ऐसे जटिल कौशलों को सीखने की और ज्ञानार्जन की संभावनाएं हैं जो मानव तक ही सीमित हैं।

जीवन का प्रारंभ तब होता है जब नर का जनन कोशाणु, शुक्राणु मादा कोशाणु, डिम्ब से मिलता है। यह चमत्कार है कि ये इतनी सुक्ष्म कोशिकाओं में, जो केवल खुर्दबीन से ही दिखाई देती हैं, बच्चे की सारी आनुवंशिकता, जो न केवल माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी बल्कि उनसे पहले की पीढ़ियों से भी प्राप्त होती हैं, विद्यमान रहती है।

यौवनारंभ के बाद स्त्री की डिम्बग्रन्थि डिम्बों को मुक्त करती हैं, और यह कार्य 45 साल की आयु तक चलता है। हर अठाइसवें दिन दो डिम्ब ग्रन्थियों में से एक से रजोधर्म कालचक्र के बीच, एक डिम्ब मुक्त होता है। डिम्बग्रन्थि से मुक्त होने के बाद यह डिम्बवाही नली के द्वारा गर्भाशय की ओर जाता है। डिम्ब का जीवनकाल अल्प होता है और सामान्य स्थिति में प्रत्येक माह यह रजोधर्म के दौरान गर्भाशय से निकल जाता है।

यौन संबंध में पुरुष का वीर्य गर्भाशय के मुंह पर जमा होता है। वीर्य में अनेक शुक्राणु होते हैं। शुक्राणु गर्भाशय से डिम्बवाही नली की ओर जाते हैं। निषेचन तब होता है जब शुक्राणु डिम्ब को भेदता है। शुक्राणु का केन्द्रक (nucleus) डिम्ब के केन्द्रक से मिलता है और ये एक कोशाणु बनाते हैं। नर शुक्राणु के द्वारा बच्चे का लड़का या लड़की होना निर्धारित होता है। नया कोशाणु कुछ ही घण्टों में दो कोशाणुओं में विभक्त हो जाता है। दो कोशाणु चार और चार कोशाणु आठ में विभक्त हो जाते हैं। बहत्तर घण्टों में एक निषेचित कोशाणु से बढ़कर बत्तीस कोशाणु हो जाते है।

गर्भाधान से बच्चे के जन्म के समय को प्रसवपूर्व (prenatal) काल कहते हैं। इस अवस्था में वृद्धि बहुत तीव्र गति से होती है। जीवन के किसी काल में यह इतनी तेज नहीं होती जितनी इन नौ महीनों में। एक कोशाणु से बढ़कर भ्रूण में 200 अरब कोशाणु हो जाते हैं जो विभिन्न प्रकार के होते हैं और विविध कार्य संचालित करते हैं। भ्रूण का वजन 5 से 7 पाउण्ड या लगभग तीन किलो का हो जाता है। जन्म के समय शिशु में सारे अवयव होते हैं, जिनमें अधिकांश जन्म के पहले कार्य करने लगते है और कुछ जन्म के बाद कार्य करना प्रारंभ करते हैं जन्म के समय शिशु एक स्वतंत्र प्राणी के रूप में जीवित रहने योग्य हो जाता है।

जन्म के पूर्व शिशु की जिसे भ्रूण कहते हैं, आक्सीजन और पोषण की आवश्यकताएं माता के शरीर से पूरी होती है। भ्रूण एक परजीवी के समान है। नाभिनाड़ी भ्रूण को अपरा (प्लेसेंटा) से जोड़ती है जो गर्भाशय से जुड़ा होता है। भ्रूण के अपशिष्ट उत्पाद (waste products) और कार्बन-डाई-आक्साइड अपरा द्वारा माता के शरीर में पहुंचते हैं। भ्रूण उल्व थैली (amniotic sac) में तरल के बीच रहता है जो उसकी धक्के से रक्षा करती है।

यमज (Twins)

कभी-कभी दो डिम्ब एक साथ निषेचित हो जाते है जिससे भ्रात्रीय यमज का जन्म होता है। कभी गर्भाधान के बाद कोशाणु के विभक्त होने की प्रारंभिक अवस्था में भ्रूण दो पृथक भागों में विभक्त हो जाता है और पहले जो एक भ्रूण था उससे

दो स्वतंत्र भ्रूण बनते हैं। इन्हें समरूप यमज कहते हैं।

प्रसवपूर्व विकास की विशेषताएं

समय	विकास की अवस्था
निषेचन	शुक्राणु और डिम्ब मिल कर एक कोशाणु बनाते हैं।
72 घंटे	कोशाणु 32 कोशाणुओं में विभाजित हो जाता है।
2 सप्ताह	भ्रूण गर्भाशय की भित्ति से सन्निहित हो जाता है।
4 सप्ताह	हृदय धड़कने लगता है।
5 सप्ताह	मस्तिष्क की मुख्य संरचनाएं पहचानी जा सकती हैं।
8 सप्ताह	लम्बाई 3 से 5 सेण्टीमीटर, वजन 2 ग्राम, सिर का विकास सुस्पष्ट, आँख, कान और जबड़ा विकसित हो रहे हैं, मानव जैसा दिखाई देने लगता है।
10 सप्ताह	मस्तिष्क के मुख्य भाग प्रस्तुत, हड्डियों में रक्त कोशिकाओं का उत्पन्न होना।
14 सप्ताह	फेफड़े बन गए हैं किन्तु श्वसन के लिए अभी तैयार नहीं, त्वचा पारदर्शी, बाह्य लिंग दिखाई देने लगते हैं, नाखून और बाल निर्मित होने लगते हैं।
18 सप्ताह	भ्रूण का हिलना अनुभव किया जा सकता है, तालू पूरा हो जाता है।
22 सप्ताह	सभी अवयव निर्मित हो जाते हैं किन्तु उनके पूर्ण विकास में 3 माह और लगेंगे सिर पर बाल आ जाते हैं।
26 सप्ताह	दांत निर्मित हो रहे हैं, फेफड़े करीब-करीब पूर्ण विकसित हो जाते हैं।
30 सप्ताह	सार शरीर पर रोम, त्वचा का रंग लाल और कान कोमल।
34 सप्ताह	पैर के तलवों पर सलवटें पड़ना।
38 सप्ताह	त्वचा का अधिक मोटा होना, कान में उपास्थि (cartilage) का होना।

प्रसव प्रक्रिया

गर्भाधान के नौ माह बाद शिशु का जन्म होता है। प्रसव एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जिसमें गर्भाशय संकुचित होता है और फिर शिथिल होता है जिससे भ्रूण जन्म नाल में आगे खिसकता है। इस समय अच्छी डाक्टरी देखरेख आवश्यक है

क्योंकि आकस्मिक संकट में उचित संभाल होने से बच्चे को किसी प्रकार की क्षति से बचाया जा सकेगा। कभी-कभी प्रसव के समय आक्सीजन की आपूर्ति में रुकावट से मस्तिष्क की कोशिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। मस्तिष्क की क्षति अपूरणीय है। इससे कभी-कभी एक दशा उत्पन्न हो जाती है जिसे प्रमस्तिष्कीय अपघात (cerebral palsy) कहते हैं जिसमें बच्चे को चलना सीखने में कठिनाई होती है, कंपकंपी आती है, अनियंत्रित पेशी अतिसंकुचन (muscular spasms) होता है, और बोलने में कठिनाई होती है। फिर भी, ये कठिनाइयां बहुत कम प्रतिशत के मामलों में होती है। अधिकांश के लिए प्रसव प्रक्रिया सामान्य होती है और स्वस्थ बच्चों का जन्म होता है।

प्रसवपूर्व विकास को प्रभावित करने वाले कारक

गर्भवती माता के अच्छे स्वास्थ्य के लिए उचित देख रेख आवश्यक है। यह सुगम प्रसव में मदद करेगी, उलझन कम होगी, स्वस्थ शिशु का जन्म होगा, और अपने बच्चे की देखभाल करने के लिए उसके पास पर्याप्त शक्ति होगी। नवजात शिशु के स्वास्थ्य का संबंध इस बात से है कि जब वह गर्भ में था तब कैसा था। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि गर्भवती माता अपने स्वास्थ्य की कितनी परवाह करती थी। अच्छा आहार, शारीरिक व्यायाम और आराम के बीच संतुलन, बीमारी में उचित चिकित्सा, और नियमित डाक्टरी जांच से माता को अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद मिलेगी और अजन्मे शिशु के विकास के लिए आदर्श परिस्थितियां निर्मित हो सकेंगी।

गर्भावस्था में मां से विशेष अपेक्षाएं हैं और इसलिए उसे विशिष्ट और अतिरिक्त भोजन की आवश्यकता होती है। शरीर की वृद्धि और क्षतिपूर्ति के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है, खनिज और विटामिन वृद्धि तथा शरीर को अच्छी क्रियाशील स्थिति में रखने के लिए आवश्यक होते हैं। ऊर्जा के लिए वसा और कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता होती है। ज्यादातर भोज्य पदार्थों में एक से अधिक पोषक तत्व होते है और इसलिए उपरोक्त एक से अधिक कार्यों के संचालन के लिए आहार प्रदान करते हैं। फिर भी किसी भी एक भोज्य पदार्थ में सारे पोषक तत्व आवश्यक मात्रा में नहीं होते। प्रत्येक खाद्य समूह से विभिन्न प्रकार के पदार्थों को शामिल करना आवश्यक है।

1 प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ

दूध, दूध से बने पदार्थ (यानी दही, पनीर, खोआ) दालें, गिरी, मूंगफली, अंडे, मछली, मांस और कुकुट।

2 खनिज और विटामिन युक्त पदार्थ

पत्तीदार सब्जियां, पीली और नारंगी रंग की सब्जियां और फल, फली, मटर, खीरा, आँवला, अमरूद, टमाटर, संतरा इत्यादि।

3 कार्बोहाइड्रेट युक्त पदार्थ

चावल, गेहूं, मक्का, ज्वार, आलू, अरबी, शक्कर, गुड़ इत्यादि।

4. वसा युक्त पदार्थ

तेल, घी, मक्खन इत्यादि।

पौष्टिक आहार के साथ-साथ गर्भवती माता को माफी मात्रा में तरल पदार्थ लेने चाहिए।

नियमित डाक्टरी जांच आवश्यक है। महिला डाक्टर स्वास्थ्य पर निगाह रख सकती है और ऐसे उपाय सुझा सकती है। जिससे आगे स्वास्थ्य संबंधी उलझनें उत्पन्न न हों। देर से यदि किसी विकृति का पता चलता है तो इससे मां और अजन्मे शिशु दोनों ही के जीवन को खतरा रहता है।

गर्भवती माता को कठिन श्रम नहीं करना चाहिए। हलके व्यायाम को जारी रखा जा सकता है किन्तु उसे अच्छी तरह सोना चाहिए, और थकने पर थोड़े-थोड़े समय के लिए विश्राम करते रहना चाहिए।

शारीरिक स्वच्छता और अच्छी आदतें महत्वपूर्ण हैं। कपड़े आरामदायक होने चाहिए। दांतों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो उपचार कराना चाहिए। मां को अपने संवेगों को समझना चाहिए-और अपनी चिन्ताओं और उत्तेजनाओं को कम करना चाहिए। प्रसन्नचित रहना लाभदायक होगा।

अनेक ऐसी बीमारियां है जो यदि माता में हों तो उनका प्रभाव अजात शिशु पर नहीं पड़ता। किन्तु कुछ ऐसी होती हैं जिनके बड़े हानिकारक परिणाम होते हैं। जर्मन खसरा (German measles) के, जो सामान्य खसरे से थोड़ा भिन्न होता है, बड़े अवांछनीय परिणाम होते हैं विशेषतः यदि गर्भावस्था के प्रथम तीन माह में इससे ग्रस्त हो जाती है। इस बीमारी से अवयवों के विकास और तंत्रों के गठन में रुकावट पड़ती है। बच्चे अधिकतर बधिर पैदा होते हैं, हृदय के रोग और मोतियाबिन्द हो जाता है। वे अल्प से लेकर गंभीर मानसिक मंदन से भी ग्रस्त हो जाते हैं। अनेक मृत जन्मते हैं। यदि मां को पहले तीन माह में गलसुआ (mumps) हो जाते हैं तो इसके परिणामस्वरूप बच्चे की मृत्यू हो सकती है या उसके हृदय में विकृति उत्पन्न हो सकती है। यदि मां उपदंश (syphilis) से पीड़ित है तो 25 प्रतिशत बच्चे मानसिक मन्दता और शारीरिक विकृतियों से ग्रस्त पैदा होते हैं। मधुमेह (diabetes) चेचक, छोटी माता, तपेदिक, मलेरिया, यकृत-शोथ (hepatitis) भी भ्रूण के लिए

खतरनाक हैं। ऐसा पता चला है कि कुछ दवाईयों के परिणाम हानिकारक होते हैं। कुनैन से जन्मजात बधिरता हो जाती है। जिन माताओं ने गर्भावस्था के पहले तीन माह में थेलीडोमाइड (thalidomide), प्रशान्तक (tranquilizer) लिया उनके बच्चों के हाथ पैर में विकृति आ गई और जन्म पर कुछ के हाथ और पैर गायब पाए गए। स्ट्रेप्टोमाइसीन (streptomycin), टेट्रासाइक्लीन (tetracycline), जैसी दवाइयां यदि पहले छः माह में ली जाती हैं तो इनके बच्चे पर कई प्रकार के कुप्रभाव पड़ते हैं, जैसे, वृद्धि में मन्दन, बधिरता और कुछ हद तक दाँतों पर धब्बे। एस्प्रीन की बड़ी खुराक से भी गर्भपात हो सकता है और वृद्धि में रुकावट पड़ सकती है। इसलिए गर्भवती माता को यथासंभव दवाओं के सेवन से बचना चाहिए। यदि नितान्त आवश्यक हो तो केवल डाक्टर की सलाह पर दवाएं लेनी चाहिए।

हैरोइन (herion) और बारबीट्यूरेट्स (barbiturates) जैसी नशीली दवाओं के भी अवांछनीय परिणाम होते हैं। ये मस्तिष्क को क्षति पहुंचाती हैं और कभी-कभी इनके परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है। मारीजुआना (marijuana) से भ्रूण में विकृति आ जाती है। जन्म पर ऐसे बच्चे चिड़चिड़े, उत्तेजित और अत्यधिक व्यग्र पाए जाते हैं।

गर्भावस्था के दौरान धूम्रपान या तम्बाकू सेवन करने वाली स्त्रियां अधिक अनुपात में अकाल बच्चों को जन्म देती हैं। ऐसे शिशु या तो जी नहीं पाते या स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से ग्रसित रहते हैं। धूम्रपान से भ्रूण की आक्सीजन और पोषण की आपूर्ति में रुकावट पड़ती है जिससे स्वाभाविक वृद्धि में कमी आती है।

एक दूसरा कारक जिसका भ्रूण पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है मां का शराबी होना है। इनके बच्चों की आँखे सामान्य से छोटी होती हैं। इसी का एक दूसरा लक्षण है जन्म पर वजन का कम होना। कुछ जन्मजात दोषों की संभावना भी बढ़ जाती है जैसे हृदय की असामान्यता और कूल्हे के जोड़ का उखड़ना (dislocation)। बाह्य लिंग में भी विकृति देखी गई है। शराबी माताओं के बच्चों में जन्म के बाद चूसने की अनुक्रियाएं क्षीण होती है और निद्रा की अवधि अपर्याप्त होती है। वे चिड़चिड़े और अत्यधिक क्रियाशील (hyperactive) पाए गए हैं। जिन शिशुओं पर मां के शराबीपन का अधिक प्रभाव पड़ा है वे अनुकूलतम पर्यावरण के मिलने पर भी सामान्य विकास के सोपानों पर पहंचने में पिछड़े रहते हैं।

एक्स-रे (X-ray) का अधिक प्रभावन (exposure) भी अजन्मे शिशु के लिए हानिकारक होता है।

माँ के मन की स्थिति भी एक अन्य कारक है जो विचारणीय है। मां यदि निरंतर और तीव्र तनावपूर्ण स्थिति या संवेगात्मक अशान्ति में रहती है तो इसका

प्रभाव भ्रूण पर पड़ सकता है। ऐसे मामलों में भ्रूण की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। इससे जन्म पर शारीरिक असामान्यताएं, अमाशय-आंत (gastrointestinal) का सही कार्य न करना, और भरण (feeding) की समस्याएं हो सकती हैं। माताएं जो बहुत समय से तनाव की स्थिति में रहती हैं उन्हें प्रसव में कठिनाई होती है। लेकिन कभी-कभी मानसिक उद्विग्नता का भ्रूण पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता।

बीस वर्ष से कम आयु पर गर्भावस्था खतरों से खाली नहीं है। स्वयं कमसिन माँ के शरीर की अभी वृद्धि हो रही है और गर्भावस्था उसके ऊपर अतिरिक्त बोझ डालती है। ऐसे मामलों में अकाल जन्म और कठिन प्रसव की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। पैंतीस वर्ष के बाद कभी गर्भावस्था में भी अधिक खतरे हैं। जैसे माँ की आयु बढ़ती है मंगोली (mongoloid) बच्चे के होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। प्रसव में देर लगना और मृत प्रसव के होने के खतरे भी बढ़ जाते हैं।

बच्चे के कुछ लक्षण आनुवंशिकता से उत्पन्न होते हैं। मधुमेह, ग्लेकोमा (चक्षुरोग) अधिरक्तस्राव (haemophilia) जो एक प्रकार का एनीमिया (anemia) है, आनुवंशिक हैं। कुछ प्रकार के मानसिक विकार भी वंशानुक्रम से प्राप्त होते हैं। खून का बेमेल होना एक अन्य कारक है जिससे भ्रूण का जीवन खतरे में पड़ सकता है। यदि माँ के खून में ऋणात्मक आर. एच. (negative Rh) कारक हैं और भ्रूण यदि पाजिटिव आर. एच. हैं तो जैसे गर्भावस्था आगे बढ़ती है माँ के शरीर में रोगप्रतिकारक (antibodies) विकसित होने लगते हैं जो भ्रूण में प्रविष्ट होकर एक रक्त कोशिकाओं को नष्ट करना शुरू कर देते हैं, जिससे भ्रूण को आक्सीजन में कमी हो जाती है। इससे कभी-कभी गर्भपात, मृतप्रसव, जन्म के बाद मृत्यु, मस्तिष्क की क्षति, पीलिया (jaundice) और एनीमिया हो जाता है। यदि यह पहला गर्भ है तो माता और पिता के बेमेल आर. एच. कारक का बच्चे पर असर नहीं पड़ता। दूसरा गर्भ होने पर यदि माँ को समय पर उचित चिकित्सा प्राप्त होती है तो गड़बड़ी से बचा जा सकता है।

अध्याय 4

प्रारंभिक वर्षों में वृद्धि और विकास

फ्रेनी जेड़ तारापौर

जन्म के समय मानव शिशु में वे सभी अवयव क्रियाशील रहते हैं जो उसे जीवित रखने के लिए आवश्यक हैं, यद्यपि अन्य प्राणियों के बच्चों की तुलना में वह बहुत अविकसित रहता है। पूरी तौर से परिपक्वता तक पहुंचने के लिए उसे अत्यधिक देखभाल की आवश्यकता होती है और इसमें लम्बा समय भी लगता है। जन्म के समय वह बहुत अपरिपक्व होता है। आगे आने वाले वर्षों में उसका विकास धीरे-धीरे होगा। मानव शिशु में विकास की आश्चर्यजनक संभावनाएं होती हैं, बशर्ते कि उसका उचित पर्यावरण में पालन हो।

औसत नवजात शिशु जन्म के समय तस्वीरों में जैसा दिखाया जाता है उससे काफी भिन्न होता है। उसकी त्वचा लाल और फूली हुई सी होती है और उसमें सिलवटें पड़ी होती हैं। सिर बड़ा, पलकें फूली हुई, नाक चपटी और हाथ-पैर शरीर के अनुपात में छोटे होते हैं। उसका वजन 3 किलोग्राम के आसपास होता है और लम्बाई 45 सेण्टीमीटर से 48 सेन्टीमीटर होती है। उसकी पेशियां मोटी और मुलायम होती हैं और उसका उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। उसकी गतिविधियां यादृच्छिक और अव्यवस्थित होती है।

शारीरिक और गामक विकास

-प्रथम दो तीन वर्षों में शरीर तीव्र गति से बढ़ता है। पहले छः माह में एक औसत शिशु जन्म के समय के भार से दुगुना हो जाता है और वर्ष के अन्त तक तिगुना। ऊंचाई में भी तीव्र गति से वृद्धि होती है। पहले तीन माह में बच्चे की लम्बाई में 20 प्रतिशत की, और दो वर्ष में 75 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसके बाद वृद्धि समान गति से 11 वर्ष की आयु तक चलती है।

शिशुओं का सिर बड़ा होता है। सिर बच्चे की लम्बई का चौथाई भाग के लगभग होता है, जबकि, तुलना में वयस्क का सिर उसकी लम्बाई का आठ में एक हिस्सा ही होता है। यह प्रकति का प्रबन्ध है कि शिशु को इतना विकसित मस्तिष्क

प्राप्त हो कि वह जीवित रहने की सारी क्रियाएं पूरी कर सके। जन्म के समय छाती की परिधि सिर से कम होती है, एक वर्ष में यह सिर के बराबर आ जाती है और फिर छाती का विकास सिर से अधिक तेज गति से होता है। जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, शरीर के अनुपात बदलते हैं। धड़, भुजाएं, और टांगें अब सिर की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ती हैं।

जन्म के समय अधिकतर हड्डियां मुलायम होती हैं। वे केल्सियम और अन्य खनिज जमा होने के कारण धीरे-धीरे कड़ी होती जाती हैं। इस प्रक्रिया को अस्थीभवन (ossification) कहते हैं। अस्थीभवन की प्रक्रिया में केल्सियम और विटामिन डी की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए बढ़ते हुए बच्चे के लिए केल्सियम और विटामिन डी दोनों आवश्यक हैं।

पाँच वर्ष तक बच्चों की लम्बाई और भार

आयु	लड़के		लड़कियां	
	उंचाई सेमी. में	वजन किलो में	उंचाई सेमी. में	वजन किलो में
3 माह से कम	56.2	4.5	55.0	4.2
3 माह	62.7	6.7	60.0	5.6
6 माह	64.9	6.9	64.4	6.2
9 माह	69.5	7.4	66.7	6.6
1 वर्ष	73.9	8.4	72.5	7.8
2 वर्ष	81.6	10.1	80.1	9.6
3 वर्ष	88.8	11.8	87.2	11.2
4 वर्ष	96.0	13.5	94.5	12.9
5 वर्ष	102.1	14.8	101.4	14.5

स्रोत : भारतीय शिशुओं और बच्चों की वृद्धि और विकास
इण्डियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च, नई दिल्ली 1972[1]

जन्म के समय जबड़े में 20 दूध के दांत और कुछ स्थायी दाँत विकसित हो जाते हैं किन्तु अभी दिखाई नहीं देते। छः महीने के बाद ये क्रम से विधिवत निकलने

[1]Source: Growth and Physical Development of Indian Infants and Children. Indian Council of Medical Research, New Delhi, 1972

लगते हैं। सात माह की औसत आयु पर निचले जबड़े में सामने के दो दांत निकलते हैं, इसके बाद चार चवण-दन्त (molar) दोनों जबड़ों में सामने के दाँतों के दोनों ओर एक-एक निकल आते हैं। दो या ढाई वर्ष की अवस्था तक बच्चे के बीस दाँत निकल आते हैं।

शरीर का संचालन स्नायु तंत्रों और पेशियों द्वारा नियंत्रित और समन्वित होता है। जन्म के समय पेशियां बहुत अपरिपक्व होती हैं। शिशु का उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। संचलन यादृच्छिक और असमन्वित होता है। जैसे-जैसे इनमें परिपक्वता आती है, विभिन्न गामक कुशलताओं का विकास दिखाई देने लगता है। बच्चा पहले मोटे तौर पर गामक नियंत्रण प्राप्त करता है, जैसे लुढ़कना, बैठना, खड़े होना और चलना। जैसे-जैसे उंगलियों की पेशियों पर उसका नियंत्रण विकसित होता है, वह वस्तुओं को पकड़ने और खेलने के योग्य हो जाता है। धीरे-धीरे वह ऐसी कुशलताएं जैसे आरेखन, काटना, गुरियों को पिरोना आदि सीखता है। इन कार्यों के लिए सुक्ष्म समन्वय आवश्यक है जो उगलियों की पेशियों के विकास और आँख और हाथ के मिलकर कार्य करने की क्षमता पर निर्भर करता है।

सामान्यतः आयु के साथ बच्चे का अपने शरीर पर नियंत्रण में निखार आता है और अपनी गतिविधियों को वह अधिक परिष्कृत ढंग से समन्वित कर पाता है। पांच या छः वर्ष की आयु तक बच्चा अपने आप भोजन करने, नहाने, कपड़े पहनने और बाल काढ़ने के लिए सक्षम हो जाता है। वह गेंद फेंकना और रोकना, कैंची से काटना, मिट्टी को आकार देना, चित्र बनाना और रंग भरना जैसी क्रियाएं कर सकता है। वह उछलने, कूदने और दौड़ने के योग्य हो जाता है तथा तिपहिया साइकिल भी चला सकता हैं।

जैसे-जैसे उसका अपनी पेशियों पर नियंत्रण बढ़ता है, वह अधिक स्वावलम्बी होता जाता है। वह बहुत से कार्य बिना बड़ों की मदद के करने लगता है और इससे उसका आत्मविश्वास बढ़ता है। बच्चों को स्वयं कार्य करने में काफी मजा आता है। जो गामक कुशलताएं प्रारभिक वर्षों में विकसित होती हैं उन पर बाद में खेलकूद संबंधी कुशलताएं निर्भर करती हैं। कुछ क्रियाकलाप ऐसे हैं जिन्हें बच्चा, जैसे-जैसे उसका शरीर परिपक्व होता है, अपने आप करने लगता है, जैसे, खड़े होना और चलना। फिर भी कुछ कुशलताएं ऐसी हैं जो परिपक्वता के साथ-साथ प्रोत्साहन और प्रशिक्षण पर निर्भर करती हैं।

गामक विकास के मार्ग पट्ट (बड़ौदा पीडिएट्रिक्स माइलस्टोन से)

कौशल प्रकट होने की औसत आयु	गामक कौशल
1 माह	पेट के बल लेटे हुए ठुड्डी उठा सकता है।
2 माह	छाती उठा सकता है।
3 माह	गोदी में लेने पर सिर को सीधा रख सकता है।
4 माह	पीठ के बल लेटे हुए बगल की करवट लेता है, वस्तुओं को पकड़ता है, अंगूठे का उंगलियों के प्रतिमुख कार्य करना।
5 माह	अपने को खींच कर बैठने की स्थिति में लाता है, आंशिक रूप से अंगुठे का प्रतिमुख होना।
6 माह	पकड़ कर खड़े हो जाता है, गोली पकड़ने की कोशिश करता है।
7 माह	अकेला बैठता है, अंगूठे को उंगलियों के प्रतिमुख कर लेता है।
9 माह	फर्नीचर पकड़ कर खड़ा होता है।
10 माह	सहारा लेकर चलता है।
13 माह	अकेला चलता है।
15 माह	सहारा लेकर एक पैर पर खड़ा होता है।
16 माह	मदद लेकर चल कर सीढ़ियां चढ़ता है।
21 माह	पेन्सिल या वर्तिका से चील बिलौटे बनाता है।
23 माह	अपने आप चल कर सीढ़िया उतरता है।
25 माह	बिना रेलिंग पकड़े चढ़ता है, प्रत्येक सीढ़ी पर आगे बढ़ने के पहले दोनों पैर साथ लाता है।
30 माह	पंजों के बल चल सकता है।
3 साल	तिपहिया साइकिल चला लेता है।
4 साल	एक पैर एक सीढ़ी पर रख कर सीढ़ी से उतरता है।
5 साल	सिर के ऊपर की ओर गेंद फेंक लेता है।
5 साल 8 माह	एक पैर से कूदता है।

ये मार्गपट्ट केवल औसत हैं और इनमें काफी वैयक्तिक अन्तर मिलते हैं।

भावात्मक विकास

जीवन के प्रारंभिक दिनों में बच्चे के संवेगों में भेद करना कठिन होता है क्योंकि इस समय संवेग केवल उत्तेजना के रूप में व्याप्त रहते हैं। जैसे बच्चा

बढ़ता है विभिन्न संवेग जैसे कष्ट (distress), हर्ष (delight), क्रोध (anger), रोष (rage), भय, स्नेह (affection), ईर्ष्या, ख़ुशी (joy), धीरे-धीरे उभर कर व्यक्त होते हैं।

शैशवावस्था के प्रारंभ में शिशु कष्ट को व्यक्त कर लेता है। नहलाने और कपड़े पहनाने में जो असुविधा होती है उसके कारण कष्ट को रुदन द्वारा व्यक्त करता है। डर का संचार एकाएक तेज आवाज, शारीरिक सहारे का लोप होना, अनजानी वस्तुएं और अपरिचित व्यक्ति की उपस्थिति से होता है। इनके प्रति बच्चा रोना, पलायन करना या माँ की गोद में छुपना जैसी अनुक्रियाएं करता है। सुखद संवेग जैसे हर्ष (delight) और ख़ुशी (joy) शैशवावस्था में देखे जाते हैं। बारह माह की आयु में बच्चा जिनसे उसे प्रीति मिलती है उनके प्रति स्नेह प्रदर्शित करता है। प्रीति प्राप्त करना एक ऐसी आवश्यकता है जिसकी पूर्ति बहुत महत्वपूर्ण है। यदि बच्चे को स्वीकार नहीं किया जाता और उसे स्नेह नहीं मिलता तो उसके मन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाएगी जो भविष्य में उसके सुख-चैन में बाधक बनेगी।

शालापूर्व वर्षों में संवेग तीव्र होते हैं। प्रारंभिक वर्षों में क्रोध, झुंझलाना और मचलना (temper tantrum), भयभीत होना, ईर्ष्या के कारण विस्फोट होना, देखने में आते हैं। इस आयु पर बच्चा कुतुहली, क्रियाशील और अनेक कार्य करने का इच्छुक होता है। यदि वयस्कों द्वारा उसकी कार्य योजनाओं और इच्छाओं में बाधा पड़ती है तो इससे क्रोध का विस्फोट हो सकता है। बच्चे का क्रोध झुंझलाने और जिद करने, रोने चीखने, पैर पटकने, लात मारने, और प्रहार करने में व्यक्त होता है। अत्यधिक थकान, भूख, माता-पिता का अनावश्यक नियंत्रण और किसी बीमारी की शुरुआत ऐसी स्थितियां हैं जिनके कारण बच्चे को सहज में क्रोध आ जाता है। जो बच्चे अक्सर बीमार पड़ते हैं वे अधिक चिड़चिड़े हो जाते हैं।

डर एक आम संवेग है जो कोई भी डरावनी या असमान्य वस्तु से उत्पन्न होता है। छोटे बच्चों को जानवरों, अकेलापन और अंधेरे से डर लगता है, किन्तु जैसे-जैसे आयु बढ़ती है इनका स्थान काल्पनिक डर जैसे भूत, दानव, चोर, दुर्घटना और मृत्यु ले लेते हैं।

शालापूर्व बच्चों में ईर्ष्या एक ऐसा संवेग है जो अक्सर देखने में आता है। ईर्ष्या तब होती है जब बच्चे को लगता है कि माता-पिता परिवार में किसी अन्य बच्चे पर अधिक ध्यान दे रहे हैं। नवजात शिशु अक्सर ईर्ष्या का कारण बनता है। अधिक आयु वाले बच्चे ईर्ष्या के कारण नए बच्चे पर सीधे आक्रमण कर सकते हैं या ऐसा व्यवहार करेंगे कि बड़ों का ध्यान उनकी ओर खिंच सके। कभी-कभी अपने

से छोटी आयु के प्रारंभिक व्यवहारों की ओर पुनः लौटते हैं जैसे बिस्तर गीला करना, घबराना, हकलाना, अंगूठा चूसना, या जिद करना कि माँ अपने हाथ से कौर बना कर उन्हें खिलाए। तीन और चार वर्ष की आयु के बीच ईर्ष्या अधिकतम होती है।

तीन, चार और पाँच साल के बच्चे उन लोगों से, जो उनके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, प्रगाढ़ प्रेम करते हैं। वे अपना स्नेह आलिंगन और चुम्बन द्वारा प्रकट करते हैं। कभी-कभी वे अपने प्रिय खिलौने या पालतू जानवर के प्रति भी स्नेह प्रकट करते हैं।

छोटे बच्चों में संवेगों की अभिव्यक्ति बड़े बच्चों और वयस्कों से काफी भिन्न होती है। छोटे बच्चों के संवेग तीव्र होते हैं। एक बच्चा उतने ही जोर से रोता है जब उसकी माँ उसके लिए गुब्बारा खरीदने के लिए मना करती है जितना तब जब उसके लिए तिपहिए की साइकिल नहीं खरीदी जाती।

बच्चों के संवेग सामान्यतया बाह्य रूप से प्रकट होते हैं। जैसे वे बड़े होते हैं वे अपने संवेगों को नियंत्रित करना सीखते हैं। बच्चों के संवेगों की एक दूसरी विशेषता यह है कि ये सुखद से दुखद और दुखद से सुखद में अचानक परिवर्तित हो जाते हैं। यदि कोई बच्चा रो रहा है और उसे कोई मनोरंजक चीज दिखाई जाती है तो वह हँसने लगता है और उस बात को भूल जाता है जिसके कारण वह रो रहा था।

बच्चों के संवेगों का विकास परिपक्वता और अधिगम दोनों पर निर्भर करता है। इन कारकों को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे बच्चे के व्यवहार को समझने में मदद मिलती है। जैसे-जैसे बच्चे का बौद्धिक विकास होता है, परिस्थितियों को समझने की उसकी क्षमता बढ़ती है। ध्यान के विस्तार और स्मृति में वृद्धि के साथ-साथ किसी उद्दीपन की ओर अधिक समय तक प्रतिक्रिया करता है। यदि बच्चा संयोग से बड़ों को बातें करते सुन लेता है कि काली पोशाक पहने एक व्यक्ति बच्चों को चुराता है, तो बच्चा, यदि इतना बड़ा है कि इस बात को समझ सके, किसी व्यक्ति को काले कपड़े पहने देखकर डर जाता है और बड़ों से चिपक जाता है। कल्पना का भी प्रभाव बच्चे के संवेगों पर पड़ता है। बच्चों को अंधेरे से डर लगता है क्योंकि वे समझते हैं कि कोई अंधेरे में छिपा हुआ है। इसके अलावा बच्चे किस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में अनुक्रिया करते हैं इसमें अभिगम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यदि बच्चे को लगता है कि जब वह भली प्रकार भोजन नहीं करता तो उसकी माँ परेशान हो जाती है और उसकी ओर विशेष ध्यान देती है, तो आगे भी माँ का ध्यान पाने के लिए वह भोजन के समय इसी प्रकार का नखरा करेगा। माँ

का ध्यान अपनी ओर खींचना उसे अच्छा लगता है इसलिए वह नखरा करता है और धीरे-धीरे खाने के समय नखरा करना एक आदत का रूप ले लेता है। बच्चे नकल से भी सीखते हैं। जब बच्चा देखता है कि कोई दूसरा बच्चा अपने गुस्से का प्रदर्शन वस्तुओं को फेंक कर करता है, तो वह भी वैसा ही करने लग जाता है। कुछ संवेगात्मक अनुक्रियाएं अनुबन्धन (conditioning) द्वारा सीखी जाती हैं। यदि बच्चे को कोई कड़वी दवा पीने को दी जाती है तो उसे दवा के प्रति अरुचि हो जाएगी। बाद में यदि उसके सामने ऐसी दवा लाई जाए जिसका स्वाद अच्छा है और उसे बताया जाए कि दवा का स्वाद अच्छा है तब भी देखने मात्र से ही बच्चा उसे अस्वीकार कर देता है।

सकारात्मक संवेगों को बढ़ाने के लिए माता-पिता का स्नेह, समुचित पर्यावरण, जो न तो अति उत्तेजक हो न प्रेरणाविहीन, मुहैया करना चाहिए। बच्चे, जहां तक उनकी क्षमताओं का संबंध है उन्हें जैसे वे हैं वैसे ही स्वीकार करना चाहिए। यदि बच्चे पर अपने विकास के स्तर से आगे बढ़ने के लिए दबाव डाला जाएगा, वह अच्छा कार्य नहीं कर पाएगा और फलस्वरूप माता-पिता उसकी आलोचना करेंगे। इस व्यवहार से बच्चा अपने को उपेक्षित और अपर्याप्त अनुभव करेगा जो अरक्षित होने की भावना को जन्म देगी।

बच्चे अपने ऊपर नियंत्रण और दृढ़ता पसन्द करते हैं। उन्हें इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि वे क्या कर सकते हैं और क्या नहीं कर सकते। निश्चित सीमाओं का न होना और नियंत्रण का अभाव उनके मन में बेचैनी पैदा करता है। इसके विपरीत अनुशासन के कठोर तरीके, स्वच्छता और अच्छे आचरण के अत्यधिक सख्त मापदण्ड, उत्कृष्ट कार्य करने के लिए दबाव, विद्वेष की भावना को जन्म देते हैं। इसके साथ-साथ यदि नए बच्चे पर अधिक ध्यान दिया जाता है तो विद्वेष की भावना और भी बढ़ जाती है।

बच्चे गुस्से में अकसर दूसरों को मारते, ढ़केलते, चीजों को तोड़ते और यहाँ तक कि कभी-कभी काटते भी हैं। इन बच्चों को अपना गुस्सा निकालने के लिए ऐसे माध्यम चाहिए जिनसे किसी का अहित न हो, जैसे, मिट्टी कूटना, खोदना, गेंद फैंकना, इत्यादि। भाषा मनोभव की अभिव्यक्ति का एक दूसरा माध्यम है और वयस्कों को कभी-कभी बच्चों के भावावेश के विस्फोट को स्वीकार करना चाहिए।

इस प्रकार यह देखा गया है कि अच्छा निदेशन प्रारंभिक वर्षों में बच्चे को अपने संवेगों पर काबू पाने के लिए आवश्यक है। सकारात्मक संवेगों से खुशी हासिल होती है और दिन-प्रति-दिन के जीवन में आनन्द आता है। इसके विपरीत नकारात्मक संवेग गामक कौशल के कार्यों के रास्ते में आते हैं, मानसिक कार्यों में

रुकावट डालते हैं और इनसे जीवन के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण बनता है।

सामाजिक विकास

वयस्कों और बच्चों के साथ जो प्रारंभिक अनुभव बच्चे को होते हैं वे समाज में अनुमोदित व्यवहार और अभिवृत्तियां सीखने में महत्वपूर्ण हैं। प्रारंभिक वर्षों में बच्चा वे बुनियादी कौशल सीखता है जो भविष्य में समायोजन के लिए आवश्यक होते हैं।

जन्म पर बच्चे को अन्य लोगों के साथ की आवश्यकता नहीं होती। प्रारंभिक दिनों में, जब तक उसकी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है वह संतुष्ट रहता है और उसके लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन उसकी देख-रेख कर रहा है। जो उसकी परवाह करते हैं उनकी ओर वह अभिमुख होता है और जो उससे स्नेह करते हैं उनकी गोद में वह खुश रहता है। उसकी पहली सामाजिक अनुक्रियाएं वयस्कों के प्रति होती हैं। पहले वर्ष में वह मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है और आसानी से संभल जाता है, और उसका साथ सुखदाई होता है। सोलह और अठारह माह के बीच वह बतंगड़िया (fussy), सहायोग न करने वाला और हठी हो जाता है। अब उसका आग्रह अपने स्वातंत्र्य को व्यक्त करने की ओर होता है और इसलिए वयस्कों की मांगों और अपेक्षाओं का वह प्रतिरोध करता है। यह व्यवहार करीब ढाई साल तक कभी कुछ कम-ज्यादा होता हुआ चलता है।

शालापूर्व वर्षों में बच्चा कुल मिलाकर वयस्कों के प्रति सहयोगशील रहता है और उनकी संगति का आनन्द लेता है। उसके लिए वयस्कों का अनुमोदन बहुत महत्वपूर्ण है और अनुमोदन प्राप्त करने के लिए वह बहुत से कार्य करता है। धीरे धीरे वह माता-पिता और अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सामाजिक अभिवृत्तियों को आत्मसात करता है। जैसे जैसे—बच्चा आत्म-निर्भर होता जाता है वह वयस्कों के साथ कम और अन्य बच्चो के साथ अधिक समय व्यतीत करना पसन्द करता है।

अन्य बच्चों के प्रति प्रारंभिक अनुक्रियाएं मुस्कराने, बाल खींचने, या आँखों में उंगली डालने तक सीमित रहती हैं। कभी-कभी वह दूसरे बच्चे को अपने खिलौने से खेलने की अनुमति दे देता है, किन्तु यदि वह नहीं चाहता कि कोई दूसरा उसका खिलौना ले तो वह गुस्सा हो जाता है, अपना खिलौना छीनता है, या रोता है।

दो साल की आयु के पहले बच्चे अपने आप या अन्य दो या तीन बच्चों के बगल में, जो उसी प्रकार के खिलौनों से खेल रहे हों, खेलते हैं, किन्तु उनके बीच सामाजिक आदान-प्रदान नाममात्र का होता है। तीन और चार वर्षीय बच्चे समूह में खेलना प्रारंभ कर देते हैं और आयु में वृद्धि के साथ उनके बीच वार्तालाप बढ़ता है। दूसरे शब्दों में तीन और चार वर्ष की आयु के बीच सामाजिक खेल में वृद्धि

होती है। चार और पांच वर्ष के बीच प्रतियोगिता प्रकट होने लगती है। बच्चों में आपसी सहयोग में वृद्धि होती है और वे मिलकर अधिक समय खेलते हैं। जैसे वे बड़े होते हैं अकेले खेलेने के बजाय अधिक समय मिलकर खेलने में व्यतीत करते हैं। आयु में वृद्धि के साथ-साथ समूह का आकार भी बढ़ता है और भाषा का प्रयोग भी बढ़ जाता है। सामान्यतया एक ही लिंग के बच्चों के बीच मित्रता विकसित होने लगती है। खेल के द्वारा बच्चे सामाजिक व्यवहार सीखते हैं। उनमें नेतृत्व के गुण भी देखने में आते हैं। कार्यों में तेजी से परिवर्तन होता है और उसके साथ उनके नेता भी बदल जाते हैं। अलग-अलग कार्यों का नेतृत्व अलग-अलग बच्चे करते हैं।

कुछ सामाजिक व्यवहार के रूप जो बाल्यकाल के प्रारंभिक वर्षों में प्रायः देखे जाते हैं

साहयोग : बच्चा अन्य बच्चों के साथ कार्यों में भाग लेना पसन्द करता है। वह वस्तुओं का आदान प्रदान करता है। अकसर एक सामूहिक योजना पर बच्चे मिलकर कार्य करते हैं। चार वर्ष की आयु के बाद सहयोग में वृद्धि होती है।

प्रतिस्पर्धा : प्रतिस्पर्धा दूसरों से बढ़कर कार्य करने में व्यक्त होती है। चार वर्ष की आयु के आसपास बच्चों में प्रतियोगिता का मनोभाव विकसित होता है और वे अन्य बच्चों से आगे निकलने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

सहानुभूति : बच्चा दूसरों के दुःख दर्द से प्रभावित होता है। बच्चा अपनी सहानुभूति कष्ट के कारण को दूर करके, सुरक्षा प्रदान करके, बचाव करके या बड़ों का ध्यान आकृष्ट करके व्यक्त करता है।

मित्रता : बच्चा अन्य बच्चों के साथ खेलना और वस्तुओं को मिल-बांटना पसन्द करता है।

नकारवृत्ति (Negativism) : नकारवृत्ति अतिरंजित प्रतिरोध का एक रूप है। बच्चा अमुक प्रकार से व्यवहार करने के लिए बड़ों के आग्रह का प्रतिरोध करता है। इस प्रवृत्ति के कारण बच्चे संभालने में वयस्कों को कठिनाई आती है। बच्चा चाहे तो नकारवृत्ति को मन्द रूप में व्यक्त कर सकता है जैसे, किसी आदेश का पालन न करना, ऐसा बहाना करना कि आदेश सुना नहीं या अधिक तीव्र रूप में जैसे नित्यचर्या संबंधित कार्यों के करने में जैसे प्रसाधन और भोजन करने में सहयोग न देना। प्रारंभ में नकारवृत्ति की अभिव्यक्ति शारीरिक होती है और बाद में इनका स्थान मौखिक इंकार करना ले लेता है।

आक्रमण : आक्रमण का कारण कुंठा, ध्यान आकर्षित करना या आत्म-रक्षा हो सकता है। इसकी अभिव्यक्ति का परिसर शारीरिक आक्रमण से लेकर शाब्दिक आक्रमण तक हो सकता है।

झगड़े : बच्चों में रोषपूर्ण झगड़े होते रहते हैं। ये अनेक प्रकार से व्यक्त होते हैं जैसे दूसरे बच्चे के कार्य को नष्ट करना, खिलौने छीनना, चीखना, रोना या सचमुच में शारीरिक आक्रमण करना जैसे काटना और ढकेलना।

चिढ़ाना और धौंस जमाना : ये व्यवहार के आक्रामक रूप है जिनका झगड़ों से निकट का संबंध है। बच्चा कुछ बोल कर दूसरे को नीचा दिखाता है या दूसरे बच्चे को शारीरिक तकलीफ भी पहुंचाता है जैसे बाल या कपड़े खींचना, चिकोटी काटना, कोंचना, धक्का देना इत्यादि।

मानसिक विकास

बच्चे के जीवन के प्रारंभ में विभिन्न और विस्तृत संवेदीगामक (sensorymotor) अनुभव बौद्धिक विकास में मदद करते हैं। बच्चा विविध प्रकार के संवेदन का अनुभव करता है जिन्हें वह धीरे-धीरे समझने लगता है। जैसे-जैसे उसकी क्रियावाही योग्यताओं प्रगति होती है वह अपने पर्यावरण की छानबीन करने लगता है। ये प्रारंभिक अनुभव ऐसे मूल्यवान स्रोत हैं जिनसे बच्चे का बौद्धिक विकास होता है। संवेदनों को छांटकर संगठित करके और नए अनुभवों के आधार पर पुनः संगठित करके भविष्य में प्रयोग के लिए बच्चे के मन में संचित किए जाते हैं। जैसे बच्चा बड़ा होता है वह उन्हें वर्गीकृत करना सीखता है बाद में वह वस्तुओं के बीच संबंध देखता है और उनका शब्दों में वर्णन करना भी सीखता है।

ध्यान की अवधि यानी किसी कार्य पर कुछ समय तक ध्यान संकेन्द्रित कर सकना, और स्मृति भी बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे बच्चा बड़ा होता है उसके ध्यान की अवधि बढ़ती है। एक दो वर्षीय बालक किसी कार्य पर छः से सात मिनट तक ध्यान संकेन्द्रित कर सकता है जबकि पांच वर्ष का बच्चा बीस मिनट तक संकेन्द्रित कर सकता है।

बच्चा प्रारंभ में मूर्त संकल्पनाएं, जैसे वस्तुओं और घटनाओं के बारे में, विकसित करता है। परिपक्वता में वृद्धि के साथ अमूर्त संकल्पनाएं विकसित होती हैं। शालापूर्व के वर्षों में परिमाण, आकृति, रंग, समय, दूसरी ओर संख्या की संकल्पनाएं विकसित होती हैं।

शालापूर्व के वर्षों के अंत तक आकार (size) और आकृति (shape) की संकल्पनाएं भली प्रकार विकसित हो जाती हैं। बच्चे वस्तुओं को पहचानने, नाम बताने और फार्म बोर्ड में आकृतियों को उपयुक्त छेदों में जमाने में सक्षम हो जाते हैं। उन्हें 'जिगसा' (jigsaw) पहेली पर काम करने में आनन्द आता है। प्रारंभ के वर्षों में वे सरल जिगसा पहेलियों को जिनमें केवल तीन या चार टुकड़े हों हल कर पाते हैं और आयु के बढ़ने के साथ अधिक उलझी हुई पहेलियों के हल ढूँढ लेते हैं।

अक्षरों को पहचानना एक जटिल कार्य है जिसे चार वर्ष की आयु पर करने कर पाते हैं। वास्तव में बच्चे पढ़ने में काफी रुचि प्रदर्शित करते हैं। किन्तु बच्चा अक्षर पहचानने में या पढ़ाने में कुछ धीमा और अनिच्छुक लगे तो उस पर दबाव नहीं डालना चाहिए।

बच्चे प्राथमिक रंगों के नाम दो वर्ष पर बता सकते हैं, और चार वर्ष तक इनको भली प्रकार जानने लगते हैं। उन्हें वजन का सही अन्दाजा लगाना कठिन होता है। वे बड़ी वस्तुओं को अधिक भारी आंकते हैं, और छोटी वस्तुओं को हल्का। इस बात पर ध्यान नहीं दे पाते कि वस्तुएं किस चीज की बनी हैं। पांच वर्ष की आयु तक वे दूरी को सही आंकने लगते हैं।

शलापूर्व के वर्षों के अंत में बच्चे ऐसे शब्द जैसे बीता हुआ कल, आज और आने वाला कल का ही सही उपयोग करने लगते हैं और सही काल का उपयोग करते हुए वाक्य रचना कर लेते हैं। वह जटिल अभिव्यक्ति जैसे 'पूरे सप्ताह भर', 'बहूत समय तक', इत्यादि का उपयोग करने लगते हैं।

संख्या और मात्रा की संकल्पनाएं विकसित होती हैं। यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि क्रम से गिनती बोल सकने के अर्थ यह नहीं होते कि बच्चा प्रत्येक संख्या का मूल्य समझता है। बच्चे ऐसे शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं जैसे आधा गुच्छा (bunch), समूह, अधिक, सबसे अधिक इत्यादि, जो मात्रा की संकल्पना के द्योतक हैं।

बच्चे समस्याओं पर चिन्तन द्वारा सर्वोत्तम हल ढूंढने के बजाय करके हल ढूंढने का प्रयास करते हैं और वास्तव में विभिन्न विधियों को लेकर देखते हैं कि कौन विधि सफल होती है। सफल हो जाने पर भी वे शब्दों में हल का वर्णन नहीं कर पाते।

बच्चे को कल्पना और वास्तविकता के बीच भेद करने में कठिनाई होती है। उसके चिन्तन में जड़ात्मवाद (animism) की विशेषता होती है जिसके कारण वह निर्जीव वस्तुओं में जीवन के गुण आरोपित करता है। बच्चा स्वभाव से कुतूहली होता है और अपने पर्यावरण की खोजबीन करना चाहता है। जैसे भाषा का विकास होता है वह अनेक प्रश्न पूछता है। कभी-कभी इन प्रश्नों के कारण वयस्कों को झुंझलाहट होती है, किन्तु बच्चों की जिज्ञासा को डांट कर दबाना नहीं चाहिए क्योंकि आगे चल कर जिज्ञासा ही सीखने का आधार बनती है।

शालापूर्व वर्षों में कल्पना तेजी से विकसित होती है। बच्चा अनेक काल्पनिक खेल (make-believe) खेलता है। वह कभी डाक्टर बन जाता है, कभी मरीज, या इंजन चालक, डाकू और सिपाही इत्यादि। उसमें नए कार्यों का सूत्रपात करने का

जोश होता है। वह वस्तुएं बनाने की कोशिश करता है। उसके मन में अनेक कार्य करने की योजनाएं घूमती हैं।

स्मृति का विकास भी तीव्रता से होता है। बच्चे बहुत से शब्द बोलना तो सीख जाते हैं किन्तु अकसर बिना अर्थ समझे शब्दों का उपयोग करते हैं, विशेषकर जब बातें उनके अनुभवों पर आधारित नहीं होती, या अधिक अमूर्त होती हैं।

शालापूर्व के वर्षों में प्रत्यक्ष अनुभव बच्चों को अपने पर्यावरण को समझने में महत्वपूर्ण योग देता है।

भाषा विकास

भाषा संपर्क का एक उपकरण है। इसमें इशारे, बोली, लेखन और अन्य विधियां आती हैं जिनका व्यक्ति अपने विचारों, प्रश्नों और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त करता है। भाषा बच्चे को अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को बताने, अपने मनोभावों को व्यक्त करने और जानकारी प्राप्त करने में मदद करती है। यह सामाजिक आदान-प्रदान की पहल करने में और उसे कायम रखने में योग देती है।

बच्चे का सबसे पहला सवाद रुदन है। इसके द्वारा वह बताता है कि वह भूखा या गीला है, उसे ठंड लग रही है, या कोई अन्य तकलीफ हो रही है। बाद में वयस्कों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए भी वह रो सकता है।

बोली एक जटिल कौशल है और इसमें गामक तथा मानसिक दोनों योग्यताएं शामिल होती हैं। पहला शब्द बोलने के पहले बच्चा अनेक प्रकार की आवाजें निकालता है जैसे मा-मा, दा-दा, बा-बा, । शब्द का उपयोग करने के लिए पहले तो बच्चे को उसके अर्थ जानने होंगे, फिर शब्द याद रखना होगा, और शब्द को इतना स्पष्ट बोलना होगा कि दूसरों के समझ में आ जाए। बोलना सीखने में तीन अलग-अलग किन्तु अन्तर्संबधित प्रक्रियाएं संम्मिलित हैं : शब्दों का सही उच्चारण जिससे उन्हें समझा जा सके, शब्द-भंडार का निर्माण जिससे वस्तुओं, कार्यों या घटनाओं का वर्णन करने के लिए उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया जा सके, और शब्दों को मिलाकर अर्थयुक्त वाक्यों की रचना।

बच्चे का पहला शब्द जिसके अर्थ उसे कुछ समझ में आते हों, 10 से 18 माह के बीच बोला जाता है। बच्चे के लिए एक शब्द पूरे वाक्य का स्थान ले लेता है। वह इशारों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग करता है जैसे वस्तुओं की ओर संकेत करना जो शाब्दिक संचार का स्थान लेते हैं। धीरे-धीरे बच्चा वाक्यों में अधिक शब्दों का प्रयोग करने लगता है, शुरू में एक बार में दो शब्दों का प्रयोग करता है जिसमें एक संज्ञा और एक क्रिया प्रयुक्त होती है। बच्चे उन शब्दों को बोलना पहले सीखते

हैं जो मूलभूत हैं और जिन्हें विभिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त किया जा सकता है। जिस क्रम से बच्चा अपना शब्द-भंडार विकसित करता है उसमें पहले संज्ञा, फिर क्रिया और बाद में विशेषण एवं क्रिया-विशेषण आते हैं। बच्चे के शुरू के वाक्य बहुत छोटे होते हैं जैसे 'मम्मी गई' जिसके अर्थ होंगे माँ बाहर गई है। जैसे वह बड़ा होता है प्रति वाक्य शब्दों की संख्या बढ़ती है और रचना भी जटिल होने लगते हैं। जैसे बच्चे का विकास होता है उसकी बाह्य पर्यावरण की समझ में वृद्धि होती है और ज्ञान का विस्तार होता है। इससे भाषा की विषय वस्तु और उसके अर्थ में परिवर्तन आता है।

छोटा बच्चा उत्सुकतावश अनेक प्रश्न पूछता है। शुरू में उसके प्रश्नों में 'कौन' और 'क्या' पर बल होता है। इस प्रकार वह अनेक वस्तुओं के नाम सीखता है। जैसे वह बड़ा होता है और उसकी समझ बढ़ती है वह 'क्यों' और "कैसे" वाले अनेक प्रश्न पूछने लगता है। ऐसे प्रश्न उच्च कोटि के अमूर्त चिन्तन के द्योतक हैं।

बच्चा जिस बोली को सुनता है उसका अनुकरण कर बोलना सीखता है। अच्छे भाषा विकास के लिए अच्छे नमूनों का होना आवश्यक है। माता-पिता को स्पष्ट उच्चारण और स्पष्ट बोलकर एक अच्छा दृष्टान्त प्रस्तुत करना चाहिए। यदि बच्चे के सम्पर्क में आने वाले वयस्कों के उच्चारण सही नहीं हैं, या वे बच्चे को खुश करने के लिए बच्चों की बोली में बात करते हैं, तो बच्चा भी वैसी ही भाषा सीखेगा। यह देखा गया है कि उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग के बच्चों का, जिनके माता-पिता सुशिक्षित हैं, शब्द-भण्डार अच्छा होता है और वे जटिल वाक्यों का प्रयोग करते हैं। वे विभिन्न विषयों पर भी बात कर सकते हैं। उच्च वर्ग के बच्चे अधिक निर्भीक होते हैं और बातचीत में निस्संकोच भाग लेते हैं। निम्न सामाजिक-आर्थिक परिवारों के बच्चों का शब्द ज्ञान बहुत सीमित होता है और उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो अपूर्ण वाक्यों में बात करते हैं।

कुछ बच्चे तुतलाते हैं और कहीं-कहीं शब्दों के उच्चारण में उन्हें कठिनाई होती है। अधिकतर उम्र के साथ ये समस्याएं अपने आप मिट जाती हैं, और इसलिए बच्चे को बहुत अधिक टोकना ठीक नहीं है। बच्चे की बोली की निरन्तर आलोचना से वह आशंकित हो जाता है और घबराहट के कारण बुदबुदाता है या हिचकते हुए बोलने लगता है।

घर का संवेगात्मक वातावरण भी बच्चे के बोलने पर प्रभाव डालता है। जिन बच्चों का लालन-पालन ऐसे घरों में हुआ है जिनमें संवेगात्मक सुरक्षा है, उनमें सहज में शब्दों का प्रवाह होता है, और वाणी सस्वर होती है। असुरक्षित बच्चे बहुत धीमे बोलते हैं और उनकी बोली में रुकावट उठती है।

बच्चों को बोलने और अपने अनुभवों को बताने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। घटनाओं को क्रम से बताने में उनकी सहायता करनी चाहिए। सस्वर पढ़ने से या कहानियां सुनने से बच्चों को अपने शब्द-भंडार बढ़ाने में काफी मदद मिलती है। तस्वीरों से न केवल बच्चे नए शब्द सीखते हैं बल्कि वे सही संकल्पनाएं भी विकसित करते हैं शिशु-गीत (nursery rhymes) एक अन्य भाषा सिखाने का रोचक ढंग है। भ्रमण से बच्चों को संकल्पनाएं विकसित होती हैं और वे समझ के साथ सही शब्द बोलना सीखते हैं। बच्चों को खेल की उपयुक्त सामग्री और अनेक प्रेरक अनुभव प्रदान करने चाहिए। अपनी उम्र के बच्चों के साथ खेलने के अवसर भी उनकी महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

सारांश

बच्चे जीवन में प्रथम कुछ वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन्हीं वर्षों में उसके विकास की बुनियाद पड़ती है। शिशु जो जन्म के समय बहुत अपरिपक्व होता है और वयस्कों पर आश्रित रहता है, बढ़कर सक्षम व्यक्ति बनता है पहले पाँच वर्षों में वह अपने शरीर पर नियंत्रण और उनके गामक कौशल सीखता है।

जो उसकी देखभाल करते हैं उनसे वह प्रेम करता है और उनके साथ में अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। आवेश में विस्फोट (outbrust) अकसर होते हैं और उसे दूसरे की मदद और निर्देशन की आवश्यकता रहती है जिससे वह अपने मनोभावों को अधिक शिष्ट ढंग से व्यक्त कर सके और नियंत्रित कर सके। ईर्ष्या, भाई-बहन से प्रतिस्पर्धा, क्रोध, और डर इस आयु समूह के सामान्य संवेग होते हैं।

प्रारंभिक वर्षों में बच्चे को बड़ों का साथ पसन्द आता है, किन्तु धीरे-धीरे उसे अपनी आयु के बच्चों के साथ खेलने में मजा आने लगता है। पाँच वर्ष की आयु पार करने पर बच्चों में मिलकर खेलना काफी देखा जाता हैं वे वयस्कों को खुश करने के लिए और उनका अनुमोदन प्राप्त करने के लिए भी अनेक कार्य करते हैं।

जीवन के प्रथम भाग में बच्चा संवेदी-गामक क्रियाओं से प्राप्त अनुभवों से सीखता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसे भाषा पर अधिकार प्राप्त होने लगता है और वह जानकारी एकत्रित करने के लिए भाषा का प्रयोग करने लगता है। अपने पर्यावरण से बच्चा पहले मूर्त संकल्पनाएं सीखता है। जैसे वह परिपक्व होता है अमूर्त संकल्पनाएं विकसित होने लगती हैं। शालापूर्व के वर्षों में वह आकार, आकृति, रंग, समय, दूरी और संख्या की संकल्पनाएं विकसित करता है।

पाँच वर्ष की आयु तक वह बहुत कुछ आत्म-निर्भर हो जाता है। उसके मन में नई-नई योजनाएं उठती हैं, और वह अनेक कार्य करना चाहता है। यदि उपयुक्त पर्यावरण उसे मिले जो चुनौतीपूर्ण होते हुए उसकी क्षमताओं की सीमा में हों, तो समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझाने से उसमें आत्म-विश्वास बढ़ेगा।

अध्याय 5

शारीरिक विकास

फ्रेनी जेड तारापौर

मध्य बाल्यकाल

स्कूली आयु का 6 से 10 वर्ष का बच्चा शैशवावस्था से बढ़कर प्रौढ़ता की ओर अग्रसर होता है। उसकी ऊँचाई और वजन बढ़ता है, अपनी परवाह करने में वह अधिक आत्म-निर्भर और सक्षम हो जाता है जटिल गामक कौशल विकसित होते हैं। फिर भी, दस वर्ष तक विकास की गति इतनी तेज और आश्चर्यजनक नहीं होती जितनी शालापूर्व के वर्षों में।

उत्तर बाल्यकाल

ग्यारह वर्ष की आयु के बाद क्रमशः अनुक्रमिक शारीरिक परिमर्तन होते हैं जो बच्चे को बाल्यावस्था से यौन दृष्टि से परिपक्व व्यस्क में परिवर्तित करते हैं। इस काल को जिसमें ये परिवर्तन होते हैं यौवनारंभ (puberty) कहते हैं। औसतन इस परिवर्तन में दो से चार वर्ष लगते हैं। लगभग आधे यौवनारंभ का काल बाल्यावस्था के अन्तिम दो वर्षों में यानी 10 से 12 वर्ष की अवधि में होता है। प्रथम काल को पूर्व-किशोरावस्था (pre-adolescence) और दूसरे को जो 12 से 14 वर्ष तक होती है प्रारंभिक किशोरावस्था (early-adolescence) कहते हैं। व्यक्ति के जीवन में यह कठिन समय होता है क्योंकि इस बीच वह न तो बच्चा होता है और न वयस्क।

शिक्षक को इन परिवर्तनों को जानना आवश्यक है। यौवनारंभ के दौरान विकास की गति तेज हो जाती है और बच्चे पर इसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ते हैं। बच्चे इन परिवर्तनों से चिन्तित हो जाते हैं, और शिक्षकों का कार्य है कि उनकी शंकाओं और भ्रम को दूर करें तथा बच्चे को आवश्यक आश्वासन प्रदान करें। शिक्षक की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह विकास और वृद्धि में होने वाले इन परिवर्तनों को कहाँ तक समझता है और कहाँ वैयक्तिक ध्यान दे पाता है।

ग्यारह वर्ष की आयु के बाद वृद्धि की गति में परिवर्तन देखा जाता है, पहले

लड़कियों में और दो वर्ष बाद लड़कों में। बच्चे तेज विकास की दूसरी लहर यौवनारंभ में अनुभव करते हैं। लड़कियां लड़कों से पहले परिपक्वता प्राप्त करती हैं।

बाल्यावस्था समाप्ति पर आ जाती है जब जनेन्द्रियां इतनी परिपक्व हो जाती हैं कि कार्य करना आरंभ कर दें। लड़कियों में प्रथम ऋतुस्राव यौन परिपक्वता की ओर अग्रसर होने का सूचक है। इसकी आयु 13 वर्ष के करीब है। डिम्बग्रन्थि को पूर्ण विकसित डिम्ब उत्पन्न करने में कुछ और समय लगेगा और गर्भाशय भी अभी परिपक्व नहीं होता। स्वप्नदोष लड़कों में जनेन्द्रीय के परिपक्वता की ओर बढ़ने का संकेत देता है। इसकी आयु 14 वर्ष के आसपास है किन्तु संतानोत्पत्ति की सामर्थ्य 16 वर्ष के बाद आती है।

यौवनारंभ में जो परिवर्तन होते हैं वे अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (endocrine glands) की क्रियाशीलता में वृद्धि के कारण होते हैं। ये अन्तःस्रावी ग्रन्थियां रसायनिक पदार्थ, जिन्हें हारमोन (harmone) कहते हैं, रक्त प्रवाह में सीधे पहुंचाती है। जो अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ यौवनारंभ से संबंधित परिवर्तन लाती हैं उनमें हैं पिट्यूइटरी (pituitary) और जननग्रन्थि (gonad) यानी डिम्ब मादा में और वृषण (testes) नर में। पिट्युइटरी ग्रन्थि आकार में बहुत छोटी होती है। यह मस्तिष्क के तल पर स्थित होती है। यह कई हारमोन उत्पन्न करती है जिनमें से एक वृद्धि को बढ़ाना तथा नियंत्रित करता है। इसके स्राव का आधिक्य व्यक्ति की ऊँचाई बहुत बढ़ा देगा और इसकी कमी से बौनापन (dwarfism) आयेगा।

पिट्युइटरी एक अन्य हारमोन स्रावित करती है जिसे गोनेडोट्रोपिक (gonadotropic) कहते हैं। इससे अपरिपक्व जननग्रन्थि परिपक्व डिम्ब और वृषण (testes) में परिणित होती है। हारमोनों के स्राव के सही संतुलन से स्वस्थ शारीरिक विकास होता है और असंतुलन से व्यतिक्रम (deviation) उत्पन्न होता है।

यौवनारंभ में शरीर की रचना और कार्य में बाह्य और आन्तरिक परिवर्तन होते हैं। यौवनारंभ में प्रमुख शारीरिक परिवर्तन शरीर के आकार (size) और शरीर के विभिन्न भागों के अनुपात में परिवर्तन होता हैं और प्राथमिक तथा द्वितीयक यौन लक्षण व्यक्त होते हैं। प्राथमिक लक्षण जनेन्द्रियों के विकास से संबंधित हैं और द्वितीयक शरीर के अन्य भागों में परिवर्तनों से जिन्हें बाह्य रूप से देखा जा सकता है।

द्वितीयक यौन लक्षण

लड़के	लड़कियां
जघन पर बालों का उगना	जघन पर बालों का उगना
बगल में बालों का उगना	बगल में बालों का उगना

लड़के	लड़कियां
चेहरे पर बालों का उगना	चेहरे पर हलकें रोमों का आना
स्वर यंत्र का विकास	स्वंर यंत्र में मामूली विकास
आवाज में परिवर्तन	आवाज में थोड़ा परिवर्तन और निखार
कन्धों का चौड़ा होना	कूल्हों का चौड़ा होना
पेशियों का मोटा होना	पेशियों का थोड़ा मोटा होना
पसीने में वृद्धि	पसीने में वृद्धि
कभी-कभी छाती और स्तानाग्र का अस्थाई विकास	स्तन का विकास

विकास के पहलू

शारीरिक वृद्धि को हम ऐसे सामान्य मापों में, जिनका मापन सरल है, वर्णन कर सकते हैं जैसे, ऊँचाई, वजन, सिर की परिधि, इत्यादि। आन्तरिक अवयवों में भी वृद्धि होती है और इनके कार्यों में परिवर्तन आता है किन्तु इन्हें देख सकना और माप सकना कठिन है। ये बहुत हद तक व्यवहार और संयोजन में दिन-प्रति-दिन के परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी हैं और इनका व्यक्तित्व पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है।

ऊँचाई और वजन

बाल्यावस्था में लड़कियों और लड़कों के भार और ऊँचाई में अधिक अन्तर नहीं होता। दस वर्ष की अवस्था तक लड़के कुछ ऊँचे और वजन में कुछ अधिक भारी होते हैं। ग्यारह और बारह वर्ष के बीच लड़कियों की वृद्धि अधिक तेज होती है और वे लड़कों से आगे निकल जाती हैं। किन्तु यह श्रेष्ठता अस्थाई है। तेरह वर्ष के बाद लड़के तेजी से बढ़ना प्रारंभ करते हैं और लड़कियों से अधिक ऊँचे और वजनी हो जाते हैं।

ऊँचाई में वृद्धि आनुवंशिकता से अधिक प्रभावित होती है, जबकि वजन की वृद्धि पर पर्यावरण के कारकों का जैसे आहार, बीमार न पड़ना, रहन-सहन का स्तर, परिवार के व्यक्तियों का व्यवहार और संवेगों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

बच्चे जो यौन दृष्टि से पहले परिपक्व हो जाते हैं वे देर से परिपक्व होने वालो से अधिक लम्बे और वजनी होते हैं, उदाहरण के लिए लड़कियां जो बारह वर्ष पर रजस्वला होती हैं तेरह वर्ष पर रजस्वला होने वाली लड़कियों से अधिक लम्बी और वजनी होंगी।

लड़के और लड़कियों की ऊँचाई और वजन

	लड़के		लड़कियां	
आयु	ऊँचाई (से.)	वजन (किग्रा.)	ऊँचाई (से.)	वजन (किग्रा.)
6 वर्ष	108.5	16.3	107.4	16.0
7 वर्ष	113.9	18.0	112.8	17.6
8 वर्ष	119.3	19.7	118.2	19.4
9 वर्ष	123.7	21.5	122.9	21.3
10 वर्ष	128.4	23.5	128.4	23.6
11 वर्ष	133.4	25.9	133.6	23.4
12 वर्ष	138.3	28.5	139.2	29.8
13 वर्ष	144.6	32.1	143.9	33.3
14 वर्ष	150.1	35.7	147.5	36.8

स्रोत : इण्डियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च, नई दिल्ली,

भारतीय शिशु और बच्चों की वृद्धि और शारीरिक विकास, 1972[1]



चित्र–1. शरीर के बदलते अनुपात

[1]Source : Council of Medical Research, New Delhi, Growth and Physical Development of Indian Infants and Children, 1972.

बच्चे के शारीरिक स्तर और प्रगति के मापदण्ड के रूप में ऊँचाई और वजन को प्रायः प्रयुक्त किया गया है। बच्चों के मापों की तुलना मानकीकृत सारणी से की जाती है। बच्चों मे व्यापक वैयक्तिक अन्तर मिलते हैं। कम सम्पन्न घरों से आने वाले बच्चे अधिक सम्पन्न परिवारों की तुलना छोटे और हल्के होते हैं विभिन्न राज्यों के रहने वाले समूहों में भी अन्तर पाए जाते हैं, जैसे पंजाब के बच्चों को शारीरिक गठन मध्य भारत की आबादी की तुलना में अधिक बड़ा होता है। बच्चे जो वजन में औसत से कम या ज्यादा हों उन्हें एकदम न्यूनभार (underweight) या अतिभार (overweight) नहीं मान लेना चाहिए।

तुलना करने में सावधानी बरतनी चाहिए, और जहां तक हो सके बच्चों की तुलना उस क्षेत्र के मानकों (norms) से करनी चाहिए। जिस क्षेत्र का वह निवासी है। मानक में औसत के साथ-साथ परिसर (renge) भी दिया जाना चाहिए। जिससे प्रसमता (normality) का एक व्यापक माध्यम प्राप्त हो सके। बच्चे की पूर्व वृद्धि का लेखन मूल्यवान है क्योंकि इससे पता चलना है कि किस प्रकार बच्चा प्रगति कर रहा है यदि कुछ समय से उसका वजन नहीं बढ़ रहा हो तो इसके कारणों की जाँच करनी चाहिए।

शरीर के अनुपात में परिवर्तन

शैशवावस्था से लेकर वयस्कता तक न केवल आकार बल्कि डीलडौल में भी क्रमबद्ध परिवर्तन आते हैं। जैसे-जैसे हड्डियों, पेशियों, और वसा के विकास के प्रतिरूप आगे बढ़ते हैं, उनके कारण शरीर के अनुपातों और रूपरेखाओं (contours) में परिवर्तन आता है जो लड़के और लड़कियों का उनके विशिष्य अन्तर को प्रदान करता है।

शरीर के विभिन्न अंगों का विकास अलग-अलग समय पर होता है, प्रारंभ के वर्षों में बच्चे का सिर बाकी शरीर से अनुपात में बड़ा होता है, छः वर्ष की अवस्था पर यह शरीर का छठवां हिस्सा और परपक्वता प्राप्त करने पर आठवां हिस्सा होता है। पाँच वर्ष की आयु के बाद वृद्धि कपाल के निचले भाग में अधिक होती है और चेहरा नीचे की ओर, और सामने की ओर बढ़ता है। नाक अधिक लम्बी हो जाती है और जबड़े सामने की ओर बढ़ते हैं।

यौवनारंभ की तीव्र वृद्धि के दौर में (growth spurt) लड़कियों में कंधों के अनुपात में कूल्हे और लड़कों में कूल्हे के अनुपात में कन्धे अधिक चौड़े हो जाते हैं।

कुल मिलाकर 6 से 10 के बीच बच्चे चारू और संतुलित दिखाई देते हैं। तीव्र वृद्धि के दौर में भुजाए और टागे लम्बी हो जाती हैं और अनुपात में शरीर पतला

लगता है लम्बे अंगों से बच्चों को चढ़ने में मदद मिलती है और वे ऊंचाई पर रखी वस्तुओं के पास सरलता से पहुँच जाते हैं।

दाँत

छः से बारह वर्ष की आयु के बीच दूध के दाँत गिरने लगते हैं और इनका स्थान स्थाई दाँत ले लेते हैं। दूध के दाँत 20 होते हैं जबकि स्थाई दाँत 32 होते हैं। शिक्षक की पहली कक्षा में ऐसे काफी बच्चों के होने की संभावना है जिनके सामने के दाँत (incisors) गिर गये हों। जब बच्चा पुराने दाँतों के स्थान पर नए दाँतों की इस पुनः स्थापन की स्थिति से गुजर रहा होता है, तब दाँत सीध के बाहर निकल जाते हैं और उनके बीच खाली जगहें रह जाती हैं। बाद में पास के दाँत निकल आते हैं और नए दाँत अपना सही स्थान प्राप्त कर लेते हैं।

दाँतों के कुछ मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हैं। जिस समय कुछ बड़े स्थाई दाँत निकल आते हैं और कुछ दाँत कायम रहते हैं, बच्चे की मुखाकृति हास्यास्पद हो जाती है जिसके कारण वह अपने आप में संकोची अनुभव करता है। कुछ बच्चे सामने के दाँतों के अभाव के कारण, जब तक स्थाई दाँत नहीं आ जाते, तुतलाकर बोलते हैं।

बारह वर्ष की आयु तक, अकिलदाढ़ को छोड़कर, सारे स्थायी दांत आ जाते हैं और चेहरा देखने में कुछ-कुछ बड़ों जैसा लगने लगता है। यदि जबड़े की हड्डी का प्रर्याप्त विकास नहीं होता और दांत बड़े हैं तो अधिक पास-पास होने के कारण दाँतों के बेतरतीब हो जाने की संभावना रहती है।

कुछ बच्चों को दाँत बाहर निकले रहने की समस्या होती है। इसका कारण यह है कि ऊपर का जबड़ा नीचे के जबड़े से अधिक बढ़ जाता है। बच्चों का जबड़ा लचीला होने के कारण इस दोष को दन्त चिकित्सक सुधार सकता है। किन्हीं-किन्हीं मामलों में चिकित्सा दो वर्ष तक चल सकती है। यह चिकित्सा बच्चों के रूपरंग को सुन्दर और साथ ही साथ बोली को संतोषजनक बनाने में और चबाने की अच्छी आदत डालने में योग देती है।

संतुलित आहार, मिठाइयों का कम सेवन विशेषकर भोजनकाल के बीच समय में, दाँतों की नियमित सफाई, दाँतों को स्वस्थ रखने में सहायक होती है। दाँतों में अस्थिक्षरण या छेद (caries) पड़ने की समस्या को रोकने के लिए नियमित दाँतों की जांच करवाना आवश्यक है।

हृदय

हृदय का विकास 4 से 10 वर्ष की आयु में धीमी गति से होता है। लड़कियों में हृदय की वृद्धि 9 से 13 वर्ष के बीच अधिक तेज हो जाती है यह वृद्धि शरीर

के भार में तीव्र गति से वृद्धि के समकालिक है। लड़कों में यह वृद्धि 13 वर्ष के बाद होती है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है उसके हृदय की धड़कन धीमी होती जाती है और यह 70 से 100 वर्ष प्रति मिनट के बीच होती है। बच्चे विभिन्न खेलों में भाग ले सकते हैं किन्तु प्रतिस्पर्धा के खेलों को अत्यधिक महत्व नहीं देना चाहिए।

आँखें

बढ़त के वर्षों में आँखों में वृद्धि होती रहती है। जैसे नेत्रगोलक (eyeball) बढ़ता है दृष्टि दूरदर्शी (farsightedness) से निकट दर्शी (nearsightedness) में परिणित होती है। यौवनारंभ के दौरान परिवर्तन की गति अधिक तेज हो जाती है द्विनेत्री (binocular) दृष्टि (एक बार की दृष्टि में गहराई का प्रत्यक्ष ज्ञान) धीरे-धीरे विकसित होती है। बच्चों को पढ़ने के लिए बड़े अक्षरों के मुद्रण का प्रयोग करना चाहिए और आँखों पर जोर पड़ने वाले कार्यों को थोड़े समय बाद बदलना चाहिए। अच्छा आहार स्वस्थ आँखों के लिए आवश्यक है।

अस्थिपंजर का विकास

पूरे बाल्यकाल में हड्डियों में वृद्धि होती रहती है जो मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों ही होती हैं। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है इनका आकार बढ़ता है। केल्सियम और फासफोरस के जमा होने के कारण अस्थियां कड़ी और अनम्य हो जाती हैं। अस्थियों में बीस वर्ष की आयु तक विकास होता है। अस्थीभवन (ossification) या हड्डियों का कड़ा पड़ने का संबंध यौवनारंभ से है। जिन लड़कियों में अस्थीभवन पहले होता है वे अधिक पहले रजस्वला होती हैं।

उपास्थि (cartilage) बढ़कर अस्थियों में परिणित होती हैं। बच्चों में वयस्कों की तुलना में जोड़ों के बीच अधिक जगह होती है और अस्थिबन्धन हड्डियों से मंजबूती से जुड़े नहीं होते। इसके कारण संचलन में लचीलापन रहता है। अपरिपक्व अस्थियों में पानी अधिक और प्रोटीन के समान एक पदार्थ होता है तथा खनिज की मात्रा कम होती है । स्कूल मे लम्बे समय तक इन अस्थियो के सहारे बैठना पड़ता है और यदि कुर्सियां उपयुक्त नहीं हुइ और बैठने का ढंग ठीक नहीं हुआ तो इससे रीढ़ की हड्डी में दोष उत्पन्न हो सकते हैं।

जन्म के समय लड़कियों में और लड़कों में अस्थि विकास में विशेष अन्तर नहीं होता। बाद में लड़कियां अस्थि विकास में आगे निकल जाती हैं। छः साल पर वे एक साल आगे होती हैं और नौ साल की आयु पर डेढ़ साल आगे हो जाती हैं। अस्थि पंजर के विकास में व्यापक वैयक्तिक अन्तर भी मिलते हैं।

पेशियां

पशियां ओर तंत्रिकाएँ (nerves) शरीर की सारी गतिविधियों, ऐच्छिक (voluntary) और अनैच्छिक (involuntary) दोनों को संचालित करती हैं। पेशियां अस्थियों से जुड़ी होती हैं और तंत्रिकाओं के समन्वय के साथ ये जटिल कार्यों को संचालित करती हैं जिनके द्वारा मानव अपने पर्यावरण को नियंत्रित करता है। पेशियां उन क्रियाओं के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जो जीवित रहने के लिए नितान्त आवश्यक हैं, जैसे श्वसन, अंतड़ियों की गतियां, हृदय का धड़कना, इत्यादि। शरीर के संतुलन के लिए भी ये आवश्यक हैं। पेशियों के द्वारा ही अस्थियां अपने निश्चित स्थान पर रहती हैं।

जन्म के बाद अस्थियां आकार में बढ़ती हैं। इस वृद्धि में नए रेशे नहीं बनते किन्तु रेशों की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई बढ़ जाती है। जैसे बच्चे बड़े होते हैं पेशियों की बनावट में अन्तर आता है और ये अस्थियों से मजबूती से जुड़ जाती हैं। परिपक्वता के विकास के साथ पेशियां बच्चे के अपने नियंत्रण के अंतर्गत आ जाती हैं जिससे गतिविधियां अधिक समन्वित, दक्ष और परिष्कृत हो जाती हैं। बच्चा अधिक पेचीदा कार्य कर सकता है और बाहर खेले जाने वाले खेलों में उसकी कुशलता बढ़ती है। लड़के लड़कियों की अपेक्षा पेशियों के विकास की दृष्टि से अधिक हट्टे-कट्टे होते हैं बच्चों को एक जगह बैठे रहने में थकावट आती है और इसलिए उनके क्रियाकलाप में परिवर्तन चाहिए। जिससे नई पेशियों के समूह काम में आ सकें और जो काम कर रही थीं उन्हें आराम मिल सके तथा थकान दूर हो। अत्यधिक श्रम से पेशियों को हानि पहुंचती है। बीमारी के बाद पेशियां ढीली पड़ जाती हैं, और बच्चे जल्दी थक जाते हैं, किन्तु सामान्यतया इस स्थिति से जल्द ही उभर जाते हैं। बीमारी से उठकर बच्चे को थकाने वाले खेलों में भाग लेने से रोकना चाहिए।

यदि बच्चों को अच्छा भोजन मिलेगा, तथा उनके लिए आराम और कार्यों का नियमित कार्यक्रम हो तो पेशियां विकसित होंगी। पेशियों के अच्छे विकास से बच्चे की गतिविधियों में परिशुद्धता और तेजी, तथा आने वाले वर्षों में शक्ति और अधिक समय तक काम कर सकने की क्षमता आएगी।

गामक कुशलताएँ

बच्चों को गामक क्रियाकलापों में आनन्द आता है और स्कूल में प्रवेश के समय तक उनमें से अनेक मूलभूत क्षमताओं को प्राप्त कर लेते हैं, जैसे दौड़ना, पैर की गतिविधियों के क्रमबद्ध करना और शरीर को सतुलित रखना। क्योंकि इस आयु पर गामक क्रियाओं की प्रचुरता रहती है और इनमें भाग लेने के अनेक अवसर

मिलते हैं, बच्चों को अपने गामक कौशलों को विकसित करने का काफी अभ्यास मिलता है। वे कार्य करने की रफ्तार, निरन्तर कार्य करने की क्षमता, शक्ति, समन्वय, और परिशुद्धता में लगातार वृद्धि करते हैं

जैसे बच्चे बड़े होते हैं गामक समन्वय बढ़ता हैं अभ्यास से बढ़ेगी गतिविधियां परिष्कृत होती हैं और असंबद्ध गतिविधियां मिट जाती हैं। यदि बच्चों को अभ्यास के अवसर और अनुकरण के नमूने मिलें तो इनसे वे बहुत कुछ सीखते हैं। रुचि और उत्साह का भी सीखने में प्रमुख योग होता है बच्चे शारीरिक शिक्षा के अच्छे कार्यक्रम से काफी लाभान्वित होंगे।

घनी आबादी वाले शहरों के बच्चों को खेल के मैदान और खुली जगह आसानी से प्राप्त नहीं होती। गांवों और छोटे शहरों में निवास करने वाले बच्चे शहरी बच्चों की अपेक्षा इस दृष्टि से फायदे में रहते हैं। उन्हें पेड़ पर चढ़ने, खुली जगह में दौड़ने, कूदने, नदियों और तालाबों में तैरने के अनेक अवसर मिलते हैं।

गामक कौशलों के विकास का प्रतिरूप लड़कियों और लड़कों में एक जैसा होता है, किन्तु पाँच वर्ष की आयु के बाद सभी क्रियाकलापों में लड़के लड़कियों से श्रेष्ठ हो जाते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि यहां भी व्यापक वैयक्तिक अन्तर होते हैं छः से बारह वर्ष तक लड़कियां बराबर प्रगति करती रहती हैं किन्तु तेरह वर्ष की कम आयु पर ही वे अपनी अधिकतम सीमा प्राप्त कर लेती है। ऐसा नहीं है कि शारीरिक विकास एकाएक रुक जाता है किन्तु अन्य कारक, जैसे इच्छा और रुचि की कमी, सांस्कृतिक प्रभाव और शारीरिक परिवर्तन लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में कुशलता में गिरावट लाने के लिए उत्तरदायी हैं। खेल और क्रीड़ा में भाग लेने के लिए लड़कों को काफी प्रोत्साहन मिलता है और इसके अलावा अपने साथियों में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है, इसलिए लड़के शारीरिक क्रियाकलापों में अधिक रुचि लेते हैं, और उनकी कार्यकुशलता में प्रगति होती रहती है।

गामक क्रियाएं जो शक्ति और बल पर निर्भर करती हैं वे शारीरिक गठन और आकार से निकट से संबंधित हैं। यह संबंध सभी आयु पर पाया जाता हैं बच्चे जो अधिक लम्बे-चौड़े होते हैं वे निष्पादन में भी बेहतर होते हैं जैसे, गेंद फेंकने में, बास्केटबाल में, इत्यादि। यद्यपि शारीरिक गठन या शक्ति का संतुलन तथा समन्वय के साथ कोई विशेष संबंध नहीं है, फिर भी आयु के साथ इनमें प्रगति होती है।

गामक कौशलों की कार्यकुशलता में प्रगति के अलावा, आयु में वृद्धि के साथ बच्चे बल, गति, परिशुद्धता, लचीलापन और सहनशक्ति में प्रगति करते हैं।

बल

बच्चा जैसे बड़ा होता है उसका बल बढ़ता है प्रत्येक वर्ष के बाद वह अधिक भारी वस्तुओं को उठा, ढो और ढकेल सकता है और गेंद को अधिक दूरी तक फेंक सकता है। इन सभी क्रियाकलापों में लड़के लड़कियों से श्रेष्ठ होते हैं।

रफ्तार

जैसे बच्चा बड़ा होता है अपने शरीर पर उसका नियंत्रण बढ़ता है और वह ऐसे कार्यों को तेजी से कर लेता है जिनमें सारे शरीर या शरीर के कुछ अंगों की आवश्यकता पड़ती हैं, जैसे भुजाएं, हाथ, उंगलियां। इसे ऐसी क्रियाओं में देखा जा सकता है जैसे दौड़ना, उछलना, हस्तान्तरित करना (passing) और गेंद फेंकना। लड़कियां इस दिशा में ग्यारह वर्ष तक काफी अच्छा कार्य करती हैं, किन्तु इसके बाद लड़कियों और लड़कों के बीच अन्तर बढ़ता जाता है, लड़के बेहतर कार्य कर पाते हैं।

परिशुद्धता

ऐसे कार्य जैसे एक पैर पर खड़े रहना, एक लाइन पर चलना, डोरा डालना, कूदना, सन्तुलन, निशाना लगाना सबमें काफी परिशुद्धता की आवश्यकता पड़ती है। परिशुद्धता की आवश्यकता उंगलियों के कार्यों में भी पड़ती है जैसे सुईकारी, बाजा बजाना, नक्काशी करना, काटना, लिखना आदि में। परिशुद्धता, दक्षता, और लयबद्ध क्रियाकलापों में लड़कियां लड़कों से बेहतर कार्य कर पाती है।

नमनीयता

निर्बाध सहज गतिविधियां, मुड़ना, तनना, अनेक मामक क्रियाकलापों में आवश्यक होते हैं। ये जोड़ों के ढीलेपन तथा पेशियां कितनी सरलता से कार्य करती है, निर्भर करते हैं। क्रीड़ा और नृत्य में नमनीयता बहुत आवश्यक है ऐसे क्रियाकलापों को जिनमे नमनीयता की आवश्यकता पड़ती है छोटी आयु पर शुरू करने चाहिए, क्योंकि बच्चा जितना छोटा होता है उसका शरीर उतना नमनीय होता है।

संस्थिति (posture)

संस्थिति या शारीरिक संतुलन शरीर के विभिन्न अंगों को सही ढंग से व्यवस्थित करना है जिससे, अनावश्यक तनाव और थकान के बिना, प्रभावशाली ढंग से कार्य किया जा सके और गतिविधियां सहज और चारु हों। सही संस्थिति नितान्त आवश्यक है क्योंकि इनमे शरीर पर अनावश्यक जोर नहीं पड़ता, जबकि दोषपूर्ण संस्थिति से कार्यकुशलता में गिरावट आती है और थकान जल्दी आने लगती है। सही संस्थिति अच्छे स्वास्थ्य, ताकत, और प्रसन्नता का द्योतक है। बच्चे जो अपने को अपर्याप्त (inadequate), दुःखी और तनावपूर्ण अनुभव करते हैं उनमें अक्सर दोषपूर्ण संस्थिति पाई जाती है। बच्चे जो अपने शरीर के किसी अंग की विकृति या दोष से चिन्तित हैं उसे छुपाने के लिए गलत संस्थिति अपनाते हैं। ऐसे बच्चों को शिक्षक के निर्देशन की आवश्यकता रहती है।

अध्याय 6

बुद्धि विकास

उपदेश के. बेवली

बुद्धि

प्रारंभिक वर्षों में विकास के अध्ययन[1] में हमने देखा कि स्कूल में प्रवेश लेने की आयु तक बच्चे में आकार, संख्या आकृति आदि की संकल्पनाएं निर्मित हो जाती हैं। वह अपने पर्यावरण से बहुत कुछ सीख रहा है और भाषा का उपयोग जानकारी प्राप्त करने में कर रहा है। यह मानसिक विकास आयु में वृद्धि के साथ चलता रहता है। हम देखते हैं कि आठवीं कक्षा के बच्चे पहली कक्षा के बच्चों की अपेक्षा अधिक सरलता से और अधिक कठिन विषय सीख लेते हैं। सीखने की क्षमता में इस वृद्धि के कारण पाठ्यक्रम इस प्रकार से क्रमबद्ध किया जाता है कि कठिनाई का स्तर और विषय वस्तु की मात्रा, जिसे सीखने की अपेक्षा बच्चों से की जा रही है, एक कक्षा से दूसरी कक्षा में बढ़ती जाए। बौद्धिक योग्यता में यह विकास परिपक्वता और अधिगम दोनों ही के द्वारा होता है। परिपक्वता के प्रभाव के उदारहरण के लिए हम एक चौदह वर्षीय बालक की तुलना छः वर्षीय बालक से करें। चौदह वर्षीय बालक कुछ बातें आसानी से समझ लेता है, किन्तु इन्हीं को हम छः वर्षीय बालक को उतनी सरलता से नहीं पढ़ा सकते क्योंकि छोटे बच्चे का मानसिक स्तर अभी इतना ऊंचा नहीं हुआ है कि वह उन्हें सीख सके। इसके विपरीत यदि एक चौदह वर्षीय बालक को, जिसे अभी तक शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है हम एकदम सातवीं या आठवीं कक्षा में बैठा दें तो वह जो कुछ उसी आयु के और परिपक्वता के समान स्तर के अन्य बच्चे सीख रहे हैं उसमें से शायद ही कुछ सीख पाए, क्योंकि उसकी पहले की शिक्षा अपूर्ण है।

केवल बड़े और छोटे बच्चों में ही अन्तर नहीं पाए जाते किन्तु एक ही आयु के बच्चों में भी सीखने की क्षमता में अन्तर होता है। कुछ बच्चे, अन्य बच्चों की

1. The capacity to learn from experience, the ease with which a new idea or a set of behaviours are learnt, ability to profit from experience and adapt to new situations.

अपेक्षा, सरलता से संकल्पनाएं और निर्देश समझ लेते हैं और जो पढ़ाया जाता है उसे याद रखते हैं। इन बच्चों को हम अन्य बच्चों से अधिक बुद्धिमान मानते हैं।

बुद्धि एक ऐसा शब्द है जिसकी परिभाषा सरल नहीं है, और इस शब्द की अत्यधिक आलोचना की गई है (इसके कारणों की विवेचना आगे की जाएगी), किन्तु प्रयोग की दृष्टि से यह शब्द सुविधाजनक है। बुद्धि का वर्णन करने के लिए इसे अनुभव से सीखने और लाभ उठाने की योग्यता, नए विचार और आचरण सीखने की सुगमता और नई परिस्थितियों के अनुरूप ढालने की योग्यता कह सकते हैं।

बुद्धि के परीक्षणों से पता चला कि जन्म के समय से बुद्धि निरन्तर बढ़ती है और मध्य किशोरावस्था के आसपास यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। कुछ अध्ययनों के आधार पर पता लगा है कि बुद्धि के "विषय का 50 प्रतिशत (पूर्ण विकास 17 वर्ष पर होगा) गर्भधारण और 4 वर्ष की आयु के बीच, लगभग 30 प्रतिशत 4 प्रतिशत और 8 वर्ष के बीच, और लगभग 20 प्रतिशत 8 और 17 वर्ष के बीच होता है।"[2] उदाहरण के लिए एक परीक्षण, जिससे पता लगता है कि किस प्रकार बुद्धि का विकास होता है, अंक दोहराना है। यहां यह देखा जाता है कि एक बार सुनकर व्यक्ति कितने अंक दोहरा सकता है। अंकों की संख्या आयु के साथ जिस प्रकार बढ़ती है उसे नीचे दर्शाया गया है।

2 वर्ष 6 माह

दो अंकों को दोहरा सकता है जैसे, 4 -7, 6 -3, 5 -8

3 वर्ष

तीन अंकों को दोहरा सकता है जैसे, 6 - 4 -1, 3 -5 -2, 8 -3 -7,

7 वर्ष

पांच अंकों को दोहरा सकता है जैसे, 3 -1-5 - 8 - 9, 4 -'8 - 3 - 7 - 2, 9 - 6 - 1 - 8 -3 या कोई अन्य अंक। तीन अंकों को उल्टा दोहरा सकता है जैसे 2 - 9 - 5, 8 - 1 - 6, 4 - 7 - 3

9 वर्ष

चार अंकों को उल्टा दोहरा सकता है जैसे, 8 - 5 -2 - 6, 4 - 9- 3 - 7, 3 - 6 - 2 - 9

10 वर्ष

छः अंकों को दोहरा सकता है जैसे, 4 - 7 -3 - 8 - 5 -9, 5 - 2 - 9 - 7 - 4 - 6, 7 - 2 - 9 - 3 - 9 - 9

---

2. B.s Bloom, Stability and Change in Human Characteristics, New Youk : Wiley, 1964.

12 वर्ष

पांच अंकों को उलटे दोहरा सकता है जैसे, 8 - 1 - 3 - 7 - 9-, 6 - 9 - 5 - 8 - 2, 9 - 2 - 5 - 1 - 8

जिन विशेष योग्यताओं और ज्ञान को व्यक्ति प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में कायम रख पाता है, वे उसकी मानसिक योग्यता के मूल स्तर, उसके व्यवसाय और उसके स्वास्थ्य के सामान्य स्तर आदि पर निर्भर करते हैं। यह देखा गया है कि अधिक तेज लोग बौद्धिक क्रियाशीलता के उच्च स्तर को, कम तेज लोगों की अपेक्षा अधिक समय तक कायम रख पाते हैं।

उन लोगों में जिन्होंने बुद्धिमापन के परीक्षण पहले-पहल बनाए, एक फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक एल्फ्रेड बिने (Alfred Binet) का नाम आता है। उसने विभिन्न आयु वर्गों के लिए उपयुक्त परीक्षण बनाए। बिने परीक्षणों में कुछ परिवर्तन करके और कुछ नए परीक्षण जोड़कर, अमरीका में टरमन और मेरिल ने इन्हें पुनः प्रस्तुत किया। इन परीक्षणों में से पाँच वर्ष के बच्चों के लिए परीक्षण नीचे दिए जा रहे हैं।

व्यक्ति का रेखाचित्र बनाना। अखबार के चौकोर कागज को, एक बार दिखाए जाने पर मोड़ कर त्रिकोण बनाना। शब्दों की परिभाषा करना जैसे गेंद, टोपी, स्टोव।

चौकोर शकल की नकल बनाना।

समानताएं और अन्तर बताना।

दो त्रिकोणां को मिलाकर आयत (rectangle) बनाना है।

बिने ने मानसिक आयु की संकल्पना भी दी। यदि बच्च उन परीक्षणों को हल कर लेता है जो उसकी आयु के अधिकांश बच्चे कर लेते हैं, किन्तु उससे अधिक आयु स्तर के नहीं कर पाते तो हम कह सकते हैं कि बच्चे की मानसिक आयु उतनी ही है जितनी उसकी तैथिक आयु (यानी जन्म से साल और महीनो में आयु)। इस प्रकार एक पाँच वर्षीय बालक यदि उन परीक्षणों को कर लेता है जो पाँच वर्ष की आयु के लिए रखे गए हैं और उनको नहीं कर पाता जो छः वर्ष की आयु के लिए हैं, तो उसकी मानसिक आयु पाँच वर्ष होगी। तैथिक आयु तो उसकी पाँच वर्ष की है ही। यदि पाँच वर्ष का बालक वे परीक्षण कर लेता है जो छः वर्ष की आयु के लिए हैं तो उसकी मानसिक आयु छः वर्ष होगी। यदि एक बच्चा केवल चार वर्ष की आयु वाले परीक्षण कर पाता है यद्यपि उसकी आयु पाँच वर्ष है तो उसकी मानसिक आयु चार वर्ष की मानी जाएगी।

मानसिक आयु के एक माप जिसे बुद्धिलब्धि (intelligence quotient) कहते हैं निकाला जा सकता है।

बुद्धिलब्धि (I.Q.) = मानसिक आयु/ तैथिक आयु × 100

यदि एक बच्चे की मानसिक आयु तथा तैथिक आयु दोनों ही 5 हैं तो उसकी बुद्धिलब्धि होगी

$$\text{बुद्धिलब्धि} = \frac{5}{5} \times 100 = 100$$

यदि उसकी तैथिक आयु पाँच है, और मानसिक आयु छः है तो उसकी बुद्धिलब्धि होगी

$$\text{बुद्धिलब्धि} = \frac{6}{5} \times 100 = 120$$

यदि उसकी तैथिक आयु पाँच है और मानसिक आयु 4 है तो उसकी बुद्धिलब्धि होगी

$$\text{बुद्धिलब्धि} = \frac{4}{5} \times 100 = 80$$

यह देखा गया है कि काफी बड़ी संख्या में व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 100 के आसपास होती है, यानी 90 से 110 के बीच। इनसे कुछ लोगों की संख्या 110 से 120 और 80 से 90 के बीच बुद्धिलब्धि वालों की होती है। जैसे-जैसे हम 100 बुद्धिलब्धि से दूर होते हैं व्यक्तियों की संख्या घटती जाती है। 130 की और 70 की बुद्धिलब्धि के लोगों की संख्या 100 या इसके आसपास के लोगों की संख्या से काफी कम होती है। 130 बुद्धिलब्धि के ऊपर और 70 बुद्धिलब्धि के नीचे लोगों की संख्या और भी कम होगी।

बुद्धि परीक्षणों के आधार पर व्यक्ति की बुद्धि को बताने के लिए बुद्धिलब्धि एक सुविधाजनक तरीका है इससे विभिन्न आयु के बच्चों के बीच तुलना भी संभव है। उदाहरण के लिए यदि एक दस वर्ष (120 माह) के बालक की मानसिक आयु 10 वर्ष और 6 माह (यानी 126 माह) है, उसकी बुद्धिलब्धि $\frac{126}{120} \times 100 = 105$ होगी।

यदि एक छः वर्ष के बच्चे की मानसिक आयु 7 वर्ष और 6 माह है तो महीनों में उसकी तैथिक आयु 72 और मानसिक आयु 90 होगी, और उसकी बुद्धिलब्धि $\frac{90}{72} \times 100 = 125$ होगी।

इस प्रकार 6 वर्ष का बालक 10 वर्ष के बालक से (जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है) बुद्धि में अधिक है यद्यपि वह मानसिक आयु में दस वर्षीय बालक से कम है। उसकी मानसिक आयु तैथिक आयु से ज्यादा अधिक है, जिससे उसे बुद्धिलब्धि में उच्चता मिली।

बुद्धिलब्धि के मापों के आधार से हम एक ही बच्चे के विभिन्न आयु पर बुद्धि

परीक्षण में निष्पादन की तुलना कर सकते हैं। यह साधारणतया देखा गया है कि जिन बच्चों की बुद्धिलब्धि कम आयु पर उच्च होती है, बड़े होने पर भी उनकी बुद्धिलब्धि उच्च रहती है, और जो कम बुद्धिलब्धि के होते हैं वे आगे के परीक्षणों में भी कम बुद्धिलब्धि के निकलते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक चार वर्ष के बच्चे की मानसिक आयु पाँच है और उसकी बुद्धिलब्धि $\frac{5}{4} \times 1(X) = 125$ है, यह संभव है कि आठ वर्ष की आयु पर भी उसकी बुद्धिलब्धि 125 के आस-पास निकलेगी, हो सकता है 120 या 128 और यही बुद्धिलब्धि दस वर्ष की आयु पर भी रहेगी।

इन परिणामों से यह तथ्य उजागर हुआ कि व्यक्ति की बुद्धिलब्धि स्थिर रहती है। बाद में बुद्धि परीक्षणों के प्रयोग से पता चला कि कुछ बच्चों में यदि परीक्षा कुछ समय के अन्तर से ली जाए तो बुद्धिलब्धि में काफी परिवर्तन दिखाई देता है। यह बात उन बच्चों पर विशेष रूप से लागू होती है जिन्हें घरों में बौद्धिक दृष्टि से प्रेरक पर्यावरण प्राप्त नहीं होता, और बाद में इनके पर्यावरण में कुछ सुधार होता है। हो सकता है कि इनके माता-पिता शिक्षित नहीं रहे हों और बच्चों को पुस्तकें, शैक्षिक खिलौने और इसी प्रकार की सामग्री प्राप्त नहीं हुई हो। ऐसे बच्चे बुद्धि परीक्षा में अच्छा नहीं कर पाते। किन्तु अच्छे शैक्षिक अवसरों के प्राप्त होने के बाद परीक्षा में इनकी निष्पत्ति बढ़ जाती है।

अब हम देखेंगे कि बुद्धि शब्द और बुद्धि परीक्षणों की आलोचना क्यों की गई है। पहली बात तो यह है कि बुद्धि को सीखने की क्षमता माना गया है किन्तु बुद्धि परीक्षण अधिकतर वह मापते हैं जो व्यक्ति ने सीखा है। इसके पीछे यह मान्यता है कि जिसमें सीखने की अधिक क्षमता है वह सीख भी अधिक लेगा। किन्तु सीखने के सभी को समान अवसर नहीं मिलते। उदाहरण के लिए एक ग्रामीण बालक को यह पता नहीं होगा कि वर्ग या त्रिभुज क्या है, किन्तु खेतों के बारे में उसे ऐसी जानकारी होगी जो शहरी बच्चा नहीं जानता, किन्तु जिन्हें बुद्धि के परीक्षण में सामान्यतया नहीं पूछा जाता। इस प्रकार एक व्यक्ति के बुद्धि परीक्षण के प्राप्तांक उसकी अभिक्षमता (aptitude) तथा अनुभव दोनों ही के माप हैं।

बुद्धि शब्द के प्रयोग में एक दूसरी आपत्ति यह है कि परीक्षणों से पता चला है कि व्यक्ति में केवल एक अभिक्षमता नहीं होती बल्कि अनेक अभिक्षमताएं होती हैं। उदाहरण के लिए कुछ अभिक्षमताएं हैं, शाब्दिक विषय वस्तु को समझ सकना, शब्दों के माध्यम से तर्क कर सकना, संख्याओं के संदर्भ में कार्य कर सकना, गति और परिशुद्धता के साथ कार्य कर सकना इत्यादि। एक निश्चित कार्य के लिए कुछ अभिक्षमताएं अन्य अभिक्षमताओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। उदाहरण के

लिए, शाब्दिक तर्क की अपेक्षा आकृतियों की कल्पना कर सकना एक इंजीनियर के लिए, और वकील के लिए शाब्दिक तर्क महत्वपूर्ण है इत्यादि। किन्तु बहुत से कार्य जो हम करते हैं उनमें कई अभिक्षमताओं की आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार हम देखते है कि बुद्धि शब्द और परीक्षण में दो मुख्य आपत्तियां हैं। पहला, कि बुद्धि एकमात्र अभिक्षमता नहीं है बल्कि इसमें कई अभिक्षमताएं हैं जिनके लिए अलग-अलग परीक्षण उपलब्ध हैं। दूसरा, कि बुद्धि परीक्षण जन्मजात क्षमता का मापन न करके जो कुछ व्यक्ति ने सीखा है उसका मापन करते हैं। फिर भी, जैसी ऊपर चर्चा की गई बुद्धि परीक्षण उपयोगी है। उनसे इस बात का अन्दाज मिलता है कि छात्र पढ़ाई में कैसा कार्य करेगा। कितना अच्छा वह करेगा यह उसकी अन्तर्जात अभिक्षमता और अब तक क्या सीखा है इन पर निर्भर करेगा। ये दोनों ही बुद्धि परीक्षणों में विद्यमान रहते हैं। इसलिए कुछ लोग इन परीक्षणों को शैक्षिक अभिक्षमता का परीक्षण कहते हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है बौद्धिक अभिक्षमता एकिक अभिक्षमता नहीं है बल्कि कई अभिक्षमताओं का योग है। ये विभिन्न गतियों से बढ़ती है और इनके विकास में विभिन्न अनुभवों की आवश्यकता पड़ती है। सृजनात्मक कल्पना प्रारंभ में विकसित होती है। छोटे बच्चे परियों की कहानियां पसंद करते हैं। क्योंकि तर्कसंगति कुछ धीमी गति से विकसित होती है। बच्चों के डर अकसर काल्पनिक होते हैं। ये डर हमें अनर्गल लगेंगे, किन्तु बच्चों को बिलकुल वास्तविक लगते हैं। मध्य बाल्यावस्था में तर्कसंगति में विकास होता है। प्रारंभिक किशोरावस्था में जब कल्पना अपनी उच्चतम सीमा पर होती है, इसमें तर्कसंगति संलग्न हो जाती है, जिससे सृजनात्मक कार्य संभव हो पाता है। इसे संजोए रखने की आवश्यकता है। किन्तु सृजनात्मकता बुद्धि परीक्षणों में परिलक्षित नहीं होती और इसलिए इसके अध्ययन की ओर हाल के वर्षों के पहले ध्यान नहीं दिया गया था।

सृजनात्मकता

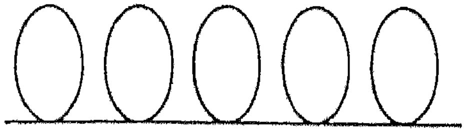
सृजनात्मकता से संबंधित योग्यताओं का परीक्षण परंपरागत बुद्धि परीक्षणों द्वारा नहीं होता। मनोवैज्ञानिक मौलिकता और विदग्धता (inventiveness) के मापन के लिए अलग से परीक्षण बनाए जा रहे हैं। इससे यह मत प्रतिपादित हुआ कि सृजनात्मकता बुद्धि से बिल्कुल भिन्न है। किन्तु यदि हम बुद्धि को कई योग्यताओं द्वारा संघटित माने तो सृजनात्मक उत्पादन की क्षमता उसका महत्वपूर्ण अंग होगा। यह बात सही है कि कुछ लोग जो सामान्य बुद्धि परीक्षा में बहुत अच्छा करते हैं, बहुत सृजनशील नहीं होते, और कुछ ऐसे होते हैं जो बुद्धि परीक्षण में अच्छा नहीं

कर पाते किन्तु काफी सृजनशील निकलते हैं, किन्तु यह बात अन्य योग्यताओं पर भी लागू होती है। साधारणतया सभी योग्यताएं साथ-साथ चलती हैं और अधिक उच्च बुद्धि वाले समूह में हमें अधिक सृजनशील व्यक्ति मिलते है बजाए कम बुद्धि के लोगों में।

सृजनात्मकता के अर्थ हैं मौलिक और सामान्य से हटकर कार्य करने की योग्यता। इसके अर्थ विभिन्न विचारों को उत्पादित करना, आविष्कार करना, परिचित वस्तुओं के नए उपयोग सोचना और समस्याओं के कई हल खोज पाना हो सकते हैं। सृजनात्मक प्रक्रियाओं को उनके अन्तिम परिणामों के द्वारा समझा जा सकता है, जैसे चित्रांकित किया हुआ एक रंगीन चित्र या रेडियो के संकेत भेजने की कोई नई विधि। यदि कोई मोटरगाड़ी के लिए पैट्रोल के स्थान पर एक व्यवहारिक अनुकल्प निकाल सके तो वह नवाचारी होने के साथ-साथ सृजनात्मक भी माना जाएगा।

सृजनात्मकता समान्य या उच्च स्तर की हो सकती है। यह एक विरली प्रतिभा के स्तर पर कार्य कर सकती है जैसे आइन्सटीन (Einstein) और रवीन्द्रनाथ ठाकुर या दिन-प्रति-दिन के सामान्य कार्यों में। मनोवैज्ञानिक सृजनात्मकता के परीक्षण निर्मित कर रहे हैं। सृजनात्मकता के परीक्षण के उदाहरण के लिए एक प्रश्न हो सकता है, "एक अखबार के क्या-क्या असमान्य उपयोग आप सोच सकते हैं?" एक व्यक्ति केवल दो सामान्य उपयोग दे पाता है जबकि दूसरा बहुत से असामान्य उपयोग देता है। पहला व्यक्ति कहता है कि इसका उपयोग खबरें छापने में और टेबल पर बिछाने के लिए हो सकता है, जबकि दूसरा कहता है : "इसका प्रयोग हम आग जलाने में"' चोंगा बनाकर "पापकर्ण" रखने में कर सकते हैं। इसको मरोड़कर गेंद बना सकते हैं और खेल सकते हैं। इसका डाट बनाकर पानी का रिसना रोक सकते हैं, इसको मोड़कर हवाई जहाज या पतंग बना सकते हैं, किताब और कापियों पर चढ़ा सकते हैं, पानी पोंछ सकते हैं, मछली लपेट सकते हैं, टेलीस्कोप बना सकते हैं। टूटे शीशे बीन कर रख सकते हैं, धूप से बचने के लिए सिर के ऊपर रख सकते हैं, पंखा झल सकते हैं, खिलौने बना सकते हैं। ये उत्तर दर्शाते हैं कि पहले व्यक्ति ने कम उपयोग बताए जो असामान्य भी नहीं थे। दूसरा व्यक्ति अधिक सृजनशील है क्योंकि उससे उत्तर में अखबार के अनेक उपयोग मिलते हैं जिनमें कुछ असामान्य हैं।

कुछ आधुनिक अन्वेषकों ने बच्चों में सृजनात्मकता के मापने के लिए कई विधियों का उपयोग किया है, जैसे कहानी पूरा करना, विभिन्न वस्तुओं के बीच समानताएं बताना और बच्चों से विभिन्न प्रकार के रेखाचित्रों का वर्णन करने को कहना। उदाहरण के लिए चित्र 2 में दिए रेखाचित्र के प्रति उत्तर हो सकता है,। "टेबल जिस पर कुछ वस्तुएं रखी हुई हैं" जो एक सामान्य उत्तर माना जाएगा। किन्तु ऐसा उत्तर "पैर और पैरों की उंगलियां असमान्य होने के कारण" अधिक सृजनात्मक माना जाएगा।



चित्र–2 यह क्या हो सकता है?

हमारा आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक युग हमें सामान्य कार्यों और सामान्य समस्याओं को हल करने से धीरे-धीरे मुक्त कर रहा है। इस प्रकार के कार्य मशीनों द्वारा किए जा रहे हैं। हमारी तकनीकी संस्कृति यदि विकसित होती रही, तो मानव की शारीरिक शक्ति पर मांग कम होगी और सृजनात्मक विचारों पर अधिक बल होगा। मांग होगी अनूठे विचारों की और नई समस्याओं को हल करने के मौलिक तरीकों की। सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक और शैक्षिक प्रगति को कायम रखना बहुत हद तक समाज के सदस्यों की सृजनात्मकता पर निर्भर करता है। जिनमें सृजनात्मकता की सर्वाधिक संभावनाएं हैं उनका पता लगाना आवश्यक है जिससे इनकी ओर विशेष ध्यान दिया जा सके। साथ ही सभी छात्रों में सृजनात्मकता के विकास के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। इसके लिए मुख्य जिम्मेवारी शिक्षक और माता-पिता की है। शिक्षक को ऐसी समस्याएं उठानी होंगी और ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करनी होंगी जिनसे नवीन और अपूर्व विचारों का सृजन हो सके और समस्याओं को नए दृष्टिकोण से देखना सिखाया जा सके।

नवाचारिता के बढ़ाने के लिए एक विधि यह हो सकती है कि जिस भी समस्या या प्रश्नों पर व्यक्ति कार्य कर रहा हो उसके अनेक उत्तर उत्पादित करने का प्रयास किया जाए। मात्रा से गुण उत्पन्न हो सकता है।

एक दूसरी आवश्यकता अपने विचारों में विश्वास के होने की है। कुछ लोग यह कह कर कि समस्या कठिन है हताश होकर कार्य छोड़ देते हैं। शिक्षक को छात्रों को सिखाना चाहिए कि इस प्रकार के विचार को मन से निकाल दें। नए विचारों के सृजन के बाद उनकी आलोचना में जल्दबाज़ी करना एक प्रकार की आत्म-पराजय है। यह नए विचारों के उत्पादन को रोक देती है।

व्यक्ति मौलिक होने के लिए अपने को कह सकता है,"मैं संकल्पित प्रयास करके कोई असाधारण बात सोचूँगा।" छात्रों को विचारों से खेलने के लिए प्रोत्साहित करना, जिससे मस्तिष्क तीव्र गति से एक के बाद एक विचार उत्पन्न करे, चाहे वे कितने ऊटपटांग क्यों न लगें, एक सर्वोत्तम विधि है। विचारों की विवेचना और

मूल्यांकन बाद में किया जाना चाहिए। शिक्षक छात्रों को सभी कार्यों में मौलिक होने की छूट दे सकता है और इस प्रकार मौलिकता को पोषित कर सकता है।

बौद्धिक विकास का पियाजे का सिद्धान्त

क्योंकि योग्यताएं विभिन्न गतियों से बढ़ती हैं। बच्चों की सीखने की क्षमता में ही वृद्धि नहीं होती, किन्तु चिन्तन में गुणात्मक परिवर्तन भी होते हैं। इन परिवर्तनों का अध्ययन एक स्विटजरलैण्ड के मनोवैज्ञानिक, ज्यों पियाजे, (Jean Piaget) ने विस्तार से किया है।

ज्यों पियाजे इस शताब्दी का बौद्धिक विकास का शायद सबसे महत्वपूर्ण अध्येता है। उसने एक सिद्धान्त निरूपित किया है जिसके द्वारा व्याख्या की गई है कि अनुभवों से कैसे बच्चे का मानसिक विकास होता है.। बच्चा संवेद निवेश (sensory input) से घिरा रहता है और अनेक अनुभव उसको उपलब्ध होते हैं। इन अनुभवों की ओर बच्चे द्वारा या तो ध्यान नहीं दिया जाता या इनको अर्थयुक्त किया जाता है। ध्यान न देने से बौद्धिक विकास अप्रभावित रहता है। किन्तु यदि बच्चा अपने अनुभवों की ओर ग्रहणशील होता है तो इससे बौद्धिक विकास होता है। यह दो प्रकार से हो सकता है। एक तो उस रूप में जो बच्चा पहले से ही जानता है। पियाजे ने इसे "एसीमिलेशन" (assimilation) या आत्मसातीकरण कहा है। इसके अर्थ हैं **पुराने विचारों का उपयोग नई परिस्थिति को समझने में करना**। दूसरे शब्दों में एसीमिलेशन वह प्रक्रिया है जिससे बच्चा उस ज्ञान का, जो पहले से ही विद्यमान है, नए विषय या उद्दीपन को समझने और उसके प्रति व्यवहार करने में करता है। नई वस्तुएं और नए विचार पुरानी स्कीमों (schemes) में सम्मिलित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए एक असमान्य आकृति के प्याले को पीने के लिए प्रयोग में आने वाले पात्र के रूप में पहचान लेना एसीमिलेशन का एक अच्छा दृष्टान्त है। दूसरी विधि है जिसमें बच्चा एक नए चिन्तन के तरीके को विकसित करता है। इसे "एकोमोडेशन" (accommodation) या समायोजन कहते हैं। एकोमोडेशन के अर्थ हैं **नए अनुभवों को समझने के लिए पुराने विचारों को बदलना**। एक बहुत छोटा बच्चा जो एक चुम्बक की छड़ को पहली बार देखता है वह उसे छोटी वस्तुओं की विद्यमान स्कीम में एसीमिलेट करेगा और वे कार्य करेगा जो छोटी वस्तुओं के साथ करता रहा है यानी उसे छूना, उससे ठोंकना, मुंह में डालना या उससे शोर करना। यदि अचानक उसे चुम्बक के विशेष गुणों का पता लग जाए यानी इसकी लोहे को आकर्षित करने की शक्ति वह तुरन्त अपने मन में सही मानसिक परिवर्तन करके उसे समायोजित (एकोमेडेट) करेगा। अब वह इस नए अनुभव का उपयोग करेगा और चुम्बक को विभिन्न वस्तुओं से लगाकर प्रभाव देखेगा। इस प्रकार बुद्धि का विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें एसीमिलेशन और एकोमोडेशन के बीच बौद्धिक टकराव का समाधान, अनुभव द्वारा होता है।

पियाजे ने यह भी बताया कि बच्चे बौद्धिक विकास में श्रृंखलाओं के कई चरणों से होकर गुजरते हैं। पहली अवस्था संवेदी-गामक कार्य की है। यह भाषा सीखने से पहले का जीवन काल है। इस समय बच्चे की बुद्धि उसके कार्यों में देखी जाती है। यह काल जन्म से लगभग दो वर्ष की आयु तक चलता है। इस अवस्था में बच्चा जगत के बारे में प्रतीकों में विचार नहीं करता किन्तु उस वास्तविक कार्यों के रूप में, जिन्हें वह करता है। सामान्य विचार यह है कि इस अवस्था पर बच्चे के लिए कुत्ता वह है जो "भौंकने की आवाज करता है।" कुर्सी वह है "जिस पर बैठा जाता है।" मम्मी वह है "जो दूध पिलाती है" संक्षेप में वह वस्तु और वस्तु की विशेषताओं को "एक ही मानता" है। वही एक को दूसरे से अलग कर स्वतंत्र रूप से नहीं देख पाता।

इस काल में बच्चा सीखता है कि यदि वस्तुएं अदृश्य हो जाएं तब भी कायम रहती हैं जैसे, जब मां खिलौना तकिये के नीचे रख देती है तो खिलौना फिर भी कायम रहता है और यदि तकिये के नीचे देखा जाए तो मिल जाता है। इस परिकल्पना को वस्तु स्थायित्व (object permanence) का नाम दिया गया है। बच्चा यह विचार ग्रहण करता है कि 'अन्य वस्तुओं की अपनी अलग सारूप्यता (identity) है।' इस काल में इस गुण का क्रमशः विकास होता है।

लगभग दो से सात वर्ष की आयु "प्री आपरेशनल" (pre-operational) अवस्था है, बच्चा जगत् के बारे में विचार करने में प्रतीकों का प्रयोग करना प्रारंभ कर देता है। कुत्ता अब वही जानवर कुत्ता रहता है चाहे वह सो रहा हो, भौंक रहा हो, या अपनी दुम हिला रहा हो। इस काल में कल्पना बहुत तेज होती है।

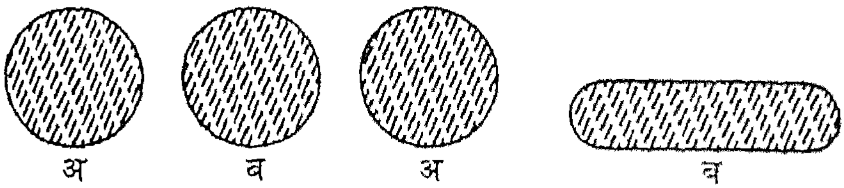
कांक्रीट आपरेशन की अवस्था, जो मोटे तौर से शिक्षा के वर्षों के साथ चलती है, बच्चा पाँच महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को अर्जित करता है। संक्षेप में ये हैः (1) मानसिक निरूपण (Mental Representation), (2) अविनाशिता (Conservation), (3) श्रेणी समावेश (Class Inclusion), (4) अनुक्रमिकता (Seritation) और (5) बहुल वर्गीकरण (Multiple Classification)

1. मानसिक निरूपण (Mental Representation)

कांक्रीट आपरेशन की अवस्था पर बच्चा किसी लक्ष्य तक पहुंचने के कार्य के सारे अनुक्रम (sequence) को निरोपित कर सकता है। उदाहरण के लिए वह वे सारे मोड़ बना सकता है जो स्कूल जाने के रास्ते में पड़ते हैं और उसके मन में स्कूल जाने के रास्ते की पूरी तस्वीर रहती है। बच्चा इस अवस्था पर लक्ष्य तक पहुंचने के वे सारे कदम और लक्ष्य को भी एक संयुक्त संरचना के रूप में निरोपित कर सकता है। इस अवस्था पर वह मन में गणित के प्रश्न कर सकता है और क्रमबद्ध ऐतिहासिक घटनाओं को याद रख सकता है।

2. अविनाशिता (Conservation)

परिभाषा देने के लिए अविनाशिता वह योग्यता है जिससे व्यक्ति यह समझने लगता है कि केवल आकार के परिवर्तन से वस्तुओं का वास्तविक वजन और आयतन नहीं बदलता। उदाहरण के लिए मिट्टी के एक पिण्ड में मिट्टी की मात्रा उतनी ही रहेगी चाहे हम उसे एक गोली के रूप में दें या उसे लम्बी पतली और सांप के समान वस्तु का आकार दें।



चित्र—3. मात्रा की अविनाशिता

पांच वर्षीय बच्चा लम्बे किये हुए 'ब' में अधिक मिट्टी बताएगा। इसी प्रकार यदि दो बीकरों में समान स्तर तक रंगीन पानी भरें और फिर एक बीकर का पानी लम्बे और पतले जार में डाल दें तो पानी की ऊँचाई बढ़ने के कारण बच्चा कहेगा कि जार में अधिक पानी है।



चित्र–4. किस बरतन में अधिक पानी है?
'लम्बे बरतन में'' (पूर्व-अविनाशिता की अवस्था पर छोटा बच्चा कहता है)

इस प्रकार मिट्टी या कैम्पा कोला की मात्रा में अन्तर नहीं आता। मात्रा वही रहती है यानी अविनाशी रहती है, चाहे उसकी शक्ल या बर्तन बदल जाए। यह बात कांक्रीट आपरेशन की अवस्था पर बच्चा समझ पाता है।

कंक्रीट आपरेशन की अवस्था पर बच्चा यह भी समझने लगता है कि एक स्थान पर रखी वस्तुओं की संख्या वही रहती है चाहे उनके रखने का ढंग क्यों न बदल जाए। उदाहरण के लिए, यदि छः गोलियों की दो पंक्तियां हैं, एक ऊपर और दूसरी नीचे और पंक्तियों की लम्बाई बराबर है, तो पांच वर्ष का और सात वर्ष का बच्चा, दोनों स्वीकार करेंगे कि एक पंक्ति में उतनी ही गोलियां है जितनी दूसरी में

अ OOOOOO	अ O O O O O O	अ OOOOOOO
ब OOOOOO	ब OOOOOOOO	ब O O O O O O
चित्र 1	चित्र 2	चित्र 3

चित्र–5. लम्बाई की अविनाशिता

यदि एक पंक्ति में गोलियां पास-पास हैं (चित्र 2 में ब) और (चित्र 3 में अ) और दूसरी पंक्ति में फैली हुई हैं तो पांच वर्षीय बच्चा कहेगा कि जो पंक्ति बड़ी है उसमें अधिक गोली हैं। यह दर्शाता है कि संख्या के बजाए जो दिखाई देता है उससे छोटे बच्चे का विचार अधिक जुड़ा है। जो बच्चा कंक्रीट आपरेशन की अवस्था पर पहुंचा गया है वह आग्रह पूर्वक कहेगा कि दोनों पंक्तियों में बराबर की गोलियां हैं।

विस्तृत अध्ययनों के आधार पर, पियाजे ने देखा कि वस्तु की मात्रा की अविनाशिता पहले व्यक्त होती है और वजन और आयतन की उसके बाद, और आयु के साथ यह संबंध नियमित क्रम से मिलता है। वस्तु की मात्रा की अविनाशिता 7 से 8 वर्ष के आसपास प्रकट होती है जबकि वजन और आयतन की अविनाशिता 9 से 10 और 11 से 12 के बीच क्रमशः प्रकट होती है। सम्पूर्ण अविनाशिता (complete conservation) की अवस्था पर पहुंचने के पहले बच्चा "नामौजूद अविनाशिता" (no conservation) से बढ़ कर एक संक्रमण (transitional) अवस्था से गुजरता है। नामौजूद अविनाशिता की अवस्था पर वह असम्बद्ध तत्वों पर ही ध्यान देता है। संक्रमण अवस्था पर प्रत्यक्ष दिखावट (perceptual appearance) की प्रधानता रहती है। हो सकता है अविनाशिता प्रकट हो या न भी हो। अविनाशिता तब आती है जब बच्चा रूपान्तरण (transformation) यानी ऊपरी परिवर्तन के होने पर भी युक्तिसंगत समझ को कायम रख पाता है।

यह देखा गया है कि कब अविनाशिता प्रकट होगी इस पर पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण बच्चे शहरी बच्चों की अपेक्षा इसमें पिछड़ जाते हैं। इसी प्रकार निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर से आने वाले बच्चे उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के बच्चों से पिछड़ जाते हैं। स्कूल न जाने वाले बच्चों में स्कूल जाने वाले बच्चों की अपेक्षा यह विकास देर से होता है। इससे यह संकेत मिलता है जो अनुभव बच्चे के सामने आते हैं वे उसके संज्ञावात्मक (cognitive) विकास को निर्धारित करते हैं।

3. **श्रेणी समावेश** (Class Inclusion)

श्रेणी समावेश में संपूर्ण और सम्पूर्ण के भाग को लेकर समकालिक (simultaneous) तर्क करना शामिल है। यदि एक पाँच वर्षीय बच्चे को 8 गुलाब और 4 लिली के फूल दिखाए जाएं और पूछा जाए, "क्या गुलाब अधिक हैं या फूल अधिक हैं?", तो यह संभावना अधिक है कि वह कहेगा "अधिक गुलाब हैं" इसके विपरीत सात वर्षीय बच्चा यह समझते हुए कि फूल एक श्रेणी है जिसमें गुलाब भी सम्मिलित हैं, कहेगा कि "फूल अधिक हैं।"

4. **अनुक्रमिकता** (Seriation)

यह बच्चा किसी ऐसे आयाम को लेकर, जिसका मात्रा में मापन किया जा सके, जैसे लम्बाई, वजन, रंग आदि वस्तुओं को क्रमवार रख सकता है।

उदाहरण के लिए कुछ डंडों को लम्बाई के अनुसार क्रमवार रखने के लिए बच्चे में अनुक्रमिकता की संकल्पना विकसित होनी चाहिए। प्रत्येक डंडे पर दोनों तरह से विचार "इनसे छोटा" और "इनसे बड़ा", "श्रृंखला में अभी तक" जाने वाले सभी डंडों को लेकर करना होगा। दो आपेक्षिक स्थितियां (relative positions) पर एक साथ विचार करने की योग्यता नए डण्डे को श्रृंखला में सही स्थान पर रखने के लिए आवश्यक है। क्रमसूचक संख्या (ordinal number) जैसे 4, 5, 6, इत्यादि और कार्डिनल स्थान (cardinal positioning) जैसे सातवां, नवां इक्कीसवां, इत्यादि को समझने के पहले अनुक्रमिकता की सकल्पना का विकास होना आवश्यक है।

5. **बहुल वर्गीकरण** (Multiple Classification)

बहुल वर्गीकरण में दो या अधिक गुणों पर एक साथ विचार किया जाता है। एक वस्तु को दो या दो से अधिक श्रेणियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि लाल बड़ा चौकोर, लाल छोटा चौकोर, नीला बड़ा चौकोर, और नीला छोटा चौकोर है, तो बच्चा कंक्रीट आपरेशन की अवस्था की समाप्ति तक वस्तुओं को क्रम से कम से कम तीन आयामों में वर्गीकृत कर सकता है—आकृति, रंग और आकार। उपरोक्त उदाहरण में वह सारे चौकोर टुकड़ों (आकृति) को एक साथ रख सकता है चाहे उनका आकार कुछ भी हो, लाल और नीले चौकोर टुकड़ों (रंग) को

अलग-अलग कर सकता है चाहे उनका आकार कुछ भी हो, और बड़े और छोटे टुकड़ों (आकार) को अलग कर सकता है चाहे उनका रंग कुछ भी हो।

बहुल वर्गीकरण के विकास में भाषा प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है। यह पाया गया है कि बच्चे को यदि वस्तुओं को वर्णन करने और बोलने को कहा जाए तो इससे उत्तरों की संख्या बढ़ जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि संबद्ध विभिन्न गुणों का नाम लेने से बच्चा मूल नियम पर पहुँच जाता है। इस प्रकार संबद्ध गुण का अंकन समस्या के हल पर पहुँचने में मदद करता है।

ऊपर वर्णित संज्ञानात्मक रचनाएं (cognitive structures) स्कूल शिक्षा का आधार है। पिजाये के अध्ययनों के पहले भी शिक्षाविदों को इस बात का आभास होगा, और शायद यही कारण होगा कि छः या सात वर्ष की आयु तक स्कूल में प्रवेश स्थगित किया जाता है।

फारमल आपरेशन की अवस्था (Formal Operations Stage)

इस अवस्था पर बच्चा तीन नए गुण प्रदर्शित करता है: (1) उसकी समस्या या विश्लेषण विधिवत होता है—वह एक विशिष्ट समस्या का सभी संभावित हलों पर ध्यान देता है, (2) वह तर्कसंगत होता है और (3) वह उच्च स्तरीय संरचनाओं का उपयोग कर सकता है।

विभिन्न संभावित हलों के लिए विधिवत विश्लेषण का उदाहरण निम्नलिखित समस्या के द्वारा, जो बच्चों के सामने रखी जाती है, दिया जा सकता है—

"एक व्यक्ति दो सप्ताह की छुट्टी मना कर घर आया और उसने पाया कि मकान की एक तरफ की खिड़कियों के सारे शीशे टूटे हुए हैं।" क्या हुआ होगा? छोटा बच्चा इसका उत्तर सामान्यतः पहला कारण, जो उसे संतोषजनक लगता है। बताकर देता है। इस प्रकार वह कह सकता है, "कुछ बच्चों ने खिड़की पर पत्थर मारे।" एक किशोर संभवतः कई कारण बताएगा, जैसे डाका पड़ना, तूफान, शैतान बच्चों का पत्थरों से खिलवाड़, गैस सिलैण्डर का फटना। सभी संभावनाओं को परखने की योग्यता और इनका फारमल आपरेशन की अवस्था का महत्वपूर्ण गुण है।

दूसरा, फारमल आपरेशन की अवस्था पर किशोर का चिन्तन तर्क संगत होता है और इसमें वह एक वैज्ञानिक के समान है। किशोर उन विचारों और प्रस्तावों के बारे में सोचने में सक्षम होता है जो अवास्तविक हों। उदाहरण के लिए वह ऐसी समस्या पर विचार कर सकता है, "यदि सभी हरी बकरियां नीला दूध दें, तो क्या सारा नीला दूध हरी बकरियों से ही प्राप्त होगा?" इसके विपरीत कंक्रीट आपरेशन की अवस्था पर बच्चा ऐसी समस्या को जो वास्तविकता से संबंधित नहीं है छूटते ही अस्वीकार कर देगा।

अन्त में, किशोर अपने आपरेशन को जटिल उच्च स्तरीय संरचनाओं में संगठित कर सकता है। यदि पूछा जाए "कौन सी संख्या है जो अपने वर्ग की चौगुनी है"। वह बीजीय समीकरण (algebric equation) निर्मित करता है: $4x = X^2$ और पता लगाता है कि उत्तर है : 4। इसको वह सिद्ध कर सकता है क्योंकि उसने उच्च स्तरीय संरचना यानी भाग और गुणा के अलग-अलग संचालनों (operations) को बीजीय समीकरण के जटिल समीकरणों में सम्मिलित किया है। नौ वर्ष का बच्चा इसी उत्तर पर प्रयास और भूल द्वारा पहुंचेगा।

पियाजे के सिद्धान्तों का शैक्षिक पक्ष

पियाजे की बताई गई अवस्थाएं शिक्षकों और माता-पिता के लिए एक मोटा ढांचा प्रस्तुत करती है, एक प्रकार का मार्गदर्शन जिससे पता लगता है कि अमुक बच्चा चिंतन के किस स्तर पर है। जैसे, जो बच्चा तीन या पाँच या आठ वर्ष का है उससे क्या अपेक्षा करनी चाहिए। शिक्षक अपनी पाठ योजना या क्रियाकलापों की रूपरेखा निर्मित करने में बच्चे के विकास के स्तर को ध्यान में रख सकता है।

पियाजे के सिद्धान्तों का विज्ञान और गणित के शिक्षण में विशेष महत्व है। गणित की शिक्षा में, पियाजे ने कार्य करने पर, और सदैव छात्र की भाषा के स्तर पर रहने पर बल दिया है। छोटे बच्चों के लिए वस्तुओं के साथ क्रिया करना गणित और रेखागणित के संबंधों को समझने के लिए नितान्त आवश्यक है। विज्ञान के लिए पियाजे का सिद्धान्त सुझाव देता है कि बच्चे के लिए विज्ञान की संकल्पनाओं की प्राप्ति क्रमशः होती है, आवश्यक नहीं कि एक व्यक्ति द्वारा सभी संकल्पनाएं एक ही समय पर प्राप्त हों और इनके अर्जन में वैयक्तिक भेद की भूमिका है। प्राथमिक शालाओं में विज्ञान शिक्षण इस प्रकार का होना चाहिए कि इससे समग्र संज्ञानात्मक रचनाओं का निरन्तर विकास हो। इसके अर्थ यह हुए—अनेक कार्यों, वस्तुओं और समस्याओं की व्यवस्था करना जिससे उसकी रुचियों और प्रेरणाओं को उच्चतम बढ़ावा मिल सके। दिन-प्रति-दिन की विज्ञान की संकल्पनाएं जैसे आयतन, भार, घनत्व या वेग बहुत कुछ कंक्रीट आपरेशन की अवस्था में विकसित होती है। इन संकल्पनाओं को अच्छी तरह से समझा जा सकता है यदि प्राथमिकशाला क्रियाशीलता और खोज की ओर अभिमुख हो। इस काल में यदि वस्तुएं और परिस्थितियां मूर्त रूप में प्रस्तुत की जाएं तो सीखना सरल हो जाता है। इसलिए दृश्य सामग्री चार्ट, आरेख (diagram) और अन्य निदर्शी सामग्री पर बल देना ही होगा।

अपने स्कूलों में बहुत कुछ अधिगम, चाहे वह पहाड़े याद करने का हो या अन्य तथ्य और जानकारी, या गणित के प्रश्न हल करने का, सभी रट कर सीखे जाते हैं। स्मरणशक्ति पर अत्यधिक बल देने के कारण, बच्चों में संकल्पनाओं की

अच्छी समझ विकसित नहीं होती। इससे ज्ञान में ऐसे प्रकरण जिनको बच्चा समझ नहीं पाता बढ़ते जाते हैं। यही कारण है कि हमारे ग्रामीण और निम्न वर्ग के बच्चे पिछड़ जाते हैं। आवश्यकता है क्रियोन्मुखी शिक्षा की। बालक के जीवन में (स्थूल क्रियाओं) कंक्रीट आपरेशन की अवस्था उसकी औपचारिक शिक्षा की शुरुआत के समकालिक है। पढ़ना किस अवस्था पर सिखाना चाहिए इसके बारे में दो मत हैं। एक मत है कि यह किंडरगार्टन से प्रारंभ हो जाना चाहिए क्योंकि पढ़ने में अक्षरों और शब्दों में केवल विभेदीकरण की प्रक्रिया लागू होती है। दूसरा मत यह है कि इसे कंक्रीट आपरेशन की अवस्था पर ही शुरू करना चाहिए, क्योंकि इसके लिए सोच विचार करने की योग्यता चाहिए जो प्री-आपरेशन की अवस्था में संभव नहीं है। सोवियत यूनियन और स्कैण्डिनेविया के अनेक अति उन्नत देशों में, औपचारिक रूप से पढ़ना सात वर्ष की अवस्था तक, स्कूल में दाखिला होने से पहले, नहीं सिखाया जाता। यहां के स्कूलों में बहुत कम बच्चे पढ़ने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

संज्ञानात्मक विकास में भाषा के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। विचार की प्रक्रिया और भाषा में निकट का संबंध है। यह देखा गया है कि अशिक्षित परिवारों में जिस प्रकार की भाषा उपयोग में लाई जाती है वह ज्यादातर आदेशों के रूप में होती है जबकि शिक्षित परिवारों में यह व्याख्या का रूप होती है। उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के बच्चे इसलिए वाक्य की लम्बाई, पूछे जाने वाले सवालों की संख्या, और अर्जित शब्द भण्डार जैसी बातों में आगे निकल जाते हैं। भाषा का सीमित उपयोग संज्ञानात्मक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

अन्त में हम शिक्षा में पियाजे के सिद्धान्तों की उपयोगिता का सारांश दे सकते हैं। पहली बात तो यह है कि नए विचार और ज्ञान बच्चे के सोचने-विचारने और भाषा के विकास के अनुरूप होना चाहिए। दूसरे, सीखने का एक मुख्य स्रोत बच्चों की क्रियाशीलता है। एक अच्छा शिक्षक बच्चे के सामने ऐसी परिस्थितियां प्रस्तुत करेगा जिनमें बच्चे को वास्तविक और व्यापक अर्थ में स्वयं प्रयोग करना पड़े। तीसरे, कक्षा की पढ़ाई बच्चों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर और अपेक्षाकृत नई परिस्थितियों में होनी चाहिए। चौथे, बच्चे सामाजिक पारस्परिक क्रिया से सीखते हैं। इसलिए उन्हें अपने अनुभवों में दूसरों को शामिल करना चाहिए, अपनी खोजों पर विचार विनिमय करना चाहिए और मतभेदों के लिए अपने तर्क प्रस्तुत करने चाहिए। पांचवें, बच्चों का अपने सीखने के कार्य पर काफी नियंत्रण होना चाहिए। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे वे आलोचना तथा जाँच करना सीखें न कि हर बात को वैसे ही स्वीकार कर लें जैसे वह प्रस्तुत की जाए। बच्चों में यह तैयारी करनी चाहिए कि वे क्रियाशील बने और उनमें यह प्रवृत्ति पनपे कि अपने आप वस्तुओं के बारे में पता करें।

अध्याय 7

संवेगात्मक विकास

चंचल मेहरा

ललिता खुश रहती है।

शिवानी को छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा आ जाता है।

नासिर सदैव दुःखी दिखाई देता है।

पवन अपने छोटे भाई के प्रति ईर्ष्यालु है।

ये सभी बच्चे विभिन्न संवेगों को प्रदर्शित कर रहे हैं।

अध्याय चार में आपने बच्चों में जन्म से छः वर्ष तक संवेगों के विकास के बारे में पढ़ा। संवेगों की व्यक्ति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। उसका आचरण संवेगों के साथ-साथ उसकी आवश्यकताओं और उसके भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक पर्यावरण द्वारा प्रभावित होता है। संवेग व्यक्ति की सामान्य मनोवृत्ति को निर्धारित करता है। कोई दुःखी, कोई खुश रहता है। इसलिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि शिक्षक संवेगों की प्रवृत्ति, विकास उनका नियंत्रण और बच्चे के जीवन पर उनके प्रभाव के बारे में जाने। जब हम कहते हैं कि "ललिता खुश रहती है", या "नासिर सदैव दुःखी दिखाई देता है" तो इससे हमारा क्या अभिप्राय है? ये बच्चे किस प्रकार की प्रक्रिया करते हैं या अपने को किस प्रकार व्यक्त करते हैं? हम सब कभी खुश और कभी उदास रहते हैं। लेकिन जब हम टिप्पणी करते हैं कि व्यक्ति खुश या उदास रहता है, तब हम उसकी सामान्य मनोवृत्ति की ओर संकेत करते हैं।

संवेगों को प्रभावित करने वाले कारक

जिस प्रकार जन्म के समय बच्चा कुछ शारीरिक गुण जैसे शरीर की बनावट, आंखों का रंग, बाल, कमजोर या स्वस्थ शारीरिक गठन, को वंशानुक्रम से प्राप्त करता है, उसी प्रकार उसमें मानसिक और संवेगात्मक संभावनाएं जैसे प्रिय या अप्रिय मनोवृत्ति, बिना उद्विग्न हुए अत्यधिक मानसिक श्रम कर सकना, चिड़चिड़ापन इत्यादि विद्यमान रहते हैं।

अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक संरचना बच्चे की संवेगात्मक और मनोवैज्ञानिक कारकों

की ओर आंशिक रूप से प्रतिक्रिया निर्धारित करती है। बच्चों की वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं में अन्तर होगा जो वंशानुगत मनोवृत्ति पर, जिसे बच्चे ने प्राप्त किया है, और पर्यावरण, विशेषकर घर के भावात्मक पर्यावरण पर, जहां बच्चा पल रहा है, निर्भर करेगा।

अन्य व्यक्तियों का व्यवहार—माता,पिता, दादा, दादी, भाई, बहन और अन्य वयस्क जो परिवार में रह रहे हैं— बच्चे के भावात्मक विकास पर प्रभाव डाल सकते हैं। यदि परिवार के अधिकांश सदस्य खुश रहते हैं और बच्चे के प्रति स्नेही हैं तो बच्चा भी सकारात्मक संवेग विकसित करेगा, खुश रहेगा और दूसरों के समान स्नेही होगा। इसके विपरीत यदि परिवार के सदस्य आपस में झगड़ा करते रहते हैं, गुस्सा हो जाते हैं, घबराहट और तनाव में रहते हैं, तो इसका प्रभाव बच्चे पर पड़ेगा। दूसरे शब्दों में घर के पर्यावरण का प्रभाव बच्चे के भावात्मक विकास पर पड़ता है।

प्रत्येक परिवार में ऐसे अवसर आते हैं जब व्यक्तियों में तनाव रहता है, वे चिंतित होते हैं, उन्हें क्रोध आता है, किंतु यह अल्पकालिक होता है। कुछ ऐसे परिवार भी होते हैं जहां ऐसी स्थिति आम बनी रहती है और पर्यावरण तनावपूर्ण, चिंताग्रस्त, या बच्चे के प्रति द्वेषपूर्ण होता है। ऐसे परिवारों में जहां वातावरण अनुकूल और प्रीतिकर नहीं हैं, बच्चों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ये बच्चे, उन बच्चों की अपेक्षा जो ऐसे परिवारों से आते हैं जहां आपसी संबंध मैत्रीपूर्ण और अनुकूल हैं, संवेगात्मक विस्फोट की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं।

जब बच्चा स्कूल जाना शुरू करता है तो वह वहां एक नई परिस्थिति का सामना करता है। एक बिल्कुल दूसरे वातावरण में तीन चार घण्टे बिताता है। बच्चों में स्कूल की ओर प्रतिक्रिया में अंतर होता है। एक बच्चा जो घर के स्वस्थ वातावरण से आता है वह स्कूल को भी अपने दैनिक जीवन का भाग आसानी से बना लेता है। एक दूसरा बच्चा एक तनावपूर्ण या अतिरक्षित (overprotective) वातावरण से आता है, एक दूसरे मे प्रतिक्रिया कर सकता है। वह स्कूल के लिए एक प्रतिकूल और अरुचि की भावना लेकर स्कूल जाता है। एक अन्य बच्चा जो अपने आप को घर में सुरक्षित अनुभव नहीं करता, स्कूल को मां के स्नेह से वंचित होना मानता है। बच्चे की असुरक्षा की भावना, घर में स्नेह का अभाव, उसके स्कूल के व्यवहार में प्रतिबिम्बित होता है। विभिन्न परिस्थितियों में बच्चों के व्यवहार में भिन्नता होती है। एक ही परिस्थिति में भी वे भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया कर सकते हैं। शिक्षक को समझना चाहिए कि स्कूल आने पर बच्चे को नए समंजन करने पड़ते हैं। उसे इस बात की खबर होनी चाहिए कि घर के मनोवैज्ञानिक पर्यावरण में बदलाव और जन्म के समय अन्तर्निहित मनोवृत्ति बच्चे के भावात्मक विकास को

प्रभावित करती है। उसकी भावात्मक अभिव्यक्ति और प्रतिक्रियाएं काफी हद तक इससे प्रभावित होती हैं।

शारीरिक और संवेगात्मक कारकों का अन्तर्सम्बन्ध

शारीरिक और भावात्मक कारकों के बीच घनिष्ठ अन्तर्सम्बन्ध है। अस्वस्थ भावात्मक पर्यावरण का बच्चे के शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उसकी सामान्य वृद्धि में बाधा पड़ती है। बच्चे की शारीरिक वृद्धि में असंतुलन या अशान्ति उसकी बौद्धिक क्रियाशीलता और व्यक्तित्व के समायोजन में प्रतिबिम्बित होती है।

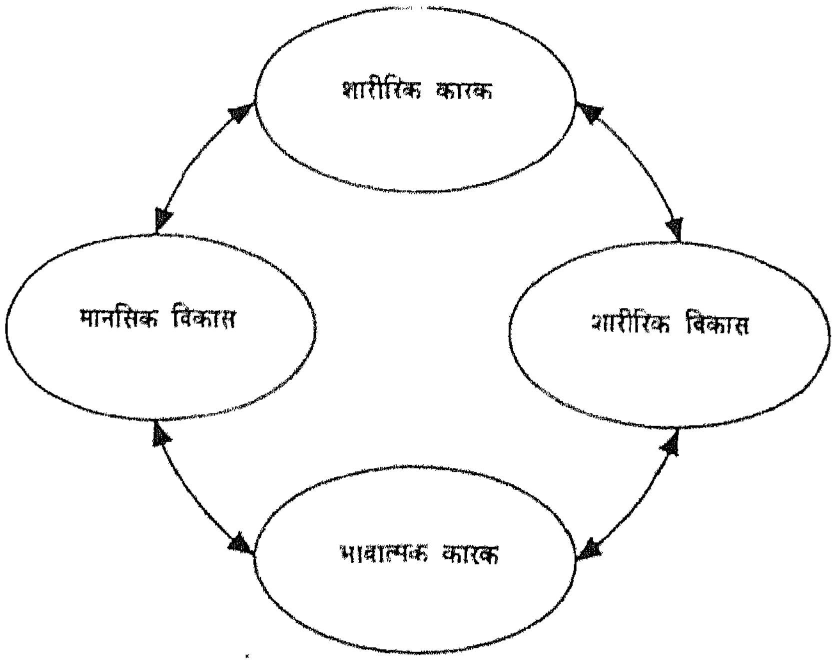
भावात्मक तनाव में बच्चा शारीरिक रूप से अस्वस्थ रहता है और रोग के लक्षण प्रदर्शित करता है। इनमें से कुछ बीमारियां सिर दर्द, पेट दर्द, जी मिचलाना और थकावट हो सकती हैं। ये बीमारियां और भी बढ़ जाती हैं जब बच्चे से कोई ऐसा काम करने को कहा जाता है जो उसे पसन्द नहीं है। हमें ऐसे परिवार देखने को मिलते हैं जहां सब प्रकार की भौतिक साधन सुविधाएं हैं। रुपये-पैसे की दृष्टि से सभी आराम हैं, फिर भी बच्चा उत्तेजित और चिड़चिड़ा रहता है। इसका कारण घर का भावात्मक दृष्टि से अस्वस्थ और अप्रिय वातावरण हो सकता है। यदि बड़ों के बीच अहं में टकराव होता है तो वह अपने आप को अरक्षित महसूस करता है जैसे माँ का आदेश कुछ होता है और पिता उससे किसी अन्य प्रकार के आचरण की अपेक्षा करते हैं। परिवार में बड़ों के बीच सहमति का न होना, अस्वास्थ्यकर और अस्थिर भावात्मक वातावरण का बच्चे के शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक वृद्धि और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बच्चे की वृद्धि और विकास के लिए भौतिक और मनोवैज्ञानिक कारक दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जैसे अच्छी भौतिक सुविधाएं वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक हैं उसी प्रकार स्वस्थ भावात्मक वातावरण भावात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। भौतिक कारक मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं, और मानसिक कारक शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। शारीरिक और भावात्मक कारकों तथा शारीरिक और मानसिक विकास के बीच एक आड़ा संबंध ब्रेकनरिज और विन्सेण्ट [1] ने नीचे दिए ढंग से दर्शाया है :

एक अस्वस्थ बच्चा छोटी-छोटी बातों पर उद्विग्न हो जाता है। कमजोर बच्चा जो कड़ी मेहनत वाला कार्य नहीं कर पाता चिड़चिड़ा हो जाता है और दूसरों से झगड़ा करता है। बच्चा जिसे आवश्यक आराम नहीं मिलता और जो अच्छी तरह से नहीं सोता वह भी जल्द उत्तेजित हो जाता है। ऐसे बच्चों को लगता है कि वे अन्य बच्चों से भिन्न हैं, उन्हें जल्दी थकान आ जाती है और इसलिए कठिन श्रम नहीं कर

---

[1] M.E. Breckenridge and E.L. Vincent, Child development, Philadelphia : Saunders, 1965.

पाते, जबकि अन्य बच्चे, जो उसी आयु वर्ग के हैं, कड़ा श्रम कर लेते हैं और बिना अत्यधिक शारीरिक थकान के कार्य पूरा कर सकते हैं। ऐसे बच्चे अपने आप में आत्म-विश्वास और पर्याप्तता की कमी महसूस करते हैं जिससे ईर्ष्या, चिड़चिड़ाहट और व्यवहार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। बच्चा माता-पिता के प्रति असंतोष का अनुभव करता है और उसे लगता है कि वे उसके स्वास्थ्य की पूरी परवाह नहीं कर रहे हैं। उसके मन में आत्महीनता की भावना जगह कर लेती है। इन सबका उसके भावात्मक विकास और दूसरों के साथ समायोजन करने पर प्रभाव पड़ता है।



चित्र-6. शारीरिक और भावात्मक कारकों के बीच संबंध

निरंतर भावात्मक अशान्ति का बच्चे की वृद्धि और विकास पर प्रभाव पड़ता है और शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक और अन्य समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। बौद्धिक क्रियाशीलता में भी रुकावट पड़ती है। शिवानी का उदाहरण लीजिए। शिवानी को छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा आ जाता है। इसका कारण घर का वातावरण है जहां शिवानी को खेलने की अनुमति नहीं मिलती। उसकी माँ सदैव शिवानी की पढ़ाई के

बारे में परेशान रहती है। वह चाहती है कि शिवानी अधिक समय पढ़ाई में लगाए। शिवानी की खेलने की इच्छा पूरी नहीं होती और जब-जब उसे पढ़ने को कहा जाता है वह अशान्त हो जाती है। परिणामस्वरूप उसके आचरण में गुस्सा और आक्रामकता की झलक दिखाई देती है।

जब व्यक्ति उत्तेजित या अशान्त होता है, उसके अंगों में कुछ आन्तरिक परिवर्तन होते हैं। ये अस्थाई होते हैं और सामान्यतया बच्चे को नुकसान नहीं पहुंचाते। किन्तु भावात्मक अशान्ति बार-बार होने से बच्चे के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ता है।

तनाव के प्रति व्यक्तिगत अन्तर

तनाव के प्रति अनुक्रिया में व्यक्तिगत अन्तर होता है। वैयक्तिक अंतर्सम्बंधों के अलावा संवेग ऐसी किसी बात से उठ सकते हैं जो व्यक्ति की इच्छाओं, प्रेरकों या योजनाओं को आगे बढ़ाती हैं या उसमें रुकावट डालती हैं। एक ही बाह्य उद्दीपक या घटना विभिन्न प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। कुछ लोग किसी भावात्मक घटना के प्रति जो जोरदार प्रतिक्रिया करते हैं, जबकि अन्य, अपनी प्रतिक्रियाओं में अधिक मंद होते हैं और चीजों के प्रति सहजता का दृष्टिकोण अपनाते हैं।

कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो उत्तेजित तो हो जाते हैं किंतु भौतिक रूप से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर पाते। उनकी प्रतिक्रियाएं शारीरिक क्रियाओं में गड़बड़ी का रूप ले लेती हैं। हमें ऐसे बच्चों का और बड़ों का भी सामना होता है जो जब उनसे किसी ऐसे कार्य को करने की अपेक्षा की जाती है जिसे वे पसन्द नहीं करते तब वे बीमार पड़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि शरीर तनाव के प्रति रक्षात्मक ढंग से कार्य करता है। एक बच्चा जो भावात्मक या वैयक्तिक कारणों से स्कूल नहीं जाना चाहता वह हो सकता है कि शारीरिक अस्वस्थता के लक्षण प्रस्तुत करे। इस प्रकार वह स्कूल जाने से बच जाता है।

संतोष और कार्यभार

घर और स्कूल की स्थितियां यदि ऐसी हों जिनमें बच्चे को अपनी क्षमताओं के अन्दर ही कार्य करना पड़े तो किसी प्रकार का तनाव और घबराहट उत्पन्न नहीं होगी। बच्चे को अपने कार्य से संतोष मिलेगा। किन्तु जब परिस्थितियां बच्चे की स्वाभाविक क्षमता के स्तर के बाहर हो जाती हैं तब बच्चे पर अत्यधिक भार पड़ता है। इस भार से सामान्यतः तनाव उत्पन्न होता है और तनाव से वृद्धि और क्रियाशीलता में रुकावट पड़ती है। वयस्कों द्वारा बच्चे से उसकी क्षमताओं और कार्यकुशलता से अधिक अपेक्षा करना एक असंतोष की भावना को जन्म देगा। यह स्थिति और भी बिगड़ जाती है यदि माता-पिता या शिक्षक अपनी चिंता मुखमुद्रा या

शब्दों द्वारा व्यक्त करते हैं। इससे चिंता उत्पन्न होती है। चिन्ता व्यवहार में कई प्रकार से व्यक्त होती है। एक बच्चा बेचैन हो जाता है, भूख और नींद में कमी आ जाती है, जबकि दूसरा अपनी चिंता चिड़चिड़ाहट, भावात्मक विस्फोट और इसी प्रकार के अन्य दुःसाध्य आचरणों में व्यक्त करता है। बच्चे को माता-पिता से स्नेह न मिलने पर जो चिन्ता उत्पन्न होती है वह स्कूल के कार्यों में, सामान्य व्यवहार में, और शारीरिक तंदुरुस्ती में प्रतिबिम्बित होती है।

उत्तर-बाल्यावस्था में संवेग और संवेगों की अभिव्यक्ति

सामान्य पारिवारिक परिस्थितियों में जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है वह सीखता है कि भावात्मक विस्फोट, झुंझलाना या संवेगों की प्रबल अभिव्यक्ति को परिवार के लोग पसन्द नहीं करते। इस प्रकार के विस्फोट को समाज भी स्वीकार नहीं करता। तदनुसार बच्चा अपने संवेगों की बाह्य अभिव्यक्ति को, घर में और घर के बाहर जब वह अन्य लोगों के साथ में होता है नियंत्रित करना सीखता है। यदि बच्चा घर में अत्यधिक झल्लाहट और खीज व्यक्त करता है तो या तो उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता या माता-पिता उसे अपनी आयु के अनुरूप कार्य न करने के लिए दण्डित करते हैं।

उत्तर-बाल्यावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति अधिकतर सुखद होती है। किन्तु कभी-कभी संवेगों का विस्फोट होता है और बच्चा चिन्ता और कुंठा से ग्रस्त हो जाता है। ऐसे में लड़के मुंह लटका लेते हैं जबकि लड़कियां अपने मनोभाव रोकर व्यक्त कर देती हैं।

सामान्य संवेग :

उत्तर-बाल्यकाल के सामान्य संवेग करीब-करीब वही होते हैं जो पूर्व-बाल्यकाल में मिलते हैं। किन्तु दो अन्तर देखने में आते हैं: (1) परिस्थितियां जिनमें संवेग जागृत होते हैं (2) संवेगों की अभिव्यक्ति। ये परिवर्तन सीखने और अनुभव के कारण होते हैं। तीन साल की अवस्था तक मूलभूत भावात्मक आचरण के प्रतिरूप स्थापित हो जाते हैं। इसके बाद अधिकतर जो परिवर्तन होते हैं। वे विशिष्ट पर्यावरण में विशिष्ट परिस्थितियों में अधिगम के कारण होते हैं। स्कूल में प्रवेश लेने की आयु तक संवेग और भावनाएं बहुत कुछ स्थापित हो जाती हैं। उत्तर-बाल्यावस्था के सामान्य संवेग स्नेह, खुशी, क्रोध, भय, चिन्ता और ईर्ष्या हैं।

स्नेह : स्नेह एक भावात्मक अनुक्रिया है जो उस व्यक्ति की ओर निर्दिष्ट होती है जिसके प्रति बच्चे में सकारात्मक और प्रिय भावनाएं हैं। ये उस व्यक्ति के साथ प्रिय अनुभवों का परिणाम है। बच्चा उनके प्रति जो उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, उसके साथ खेलते हैं, उसके प्रति स्नेह प्रदर्शित करते हैं और जो

उसको खुशी और संतोष प्रदान करते हैं, स्नेह विकसित करता है। बच्चे का एक विशेष व्यक्ति के प्रति लगाव इस बात पर निर्भर करता है कि उस व्यक्ति ने बच्चे के साथ कैसा व्यवहार किया। यदि बच्चा किसी व्यक्ति का साथ शामक और आरामदायक पाता है तो वह उस व्यक्ति के प्रति, चाहे वह व्यक्ति परिवार का सदस्य न हो, स्नेह विकसित कर लेता है।

बच्चे का स्नेह इस बात पर निर्भर करेगा कि उसने कितना स्नेह दूसरों से प्राप्त किया है। स्नेह पारस्परिक होता है और यह तब विकसित होता है जब दिया भी और लिया भी जाता है। अत्यधिक लाड़-दुलार और साथ ही साथ अस्वीकरण दोनों का ही बच्चे पर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भिक बाल्यकाल में स्नेह अधिकतर परिवार के सदस्यों की ओर केन्द्रित रहता है। जैसे अनुभवों का विस्तार होता है दूसरे भी इसमें सम्मिलित होते जाते हैं।

हर्ष (Joy) : बच्चे के दूसरों के साथ आनन्ददायक और अनुकूल संबंध, खेल, कार्य और सामाजिक परिस्थितियों में समंजन और संतोष से हर्ष उत्पन्न होता है। हर्ष में बच्चे की प्रवृत्ति मुस्कराने और हंसने की होती है। इसमें शरीर और चेहरा तनावरहित और शिथिल (relaxed) दिखाई देता है। जिन परिस्थितियों में हर्ष उत्पन्न होता है वह व्यक्तियों और विभिन्न आयु वर्गों के बच्चों में अलग-अलग हो सकती है। हर्ष का सामान्यीकरण भी हो जाता है और बाह्य लक्षणों और व्यवहार से इसे पहचाना जा सकता है।

बच्चों का सुख या हर्ष इस बात पर निर्भर करता है कि जिन कार्यों में वह संलग्न है उनसे उसे कितना संतोष और रस मिलता है। हर्ष की अभिव्यक्ति में व्यक्ति-व्यक्ति में अधिक अन्तर नहीं होता।

क्रोध (Anger) : बच्चे को क्रोध तब आता है जब उसे उस काम को करने से रोक दिया जाता है जिसे वह करना चाहता है, उसकी आलोचना होती है, उसके प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं होता, या वह दण्डित किया जाता है। बच्चा आत्मनिर्भर होना और अपने ढंग से कार्य करना चाहता है। माता-पिता द्वारा, या परिवार के अन्य सदस्य या शिक्षक और मित्रों द्वारा किसी काम के करने से रोके जाने पर उसे कुंठा होती है। कुंठा से कभी-कभी आक्रामकता उत्पन्न होती है जो अधिकतर बाह्य व्यवहार में व्यक्त होती है। गुस्सा तोड़फोड़ का रूप ले लेता है। किन्तु ऐसा सदैव नहीं होता। बच्चे अपने क्रोध को विभिन्न प्रकार से व्यक्त करते हैं। एक बच्चा क्रोधित होने पर जो चीजें उसके रास्ते में आती हैं उन्हें तोड़ता है या जो व्यक्ति रुकावट डालते हैं उनके प्रति हिंसक हो जाता है। एक दूसरा बच्चा समान परिस्थिति में बिना कुछ बोले अपना गुस्सा मुखमुद्रा और तेवर चढ़ा कर व्यक्त करता है। एक

अन्य बच्चा अपने क्रोध को शब्दों द्वारा व्यक्त करता है, जैसे, "मुझे परेशान मत करो" या "जैसा मैं चाहता हूं मुझे करने दो" या "मैं आपसे बात नहीं कर रहा हूँ।"

बच्चा कभी-कभी अपनी कमी या अयोग्यता के कारण गुस्सा होता है। इसको हम कहेंगे निराशाजनक या लाचारी का गुस्सा। यहां बच्चा कुछ करना चाहता है किन्तु कर नहीं पाता। यह एक भ्रान्ति की अवस्था है और इसमें अकसर निर्णय स्थगित कर दिया जाता है। एक बच्चा इसको चुनौती मानकर समस्या का जितना जल्दी हो सके हल ढूंढता है। दूसरे बच्चों में क्रोध ध्वंसात्मक आचरण का रूप ले लेता है और वह अपना गुस्सा लेखन सामग्री और पुस्तकों पर निकालता है।

एक समझदार शिक्षक बच्चों को अपने गुस्से की चुनौती स्वीकार करने में और स्वस्थ प्रतियोगिता में परिवर्तित करने में मदद कर सकता है।

डर और चिन्ता : बच्चा जब भी स्थितियों का सामना करने में या समस्याओं से निपटने में अशक्त अनुभव करता है, उसके मन में [illegible] की भावना पैदा होती है। इस प्रकार की असुरक्षा और अनिश्चितता की [illegible] आती है जो चिन्ता को जन्म देती है। जब भी बच्चा अपने को असुरक्षित पाता है उसमें भय और चिन्ता का संचार होता है। भय में [illegible] कारण दिखाई देता है जबकि चिन्ता में कारण अनिश्चित होता है।

भय : बहुत से ऐसे कारण हो सकते हैं जो भय [illegible] चिन्ता को उत्पन्न करते हैं। छोटे बच्चों में उनको गोद से [illegible] देना (loss of support), एकाएक तेज आवाज, और अंधेरे से भय उत्पन्न होता है। जैसे बच्चे बड़े होते हैं एकाएक होने वाला या तीव्र अनुभव, या अपरिचित वस्तु या व्यक्ति से भय उत्पन्न होता है। एक बच्चे के लिए जो बेगाना और अपरिचित हो वह हो सकता है कि दूसरे के लिए नहीं हो। यह आयु, पर्यावरण और परिवार पर निर्भर करेगा। जैसे, हम देखते हैं कि बच्चे अकसर कुत्तों से डरते हैं, किन्तु जिस बच्चे के घर में पालतू कुत्ता है वह उसका अभ्यस्त हो जाता है और उससे खेलता है, डरता नहीं।

डर सीखे जाते हैं। अनुबन्धन का डर अर्जित करने में विशेष कार्य होता है। कुछ डर आयु के साथ निअनुबंधित (deconditioned) हो जाते हैं, जब कि अन्य कायम रहते हैं। कुछ अभिघातज (traumatic) अनुभवों का स्थाई प्रभाव बना रहता है। अपने पिताजी के साथ स्कूटर पर पीछे बैठे हुए एक बच्चा दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है। यद्यपि उसे चोट तो नहीं आई किन्तु स्कूटर पर पीछे बैठने से उसे डर लगने लगता है। हो सकता है वह डर जीवन पर्यन्त कायम रहे।

इसी प्रकार अनेक डर उत्पन्न करने वाली परिस्थितियां बच्चे के पर्यावरण, अनुभव या कल्पना से उठ सकती हैं। अत्यधिक भय सामान्य विकास के लिए

हानिकारक है। गर्म बिजली के स्टोव को छूने से या गाड़ियों के गुजरते समय सड़क को पार करने से डरना उचित माना जाएगा। किन्तु बिजली के सामान के प्रयोग से ही भय, या यातायात संकेत मिलने पर सड़क पार न कर सकना असामान्य (abnormal) माना जाएगा। बच्चों को इस प्रकार के डर को दूर करने में मदद के लिये प्रयत्न करना आवश्यक है। जिन बच्चों के स्कूल के अनुभव सुखद नहीं होते उनका स्कूल के प्रति डर प्रदर्शित करना आम देखा जाता है। वे स्कूल जाने से बचने के लिए बीमारी का या अन्य कोई बहाना करते हैं।

डर के लक्षणों और कारण को समझने की कोशिश करनी चाहिए। शिक्षक को स्कूल में एक सुरक्षित और सुखदायी पर्यावरण का सर्जन करके बच्चों की समायोजन में मदद करनी चाहिए।

चिन्ता (Anxiety): चिन्ता का डर से निकट का संबंध है। इसमें व्यक्ति में एक ऐसी निरन्तर भावना बनी रहती है जिसमें बिना विशिष्ट कारण जाने वह अपने को असुरक्षित पाता है। डर में बहुत कुछ एक जाना हुआ और निश्चित कारण होता है जिससे डर पैदा होता है, जबकि चिन्ता में बिना यह जाने कि कारण क्या है व्यक्ति को बेचैनी होती है। चिन्ता में व्यक्ति की अनुक्रिया भी अनिश्चित होती है। चिन्ता के कारण बच्चा हकलाना, पसीना आना, विस्मृति और अन्य लक्षण व्यक्त करता है। उसको दु:स्वप्न (nightmare) आते हैं। जब काम में गलती हो जाती है और व्यक्ति को लगता है कि उस पर डांट पड़ेगी तो चिन्ता का होना स्वाभाविक है। यदि किसी प्रकार के खतरे की संभावना हो तब भी व्यक्ति चिन्तित हो जाता है। चिन्ता तब होती है जब बच्चा अपने आप को ऐसी कठिन परिस्थिति में पाता है जहां उसके समझ में नहीं आता कि वह क्या करे। शिक्षक निर्देशन द्वारा बच्चे की चिन्ता को कम करने में मदद कर सकता है।

प्रत्येक बच्चे से अपेक्षा की जाती है कि स्कूल जाने के पहले वह गृहकार्य पूरा कर लेगा। जिस बच्चे को ऐसा करने की आदत है, किन्तु एक-दो दिन नहीं कर पाया, वह चिन्तित हो सकता है। यह सामान्य चिन्ता है। शिक्षक को सामान्य और असामान्य चिन्ता में अन्तर कर सकना चाहिए। उसे यह देखना चाहिए कि कक्षा का वातावरण तनावरहित और सुखकर हो जिससे बच्चे अपने को निश्चिन्त अनुभव कर सकें। बच्चे से यदि कभी कोई भूल हो जाती है तो शिक्षक को अनावश्यक रूप से उसे दण्डित या उसके प्रति कड़ाई का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

ईर्ष्या (Jealousy) : हम अकसर इस प्रकार के कथन सुनते हैं, "माँ बेबी को ज्यादा प्यार करती है, वह उसको खिलौने देती है।" "जब भी कभी दीपू और मेरे बीच बहस या झगड़ा होता है, माँ हमेशा मुझे डांटती और पीटती है।" ये कथन

बच्चे की अपने भाई बहन (बेबी और दीपू) के प्रति ईर्ष्या की मन्द अभिव्यक्ति है। कक्षा का छात्र कह सकता है, "जब भी मैं कुछ बोलता हूँ शिक्षिका मुझे डांट देती हैं और सुनीता को कभी मना नहीं करती।" ऐसे कुछ कथन सही भी हो सकते हैं या ईर्ष्या के कारण उत्पन्न हो सकते हैं।

बच्चा जिस स्नेह और देखभाल के लिए अपने को पात्र मानता है, वह जब किसी अन्य को मिलती है तो उसके मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है, जिसका आभास हमें जरा-जरा सी बात में बुरा लगना, गुस्सा होना और आशंकित रहना, इत्यादि में मिलता है। यह व्यक्ति जिसके कारण ईर्ष्या होती है भाई या बहन, परिवार में छोटा बच्चा, कक्षा में सहपाठी और बड़ों में कोई सहयोगी हो सकता है। परिवार में भाई-बहन के प्रति और स्कूल में सहपाठियों के प्रति यह अधिक खुलकर व्यक्त होती है। ईर्ष्या एक जटिल संवेग है और क्रोध, कुढ़न, आत्मदया (self-pity), अस्वीकरण (rejection) भय और चिन्ता का मिश्रण है। घर में ईर्ष्यालु बच्चा माता-पिता का पूरा स्नेह चाहता है। यदि माता-पिता छोटे बच्चे की ओर अधिक ध्यान देते हैं और स्नेह व्यक्त करते हैं तो बड़ा अपने आप को अस्वीकृत अनुभव करता है।

प्रथम जन्में बच्चे में ईर्ष्या के अधिक तीव्र होने की संभावना है क्योंकि वह कनिष्ठ भाई या बहन के जन्म के पहले माता-पिता और दादा-दादी के ध्यान और स्नेह का एकमात्र केन्द्र था। कनिष्ठ भाई-बहन के प्रति ईर्ष्या की अभिव्यक्ति आक्रामक व्यवहार में होती है जैसे खिलौने या दूध की बोतल को तोड़ना या छीनना, जब वह सो रहा हो तब शोर मचाना, छोटी बातों पर झगड़ना, उसकी चीजें छीनना इत्यादि। ईर्ष्यालु बच्चा कभी-कभी अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिये नन्हें शिशुओं जैसा व्यवहार भी करने लगता है।

यदि छोटी आयु से ईर्ष्या के प्रति समझदारी के साथ नहीं निपटा गया तो आगे चल कर यह स्कूल में खेल के या सामाजिक दलों में जिनका बच्चा सदस्य होता है, व्यक्त होती है। बड़े होने पर भी ईर्ष्या कायम रह सकती है और यह परिवार के सदस्यों या प्रतिदिन के सहयोगियों के प्रति व्यक्त हो सकती है। ऐसा व्यक्ति जब देखता है कि किसी अन्य व्यक्ति को सम्मान मिल रहा है या उसकी बड़ाई सुनता है तो उसे बुरा लगता है और कभी-कभी गुस्सा भी आता है।

शिक्षक को कक्षा में इस दृष्टि से छात्रों के प्रति अपने आचरण और बोलने में काफी सतर्क और वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। उसे बच्चों के प्रति निष्पक्ष और बिना किसी पूर्वाग्रह के व्यवहार करना चाहिए। उसे अन्य छात्रों की उपेक्षा करके किसी विशिष्ट बच्चे की तरफदारी नहीं करनी चाहिए। उसे बच्चे की प्रशंसा तभी करनी चाहिए जब वह उसे अर्जित करे। गलत उत्तर देने पर बच्चे को झिड़कना और

डांटना नहीं चाहिए। बच्चे की एक दूसरे से तुलना नहीं करनी चाहिए। किन्तु साथ ही साथ स्वस्थ प्रतियोगिताओं को प्रोत्साहित करना चाहिए।

शिक्षक को याद रखना चाहिए कि कुछ बच्चों के ईर्ष्यालु होने की प्रवृत्ति होती है। शिक्षक द्वारा अन्य बच्चों की ओर जरा ध्यान देने पर या अन्य बच्चों का कार्य अच्छा होने पर इनमें ईर्ष्या उत्पन्न होती है। ऐसे बच्चों को इस प्रकार निर्देशन करना चाहिए कि उनके समझ में आ जाए कि वे सदैव ध्यान के केन्द्र नहीं बने रह सकते और वे इस वास्तविकता को स्वीकार करने लगें।

संवेगों पर नियंत्रण सीखना

छोटे बच्चे के संवेगों की अभिव्यक्ति निःसंकोच होती है चाहे वह खुशी और आनन्द की हो या क्रोध, परेशानी, ईर्ष्या, इत्यादि की हो। इसका कारण यह है कि बच्चे के लिए प्रत्येक बात आत्मकेन्द्रित होती है। उसकी आवश्यकताएं और इच्छाएं ही सब कुछ हैं और इसलिए वह उन्हें बिना नियंत्रण के व्यक्त करता है। यदि वह अपनी चीजें बांटना नहीं चाहता या वह किसी व्यक्ति को पसंद नहीं करता तो वह अपनी भावनाएं व्यक्त कर देता है और उन्हें न व्यक्त करने का उसे कोई कारण समझ में नहीं आता। जैसे वह बड़ा होता है उसे पता-चलता है कि परिवार में इस प्रकार के व्यवहार को यदि बरदाश्त कर भी लिया जाए फिर भी पसंद नहीं किया जाता। समाज में, विशेषकर घर के बाहर यानी स्कूल में और अन्य बच्चों और वयस्कों के साथ में इसे न तो पसन्द किया जाता है न बरदाश्त किया जाता है। वह समझने लगता है कि इससे उसके बारे में अन्य लोग बुरी राय कायम करते हैं।

प्रारम्भ से लेकर उत्तर-बाल्यकाल तक दूसरों की राय बच्चों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। बच्चा दूसरों के सामने रोका जाना या डांटा जाना पसंद नहीं करता। ऐसी परिस्थितियों में वह अपनी भावनाओं को तब तक रोकने की कोशिश करता है जब तक उसे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिल जाता जिससे अपने अपमान की बात कह सके। ऐसे व्यक्तियों में मित्र, छोटा भाई या बहन, माँ, नौकर या कभी खिलौना भी हो सकता है जिनसे शिकायत की जाए। शिक्षक को, जिसने दण्डित किया है बच्चा जवाब नहीं दे सकता। उस समय वह जो काम हाथ में है उसे समाप्त करने की कोशिश करता है और मुंह बन्द करके अपने आंसू रोके रखता है। उसे लगता है कि उसे बड़ों जैसा व्यवहार करना चाहिए और रोने से वह छोटा बच्चा ही समझा जाएगा।

केवल क्रोध, ईर्ष्या या डर को ही बच्चा नियंत्रित करना नहीं सीखता बल्कि अन्य संवेगों की अभिव्यक्ति को भी जैसे खुशी, हंसी, आनन्द, इत्यादि। बच्चे से यह उम्मीद नहीं की जाती कि यदि दूसरे किसी परेशानी में हों तो वह हंसेगा या उनका

मजाक उड़ाएगा। इसे अशिष्ट व्यवहार माना जाता है। समाज की मान्यताओं का उस पर प्रभाव पड़ने लगता है और वह अपने संवेग और भावनाओं को समाज के मापदण्डों के अनुकूल ढालने लगता है।

बच्चा अपने संवेगों पर नियंत्रण कुछ हद तक माता-पिता से और कुछ शिक्षकों और खेल के साथियों से सीखता है। कभी-कभी नियंत्रण के कारण तीव्र संवेग अन्दर दब जाते हैं। क्योंकि यह नियंत्रण सदैव कायम नहीं रहता, कभी-कभी गलत समय और स्थान पर, छोटी सी बात पर ही अत्यधिक तीव्र प्रतिक्रिया विस्फोट के रूप में होती है। ऐसे विस्फोट की अपेक्षा की जा सकती है और उन्हें दबे हुए रोष और असंतोष के संदर्भ में समझना चाहिए।

शिक्षक का कार्य

शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका है। उसे बच्चों के जीवन में संवेगों और संवेगों की अभिव्यक्ति के महत्व को समझना चाहिए। उसे इस बात को समझना चाहिए कि बच्चा अभी अपने संवेगों को नियंत्रित करना सीख रहा है।

शिक्षक को जानना चाहिए कि संवेग महत्वपूर्ण प्रेरक हैं और संवेगों की शक्ति को, बच्चे के हित में, उपयोगी कार्यक्षेत्र में मोड़ा जा सकता है। दूसरे शब्दों में उपयुक्त निर्देशन और सलाह देकर भावात्मक अभिव्यक्ति को सही मार्ग पर लाया जा सकता है।

दबी हुई संवेगात्मक शक्ति को बाहर लाने के लिए शिक्षक को ऐसे कार्यक्रम जैसे खेल, क्रीड़ा, आदि आयोजित करने चाहिए जिनमें छात्र का मन लग सके और जिनके माध्यम से वह इन दबे हुए संवेगों से छुटकारा पा सके। यह शारीरिक श्रम वाले खेलों द्वारा, रुचिकर कहानियों द्वारा, नाटक में भाग लेकर, उन बातों पर जिनसे वह परेशान है—चर्चा करके, या जिस कार्य में बच्चे की रुचि है उसकी व्यवस्था करके किया जा सकता है। परिवार में या समूह में संवेगों का प्रसार बिना प्रयास के हो जाता है। एक शिक्षक जो प्रसन्नचित्त होने के साथ संवेदनशील है और बच्चों की भावनाओं को समझने वाला है, उसका छात्रों पर स्वस्थ और सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। उसकी कक्षा का वातावरण सदैव सुखद रहता है जबकि एक दूसरा शिक्षक जो गुस्सा हो जाता है और बच्चों को डांटता है, एक तनावपूर्ण वातावरण को पैदा करता है। बच्चे उसकी कक्षा में खुश नहीं रहते। उनमें झुंझलाहट और चिड़चिड़ापन आ जाता है।

शिक्षक को, इसलिए, बच्चों के साथ व्यवहार करने में काफी सावधान रहना चाहिए जिससे वे अवांछनीय भावात्मक विस्फोट न सीखें। शिक्षक का व्यवहार परिपक्व और प्रतिष्ठित होना चाहिए। उसे ऐसे बच्चों को पहचान सकना चाहिए जो

चिन्तित, परेशान या ईर्ष्यालु हैं। इन बच्चों के लिए उसे उपयुक्त क्रियाकलाप आयोजित करने चाहिए जिससे उनकी शक्ति उपयोगी और वांछनीय कार्यों में लगाई जा सके। कुछ सीमा तक चिन्ता, परेशानी और ईर्ष्या मानव मे स्वाभाविक है। शिक्षक पढ़ाई, खेल, सहगामी कार्यों में प्रतियोगिताएं आयोजित करके, जिसमें सभी बच्चों को अपनी शक्ति, विशेषकर दबी हुई संवेगात्मक शक्ति का उपयोग हितकर ढंग से करने के अवसर प्रदान कर सकता है।

शिक्षक को यह जानना चाहिए कि साथियों का प्रभाव आयु के साथ-साथ बढ़ता है। इसलिए किसी बच्चे को अन्य बच्चों के सामने गलत आचरणों के लिए नहीं डांटना चाहिए। बच्चा शिक्षिका को माँ के स्थान पर रखता है और इसलिए जो विश्वास उसे शिक्षिका में है उसे क्षति नहीं पहुंचानी चाहिए।

अध्याय 8

रुचियों का विकास

चंचल मेहरा

रुचि क्या है?

जब भी क्रिकेट का मैच टेलीविजन पर दिखाया जाता है, विद्युत अपनी कुर्सी से चिपका रहता है और मैच देखने में किसी को विघ्न डालने की अनुमति नहीं देता।

कमल को मोटर गाड़ियों में बड़ी रुचि है। चार साल की अवस्था से ही उसने मोटर गाड़ी के विभिन्न पुर्जों के नाम और कार्य के बारे में कुछ-कुछ जानकारी प्राप्त कर ली है।

मनिका को स्कूल के कार्य में कोई दिलचस्पी नहीं है। वह परियों की कहानियां पढ़ना पसन्द करती है।

इन्दू किसी काम को लगकर नहीं करती। उसकी रुचियां बदलती रहती हैं। एक दिन वह मोटरों की तस्वीरें इकट्ठी करती है तो दूसरे दिन जो खिलौने उसके पास हैं उन्हें एकत्रित करके खेलती हैं, और फिर एक दिन चौके में खाना बनाने के काम में हाथ बंटाना चाहती है। वह नए-नए कार्य किया करती है।

ग्रामवासी अजीज को बगीचे में सब्जी उगाने और उसकी देखभाल करने में रुचि है। वह सब्जी के बीज, उनको कैसे बोया जाता है, खाद आदि के बारे में अनेक प्रश्न पूछा करता है।

दैनिक जीवन में हम बच्चों के सम्पर्क में आते हैं और देखते हैं कि उनकी अपनी पसन्द और नापसन्द होती है। कुछ बच्चे किसी कार्य में रुचि लेते हैं जबकि कुछ को कोई अन्य शौक होता है। न केवल बच्चों को विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में रुचि होती है, बल्कि एक ही बच्चा अलग-अलग समय पर अलग-अलग क्रियाकलापों में रुचि प्रदर्शित करता है। बढ़ते हुए बच्चे के जीवन पर रुचियों का सशक्त प्रभाव पड़ता है। इसलिए शिक्षकों और माता-पिता के लिए यह उपयोगी होगा कि वे समझें

कि रुचि क्या है, कैसे विकसित होती है, कैसे इसका वर्णन किया जा सकता है और यह भी कि बच्चों की रुचियों का क्या स्वरूप होता है। यह ज्ञान बच्चों को समझने और उनके निर्देशन में सहायक होगा।

शब्द "रुचि" यह बताता है कि व्यक्ति स्वतः किसी एक कार्य के बजाय दूसरे कार्य को क्यों करता है। जब कोई कार्य बच्चे को संतोषप्रद लगे, उसे करने में उसे मज़ा आए, वह उसके बारे में बात करे, सोचे और उसमें अपनी ओर से और अच्छा कार्य करने का प्रयास करे, यह रुचि का सूचक है। दूसरे शब्दों में जब स्वतंत्ररूप से बच्चा किसी क्रियाकलाप का चुनाव करके उसका अनुसरण करता है तो इसे रुचि कह सकते हैं। कोई भी कार्य जो असंतोषजनक हो या थकाने वाला हो, बच्चे द्वारा नापसन्द किया जाता है और उसकी उसमें रुचि नहीं होती। ऐसे कार्य को रुचि न होने से वह छोड़ देता है।

रुचि और अनुभव

जब तक बच्चा किसी क्रियाकलाप के संपर्क में न आए, यह कहना कठिन है कि वह उसमें रुचि रखता है या नहीं। रुचियां अनुभव से सीखी जाती हैं, [illegible] चाभी वाले खिलौने, क्रिकेट मैच, मोटर गाड़ी, स्कूल के विषय, बागवानी, इत्यादि [illegible] भी हो। एक बच्चा ऐसी चीज में दिलचस्पी नहीं ले सकता जिसे उसने कभी देखा न हो। साथ ही साथ यह बात भी नहीं है कि जिन जिन चीजों के सम्पर्क में बच्चा आए उन सभी में वह रुचि लेने लगे। अपने परिवेश के [illegible] चीजों में बच्चे रुचि लेते हैं।

नई रुचियां अर्जित करने में सफलता के अनुभव का काफी महत्वपूर्ण योगदान है। एक बच्चा जो गणित में सदैव "ए" श्रेणी प्राप्त करता है, विषय में अधिक रुचि लेने लगेगा, जबकि दूसरा बच्च जो गणित में अच्छा कार्य नहीं कर पाता, गणित को घाटे का सौदा मान कर छोड़ देने की ओर प्रवृत्त होगा। रुचियां कई कारकों पर निर्भर करती हैं।

रुचियों का विकास

एक छोटे बच्चे की रुचियां सीमित होती हैं और इस बात पर निर्भर करती हैं कि चीजों को वह कहाँ तक समझ पाता है। उसकी रुचियां उसकी आवश्यकताओं के साथ-साथ, उसके शारीरिक मानसिक और भावात्मक विकास पर निर्भर करती हैं। जैसे वह बड़ा होता है उसकी रुचियां विस्तृत होती जाती हैं और इसमें कई कारकों का प्रभाव पड़ता है। ये कारक, साथियों की रुचियां, स्कूल, घर, माता-पिता की रूझान, प्रोत्साहन, स्पर्धा, अनुभव, सामाजिक दबाव, और साधन सुविधाएं जो बच्चे को अपनी रुचियों को विकसित करने के लिए उपलब्ध हैं, हो सकते हैं। साधन सुविधाएं और

अवसरों का प्राप्त होना रुचियों के विकास में आवश्यक कारक हैं। इनके अभाव में रुचियां प्रसुप्त रहती हैं। रुचियों के बारे में निम्नलिखित बातें देखी और कही गई हैं।

1. छोटे बच्चे की रुचियां उसके शारीरिक, मानसिक, और भावात्मक परिपक्वता के साथ सामाजिक पर्यावरण से संबंधित रहती हैं। छोटा बच्चा (3-5 वर्ष की आयु का) आत्मकेन्द्रित होता है। अतः उसकी पहली रुचियां, अपनी और अपनी आवश्यकताओं की ओर केन्द्रित रहती हैं। जैसे वह बड़ा होता है और उसकी समझ विकसित होती है, वह अपने आस-पास के व्यक्तियों में रुचि लेने लगता है।

2. छोटे बच्चे की रुचियों में बहुत कुछ समानता होती है। रुचियों में जिस प्रकार परिवर्तन होते हैं उसमें भी समानता होती है। छोटे बच्चे ख्याली दुनिया में रहते हैं। वृद्धि के साथ-साथ उनकी रुचियों में परिवर्तन आता है। बच्चों का अकेले खेलना सामान्य बात है। करीब-करीब सभी बच्चे आरेखण, वर्तिका (crayon) का प्रयोग यदि वर्तिका उपलब्ध हो और मिट्टी से खेलना पसन्द करते हैं। इसके यह अर्थ नहीं हुए कि सभी बच्चों में कलात्मक रुचियां होती हैं। बच्चे की रुचियां उन वस्तुओं से विकसित होती हैं जो उसे उपलब्ध होती हैं जैसे पेन्सिल, वर्तिका, मिट्टी, चाभी के खिलौने और इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं। इस प्रकार रुचियों का चुनाव उसके पर्यावरण के अनुभव और सीखने के अवसर पर भी निर्भर करेगा।

3. बच्चों की रुचियों पर माता-पिता और निकट से संपर्क में आने वाले अन्य वयस्कों की रूझान का प्रभाव पड़ता है। एक बच्चा सामान्यतया उन लक्ष्यों का अनुसरण करने का प्रयास करता है जो उसके परिवार, शिक्षक और समुदाय द्वारा स्वीकृत किये गए हैं। एक मैकेनिक (mechanic) का लड़का अपने पिता के कार्य में रुचि लेगा यदि पिता को अपना कार्य पसन्द है और वे उसके बारे में बात करते हैं। बच्चे को अपने पिताजी को काम करते देखने के अवसर मिलते हैं और उसका आंखों देखा ज्ञान बढ़ता है। एक शिक्षक का बच्चा, हो सकता है हाथ के कार्य में रुचि नहीं ले, किन्तु किताबों को, जो काफी संख्या में घर में उपलब्ध हैं, उलटने पलटने में और पढ़ने में उसकी रुचि हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्र से आने वाला बच्चा कृषि में रुचि विकसित कर सकता है क्योंकि वह पिता को कृषि के काम में लगा हुआ देखता है। वह सब्जियां उगाने में और वृक्ष लगाने में दिलचस्पी लेने लगता है। वह इस बात का ख्याल करता है कि जो पौधे उसने लगाए हैं वे पानी या खाद न मिलने के कारण मर न जाएं। जब अच्छी पैदावार होती है तो वह गद्‌गद् हो जाता है। शिक्षा द्वारा कृषि में उसकी अभिरुचि और प्रबल की जा सकती है और वह शास्त्रीय पक्षों में जांच पड़ताल करने में रुचि लेने लगता है जैसे बीजों की किस्में, मिट्टी और खाद जिससे वह अधिक अच्छी सब्जी और फल उगा सके। अशिक्षित

या अर्धशिक्षित परिवार का बच्चा, यद्यपि पढ़ने में उसकी रुचि है, फिर भी माता-पिता से प्रोत्साहन न मिलने के कारण हो सकता है कि इस रुचि को विकसित न कर पाए। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे रुचि समाप्त हो जाती है।

4. जैसे बच्चा बड़ा होता है वह सामूहिक खेलों में रुचि लेने लगता है और घर के बाहर खेल में शामिल होता है। इससे उसको विविध अनुभव प्राप्त होते हैं और उसे अपनी रुचियों को विस्तृत करने के अवसर मिलते हैं। इस अवस्था पर बहुत ही बचपन की रुचियां त्याग दी जाती हैं और उनका स्थान नई रुचियां ले लेती हैं। बच्चे के अपने खेल के साथी होते हैं और अपनी रुचियां होती हैं। जब बच्चा अपने साथियों के साथ तादात्म्य स्थापित करता है तब वह सहजता से उनकी रुचियां अपना लेता है। किशोरावस्था में अपने साथियों के प्रति वफादारी प्रमुख हो जाती है जो किशोर के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। वह समूह की रुचियों को अमान्य नहीं करना चाहता। यदि समूह की रुचि बाहरी खेलों में है जैसे क्रिकेट में, तो बच्चा भी उसमें रुचि लेगा और क्रिकेट सीखने की पूरी कोशिश करेगा।

5. भावात्मक कारक रुचियों के विकास पर काफी प्रभाव डालते हैं। मोनिका को स्कूल के कार्य में रुचि नहीं है, किन्तु जब भी वह पढ़ाई में अच्छा काम करती है, उसके माता-पिता सदैव मोनिका की प्रशंसा करते हैं। इस तारीफ के कारण मोनिका को प्रोत्साहन मिलता है और वह पढ़ाई में रुचि विकसित करने की कोशिश करती है। भावात्मक कारक और किसी क्रियाकलाप में सफलता बच्चे की रुचि विकसित करने में महत्वपूर्ण योग देते हैं। मोनिका बहुत खुश होती है जब शिक्षिका, जिसे वह पसन्द करती है शिक्षा में उसकी प्रगति की तारीफ करती है। उसके सुखद अनुभव में यह प्रशंसा जुड़ जाती है और शिक्षा में उसकी रुचि को और भी दृढ़ करती है। इसके विपरीत एक बच्चे की रुचि अंततीगत्वा उस क्रियाकलाप में समाप्त हो जाएगी यदि उसके काम की कद्र और प्रशंसा नहीं की जाती या पुरस्कार नहीं दिया जाता।

6. रुचि और योग्यता में गहरा संबंध है। जिस बच्चे में कोई विशेष प्रतिभा या योग्यता किसी कार्य को करने के लिए है, जैसे किसी बच्चे में लय और संगीत के लिए विशेष प्रतिभा है तो उसकी संगीत में रुचि भी विकसित होती है। एक दूसरा बच्चा, जिसमें अच्छी यांत्रिकी योग्यता है, मशीनों में अधिक रुचि ले सकता है। रुचि के विकास में योग्यता महत्वपूर्ण कारक है। इसका कारण यह हो सकता है कि यदि योग्यता है तो व्यक्ति उस कार्य को अधिक अच्छी तरह कर पाएगा जिससे उसे संतोष होगा और कार्य रुचिकर लगेगा।

7. किसी कार्य में योग्यता और सफलता बच्चे की स्थाई रुचि उस कार्य में

विकसित करते हैं। कमल को मोटर गाड़ियों में बहुत रुचि है। उसके पिता उसे उनके बारे में बताते हैं। वे कमल की रुचि को प्रोत्साहित करते हैं और बताते हैं कि मोटर का इंजन किस प्रकार कार्य करता है। परिणामस्वरूप मोटर के बारे में कमल को सभी प्रकार की जानकारी हो जाती है और मोटर चलाने में उसमें आत्मविश्वास तथा प्रवीणता प्राप्त करता है। किसी कार्य में आत्मविश्वास तथा प्रवीणता बच्चे की स्थाई रुचि के लिए महत्वपूर्ण प्रेरक है। योग्यता और प्रवीणता से सफलता और संतोष के अनुभव प्राप्त होते हैं जो रुचि को विकसित करते हैं।

8. सामाजिक दबाव भी बच्चे की रुचि निर्धारित करने में कार्य करते हैं। शिक्षित माता-पिता बच्चे से पढ़ाई में रुचि लेने की अपेक्षा करते हैं। बच्चे का परिवार विशिष्ट सामाजिक समूहों के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और ऐसे मानकों को अपनाता है जो इन समूहों द्वारा मूल्यवान माने जाते हैं। क्योंकि शिक्षित वर्गों में शिक्षा पर बल दिया जाता है बच्चे पर भी सामाजिक दबाव रहता है कि वह शिक्षा में रुचि ले।

9. कभी-कभी बच्चे को किसी बात में दिलचस्पी होती है किन्तु साधन सुविधाओं और निर्देशन की कमी के कारण रुचि प्रसुप्त रहती है और बच्चे द्वारा विकसित नहीं की जाती। उदाहरण के लिए सुरेश, जो गांव में रहता है, प्रतिदिन गांव से ट्रेन को गुजरते देखता है। रेल की पटरी और उस पर ट्रेन का तेजी से गुजरना उसको विस्मित करता है। वह सोचता है कि ट्रेनें कैसे चलती होंगी, इंजन के अन्दर क्या है? वह कल्पना करता है कि एक दिन वह इसके बारे में जानेगा और ट्रेन चलाएगा। किन्तु जानकारी, सुविधा और निर्देशन के न मिलने के कारण उसकी रुचि प्रसुप्त रहती है। गांव के लोग समझते हैं कि यह बचपन की कल्पना की उड़ान मात्र है। कोई उसकी बात को गंभीरता से नहीं लेता और उसके पिता के पास उसे शहर भेजने के लिए रूपया भी नहीं है। उसे अन्य वाहन, जो पहिये पर चलते हैं जैसे साइकिल, बैलगाड़ी आदि तक ही अपनी रुचि को सीमित करना पड़ता है। वह साइकिल के बारे में सीखना शुरू करता है, कैसे पहिए चलते हैं, कैसे दो पहियों पर संतुलन कायम रहता है इत्यादि। ट्रेन की रुचि का स्थान साइकिल ले लेती है।

रुचियों का स्थायित्व

छोटी आयु में बच्चों की रुचियां अल्पकालिक होती हैं किन्तु आयु और अनुभव के साथ उनमें स्थायित्व आने लगता है। छोटे बच्चे किसी रुचि पर अधिक दिन तक कायम नहीं रहते। डेढ़ साल की आयु से तीन साल की आयु के बीच बच्चे उन चीजों में रुचि लेते हैं जो आवाज करती हैं या जिनमें गति होती है, इत्यादि। जैसे वे दो साल के होते हैं वे अन्य बच्चों में रुचि लेने लगते हैं, और उनके पास रहना

पसन्द करते हैं। लगभग छः से सात साल की आयु पर वे घर के बाहर अपनी आयु के अन्य बच्चों के साथ खेलना पसन्द करते हैं। उनकी रुचियां विस्तृत होती जाती हैं और वे कई चीजों में रुचि प्रदर्शित करने लगते हैं। आठ से तेरह वर्ष की अवस्था के बीच बच्चों की रुचि किताब पढ़ने में बौद्धिक खेलों में, सामूहिक खेलों में, बिजली की चीजों, आदि में होती है। रुचियां बदलती रहती हैं। सोलह वर्ष के करीब रुचियों में स्थायित्व आने लगता है। इसके यह मतलब नहीं हुए कि आयु के बाद रुचियों में परिवर्तन नहीं आता, परिवर्तन आ सकता है किन्तु मूल रुचियां वही रहती हैं। उदाहरण के लिए, बचपन में कमल की दिलचस्पी मोटर गाड़ियों में है, किशोर होने पर यह हवाईजहाज में परिणत हो सकती है। यहां अभिव्यक्ति बदली है किन्तु मूल रुचि अब भी वही है। रुचि का स्थायित्व विकास की अवस्था और परिपक्वता, संतोष और विफलता, प्रशंसा और दण्ड, प्राप्त अवसर और बच्चे के अनुभव और अन्य पर्यावरण के प्रभावों पर निर्भर करता है। कभी-कभी कोई रुचि इतनी दिलचस्प हो जाती है कि अन्य आवश्यकताएं और रुचियां कुछ समय के लिए भुला दी जाती है। विनोद जो किताब पढ़ रहा था, इतनी रोचक थी कि वह घर लौट कर फिर से किताब पढ़ना चाहता है। जब वह घर आया तो उसने देखा कि क्रिकेट का मैच दूरदर्शन पर दिखाया जा रहा है वह मैच देखने में इतना तल्लीन हो गया कि किताब भूल गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रिकेट की रुचि किताब का स्थान ले लेती है।

हमारे समाज में माता-पिता, कुछ अपवादों को छोड़कर, लड़की और लड़कों के बीच अन्तर करते हैं। लड़की और लड़के के क्या कार्य होंगे, यह अधिकतर परिवार की पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है। माता-पिता और समाज उनसे अपनी-अपनी भूमिका के अनुरूप कार्य करने की अपेक्षा करते हैं। जिस प्रकार के खिलौने लड़के और लड़कियों को दिए जाते हैं उनमें यह अन्तर देखा जाता है। लड़कियों को गुड़िया, चाय बनाने के बर्तन, और फरनीचर जैसे सोफा आदि दिए जाते हैं, जबकि लड़कों को चाभी से चलने वाले खिलौनें, मोटर, हवाईजहाज, ट्रेन आदि दिए जाते हैं। लड़के और लड़कियों के बीच रुचियों में अन्तर लाने में इसका भी प्रभाव पड़ता है। तादात्म्यता (identification) की भी भूमिका है। एक लड़की ऐसे कार्यों में रुचि लेती है जैसे झाड़ू लगाना, खाना पकाना, कपड़े पहनना, जो माँ द्वारा किए जाते हैं, जबकि लड़के अपने पिता और बड़े भाइयों का अनुसरण करते हैं और उनकी रुचियां घर के बाहर के कार्यों में विकसित होती हैं।

बच्चों की सामान्य रुचियां

सभी मानव में एक आन्तरिक इच्छा ऐसे कार्यों को करने की होती है जो

उसको आनन्द प्रदान करें। खेल से आनन्द मिलता है और इसलिए बच्चा खेल में रुचि लेता है।

जैसे बच्चे बड़े होते हैं वे कोई खेल खेलना प्रारम्भ करते हैं। खेल का चुनाव बच्चे की बुद्धि का स्तर, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, लड़का या लड़की होना, साथी, समुदाय और निवास स्थान पर निर्भर करेगा।

पठन अभिरुचियां

ढाई वर्ष के बच्चे कहानी सुनना पसन्द करते हैं। वे कहानी पढ़ने वाले की मुख मुद्रा, उसकी आवाज और हावभाव के प्रति अनुक्रिया करते हैं। जैसे बच्चा बड़ा होता है उसे कहानी की किताब की तस्वीरें देखने में मज़ा आता है। कुछ बच्चे केवल कहानियों में ही रुचि नहीं रखते बल्कि वे उपयोगी जानकारी देने वाली अन्य लिखित सामग्री में भी रुचि लेने लगते हैं। माता-पिता और शिक्षकों का कार्य है बच्चे को निर्देशन दें जिससे उसमें स्वस्थ पठन रुचि विकसित हो, और उपयुक्त पुस्तकें उपलब्ध कराएं।

रेडियो, दूरदर्शन, चल-चित्र और खेलों में अभिरुचि

रेडियो, दूरदर्शन और चल-चित्र में बच्चों की रुचियां घर में या पास-पड़ोस में होने पर निर्भर करती हैं। जैसे-जैसे परिवारों और समुदायों में दूरदर्शन पहुंच रहा है इसमें रुचि बढ़ रही है। बच्चों की टी.वी. कार्यक्रम में रुचियों में अन्तर होता है। कुछ बच्चे बाल-सभा में, कुछ खेल और क्रीड़ा में, और कुछ संगीत और नाटक या कोई अन्य कार्यक्रम में रुचि लेते हैं। टी.वी. के कार्यक्रम के चयन में माता-पिता का भी प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण बच्चे ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों को पसन्द करते हैं जैसे नौटंकी, कठपुतली, मेले इत्यादि। उनके खेल भी शहरी बच्चों से भिन्न होते हैं। शहरी बच्चों की रुचि फिल्म, संगीत-सभा आदि में हो सकती है। उनके पास ऐसे खेल जैसे हाकी, क्रिकेट, बास्केट बाल, आदि खेलने की सुविधाएं होती हैं, जबकि ग्रामीण बच्चे कबड्डी, खो-खो और इसी प्रकार के कम खर्चीले खेल खेलते हैं।

व्यावसायिक अभिरुचियां

बाल्यकाल के अनुभव और महत्वाकांक्षाओं से बच्चों की व्यावसायिक अभिरुचियां प्रभावित होती हैं। कुछ बच्चों में बाल्यकाल की रुचियां किशोरावस्था में भी बनी रहती हैं। एक बच्चा अपने आदर्श व्यक्ति के पद-चिन्हों पर चलना चाहेगा। बच्चे के लिए यह रुचि वास्तविकता से दूर हो सकती है। उसको उसकी योग्यता, क्षमता, स्वभाव, पसन्दगी और नापसन्दगी को ध्यान में रखते हुए निर्देशन देना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों की रुचियां भिन्न हो सकती हैं क्योंकि उन्हें शहरी बच्चों के समान साधन, सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। ग्रामीण बच्चे की अभिरुचि बोने, जोतने,

फसल उगाने, और दाना निकालने में विकसित होती है। यदि गांव नदी के किनारे है तो वह तैरने और नाव चलाने में रुचि लेने लग सकता है। यदि ट्रेन गांव से होकर गुजरती है तो वह उसके बारे में जानना चाहता है। उसकी रुचि रेल के कलपुर्जों की ओर जाग्रत होती है। वह ड्राइवर या मैकेनिक बनने का इच्छुक हो सकता है।

कक्षा में अभिरुचियां

शिक्षक को यह जानना चाहिए कि रुचि और ध्यान में घनिष्ठ संबंध है। एक बार जब शिक्षक बच्चे की रुचि जाग्रत कर लेता है और शिक्षण तथा सीखने की परिस्थिति को इस प्रकार आयोजित करता है कि वह बच्चे की रुचियों के अनुरूप हो, वह निश्चित हो सकता है कि जो कुछ वह कक्षा में पढ़ा रहा है उसकी ओर बच्चा ध्यान देगा। इसलिए बच्चे की रुचियों के बारे में पता लगाना शिक्षक के लिए आवश्यक है। प्रारंभ की कक्षाओं में वह अपना कार्य उन विषयों से प्रारंभ कर सकता है जिनमें बच्चों की रुचि है। उदाहरण के लिए प्रारम्भिक कक्षाओं में अधिकांश बच्चे कहानियों में रुचि लेते हैं। भाषा का शिक्षक एक या दो कहानियां सुनाकर अपनी कक्षा का शिक्षण प्रारंभ कर सकता है, और फिर बच्चों को अपने आप कहानियां पढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। वह बच्चों को उपयुक्त और अच्छी कहानियों की किताबों का चुनाव करने में मदद कर सकता है। एक बार जब बच्चों में पठन की रुचि पैदा हो जाएगी, शिक्षक उनको उपयोगी और ज्ञानवर्धक सामग्री के पढ़ने की ओर ले जा सकता है। उसे यह देखना होगा कि बच्चों का पठन केवल कहानी की किताबों तक ही सीमित नहीं रह जाता।

अन्य कक्षाओं में भी वह विषय या पाठ का आरम्भ ऐसी बातों को लेकर कर सकता है जिनमें बच्चों की रुचि है और फिर वह मुख्य विषय पर आ सकता है। यदि परिवहन के बारे में पढ़ाना है तो वह उसकी आवश्यकता, महत्व, इतिहास या अन्य कोई पक्ष लेकर पाठ प्रारम्भ कर सकता है। अभिप्रेरणा, जैसा हम सब जानते हैं, अधिगम का मर्मस्थल है और रुचि बच्चे के सीखने के लिए नितान्त आवश्यक है। एक बच्चा जो किसी चीज में दिलचस्पी लेता है उसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करता है। वह विभिन्न स्रोतों से जानकारी एकत्रित करेगा। इन स्रोतों के बारे में बता कर शिक्षक उसकी मदद कर सकता है। जैसे किताबें, बाल-विश्वकोश पत्रिकाएं, पुस्तकालय, सूचना केन्द्र, क्लब, जानकार व्यक्ति इत्यादि जिनसे वह संबद्ध जानकारी एकत्रित कर सके। यह जानकारी वह कक्षा में अन्य छात्रों के सामने प्रस्तुत कर सकता है। इससे बच्चे का हौसला बढ़ेगा और अन्य बच्चों को भी इस बात की प्रेरणा मिलेगी कि वे भी अपनी रुचि से संबंधित

जानकारी एकत्रित करें और अन्य छात्रों को उसके बारे में बताएं। ऐसा करने से बच्चे को शिक्षक तथा सहपाठियों से कद्रदानी प्राप्त हो सकेगी। कद्रदानी और प्रशंसा उनको आगे कार्य के लिए प्रोत्साहित करती है।

शिक्षक बच्चों को स्कूल के विषय और जीवन के बीच संबंध दिखा सकता है। इससे स्कूल के कार्य में उनकी रुचि बढ़ेगी। एक छोटा बच्चा अपने काल्पनिक जगत में रहता है। जैसे वह बड़ा होता है उसे व्यक्तियों और चीजों की दुनिया का बोध होता है। शिक्षक इस दुनिया से स्कूल के अनुभवों की कड़ी को जोड़ सकता है। वह बच्चे को दिखा सकता है कि किस प्रकार स्कूल के विभिन्न विषय और क्रियाकलाप दिन-प्रति-दिन के अनुभवों से जुड़े हुए हैं।

शिक्षक बच्चों की प्रसुप्त रुचियों को भी उपयोग में ला सकता है। उदाहरण के लिए मोनिका की रुचि कहानियों में है। शिक्षक मोनिका की पठन रुचि को कहानी की पुस्तकें देकर और ऐसी ही अन्य पुस्तकों का चयन करने में सहायता करके विकसित कर सकता है। इस प्रकार पठन में रुचि जागृत की जा सकती है। धीरे-धीरे पढ़ने के लिए उसे ऐसी सामग्री भी दी जा सकती है जिसमें उपयोगी जानकारी हो और जिसके बारे में पहले मोनिका ने नहीं सोचा था कि वह रोचक होगी। इससे उसकी पठन की योग्यता बढ़ेगी, वह लिखित शब्दों को समझने लगेगी और भाषा पर उसका अधिकार बढ़ेगा। अब उसे विभिन्न विषयों पर पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इस प्रकार अन्य उपयोगी सामग्री पढ़ने में मोनिका की रुचि बढ़ेगी। इससे उसको पढ़ाई में मदद मिलेगी, साथ ही साथ उसकी जानकारी का दायरा भी बढ़ेगा। शिक्षक बच्चे की प्रसुप्त रुचियों का, बच्चे के साथ समाज के हित में, उपयोग करने के लिए विविध विधियों के बारे में सोच सकता है। बच्चों को दिन-प्रति-दिन के साथ में शिक्षक को ऐसे संकेत मिलते हैं जहां बच्चों की रुचियों के आधार पर उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने की ओर उसे प्रेरित किया जा सकता है। कहानियों के साथ-साथ महान व्यक्तियों की आत्मकथा, जीवनियां और अन्य उपयोगी सामग्री पढ़ने के लिए शिक्षक बच्चों को प्रोत्साहित कर सकता है। इस वैज्ञानिक और तकनीकी युग में शिक्षक बच्चों को विज्ञान और तकनीकी में हाल की गतिविधियों के बारे में जानकारी एकत्रित करने में मदद कर सकता है। कक्षा के शिक्षण को बच्चों के पूर्वज्ञान से जोड़ते हुए और ऐसे विषयों को, जिनमें बच्चे दिलचस्पी रखते हैं, विस्तृत जानकारी देते हुए, शिक्षक विज्ञान शिक्षण को रोचक बना सकता है।

एक शिक्षक जो बच्चों में और पढ़ाने में रुचि लेता है, ऐसी विभिन्न विधियों का पता लगा लेगा जिनसे बच्चों की रुचियों को कक्षा की पढ़ाई से जोड़ा जा सके और नए ज्ञान की खोज में उनकी रुचि कायम की जा सके।

बच्चों की रुचियों का पता लगाने में और निर्देश देने में शिक्षक का कार्य

हम जानते हैं कि रुचियां महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे प्रेरक शक्तियां हैं। किसी कार्य को करने में या खेल में जो संतोष और सफलता मिलती है उसका निर्धारण बहुत हद तक रुचियों द्वारा होता है। रुचियां मूल चालकों (drives) को संतुष्ट करती हैं और अवकाश के समय में क्रियाकलापों को ढूंढने में मदद करती हैं। रुचियों को अधिगम से जोड़ा जा सकता है। शिक्षक को जिस आयु समूह को वह पढ़ा रहा है, उसकी सामान्य रुचियों के बारे में जानना चाहिए। छोटी कक्षाओं में विभिन्न विषयों में शैक्षिक परिस्थितियों को वह बच्चों की रुचियों को ध्यान में रखकर आयोजित कर सकता है। इस प्रकार रुचियों का सीखने में प्रेरक के रूप में वह प्रयोग कर सकता है। कक्षा के क्रियाकलापों को आयोजित करने में अर्थपूर्ण, सुखदाई, और संतोषप्रद अनुभवों को बच्चों को प्रदान किया जा सकता है। शिक्षण कार्य खेल के क्रियाकलापों द्वारा आयोजित करते हुए शिक्षक को समूह की आयु, मानसिक योग्यता, परिपक्वता के स्तर के अलावा रुचियों के सामान्य प्रतिरूपों को ध्यान में रखना चाहिए। उसे यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह किन उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार शिक्षक छात्रों को अपनी रुचियों को जीवित रखने में मदद कर सकता है। वह ऐसी रुचियों को भी प्रोत्साहित कर सकता है जो बच्चों को जानकारी और ज्ञान अर्जित करने में मदद करेंगी, जैसे, विज्ञान में विकास, महान पुरूषों की जीवनी, भारत के विभिन्न राज्यों के निवासी, राष्ट्रीय संपदा इत्यादि।

सबसे पहले शिक्षक को बच्चों की रुचियों के बारे में पता लगाना चाहिए। बच्चे जो कुछ अपनी रुचियों के बारे में कहते हैं तो बहुत विश्वसनीय नहीं होता। परीक्षण और तालिकाएं छोटे बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं होतीं। इसलिए, जो व्यावहारिक तरीका हो सकता है, वह उन रुचियों को, जो बच्चे व्यक्त करते हैं, नोट कर लेना होगा। यह निम्न विधि से किया जा सकता है।

1. शिक्षक को छात्रों को यह अवसर देना चाहिए कि वे अपनी रुचियां स्वतंत्र रूप से अपने चुने हुए क्रियाकलापों में व्यक्त कर सकें।
2. शिक्षक बच्चों का खेलते समय, पढ़ते समय और सहगामी क्रियाओं में भाग लेते समय अवलोकन करके उनकी रुचियों का पता लगा सकता है।
3. वह बच्चों से एक पैराग्राफ या दस पंक्तियां किसी एक विषय पर, जो उनको सबसे अधिक पसन्द हैं,.लिखने को कह सकता है। फिर वह उन विषयों का जिन पर बच्चों ने लिखना पसन्द किया विश्लेषण कर सकता है।
4. कक्षा में किसी क्रियाकलाप या पाठ के आयोजन के बाद वह प्रत्येक छात्र से पूछ सकता है कि वह यह बताए कि उसे अमुक क्रियाकलाप या पाठ कैसा लगा।

5. गर्मी की छुट्टियों के बाद जब बच्चे स्कूल आते हैं वह उनसे पूछ सकता है कि उन्होंने छुट्टियां कैसे बिताईं।
6. वह बच्चों से पूछ सकता है कि वे अवकाश का समय कैसे बिताते हैं।
7. वह माता-पिता से वैयक्तिक रूप से मिलकर उनसे पूछ सकता है, या माता-पिता और शिक्षकों की मीटिंग में पूछ सकता है कि बच्चा स्कूल के बाहर किन क्रियाकलापों में भाग लेता है।
8. वह बच्चों से पूछ सकता है कि यदि उन्हें दो घण्टे प्रति सप्ताह मिले जिन्हें वे अपनी पसन्द के क्रियाकलापों में व्यतीत कर सकते हैं तो वे क्या चुनेंगे।

इस प्रकार शिक्षक कुछ रुचियों को उनके क्रियान्वयन में निर्देशन देकर बढ़ा सकता है। अपनी कक्षाओं में जहां चालीस से लेकर पचास छात्र होते हैं यह संभव नहीं होगा कि शिक्षक प्रत्येक बच्चे की रुचि के बारे में पता कर सके किन्तु यदि उसको उनकी रुचियों का कुछ ज्ञान है तो वह शिक्षण को आनन्द का स्रोत बना सकता है।

अध्याय 9

आत्म संकल्पना का विकास और समंजन

ईवलिन मार

छोटे बच्चे बात कर रहे हैं, एक दूसरे को छेड़ रहे हैं, हंस रहे हैं। सीता को मजाक में कोई कुछ कहता है। सीता बहुत दुःखी हो जाती है, चिढ़ाने वाले पर गुस्सा होती है, रोने लगती है और कमरे के बाहर चली जाती है। अभी तक सीता सबके साथ मजा ले रही थी किन्तु अपने ऊपर मज़ाक वह बरदाश्त नहीं कर पाई। ऐसा क्यों है? क्या इसका कोई गहरा कारण है? क्या उसमें अपने बारे में विश्वास की इतनी कमी है कि एक मजाक जिसमें उससे अपेक्षा थी कि वह शामिल होगी, उसे अपनी आलोचना लगी है, और जिसके फलस्वरूप भावात्मक विस्फोट हुआ?

स्कूल में शिक्षकों की एक मीटिंग में प्राचार्य एक शिक्षक श्री गोयल के किसी कार्य की सराहना करते हैं। वर्माजी को वह बात बुरी लगती है। बाद में वे कोई बहाना निकाल कर श्री गोयल की आलोचना करते हैं। कभी-कभी प्राचार्य ने वर्माजी की भी सराहना की है। इससे वर्माजी खुश हुए थे और चाहते थे कि सबको इस बात का पता चले। किन्तु अन्य व्यक्तियों की प्रशंसा वर्माजी को ऐसी लगती है जैसे उनकी स्वयं की आलोचना हो। यहां तक कि वे दूसरे के कार्य में विघ्न डालने की भी कोशिश करते हैं। ऐसा क्यों? शायद जब वे छोटे थे तब उनकी तुलना अन्य बच्चों से की गई हो, जिसमें दूसरे बच्चों की तारीफ और उनकी निन्दा हो।

सीता और वर्माजी के समान व्यक्ति अधिक समय खुश नहीं रह सकते। इससे उनके काम का भी हर्जा होता है क्योंकि वे अपने काम से इतना लगाव नहीं रखते जितना अपने अहं को सिद्ध करने में। यही कारण है कि वे कभी-कभी दूसरे के कार्य में बाधा डालते हैं।

मदन शर्मीला और चुप रहने वाला बालक है। सभी कहते हैं कि वह एक अच्छा लड़का है। जब वह अन्य बच्चों के साथ होता, तब नहीं बोलता। वह सबके साथ मौज मज़े में शामिल होना चाहता है। उसमें मन में ऐसी बातें उठती हैं जिनको

वह औरों को बताना चाहता है किन्तु उसे डर लगता है कि लोग उसके ऊपर कहीं हंसे न या उसकी आलोचना न करें। पढ़ाई और खेल दोनों में ही अटकाव का अनुभव करता है। उसको लगता है कि वह कुछ भी नहीं कर पाएगा। यदि कोई उससे थोड़ा रूखेपन से बात करता है तो उसे चोट पहुंचती है, उसे लगता है कि उसमें कुछ दोष होगा। मदन खुश नहीं है। वह अपनी क्षमता के अनुरूप काम नहीं कर पाता क्योंकि वह जल्दी हतोत्साहित हो जाता है।

मुसीबत यह है कि सीता को वर्माजी और मदन के अपने बारे में एक अच्छी तस्वीर, धारणा और संकल्पना नहीं है। दूसरों को वर्माजी बहुत घमण्डी लगते हैं, किन्तु वास्तव में उनके मन में डर है कि उन्हें जितना योग्य होना चाहिए था उतने वे नहीं हैं।

आत्म संकल्पना (Self Concept)

प्रत्येक व्यक्ति की अपने बारे में कुछ संकल्पनाएं होती हैं। उदाहरण के लिए राजेश अपने बारे में सोचता है कि वह लम्बा, बुद्धिमान, सहृदयवान, जल्दी गुस्सा होने वाला इत्यादि है। इनमें से कुछ संकल्पनाएं सही हो सकती हैं, कुछ नहीं। अपने व्यक्तित्व के बारे में इन विशिष्ट संकल्पनाओं के अतिरिक्त उसकी अपने लिए एक आम राय और अभिवृत्ति भी है।[1] वह सोच सकता है कि वह एक बहुत अच्छा व्यक्ति है, कि वह दूसरों से हीन है, या कि वह न तो हीन है न उत्कृष्ट, बल्कि ठीक है। ये सभी विचार जो व्यक्ति के अपने बारे में हैं जिनके आधार पर वह सोचता है कि वह क्या है उसकी आत्म संकल्पना निकाय (self concept system) है जिसे सामान्यतया आत्म संकल्पना कहते हैं।[2]

समुचित आत्म संकल्पना

एक अच्छी और समुचित संकल्पना क्या है? क्या यह उस व्यक्ति की है जो अपने बारे में उच्च विचार रखता है? नहीं। समुचित आत्म संकल्पना के मतलब हैं व्यक्ति की अपने बारे में अच्छी तस्वीर होनी चाहिए किन्तु उसे अपने को वास्तविकता के संदर्भ में देखना चाहिए।[3] उसे अपने सबल और दुर्बल दोनों ही पक्षों को जानना चाहिए। जबकि वह अपने सबल पक्षों से खुशी अनुभव कर सकता है, उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि वह दूसरों से श्रेष्ठ है। वह अपनी कमियों के बारे में खुश तो नहीं होगा। उनको दूर करने की कोशिश करेगा किन्तु इनसे उसे कोई घबराहट या

1. D. E. Super, The Psychology of Career, New York, Harper and Bros., 1957.
2. D.E. Super, Toward making self concept theory operational. In D.E. super, R. Starishevsky, N. Martin and J.P. Jordean, Career Development: Self Concept Theory. New York, College Entrance Examination Board, 1963.
3. M. Rosenberg, Society and the Adolescent Self Image, Princeton N.J., Princeton University Press, 1965.

शर्मिन्दगी नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए किशोर पढ़ाई में काफी अच्छा है, वह संगीत में बहुत अच्छा है किन्तु खेल में अच्छा नहीं है। उसे खुशी है कि वह संगीत में अच्छा है और उसने कई इनाम प्राप्त किए हैं। वह पढ़ाई में बेहतर कार्य करना चाहता है किन्तु उसे पता है कि वह बहुत तेज नहीं है, और इस बात से वह परेशान नहीं है। वह चाहता है कि वह खेल में भी अच्छा होता और जब भी संभव होता है अभ्यास करता है। किन्तु इस कमी से वह अपने को दूसरों से हीन अनुभव नहीं करता।

अपने को वास्तविकता के साथ देख पाने और अपनी सीमाओं को पहचान पाने के लिए व्यक्ति को अपने बारे में सही तस्वीकर होना चाहिए। यह सभी के लिए संभव होना चाहिए क्योंकि सभी में कुछ अच्छाइयां होती हैं।

समुचित आत्म संकल्पना को स्वीकार करने का महत्व

सीता, वर्माजी, मदन और उन्हीं के समान अन्य व्यक्तियों को परेशानी होती है क्योंकि उनकी आत्म संकल्पना समुचित नहीं है। सीता और वर्माजी अन्य लोगों के लिए भी समस्याएं पैदा करते हैं। मदन दूसरों के लिए समस्या नहीं है, किन्तु लोकप्रिय बच्चों में भी वह नहीं है। अधिकतर लोग उसकी ओर ध्यान नहीं देते।

जिनमें समुचित आत्म सकल्पना होती है वे दूसरों द्वारा वैयक्तिक आलोचना से अधिक विचलित नहीं होते[1], क्योंकि वे अपनी अच्छाइयों और कमजोरियों दोनों ही को जानते हैं। उन्हें दूसरों की सफलता से ईर्ष्या नहीं होती। जो अपने को स्वीकार कर लेते हैं, वे दूसरों को भी स्वीकार कर पाते हैं और उन्हें दूसरों में अधिक अच्छाइयां दिखाई देती हैं। ऐसे व्यक्तियों को दूसरे अधिक स्वीकार करते हैं, यानी, अन्य लोग भी उन्हें पसन्द करते हैं।[2] उन्हें दूसरों पर शान जमाने और ऐसा दिखाने को और अपने को ऐसा दिखाने के लिए जो वे वास्तव में नहीं हैं ढोंग रचने की आवश्यकता नहीं होती। अधिकतर उनका समंजन अच्छा होता है और उनमें व्यवहार की कम समस्याएं होती हैं।[3]

यह पाया गया है कि जिन छात्रों की आत्म संकल्पना अच्छी है वे समान योग्यता के अन्य छात्रों की अपेक्षा, जिनकी आत्म संकल्पना तुच्छ है, अधिक अच्छा निष्पादन कर पाते हैं। वास्तव में तुच्छ आत्म संकल्पना जिसके कारण व्यक्ति अपने आप पर भरोसा नहीं कर पाता, जैसा कि मदन के मामले में है, अल्पार्जकता

1. B. Chodorkoff, Self perception, perceptual defence and adjustment, J. of Abnormal and Social Psych., 49, 1954, 508-510.
2. W.F. Fey, Acceptance of self and others and its relation to therapy readiness, J. of Psych., 10, 1954, 266-269
3. L.A. Rosenberg, Idealization of self and social adjustment, J. Consulting Psychol., 26, 1962.

(underachievement) का मुख्य कारण है। जिनमें तुच्छ आत्मसंकल्पना है किन्तु जो इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं वे सदैव अपने का उच्च सिद्ध करने का प्रयास करते रहते हैं। हो सकता है कि परिश्रम करके वे अच्छा निष्पादन प्राप्त कर सकें, किन्तु उनके कार्य में स्वाभाविकता और सर्जनात्मकता नहीं होगी और उनके लिए मिलकर कार्य करना कठिन होगा।

प्रारम्भिक वर्षों में आत्म संकल्पना का विकास

जब बच्चे स्कूल में आते हैं तब तक उनकी आत्म संकल्पना बहुत कुछ निर्मित हो चुकी होती है। इसका आधार वे अनुभव हैं जो उन्होंने अपने परिवारों में प्राप्त किए हैं। स्कूल के नए पर्यावरण में बच्चे भिन्न-भिन्न प्रकार से समंजन करते हैं। एक बच्चा जो आत्म विश्वासी है, शुरू से ही स्कूल में खुश रहता है। जिसमें आत्म विश्वास की कमी है वह चुपचाप बैठा रहता है या घर जाने के लिए रोता है या बार-बार शिक्षिका के पास जाकर उसका अनुमोदन प्राप्त करने का प्रयास करता है। एक बच्चा जो अनुभव करता है कि दूसरे उसे पसन्द नहीं करते, या शिक्षिका उसकी अपेक्षा अन्य बच्चों को ज्यादा पसन्द करती है दूसरे बच्चों के प्रति रूखेपन से व्यवहार करता है।

मध्य बाल्यावस्था में आत्म संकल्पना पर स्कूल का प्रभाव

यद्यपि इन छोटे बच्चों में आत्म सकंल्पना निर्मित हुई है, ये संकल्पनाएं अभी भी अनिश्चित हैं और बदल सकती हैं। शिक्षिका की यह जिम्मेदारी है कि आगे विकास स्वस्थ दिशा में हो।

योग्यताओं के परीक्षण

अपने बारे में जानने के लिए स्कूल बहुत से अवसर प्रदान करता है। एक तो यहाँ योग्यताओं के परीक्षण का अवसर मिलता है। बच्चों को पता चलता है कि वे पढ़ाई और खेल में अच्छे हैं या नहीं। वे सफलता या असफलता का अनुभव करते हैं। स्कूल के बच्चों में एक सामान्य डर असफल होने का रहता है। कुछ को सफलता सरलता से प्राप्त होती है किन्तु कुछ को अकसर असफलता का सामना करना पड़ता है। यह उनके लिए बहुत हानिकारक है। असफलता से हम सदैव बच नहीं सकते, किन्तु प्रत्येक बच्चे को सफलता का कुछ अनुभव होना चाहिए। यदि बच्चा कक्षा का कार्य नहीं कर पाता, तो उसे उसकी योग्यता के अनुरूप कोई सरल कार्य दिया जा सकता है। खेल में भी कुछ बच्चों को कुछ कौशलों का अलग से अभ्यास कराया जा सकता है जिससे वे अन्य बच्चों के साथ खेल सकें। किसी भी हालत में ऐसा नहीं होना चाहिए कि बच्चा दिन-प्रति-दिन स्कूल में असफलता का सामना करता रहे। इसका परिणाम हो सकता है कि वह वास्तविकता से पलायन करके अपने को बाह्य

जगत से सिमेट ले। सारे जीवन उसमें उस विश्वास की कमी रहेगी जिससे वह खुश रहता और अपने कार्य को मन लगाकर अच्छे से अच्छा करने की कोशिश करता। एक दूसरा परिणाम दूसरों पर गुस्सा होना हो सकता है। दोनों में से किसी भी अवस्था में वह खुश और समंजित नहीं रहेगा।

जैसे बच्चे विभिन्न कार्यों में प्रवीणता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और सफलता या असफलता का अनुभव करते हैं, शिक्षक इन अनुभवों का उपयोग करके उन्हें अपने बारे में सिखा सकता है। ऐसा पाया गया है कि इस प्रकार का निर्देशन बच्चों की वास्तविक आत्म संकल्पना को निर्मित करने में मदद करता है। जो बच्चे किसी कार्य में अच्छे हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि उनमें योग्यता है, और उसे विकसित करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। किन्तु उन्हें ऐसा महसूस नहीं करना चाहिए कि वे कोई निराले व्यक्ति हैं। इसी प्रकार जो किसी कार्य में निम्न हैं उन्हें यह महसूस करना चाहिए कि उनमें कुछ योग्यता है और अन्य व्यक्ति उन्हें पसन्द करते हैं और सम्मान करते हैं।

बच्चे को सफलता का अनुभव कराना और उसे अपनी सीमाओं के बारे में बताना, इन दोनों बातों के बीच कोई परस्पर विरोध नहीं है। यह शिक्षक की कमी होगी कि वैयक्तिक अन्तरों को नहीं समझता है और सभी से समान स्तर के कार्य की अपेक्षा करता है। बच्चे किस स्तर का कार्य कर रहे हैं यह बात उनसे छुपाने की नहीं है। किन्तु सभी को चुनौती और सफलता चाहिए।

दूसरों से तुलना

स्कूल में बच्चों की एक दूसरे से तुलना होती है। इस तुलना से वे अपने बारे में जान पाते हैं। जब बच्चा अन्य बच्चों के साथ दौड़ता है तब उसे पता लगता है कि वह तेज़ दौड़ने वाला है या नहीं। कक्षा की पढ़ाई में बच्चे को जो स्थान मिलता है उससे उसे पता चलता है कि उसमें शैक्षिक योग्यता कितनी है। किन्तु यह माप मोटे तौर पर है, बहुत सही नहीं होती। कक्षा में किस स्थान (position) पर बच्चा आता है यह बहुत से कारकों पर निर्भर करता है। एक कक्षा में तेज़ छात्रों की संख्या अधिक हो सकती है, किसी दूसरी कक्षा में हो सकता है कि अधिकतर औसत योग्यता के ही बच्चे हों। इनके अलावा ऐसे कारक जैसे कठिन परिश्रम, पहले की पृष्ठभूमि और साथ ही साथ योग्यता मिलकर कक्षामें स्थान निर्धारित करते हैं। कुछ तुलनाएं तो होंगी ही किन्तु एक दूसरे से तुलनाओं को अधिक बढ़ावा नहीं देना चाहिए। शिक्षक किसी लम्बे लड़के की ओर संकेत करके यह नहीं कहता "देखो यह कितना लम्बा लड़का है, तुम भी यदि कोशिश करोगे तो इतने लम्बे हो जाओगे।" इसी प्रकार तेज बच्चे का उदाहरण लेकर दूसरों से यह कहना कि यदि वे कोशिश

करें तो उतने ही तेज़ हो सकते हैं, उतना ही असंगत है, और इससे बच्चों में घबराहट होगी।

कक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करने पर अत्यधिक जोर देना, और इसी प्रकार की तुलनाओं से बच्चे को लगता है कि उसका निष्पादन इस बात पर निर्भर करता है कि दूसरे उतना अच्छा कार्य नहीं कर सके जितना वह करता है। इससे ईर्ष्या, दूसरे के काम की नुकताचीनी करना और दूसरों के कार्य में बाधा डालने जैसे प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं। एक बार यदि ऐसी आदतें बन गईं तो जीवन भर चलती रहती हैं और हमारी अनेक संस्थाओं में इन्हीं आदतों के कारण विवाद खड़ा होता है।

जहां तक हो सके, बच्चे के कार्य का मूल्यांकन, उसने जो प्रगति की है उसको ध्यान में रख कर करना चाहिए।

सामूहिक जीवन

बच्चे समूह में रहना और कार्य करना चाहते हैं। यह सामूहिक जीवन उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण है और इसका उनकी आत्म संकल्पना के विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। समूह में होने से उनमें विश्वास और सुरक्षा की भावना आती है। समूह द्वारा स्वीकार किए जाने से उनकी आत्म संकल्पना सुदृढ़ होती है। विशेषकर जो लोकप्रिय होते हैं, वे अपने बारे में सकारात्मक ढंग से सोचते हैं। खेल में बच्चे मिलजुल कर कार्य करना सीखते हैं। कुछ को नेतृत्व के अवसर मिलते हैं, अन्य अनुगमन करना सीखते हैं। सामूहिक जीवन में खतरे भी हैं। कभी-कभी समूह किसी शैतानी में संलग्न हो जाता है। बच्चे कुछ गलत काम इसलिए करते हैं कि उन्हें डर है कि कहीं समूह से निकाल न दिए जाएं। यह देखने के लिए कि समूह का कोई बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ रहा शिक्षक को समूह की गतिविधियों पर निगाह रखनी चाहिए। स्कूल में स्वस्थ सामूहिक कार्यक्रमों के अवसरों को प्रदान करने से समूह झंझटों और गलत कार्यों से बच सकेगा। स्वस्थ क्रियाकलापों में भ्रमण, त्योहार मनाना, कक्षा को सुसज्जित करना, मनोविनोद का कार्यक्रम प्रस्तुत करना, या किसी परियोजना पर कार्य करना हो सकता है।

कुछ बच्चे किसी भी दल में शामिल नहीं होते। कारण यह है कि कोई भी दल उन्हें स्वीकार करने को तैयार नहीं होता। ऐसे बच्चे दुःखी रहते हैं क्योंकि वे अन्य साथियों के साथ मौज-मजा में शामिल नहीं हो पाते। इसके साथ-साथ वे अपने को हीन और सताया हुआ अनुभव करते हैं क्योंकि दूसरे उनका बहिष्कार करते हैं। इस प्रकार की भावनाएं उनकी आत्म संकल्पना को स्थाई क्षति पहुंचा सकती हैं। शिक्षक को ऐसे छात्रों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे पता लगाना चाहिए कि अन्य बच्चे उसे क्यों नहीं अपनाते। हो सकता है कि बच्चे में कुछ ऐसी आदतें हों जिन्हें



चित्र—7. वे मुझे अपने साथ नहीं खिलाते, मुझे पसन्द नहीं करते, शायद मैं बिलकुल बेकार हूँ।

अन्य बच्चे पसन्द नहीं करते । ऐसी अवस्था में शिक्षक को बच्चे की ये आदतें छुड़वानी चाहिए। यह भी हो सकता है कि अन्य बच्चे उससे इसलिए अलग रहते हैं कि वह दूसरी जाति या समुदाय का है, जिसके प्रति उनके मन में कोई पूर्वाग्रह है। ऐसी स्थिति में शिक्षक को अन्य छात्रों के साथ विचार विनिमय करना चाहिए और उनके पूर्वाग्रहों को दूर करने में उनकी मदद करनी चाहिए। इनके अलावा बच्चे को दूसरों के द्वारा स्वीकार न किए जाने के अन्य कारण भी हो सकते हैं। शिक्षक को प्रत्येक मामले में कारण का पता लगा कर उपयुक्त कदम उठाने चाहिए।

दूसरों की राय

बच्चे अक्सर अपने बारे में दूसरों की राय सुनते हैं। इसका प्रभाव उनकी आत्म संकल्पना पर पड़ता है। शिक्षक को अधिकतर इस बात की जानकारी नहीं होती कि बच्चे आपस में क्या बात करते हैं और वह उनके बोलने को नियंत्रित भी नहीं कर सकता। किन्तु समूह में एक दूसरे को स्वीकार करना और स्नेहपूर्ण व्यवहार करना सिखाया जा सकता है। शिक्षक भी अपने व्यवहार में सहृदयता और स्वीकारण का दृष्टांत प्रस्तुत कर सकता है।

शिक्षकों की राय बच्चों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है। अकसर शिक्षक

इस बात को नहीं समझते। यदि हम कक्षाओं का अवलोकन करें और देखें कि शिक्षक ने, कितनी बार सराहना करते हुए और कितनी बार आलोचना करते हुए, बच्चों से कुछ कहा और कितने बच्चे ऐसे हैं जिनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, तो हमें पता लगेगा कि स्थिति आशाप्रद नहीं है। शिक्षक बिना सोचे अकसर ऐसी बातें कह देते हैं, जैसे, "तुम बिल्कुल बेकार हो", "तुम्हारे दिमाग है ही नहीं", इत्यादि। जो वे बोलते हैं कि हो सकता है कि सचमुच में उनका वह मतलब न हो, फिर भी इन कथनों का बच्चों पर बुरा असर पड़ सकता है।[1] अकसर शिक्षक को बच्चों की गलती सुधारनी होती है, किन्तु इन गलतियों और दोषों को बिना अतिरंजित आलोचना किए हुए बताया जा सकता है। शिक्षक को कभी न कभी ऐसे अवसर निकालने चाहिए जब वह प्रत्येक बच्चे की तारीफ कर सके। उसे इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि दोष देने की अपेक्षा तारीफ करने के अधिक अवसर प्राप्त हों।

बच्चे को स्वीकार' करना

स्वस्थ आत्म संकल्पना के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक बच्चे को स्वीकार करना है। यह स्वीकरण घर में माता-पिता और परिवार के सदस्यों से और स्कूल में शिक्षक और अन्य छात्रों से प्राप्त होता है।

शिक्षक द्वारा बच्चे को स्वीकार करने से क्या अभिप्राय है? पहला तो यह कि शिक्षक को प्रत्येक बच्चे को जानना चाहिए। एक बड़ी कक्षा में यह संभव है कि कुछ बच्चों के बारे में शिक्षक को जानकारी नहीं हो। प्रत्येक बच्चे की आवश्यकता है कि शिक्षक उसको जाने और शिक्षक का ध्यान कभी-कभी उसकी ओर आकृष्ट हो। दूसरा, शिक्षक को प्रत्येक बच्चे से इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि उसे लगे कि वह काम का व्यक्ति है। प्रत्येक बच्चे की योग्यताएं, निष्पादन और भावनाएं शिक्षक के लिए महत्व की होनी चाहिए। जो बच्चे आकर्षक हैं और जो नहीं है, पढ़ाई में तेज और पढ़ाई में धीमे, सभी स्वीकरण चाहते हैं। जो भीरू और दब्बू हैं उनकी ओर शिक्षक को विशेष ध्यान देना चाहिए। एक बच्चा जो अपनी धाक जमाने की कोशिश करता है, और जो सदैव लड़ता रहता है उसे भी स्वीकरण चाहिए। जब उसे लगेगा कि उसे स्वीकार किया जा रहा है तब ही वह इन आदतों को छोड़ेगा।

बच्चे जैसे-जैसे स्कूल के विभिन्न अनुभवों के संपर्क में आते हैं और जिनसे उन्हें अपनी सीमाओं का पता चलता है, वे शिक्षक की स्वीकृति और संबल की अपेक्षा करते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक बच्चा गणित में अच्छा नहीं है, तो इस बात को स्वीकार करना आसान होता है यदि वह जाने की शिक्षक के लिए वह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना तेज छात्र।

---

1. Pratibha Deo and S.K. Bhalla, Influence of praise and blame on change of self concepts, **Journal of Psychological Researches**, 1964, 8 (2) 59-67

बच्चे जिन्हें शिक्षक स्वीकार करते हैं इस बात से नहीं डरेंगे कि उनसे कोई गलती न हो जाए। इसलिए वे विभिन्न क्रियाकलापों में विश्वास के साथ भाग ले सकते हैं और इस प्रकार उनकी विभिन्न क्षमताओं का विकास होगा।

प्रारंभिक किशोरावस्था में आत्म संकल्पना का विकास

शारीरिक परिवर्तन

जैसा शारीरिक विकास के अध्याय में देखा गया था ग्यारह वर्ष की अवस्था पर बच्चे में अनेक परिवर्तन होते हैं। लम्बाई तेजी से बढ़ती है और शरीर के अनुपात भी बदलते हैं। इसके कारण किशोर संकोची रहते हैं, और उनके तौर तरीके बढ़ते रहते हैं। अपने रूप-रंग के बारे में वे अति संवेदनशील होते हैं। कैसे दिखाई देते हैं और उनका व्यक्तित्व कैसा है इसके बारे में दूसरों की टिप्पणी का उन पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

आत्म मूल्यांकन (Self Appraisal)

इस आयु पर बच्चे अपनी योग्यताओं का अधिक सावधानी से परीक्षण करते हैं। वे पढ़ाई, खेल और अन्य कार्यों में अपने निष्पादन का मूल्यांकन करते हैं। उनको ऐसे अवसर चाहिए जिनमें वे अपनी क्षमताओं को आजमा सकें और शिक्षक की मदद से अपने-अपने कार्य को आक सकें।

दूसरों से तुलना

इस आयु पर दूसरों से तुलना बहुत महत्वपूर्ण है। अपनी शान जमाने के लिए बच्चे परस्पर स्पर्धा करते हैं। शिक्षक को उन छात्रों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जो सफलतापूर्वक स्पर्धा में भाग नहीं ले पाते।

सामूहिक जीवन (Group Life)

इस आयु पर समूह छोटा हो जाता है। समान अभिरुचियों वाले बच्चे अपना अलग गुट बना लेते हैं। ये गुट काफी समय तक चल सकते हैं, और एक कक्षा से दूसरी कक्षा में कायम रह सकते हैं। इसलिए जो बच्चा इनकी सदस्यता से वंचित रह गया उसका किसी समूह में सम्मिलित किया जाना और भी कठिन हो जाता है। शिक्षक को ऐसे बच्चों की ओर विशेषरुप से सतर्क होना चाहिए और उन्हें किसी समूह में स्वीकार किए जाने में मदद करनी चाहिए।

बच्चे का स्वीकरण (Acceptance of the Child)

इस समय आलोचनात्मक चिंतन विकसित होता है और बड़ों के निर्णयों को बच्चे बिना शंका के स्वीकार नहीं कर लेते। इसलिए वयस्कों से टकराव की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। शिक्षक इसे अशान्ति की आयु मानते हैं। वास्तव में तरुण अपने बारे में विश्वस्त नहीं होते। वे किस प्रकार के व्यक्ति हैं और अपने आपके

प्रति अनुमानों के बारे में उनके मन में संशय रहते हैं। इसलिए शिक्षक को बहुत धैर्यवान, उदार, और स्वीकार करने वाला होना चाहिए।

मुख्य बिन्दु जो शिक्षक को अपने सामने रखने चाहिए

बच्चों को स्वस्थ आत्म संकल्पना विकसित करने के लिए शिक्षक को चाहिए कि वह :

1. प्रत्येक बच्चे को स्वीकार करे।
2. बच्चों को अपनी योग्यता आजमाने और अपने बारे में जानने में मदद करे।
3. बच्चों की एक दूसरे से तुलना करने से दूर रहे।
4. अनावश्यक नुकताचीनी न करे और यह देखे कि जिस बच्चे की गलती निकाली जाती है उसकी कभी प्रशंसा भी की जाती है या नहीं।
5. बच्चों का एक दूसरे के साथ व्यवहार का अवलोकन करना और ऐसे बच्चों की मदद करना जो दूसरों द्वारा स्वीकार नहीं किए जाते या जो दूसरों को स्वीकार नहीं करते।

अध्याय 10

अभिवृत्तियों और मूल्यों का विकास

ईवलिन मार

जो अभिवृत्तियां और मूल्य बच्चे विकसित करते हैं वे उनके व्यक्तित्व में बहुत महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। बच्चे कुछ अभिवृत्तियां और मूल्य लेकर स्कूल आते हैं। जैसे वे बड़े होते हैं इनमें परिवर्तन आ सकता है और नई अभिवृत्तियां और मूल्य सीखे जा सकते हैं।

अभिवृत्तियों का स्वरूप

मदन को स्कूल अच्छा लगता है। वह स्कूल आना पसन्द करता है। गोपाल को स्कूल नापसन्द है, जैसे वह स्कूल के पास आता है, वह बहुत दुःखी हो जाता है। हम कह सकते हैं कि स्कूल के प्रति मदन की सकारात्मक अभिवृत्ति है और गोपाल की नकारात्मक।

जया को प्रशिक्षण कार्यक्रम पसन्द है और उसे उसमें मजा आता है। कमलेश को, यह अच्छा नहीं लगता और वह खिन्न है कि उसने प्रशिक्षण में प्रवेश क्यों लिया। अभिवृत्तियों में सुख या दुःख, पसन्दगी या नापसन्दगी की भावना रहती है। ये दृढ़ या कमजोर हो सकती हैं। उदाहरण के लिए शीला को भी प्रशिक्षण कार्यक्रम पसन्द है किंतु इतना नहीं जितना जया को। इसलिए हम कह सकते हैं कि शीला की प्रशिक्षण के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति तो है किंतु है यह कमजोर।

अभिवृत्तियों का संबंध व्यक्ति के किसी चीज के बारे में सोचने और विश्वास करने से है। जया सोचती है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम अच्छा है और वह उससे कुछ उपयोगी बात सीख रही है। कमलेश सोचती है कि जो कुछ भी पढ़ाया जा रहा है वह बेकार है।

अभिवृत्तियां आचरण को प्रभावित करती हैं। मदन स्कूल जाने को सदैव तैयार रहता है। गोपाल कोई बहाना करके स्कूल जाने से बचना चाहता है। जया परिश्रम कर रही है और प्रशिक्षण में अच्छा कार्य करना चाहती है। कमलेश को इसमें कोई

दिलचस्पी नहीं है, और यदि उसे कोई विकल्प मिला तो वह इसे छोड़ देगी।

लोगों की चीजों, व्यक्तियों और समूहों के प्रति विभिन्न अभिवृत्तियां होती हैं। उनका व्यवहार बहुत कुछ उनकी अभिवृत्तियों द्वारा निर्धारित होता है। कुछ सभी वर्गों के लोगों के साथ घुल मिल जाते हैं क्योंकि उनकी सभी समुदायों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियां हैं। कुछ स्वयं को अपने ही समुदाय तक सीमित रखते हैं।

मुल्यों का स्वरूप

दो डाक्टरों ने साथ-साथ प्रशिक्षण पूरा किया है। दोनों करीब-करीब समान योग्यता के हैं। एक सम्पन्न समुदाय में अपना व्यवसाय शुरू करता है, जहां वह ऊंची फीस लेता है। दूसरा एक गरीब इलाके में दवाखाना खोलता है, जहां वह उन लोगों की मदद करता है जो किसी दूसरे डाक्टर के पास जाने का खर्चा बरदाश्त नहीं कर सकते। ऐसा क्यों? एक डाक्टर रुपये को महत्व देता है, दूसरा लोगों की मदद करने के अवसरों को महत्व देता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति पुजारी बनना चाहता है क्योंकि वह धर्म को सर्वाधिक महत्व देता है, दूसरा कलाकार बनना चाहता है क्योंकि वह कलात्मक मूल्य को प्रधानता देता है। इसके यह अर्थ नहीं हुए कि पुजारी को कला के प्रति कोई लगाव नहीं है, या कलाकार की धर्म के प्रति रुचि नहीं है, किंतु जब चुनने का प्रश्न आएगा तब एक धर्म को अधिमान देगा और दूसरा कला को।

मूल्य वह महत्व है जो व्यक्ति किसी चीज को देता है। जब किसी चीज को व्यक्ति महत्व देता है तो वह उसको पाने के लिए प्रयास करता है। एक व्यक्ति रुपये के लिए, ज्ञान के लिए या दूसरों की मदद करने के लिए कार्य कर सकता है, और यह उसके मूल्यों पर निर्भर करेगा। इसी प्रकार एक व्यक्ति ईमानदार या हौंसले वाला हो सकता है यदि वह इन गुणों को महत्व देता है।

यदि व्यक्ति अपने मूल्यों को प्राप्त कर लेता है तो वह खुशी का अनुभव करता है। जो व्यक्ति रुपये को महत्व देता है, वह रुपये प्राप्त करने पर खुश होगा, और दुःखी जब उसे उतना नहीं मिलता जितना वह चाहता है। एक व्यक्ति जो ईमानदारी को महत्व देता है, यदि अपने मापदण्डों के अनुरूप कार्य नहीं कर पाता तो दुःखी होता है। इस प्रकार अभिवृत्तियों के समान मूल्य भी व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

अभिवृत्तियों और मूल्यों में संबंध

व्यक्ति के भौतिक या मनोवैज्ञानिक पर्यावरण में किसी चीज की ओर अभिवृत्तियां हो सकती हैं। वे किसी व्यक्ति, समूह, संस्था या क्रियाकलाप की ओर हो सकती

हैं। मूल्य आदर्श या उद्देश्य हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयास करता है।[1] मूल्य अभिवृत्तियों की अपेक्षा अधिक व्यापक होते हैं। इनके आधार पर व्यक्ति निर्णय करता है कि किसी चीज को अपेक्षाकृत कितना महत्व दिया जाए या नहीं दिया जाए।

अभिवृत्तियां और मूल्य एक दूसरे से संबंधित हैं। एक व्यक्ति की, जो ज्ञान की प्रगति को मूल्यवान मानता है, अध्ययन के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति होगी। एक व्यक्ति जो सामाजिक न्याय को महत्वपूर्ण मानता है, उसकी अभिवृत्ति सभी समुदायों के प्रति सकारात्मक होगी, विशेषकर वंचित और कमजोर वर्गों के प्रति, जिनकी वह मदद करना चाहेगा। एक व्यक्ति जो अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को मूल्यवान मानता है, निम्न वर्ग के लोगों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, और उनके प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति व्यक्त करता है। जो अभिवृत्तियां व्यक्ति के सर्वोत्तम मूल्यों से संबंधित हैं। वे उसके व्यवहार को निर्धारित करने में अधिक प्रभावी होंगी।

अभिवृत्तियों और मूल्यों का विकास

अभिवृत्तियां और मूल्य अधिकतर हम दूसरों से सीखते हैं। बच्चे उन लोगों की अभिवृत्तियां अपनाते हैं जिनके वे सम्पर्क में आते हैं, विशेषकर उनके जिनके साथ वे एकात्मीकरण (identify) करते हैं। क्योंकि एकात्मीकरण का अभिवृत्तियों और मूल्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण योग है, इसलिए इसके स्वरूप और स्थितियां, जो इसे बढ़ाती हैं, अनका परीक्षण करना आवश्यक है।

एकात्मीकरण का स्वरूप

एकात्मीकरण को परिभाषित करने के लिए हम कह सकते हैं कि यह वह क्रिया है जिसमें अन्य व्यक्ति या समूह की भावना और आचरण को ऐसे ढाला जाता है जैसे कि ये गुण व्यक्ति के अपने स्वयं के हों। सर्वप्रथम एकात्मीकरण माता-पिता या उनके स्थान पर जो व्यक्ति ही उसके साथ होता है। बच्चे अपने माता-पिता के विचार अपना लेते हैं और जो माता-पिता सही और गलत मानते हैं वह वे भी सही और गलत मानने लगते हैं। वे अपने माता-पिता की विशेष योग्यताओं पर गर्व करते हैं और कोई भी अपमान इतना दुखदाई नहीं है जितना किसी के द्वारा माता-पिता की आलोचना करना। जानकर या अनजाने में वे माता-पिता के व्यवहार का अनुकरण करते हैं।

एकात्मीकरण शिक्षकों के साथ भी हो सकता है। यदि शिक्षकों को छात्रों के व्यवहार को प्रभावित करना है तो कुछ हद तक एकात्मीकरण आवश्यक है। किंतु

---

[1] H.L. Kingsley and R. Gary, The Nature and Conditions of Learning, Englewood cleff's N.J. Prentice Hall Inc. 1957

इसके उतने सबल होने की संभावना नहीं है जितना माता-पिता के प्रति होगी।

व्यक्ति विभिन्न समूहों और संस्थाओं के साथ भी तादात्म्य स्थापित करते हैं। इनमें हैं अपनी आयु के स्कूल के हमजोलियों का समूह, स्कूल, अपने धर्म या राज्य के समूह या अपना देश। इस तादात्म्यता का व्यक्ति की वफादारी और आचरण पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है।

एकात्मीकरण को प्रभावित करने वाली स्थितियां

बंदुरा (Bandura)[1] और उनके सहयोगियों ने उन स्थितियों का अध्ययन किया है जो एकात्मीकरण को पोषित करती हैं। एक तो है समानता का बोध। व्यक्ति उन लोगों से एकात्मीकरण करेंगे जिन्हें वे अपने समान देखते हैं। सामान्यतया लड़के अपने पिता के साथ एकात्मीकरण की ओर प्रवृत्त होते हैं, और लड़कियां अपनी माता के साथ। बच्चे उन वयस्कों के साथ एकात्मीकरण करने की ओर प्रवृत्त होते हैं जो उन्हें युवा लगते हैं और जिनकी रुचियां उनके समान होती हैं।

एक दुसरी शर्त है कि व्यक्ति स्नेही और पुरस्कृत करने वाला लगे। बच्चे माता-पिता शिक्षकों और अन्य वयस्कों से अधिक एकात्मीकरण करेंगे जिन्हें वे स्नेही और अपना शुभचिंतक मानते हैं।

तीसरा, उन व्यक्तियों के साथ एकात्मीकरण अधिक होता है जो खुशहाल दिखाई देते हैं। दुर्भाग्यवश अपने देश में अधिक शिक्षक इस दृष्टि से अनुकूल परिस्थिति में नहीं हैं किंतु इससे अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि वे बच्चों को प्रसन्नचित्त दिखाई दें।

अन्ततोगत्वा, एकात्मीकरण उनके साथ होता है जिनके पास अधिकार और प्रतिष्ठा है। जब हमारे देश पर अंग्रेजों का शासन था तब भारतीय अंग्रेजों के साथ एकात्मीकरण करते थे। लड़कियां अकसर पुरुषों के साथ एकात्मीकरण करती हैं जबकि लड़के शायद ही कभी स्त्रियों के साथ एकात्मीकरण करेगें, क्योंकि सामान्यतया पुरुषों में अधिकार और प्रतिष्ठा दिखाई देती है। सौभाग्य से छोटे बच्चों की दृष्टि में शिक्षक के पास अधिकार और प्रतिष्ठा दोनों ही हैं, जो एकात्मीकरण के लिए अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत करते हैं।

एकात्मीकरण करने वाले की कुछ विशेषताएं हैं जो एकात्मीकरण को बढ़ाती हैं। जो लोग असुरिक्षत अनुभव करते हैं और जिनमें हीनता की भावना है, अधिक तत्परता से एकात्मीकरण करते हैं और उनकें एकात्मीकरण अधिक अनम्य होते हैं। जब लोगों में संवेग उत्तेजित हो जाते हैं या जब कोई आम खतरे का भय हो, तब

---

1 .A Bandura and R.H. Walters, **Social Learning and Personality Development,** New York : Holt, Rinchast and Winston Inc., 1963.

एकात्मीकरण अधिक होता है, जैसे युद्ध के समय लोग देश के साथ पूर्णरूपेण तादात्म्य करते हैं।

अब हम देखेंगे कि अभिवृत्तियों और मूल्यों को निमित करने वाले कौन से कारक हैं।

अभिवृत्तियों का विकास

1. अन्य लोगों का प्रभाव

जैसा पहले बताया गया है बच्चे अपने आस-पास के लोगों की अभिवृत्तियां अपना लेते हैं, विशेषकर, उनकी जिनके साथ वे एकात्मीकरण करते हैं। क्योंकि एकात्मीकरण सबसे घनिष्ठ माता-पिता के साथ होता है, माता-पिता का बच्चे की अभिवृत्तियों के निर्माण में काफी प्रभाव पड़ता है। अतः यदि माता-पिता किसी समुदाय को तुच्छ समझते हैं, तो बच्चे भी ऐसा ही सोचते हैं। यदि माता-पिता समझते हैं कि स्कूल एक अच्छी संस्था है, तो बच्चे भी स्कूल सकारात्मक अभिवृत्ति लेकर जाएंगे। बाद में उनकी अभिवृत्तियां, शिक्षकों, सहपाठी और अन्य जिनके वे सम्पर्क में आते हैं उनसे प्रभावित होंगी।

एकात्मीकरण का एक प्रभाव यह भी होता है की यदि व्यक्ति समूह या संस्था से एकात्मीकरण करता है, वो उसके प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियां विकसित करता है।

2. जानकारियां प्राप्त होना

किसी व्यक्ति या चीज के बारे में जानकारी अभिवृत्ति पर प्रभाव डालती है। यदि बच्चे सुनते हैं कि किसी समुदाय के व्यक्ति गन्दे या चालाक हैं, वे उस समुदाय के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति बनाते हैं। इसके विपरीत, यदि किसी समूह के बारे में अच्छी बातें सुनते हैं, जैसे, वे दूसरों की मदद करते हैं, ईमानदार हैं, इत्यादि, तो उस समूह के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति बनती है। व्यक्तियों और समुदायों के बारे में माता-पिता, शिक्षकों और हमजोलियों की टिप्पणियां तथा जो धारणाएं किताबों में वे पढ़ते हैं, उनके आधार पर अभिवृत्तियां बनती हैं। उदाहरण के लिए कहानी के नायक और नायिका सदैव सुन्दर होते हैं, खलनायक भद्दा होता है और सौतेली मां निर्दय और बदमिजाज होती है। अफ्रीका और एशिया के बारे में पाश्चात्य देशों में बनी फिल्मों और कहानियों में केवल गोरा आदमी ही समझदार व्यक्ति दिखाया जाता है। ऐसी बातों का कोई वास्तविक आधार नहीं होता है, किंतु ये बच्चों की अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं।

3. प्रिय और अप्रिय अनुभव

एक स्कूल में दो पारसी लड़कियां पढ़ती हैं। एक नवीं कक्षा में है। वह बहुत मृदु स्वभाव की है और दूसरों की मदद करने को तत्पर रहती है। उसके साथ इन

सुखद अनुभवों के कारण उसकी कक्षा की लड़कियां उसे पसन्द करती हैं और पारसियों के प्रति उनकी सकारात्मक धारणाएं बनती हैं। दूसरी लड़की पांचवीं कक्षा में पढ़ती है। वह बहुत स्वार्थी और लड़ाकी है। उसकी कक्षा की लड़कियां उसे पसन्द नहीं करतीं और उनकी पारसियों के प्रति भी नकारात्मक अभिवृत्तिक बन जाती है। अपने अनुभव के आधार पर नवीं की लड़कियों और पांचवीं की लड़कियों के, एक ही समुदाय के प्रति, बिलकुल विपरीत अभिवृत्तियां बनती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिवृत्तियां बिलकुल असंगत हो सकती हैं और पूर्वाग्रह को जन्म दे सकती हैं।

एक स्कूल में आठवीं के छात्रों को इतिहास की कक्षा अच्छी लगती थी और उनमें से बहुत से इतिहास को पसन्द करने लगते हैं। जब वे नवीं कक्षा में आए, उनका इतिहास का शिक्षक बहुत कठोर था। इतिहास की कक्षा से छात्रों को डर लगने लगा और इतिहास के प्रति अरुचि होने लगी। आठवीं कक्षा के उनके प्रिय अनुभवों से विषय के प्रति पसन्दगी उत्पन्न हुई और नवीं के अप्रिय अनुभवों के कारण नापसन्दगी। इस प्रकार प्रिय और अप्रिय अनुभव अभिवृत्तियों पर असर डालतें है।

4. आवश्यकताएं और इच्छाएं

आवश्यकताएं और इच्छाएं अभिवृत्तियों पर प्रभाव डालती हैं। मदन टीम के खेल खेलना सीखना चाहता है। स्कूल उसे यह अवसर देता है और इसलिए उसे स्कूल पसन्द है। गोपाल को घर पर खेलना पसन्द है। स्कूल उसे घर से दूर करता हैं और इसलिए स्कुल उसे नापसन्द है।

मूल्यों का निर्माण

1. दूसरों का प्रभाव

अभिवृत्तियों के समान मूल्य भी उन लोगों से प्रभावित होते हैं जिनसे व्यक्ति एकात्मीकरण करता है। क्योंकि माता-पिता से एकात्मीकरण सबसे मजबूत होते हैं। माता-पिता का सबसें अधिक प्रभाव मूल्यों पर पड़ता है, विशेषकर प्रारंभिक वर्षों में। यदि माता-पिता सादगी को मूल्य वान मानते हैं, बच्चे भी उसे मूल्यवान मानेंगे, यदि माता-पिता बाहरी आडम्बर को मूल्यवान मानते हैं, बच्चे भी इस मूल्य को अपनाएंगे। इसी प्रकार, अनेक मूल्य हैं जैसे ज्ञान, दौलत प्रतिष्ठा या दूसरों की मदद करना और इनमें से कोई भी बच्चे अपने माता-पिता के मूल्यों का अनुसरण करके अपना लेंगे।

बाद में बच्चे उन लोगों के मूल्यों से प्रभावित होंगे जिनका उनसे सम्पर्क घर के बाहर होता है, विशेषकर, शिक्षक और हमजोली।

जिन व्यक्तियों के बारे में वे पढ़ते हैं या सुनते हैं उनके मूल्यों का भी बच्चों

पर प्रभाव पड़ता है। यदि वे उनसे एकात्मीकरण करते हैं। किताबें, 'कामिक्स' (Comics) रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा सभी विभिन्न मान्य व्यक्तियों की तस्वीरें प्रस्तुत करते है। बच्चे उन लोगों के साथ एकात्मीकरण करेंगे जिनमें उन्हें कुछ समानता दिखाई देती है, जिनके पास अधिकार और प्रतिष्ठा है, और जो जीवन की साधन सुविधाओं का उपयोग कर रहे हैं। अतः कहानियों की पुस्तिकाएं (Comic strips) जिनमें नायक शक्तिशाली सफल और भलाई के कार्य करने वाला दिखाया गया है उनका अपना लाभ है। इसी प्रकार कहानियां, जिनमें अच्छाई पुरस्कृत और बुराई दण्डित होती है, के अपने लाभ हैं।

2. आवश्यकताएं (Needs)

मूल्य आवश्यकताओं के आधार पर भी निर्मित होते हैं। यदि हमें किसी चीज का अभाव महसूस होता है तो वह हमारे लिए महत्वपूर्ण होगी। गरीब घर के बच्चे भोजन को मूल्यवान मानते हैं जबकि धनीवर्ग के बच्चों को भोजन करने के लिए फुसलाना पड़ता है। जिन्हें सुरक्षा की आवश्यकता है वे सुरक्षा को मूल्य देंगे। जिन्हें सम्मान चाहिए वे उसके लिए कार्य करेंगे। यदि मूल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तो उत्कृष्ट मूल्य निर्मित करना कठिन होगा। उदाहरण के लिए अकसर शिक्षक से सम्मान प्राप्त करने के लिए बच्चा कार्य करता है, न कि कार्य में रुचि के कारण। एक व्यक्ति जिसे सुरक्षा चाहिए वह ऐसी नोकरी करेगा जिसमें सुरक्षा है, जबकि दूसरा, जो सुरक्षित अनुभव करता है, ऐसी नोकरी पसन्द करेगा जिसमें वह अपनी योग्यताओं का लाभ उठा सके।

3. संतोषप्रद अनुभव

संतोषप्रद अनुभवों से मूल्य विकसित होते हैं। प्रारंभिक वर्षों से जैसे बच्चा चलना, बोलना सीखता है उसकी प्रशंसा होती है। स्कूल में निष्पादन पुरस्कृत होता है। इसलिए बच्चा निष्पादन को मूल्यवान मानने लगता है। यदि बच्चों के आपसी संबंध अच्छे हैं तो वे मानवीय संबंधों को मूल्यवान मानने लगते हैं। कोई भी बच्चा जन्म से रुपये-पैसे को मूल्यवान नहीं मानता, किंतु जैसे वे बड़े होते हैं, वे देखते हैं कि रुपया बहुत से संतोष प्रदान करता है, इसलिए सभी मनुष्य रुपये को कुछ कम या अधिक मूल्यवान मानने लगते हैं।

4. नैतिक शिक्षण

नैतिक मूल्यों को मन में स्थापित करने का माता-पिता और शिक्षकों का परंपरागत तरीका मौखिक शिक्षण है। यह कहां तक प्रभावी होता है यह स्पष्ट नहीं है। यदि बच्चे किसी व्यक्ति के प्रभुत्व को स्वीकार करते हैं, तो शायद उसके कहने का अधिक प्रभाव पड़ेगा। ऐसे व्यक्ति माता-पिता, शिक्षक या सामाजिक और धार्मिक

नेता हो सकते हैं। फिर भी, कहने की आवश्यकता नहीं है, कि यदि ये व्यक्ति जो उपदेश देते हैं उसका अच्छा दृष्टान्त प्रस्तुत नहीं करते, तो बच्चे ऊपरी तौर से उन्हें स्वीकार कर लें किंतु समभुच में स्वीकार नहीं करेंगे।

उपसंहार

संक्षेप में अभिवृत्तियों में किसी चीज, व्यक्ति या समूह के प्रति प्रिय या अप्रिय भावनाएं, पसंन्दगी या नापसन्दगी होती है। ये व्यक्ति के विश्वासों से संबंधित रहते हैं और आचरण को प्रभावित करते हैं। मूल्य वह महत्व है जो व्यक्ति किसी चीज को देता है।

अभिवृत्तियां दूसरों से सीखी जाती हैं। इन पर, जो जानकारी प्राप्त होती है, जो प्रिय और अप्रिय अनुभव होते हैं जो संतोष प्राप्त होता है या आवश्यकताओं का वंचन होता है, उनका प्रभाव पड़ता है। मुल्य दूसरों से सीखे जाते हैं, कुछ का आधार आवश्यकताएं होती हैं। इन पर संतोषप्रद अनुभवों का प्रभाव पड़ता है और उन लोगों की शिक्षा, जो प्रभुता में है सरलता से स्वीकार की जाती है।

अध्याय 11

विकास के सिद्धान्त

फ्रेनी जेड तारापौर

बच्चों के साथ कार्य करने वाले विशेषज्ञों ने अब इस बात को मान लिया है कि बच्चों के साथ समझदारी से बरताव करने के लिए उनके विकास और वृद्धि की पूरी जानकारी होनी चाहिए। इसके कारण मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में जैसे, बाल विकास, शिक्षा, बालचिकित्सा, सामाजिक कार्य और पोषण में कार्यरत व्यक्तियों को यह महसूस हुआ है कि बाल विकास के प्रत्येक पक्ष का वैज्ञानिक अध्ययन करें। बच्चों के अवलोकन से जो वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त हुआ उनसे विकास के कुछ प्रतिरूप निकल कर सामने आए हैं, और जो भी वयस्क बच्चों के साथ कार्य करना चाहता है उसे इनकी जानकारी होनी चाहिए। इन सिद्धान्तों के आधार पर वयस्कों को पता लगेगा कि बच्चों का विकास किस प्रकार होता है, कब और किस बात की उनसे अपेक्षा की जानी चाहिए, और अनुकूलतम विकास के लिए कैसे उनका निर्देशन और पर्यावरण मुहैया कराया जाए।

वृद्धि, परिपक्वता और विकास, ये शब्द हैं जिनका बहुधा उपयोग होता है। वृद्धि से मतलब है आकार में परिवर्तन। एक बच्चा लम्बाई में बढ़ता है, उसकी हड्डियां, पेशियां और शरीर के अन्य भाग आकार में बढ़ते हैं। वृद्धि से बच्चे की कार्यकुशलता बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए जैसे बच्चा बड़ा होता है उसके पाचन क्षेत्र का आकार बढ़ जाता है, और वह अधिक दूध पी सकता है।

परिपक्वता वृद्धि से बढ़कर है। इसमें गुणात्मक परिवर्तन होते हैं। परिपक्वता में जिन निहित गुणों को लेकर व्यक्ति पैदा होता है, उनका प्रस्फुटन होता है। जैसे बच्चा बड़ा होता है उसकी बुद्धि और शरीर परिपक्व होते हैं और अब वह अधिक ऊँचे स्तर पर कार्य कर सकता है। अधिक ऊँचे स्तर पर कार्य करने की इस योग्यता को तत्परता (readiness) भी कहते हैं। जैसे-जैसे बच्चों का शरीर परिपक्व होता है वे पहले रेंगते, फिर बैठते, और बाद में खड़े होते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य

क्रियाकलाप जैसे बोलना, पढ़ना और लिखना बच्चे सीखते हैं जब वे उसके लिए तत्पर होते हैं।

विकास में प्रगामी (progressive) नियमित और अर्थपूर्ण परिवर्तन होते हैं, जो प्रौढ़ता के लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। परिवर्तनों के प्रगामी होने से अभिप्राय यह है कि वे एक निश्चित दिशा में बढ़ते हैं और वयस्कता तथा प्रौढ़ता की ओर पहुंचाते हैं। वे बेतरतीब न होकर क्रमबद्ध होते हैं यानि वे एक निश्चित क्रम से होते हैं। वे अर्थपूर्ण होते हैं जिससे व्यक्ति अधिक ऊँचे स्तर पर कार्य कर पाता है। विकास के दौर से गुजरते हुए एक असहाय शिशु वयस्क बन जाता है जो अपने पर्यावरण को समझता है, विभिन्न शारीरिक और बौद्धिक कार्यों को कर सकता है, और अन्य लोगों से संबंध स्थापित कर पाता है।

विकास परिपक्वता और अधिगम का उत्पाद है। ऐसे कुछ क्रियाकलाप हैं जिन्हें बच्चे, यदि उन्हें आवश्यक परिपक्वता प्राप्त करने के बाद सीखने के अवसर मिलें, कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, लिखने की क्रिया एक जटिल क्रिया है, जिसके लिए शरीर के विभिन्न अंगों की तत्परता चाहिए। ये अंग ऐच्छिक फल प्राप्त करने के लिए एक समन्वित ढंग से कार्य करने चाहिए। लिखने की क्रिया में आँखें, हाथ, उंगलियां और अंगूठे के बीच समन्वय होना चाहिए। जो बच्चा लिखने की कोशिश कर रहा है वह सफल होगा जब उसकी आँखें लिखने पर फोकस (focus) कर सकें और उंगलियां अक्षरों की सही आकृति बना सकें। स्मृति का भी इसमें कार्य है। बच्चे अक्षरों की शक्लें याद रख सकें। इसके अलावा आवाज में सूक्ष्म अन्तरों को पहचान सकना जैसे 'जै' और 'ज' में, और एक जगह पर बैठकर लिखने के कार्य पर ध्यान केन्द्रित कर सकना भी आवश्यक है। यदि इन सब के लिए बच्चा तत्पर है तो वह लिखने का कौशल थोड़े समय में सीख लेगा। परिपक्वता या तत्परता सीखने के लिए आवश्यक है, और सीखने से विकास आगे बढ़ता है। जब बच्चा कोई भाषा सीखता है तो इससे उसकी बुद्धि विकसित होती है, और इससे वह आगे सीखने के लिए तत्पर होता है। जब उसकी पेशियां काटने, गुरिया पिरोने, आदि कौशलों को सीखने के लिए तत्पर होती हैं तब इन्हें सिखाया जा सकता है और इनके सीखने से पेशियों को नियंत्रित करने का विकास होता है।

विकास के सिद्धान्त

1. विकास एक प्रतिरूप का अनुसरण करता है

प्रकृति में प्रत्येक प्राणी विकास के एक प्रतिरूप का अनुसरण करता है। यही बात मानव पर लागू होती है। मनुष्य गर्भाधान से प्रौढ़ता तक पहुंचने के लिए एक व्यवस्थित क्रम से बढ़ता और विकसित होता है। शरीर के प्रत्येक अवयव और अंग

के विकास में एक सुव्यवस्थित प्रतिरूप मिलता है। जैसे दाँतों के निकलने में पहले कृन्तक (incisor) निकलते हैं और बाद में दाढ़ (molar) नीचे के कृन्तक ऊपर के कृन्तक के पहले निकलते हैं। हड्डियों का कड़ा होना शरीर के विभिन्न भागों में विभिन्न गति से होता है। सिर के कोमल भाग या कालान्तराल (fontanels) पहले जुड़ते हैं। पैर की हड्डियां यौवनारंभ पर कड़ी होती है।

विकास 'सिफेलोकाडल' (cephalocaudal) और 'प्राक्सिमोडिस्टल' (proximodistal) क्रम का अनुसरण करता है। 'सिफेलोकाडल' का अर्थ है कि विकास सिर से नीचे की ओर होता है। सिर का विकास पहले होता है और यह बहुत महत्व की बात है, क्योंकि मस्तिष्क बहुत महत्वपूर्ण अवयव है जो शरीर के अंगों को नियंत्रित करता है। धड़ का विकास इसके बाद होता है और धड़ के बाद टांगों का विकास होता हैं। शिशु पहले अपनी ठुड्डी उठा पाता है और बाद में छाती। जैसे पीठ की पेशियों पर उसका नियंत्रण बढ़ता है, वह पलटने और फिर बैठने लगता है। इसके बाद टांगों की पेशियों पर नियंत्रण प्राप्त करता है और रेंगना, खड़े होना और चलना सीखता है।

'प्राक्सिमोडिस्टल' के अर्थ हैं कि विकास पहले शरीर के बीच के भाग में हीता है और फिर किनारे की ओर जाता है जो भाग शरीर के मध्य के समीप है, उनका विकास पहले होता है और जो भाग दूर हैं उनका विकास बाद में होता है। इस प्रकार बच्चा पहले कंधे की पेशियों पर नियंत्रण प्राप्त करता है, फिर कोहनियों पर, इसके बाद कलाई पर, और अन्त में उंगलियों पर नियंत्रण प्राप्त करता है।

2. विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है

बच्चे की प्रारंभिक अनुक्रियाएं बहुत सामान्य होती हैं। इनका स्थान क्रमशः विशिष्ट अनुक्रियाएं ले लेती हैं। जब घुनघुना शिशु को दिखाया जाता है तो वह अपनी भुजाएं हिलाता-डुलाता है, साथ ही साथ उसके पैर भी चलते हैं। बाद में इन असमन्वित गतिविधियों के स्थान पर वह केवल अपनी बांह बढ़ाता है और घुनघुने को पकड़ लेता है। यही बात भाषा विकास में देखने में आती है। भाषा के प्रारंभिक विकास में बच्चा कोई एक ही शब्द 'खाने' के किसी भी पदार्थ के लिए प्रयोग करता है। जैसे उसका शब्द भंडार बढ़ता है वह विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करने लगता है।

3. विकासात्मक प्रतिरूप में अवस्थाएं हैं

कुछ लक्षण और विशेषताएं व्यक्ति के जीवन में किसी-किसी अवस्थाओं पर विशिष्ट और सुस्पष्ट दिखाई देती हैं। प्रत्येक दशा (phase) को विकासात्मक कालखंड (developmental period) कहेंगे। गर्भाधान से यौन परिपक्वता प्राप्त करने तक की अवधि को विकासात्मक कालखंडों में विभाजित किया जाता है। ये हैं :

1. प्रसवपूर्व काल गर्भाधान से जन्म तक
2. शैशव (infancy) जन्म से 2 वर्ष तक
3. पूर्व बाल्यावस्था (early childhood) 2 से 5 वर्ष तक
4. मध्य बाल्यावस्था (middle childhood) 5 से 9 वर्ष तक
5. उत्तर बाल्यावस्था (later childhood) 9 से 11 या 12 वर्ष तक
6. किशोरावस्था (adolescence) 12 से 19 वर्ष तक

ये अवस्थाएं मोटे तौर पर अनुमानित हैं। प्रत्येक दशा में कालखंड है जब बच्चा अच्छा समंजन कर लेता है। इसे सन्तुलन (equilibrium) का काल कहते हैं। इस समय में बच्चे को सम्हालना आसान होता है और उसके साथ रहना आनन्ददायक होता है। किंतु इसके विपरीत ऐसे कालखण्ड भी आते हैं जब बच्चे को समंजन में कठिनाई होती है, वह सहयोग नहीं करता और वयस्कों को, उसके साथ व्यवहार करनें में कठिनाई होती है। ये काल कहलाते हैं असन्तुलन (disequilibrium) के कालखण्ड। किसी विकास कालखण्ड की कुछ समस्याएं ठेठ (typical) होती हैं और इसलिए, इनको विकासात्मक समस्याएं (developmental problems) कहते हैं। लगभग दो साल की आयु पर बच्चे नकारवृत्ति प्रदर्शित करते हैं और वयस्क जो कुछ भी उनसे करने को कहते हैं बच्चे का जबाव होता है 'नहीं'। झुंझलाना और मचलना (temper tantrum) जिसका उपयोग अकसर गुस्से को व्यक्त करने में होता है, दो से चार वर्ष की आयु में आम देखने में आता है। समय गंवाना (dawdling) जिसमें बच्चे कार्य बहुत सुस्ती से करते हैं, मध्य बाल्यावस्था के प्रारंभ में आम व्यवहार है।

4. विकास लगातार चलता है

यद्यपि विकास विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है, यह लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। शरीर और आचरण के प्रतिरूपों में परिवर्तन जीवन पर्यन्त चलता है। कभी विकास की गति धीमी हो जाती है और कभी तेज। यह कभी रुकता नहीं। प्रत्येक प्रकार के आचरण का प्रकट होना उसके पहले के विकास पर निर्भर करता है। ऐसा लगता है कि बच्चे ने एकाएक पहला शब्द बोला। किंतु इसके पहले वह भाषा विकास की कई अवस्थाओं से गुजर चुका होता है। जैसे आवाज निकालना, रोना, कूजना (cooing) और किसी आवाज को बार-बार दोहराना (babbling)।

5. प्रारंभिक विकास बाद के विकास से अधिक महत्वपूर्ण है

बाद का विकास प्रारंभिक विकास पर स्थित है। प्रत्येक अवस्था बच्चे को आगे आने वाली अवस्था के लिए तैयार करती है। जो विकास एक अवस्था पर होता है, वह बाद की अवस्थाओं को प्रभावित करता है।

शुरू के वर्षों में विकास बाद के विकास की बुनियाद है। यह कहावत कि 'जैसा पौधा मुड़ा हो उसी तरह पेड़ भी झुका है'।[1] इसी सिद्धान्त को प्रतिबिम्बित करती है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रारंभिक अनुभवों का बच्चे के जीवन पर प्रभाव का अवलोकन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसका प्रभाव बहुत गहरा होता है। उदाहरण के लिए जिन बच्चों की मूल अवश्यकताओं की पूर्ति हुई है, और जिनका प्रारंभिक जीवन सुखी रहा है, उनके बाद के वर्षों में स्वस्थ व्यक्तित्व प्राप्त करने की संभावनाएं अधिक हैं। जबकि बच्चे, जो ऐसे परिवारों से आते हैं जहां लोगों के बीच काफी संघर्ष और मनमुटाव रहता है उनके असमंजित होने की संभावना अधिक है। बच्चे जिन्हें प्रारंभिक वर्षों में काफी समय तक अपर्याप्त आहार मिला दुर्बल रहते हैं।

6. शरीर के विभिन्न भाग विभिन्न गति से विकसित होते हैं

शैशव काल में शरीरिक विकास बहुत तीव्र गति से होता है, पूर्व-बाल्यावस्था में यह कुछ धीमा हो जाता है और मध्य-बाल्यावस्था में काफी धीमा हो जाता है। पूर्व-किशोरावस्था और किशोरावस्था में वृद्धि की फिर से लहर आती है। अठारह से बीस वर्ष तक अधिकतम वृद्धि हो जाती है। इसके बाद वृद्धि न्यूनतम होती है।

शरीर के सभी भागों में विकास एक समान नहीं होता। कुछ अवयव अपना अधिकतम आकार और वजन अन्य अवयवों की अपेक्षा पहले प्राप्त कर लेते हैं, जैसे मस्तिष्क अपना अधिकतम आकार नौ वर्ष की आयु तक प्राप्त कर लेता है। पूर्व-किशोरावस्था में टांगें और भुजाएं तेजी से बढ़ती हैं। जिससे व्यक्ति दुबला-पतला और बेढंगा लगता है।

जब बच्चे चलना सीखते हैं तो भाषा विकास धीमा पड जाता है। वे अपनी सारी शक्ति चलने में लगाते हैं। जब वे इस पर काबू पा लेते हैं, तब शब्द भण्डार में द्रुत वृद्धि देखी गई है। स्कूल के वर्षों में जब शारीरिक वृद्धि बहुत तीव्र होती है तब इसका स्कूल के कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि बच्चा तीव्र शारीरिक विकास के समय शीघ्र थक जाता है।

7. विकास में व्यक्तिगत अन्तर हैं

यद्यपि सभी बच्चे विकास में एक ही प्रतिरूप का अनुगमन करते हैं, प्रत्येक बच्चे की विकास की अपनी गति होती है। यह गति जैसी प्रारंभ में है वैसी ही बाद में भी बनी रहती है, यानि जो शैशव में आगे है उनमें बाद में भी विकास की गति तेज रहती है।

---

1 "As the twig is bent, so the tree is inclined."

विकास के विभिन्न पक्षों में समन्वय होता है। यदि बच्चा एक पक्ष में तीव्र गति प्रदर्शित करता है तो यह बात अन्य पक्षों पर भी लागू होगी।

8. विकास का भविष्य कथन किया जा सकता है

विकास का भविष्य कथन किया जा सकता है, क्योंकि विकास एक प्रतिरूप का अनुसरण करता है। एक विशिष्ट अनुक्रम से बच्चा बड़ा होता है। विकास की प्रत्येक अवस्था अगली अवस्था की ओर ले जाती है जो पहली से अधिक जटिल होती है। कभी-कभी किसी मामूली अवस्था को बच्चा लांघ सकता है, जैसे बिना घुटने-घुटने चले, सीधे खड़े होने और कुछ कदम चलने लगे, किंतु विकास की मुख्य अवस्थाओं से सभी गुजरते हैं।

क्योंकि बच्चे के व्यक्तिगत विकास की गति में समरूपता है, यह संभव है कि हम अनुमान लगा सकें कि प्रत्येक बच्चे का विकास किस प्रकार आगे बढ़ेगा।

विकासात्मक कार्य

एक व्यक्ति को जीवन में अनेक चीजें सीखना जरूरी होता है। यह क्रम जन्म से वृद्धावस्था तक चलता है और अनेक नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन करना पड़ता है। शिशु को, अपने जीवन के शुरू के भाग में, माँ के दूध पर निर्भर रहने के स्थान पर अन्य आहार ग्रहण करना सीखना होता है। पहले वर्ष के अन्त तक उसे चलना और बोलना सीखना होता है। तीन वर्ष की आयु पर माता-पिता यह अपेक्षा करते हैं कि वह अन्य बच्चों के साथ खेले और अपने खिलौनों को औरों को भी दे। जब व्यक्ति काम की दुनियाँ में सेवारंभ करता है तब उससे अपनी नौकरी या व्यवसाय के कौशल सीखने की अपेक्षा की जाती है। सेवा-निवृत्त होने पर वह सीमित बचत के अन्दर जीवन निर्वाह करना सीखता है।

विभिन्न आयु पर व्यक्ति से अपेक्षाएं एक समाज से दूसरे समाज में अलग-अलग होती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे से कृषि संबंधी कौशलों को सीखने की अपेक्षा की जाती है, काश्मीरी बच्चा काफी छोटी आयु से ही कढ़ाई सीखता है, और बुनकर समुदाय के बच्चे से टोकरी और चटाई बुनने की अपेक्षा की जाती है। आर्थिक दृष्टि से वंचित समुदायों में यह अपेक्षा की जाती है कि छोटी आयु से वे ऐसे कौशल सीख लेंगे जिसके द्वारा वे परिवार की आय को बढ़ाने में योग दे सकें। सम्पन्न परिवारों के शहरी बच्चों की अपेक्षाएं बिलकुल अलग हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे नियमित स्कूल जाएंगे और सुचारू ढंग से शैक्षिक कार्य करेंगे, साथ ही साथ खेल और सांस्कृतिक क्रियाकलापों में भी भाग लेंगे।

जो व्यक्ति समाज की अपेक्षाओं के अनुरूप कार्य करता है उसकी समाज सराहना

करता है और पुरस्कृत करता है। इसके अलावा उसे यह लगता है कि उसने कुछ उपलब्ध किया। किसी कार्य को सीखने का एक और लाभ यह भी है कि यह अगले कार्य को, जो पहले वाले से थोड़ा अधिक कठिन होता है, सीखने में मदद करता है।

हैवीघर्स्ट (Havighurst)[1] ने, जो कार्य व्यक्ति को आयु के विभिन्न समय पर सीखने होते हैं विकासात्मक कार्य कहा है, क्योंकि इन्हें विकास की विशिष्ट अवस्था पर सीखना होता है। हैवीघर्स्ट की परिभाषा के अनुसार, 'विकासात्मक कार्य वह कार्य है जो व्यक्ति के जीवन के विशिष्ट के कालावधि पर या उसके आसपास उठता है, जिसके सफल निष्पादन से सुख और आगे आने वाले कार्यों में सफलता मिलती है, जबकि असफलता से व्यक्ति को दुःख और समाज की अस्वीकृति मिलती है और आगे आने वाले कार्यों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।[2]

कुछ कार्य शरीर की परिपक्वता पर निर्भर करते हैं जैसे चलना सीखना। अन्य कुछ कार्य व्यक्ति के मूल्यों और अभिलाषाओं पर निर्भर करते हैं, जैसे किसी व्यवसाय के लिए तैयारी करना।

विकासात्मक कार्यों की संकल्पना शिक्षकों और बच्चों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। विकासात्मक कार्य शारीरिक परिपक्वता पर आधारित है, यानि जब शरीर सीखने के लिए तत्पर हो, और जब समाज बच्चे से विशेष कार्यों के करने की अपेक्षा करता हो। इसको हम कहते हैं शिक्षणीय क्षण (teachable moment) यानि अब बच्चा एक विशिष्ट कार्य को सीखने को तैयार है। शिक्षक को शिक्षणीय क्षणों से अवगत होना चाहिए और ऐसी योजना बनानी चाहिए कि जब बच्चा तैयार हो उस अवस्था पर उपयुक्त शैक्षिक अनुभव प्रस्तुत किए जाएं। यदि ठीक समय पर सिखाया जाएगा तो बच्चे कम समय में कार्य सम्पादन कर सकेंगे । यह छोटे नौसिखिया बच्चे को संतोष और खुशी प्रदान करेगा। इसके विपरीत यदि कोई कार्य सिखाया जाए जिसके लिए बच्चा तैयार नहीं है, उसे सीखने में बहुत समय लगेगा और कार्य के प्रति नापसन्दगी भी पैदा होगी। इसके परिणामस्वरूप, इसी से संबंधित बाद के कार्यों में यह बाधा बनकर आयेगा।

बच्चों को एक अल्पावधि में बहुत कुछ सीखना होता है। इसलिए जो सीमित समय शिक्षक को मिलता है, उसका उपयोग अधिक अच्छा होगा यदि वह विकासात्मक कार्य की संकल्पना का होशियारी से प्रयोग करे। हैवीघर्स्ट के अनुसार प्रारंभिक और मध्य-बाल्यकाल के कार्य निम्नलिखित हैं :

---

[1] R.J. Havighurst, **Developmental Tasks and Education,** New York: Dabid Makey Co., 1952.

[2] Havighurst has defined "developmental task as a task which arises at or about a certain period in the life of the individual, successful achievement of which leads to his happiness and/to success with later tasks, while failure leads to unhappiness in the indivisual by the society and difficulty with later tasks."

शैशव और पूर्व-बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्य

1. चलना सीखना।
2. ठोस पदार्थ को खाना सीखना।
3. बोलना सीखना।
4. शरीर के मल निष्कासन पर नियंत्रण सीखना।
5. यौन अन्तरों और यौन संबंधी लज्जा (sexual modesty) सीखना।
6. शरीर की क्रियात्मक (physiological) स्थिरता प्राप्त करना।
7. सामाजिक और भौतिक वास्तविकता की सामान्य संकल्पनाएं बनाना।
8. माता-पिता, भाई-बहन और अन्य लोगों के साथ भावात्मक संबंध स्थापित करना।
9. उचित और अनुचित में अन्तर कर सकना और अंतःकरण का विकास।

मध्य-बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्य

1. साधारण खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशलों को सीखना।
2. बढ़ते हुए प्राणी के रूप में अपने प्रति स्वास्थ्यकर अभिवृत्ति (wholesome attitude) बनाना।
3. अपनी आयु के साथियों के साथ मिल कर रहना।
4. उपयुक्त पुरुषोचित (masculine) या स्त्रियोचित (faminine) सामाजिक रोल (role) सीखना।
5. पढ़ने, लिखने और हिसाब के मूल कौशलों को विकसित करना।
6. दिन-प्रति-दिन के जीवन की आवश्यक संकल्पनाओं को विकसित करना।
7. अन्तःकरण, नैतिकता और मूल्यों के मापदण्डों (scale of values) को विकसित करना।
8. आत्मनिर्भरता विकसित करना।
9. सामाजिक समूहों और संस्थाओं के प्रति अभिवृत्तियां विकसित करना।

अध्याय 12

विकास को प्रभावित करने वाले कारक

रविता देवेन्द्रनाथ

हम जानते हैं कि विकास का प्रतिरूप सभी के लिए एक जैसा होता है, फिर भी, कोई दो मनुष्य एक से नहीं होते। ये अन्तर किन कारणों से होते हैं? वे कौन से कारक हैं जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति का विकास विशिष्ट होता है?

दो मुख्य प्रभाव को विकास जो निर्धारित करते हैं आनुवंशिकता और पर्यावरण हैं। बच्चे को आनुवंशिकता नर और मादा जनन कोशिकाओं के मिलन से निर्मित कोशिका से प्राप्त होती है। यही आगे चलकर शिशु का रूप लेती है। इसके बाद के प्रभाव पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं। गर्भावस्था में माँ का स्वास्थ्य, उसकी मानसिक स्थिति, जन्म के समय की स्थिति; ये सब पर्यावरण के प्रभाव हैं। जन्म के बाद बच्चा जैसे बड़ा होता है भौतिक और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण विकास को प्रभावित करते हैं।

आनुवंशिकता और पर्यावरण अलग-अलग प्रभाव नहीं डालते, किंतु जैसा हम देखेंगे ये पारस्परिक-क्रिया करते हैं।

आनुवंशिकता का प्रभाव

सूक्ष्मदर्शनी जनन कोशिकाओं में जो आनुवंशिकता होती है उसके दूरगामी प्रभाव होते हैं। हमारे वर्तमान ज्ञान की स्थिति में यह कहना कठिन है कि आनुवंशिकता का सब विशेषताओं पर कहां तक प्रभाव पड़ता है, किंतु कुछ पर ये प्रभाव स्पष्ट हैं।

आनुवंशिकता बच्चे का लिंग निर्धारित करती है। यह एक विशेष गुणसूत्र (chromosome) के जोड़े पर निर्भर करता है। मादा जनन कोशिकाओं में या डिम्ब में X गुण सूत्र होता है। नर जनन कोशिका यानी शुक्राणु में कुछ ऐसे होते हैं जिन में X गुणसूत्र और कुछ जिनमें Y गुणसूत्र होता है। यदि डिम्ब X गुणसूत्र

वाले शूक्राणु से संसेचित होता है तो लड़की होती है, और यदि डिम्ब Y गुणसूत्र वाली कोशिका द्वारा संसेचित होता है तो लड़का होगा।

बहुत सी शारीरिक विशेषताएं जैसे आँख का रंग, मुख की आकृति, रक्त का प्रकार (type), शरीर का गठन, शारीरिक विशेषताएं और विकृतियां वंशागत हैं।

ऊंचाई मुख्यतः आनुवंशिकता द्वारा निर्धारित होती है, किंतु पूरी ऊंचाई प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अच्छा स्वास्थ्य और आहार भी चाहिए। किंतु यदि आनुवंशिकता के कारण एक व्यक्ति ऊंचाई में छोटा है तो पूरक आहार से उसकी ऊंचाई थोड़ी तो बढ़ सकती है, किंतु कितना भी भोजन क्यों न दिया जाए, वह व्यक्ति लम्बे व्यक्तियों की गणना में नहीं आ सकेगा। इसके विपरीत यदि आनुवंशिकता से वह लम्बा है तो थोड़ा अपर्याप्त भोजन मिलने पर भी वह लम्बा होगा।

निम्नलिखित आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों पर निर्भर करते हैं।

मोटे या दुबले होने की प्रवृत्ति वंशागत है, किंतु आहार और स्वास्थ्य का इस पर प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य और शारीरिक बल आंशिक रूप से वंशागत शारीरिक गठत से प्राप्त होता है, किंतु स्वास्थ्य की देखभाल, आहार और बीमारियों से सुरक्षित रहने का इन पर अधिक प्रभाव पड़ता है। कुछ बीमारियां जैसे क्षय रोग वंशागत नहीं है किंतु किसी अव्यव की कमजोरी, जैसे फेफड़ों का कमजोर होना, वंशागत है। इस कमजोरी के कारण व्यक्ति बीमारी की ओर प्रवृत्त होता है।

बुद्धि और क्षमताओं में आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों का कार्य है। ऐसा प्रतीत हाता है कि आनुवंशिकता सीमाएं स्थापित करती है और पर्यावरण निर्धारित करता है कि संभावनाओं को कहां तक प्राप्त किया जाएगा। एक व्यक्ति जिसने बहुत उच्च्य बुद्धि वंशागति से प्राप्त की हो, किंतु उसे भी अपनी बुद्धि विकसित करने के लिए और बौद्धिक स्तर पर कुछ उपलब्धियां हासिल करने के लिए, प्रेरणादायी पर्यावरण और अच्छी शिक्षा की आवश्यकता होगी। दूसरी ओर एक बहुत बुद्धिमान व्यक्ति यद्यपि कभी किसी चोट या बीमारी के कारण विलम्बित (retarded) हो जाता है, किंतु इन अप्रत्याशित घटनाओं को छोड़कर, बिना शिक्षा के भी वह बुद्धिमान रहेगा। हो सकता है यह वो व्यक्ति हो जिसके पास सभी गांव वाले सलाह के लिए आते हैं, या वह सभी के औजार सुधारता है। यदि रवि शंकर गांव में पैदा हुए होते और उन्हें कोई संगीत की शिक्षा नहीं मिली होती, तो भी वे शायद गांव के बैण्ड के नेता होते और उनका बैण्ड आसपास के गांवों में सबसे अच्छा माना जाता।

व्यक्तित्व के कारकों पर आनुवंशिकता के प्रभाव के बारे में हमारा ज्ञान सीमित है। ऐसा लगता है कि अन्तर्मुखता (introversion) और बहिर्मुखता (extroversion) वंशागत है। कुंठित होने पर एक बच्चा पलायन (withdraw) करता है, जबकि दूसरा

लड़ने की प्रतिक्रिया करता है। अन्य लोग बच्चे के व्यवहार पर किस प्रकार की प्रतिक्रिया करते हैं, यह उसमें परिवर्तन लाएगा, और इस प्रकार पर्यावरण का प्रभाव पड़ेगा। अपराधशीलता वंशागत नहीं होती किंतु कुछ प्रवृतियां जैसे आक्रामक प्रवृत्ति, जोखिम के कार्यों की ओर झुकाव कुछ हद तक वंशागत होता है और ठीक पर्यावरण न मिलने पर व्यक्ति को उग्र अपराधों की ओर ले जा सकता है। सामान्यतया, जन्म से कोई अपराधी नहीं होता। अपराध घर के पर्यावरण, एकात्मीकरण के लिए उपलब्ध नमूने, वो समुदाय जिससे व्यक्ति संबंधित है, पर मुख्यरूप से निर्भर करता है। बच्चे बहुत छोटी आयु से ही व्यक्तित्व की कुछ ऐसी विशेष्ताएं व्यक्त करने लगते हैं जो बड़े होने के साथ कायम रहती हैं और जीवन पर्यन्त चल सकती हैं। यह कहना कठिन होगा कि क्या ये वंशागत हैं या प्रारंभिक पर्यावरण के कारण हैं।

पाठक सोचते होंगे कि आनुवंशिकता और पर्यावरण के प्रभावों का किस प्रकार अध्ययन किया गया होगा। कुछ विशेषताओं जैसे शारीरिक गठन और रूप पर आनुवंशिकता के प्रभाव स्पष्ट हैं। परिवार के सदस्यों के बीच हमें अकसर इस प्रकार की समानता दिखाई देती है। अन्य विशेषताओं का अध्ययन, जैसे बुद्धि और व्यक्तित्व के गुणों का अध्ययन, तुलनात्मक विधि से किया गया है। ये तीन प्रकार की है : (1) समजात यमज की भ्रात्रीय यमज से तुलना समजात यमज की आनुवंशिकता समान होती है क्योंकि वे एक ही कोशिका से विकसित होते हैं, जब कि भ्रात्रीय यमज अलग-अलग कोशिकाओं से विकसित होते हैं और उसके बीच आनुवंशिकता समान नहीं होती, (2) एक साथ पाले एक समजात यमज की अलग अलग पाले गए समजात यमज से तुलना, और (3) बच्चों की ओर उनके असली माता-पिता के बीच समानता, और गोद लिए हुए बच्चे और उनके पालक (foster) माता-पिता के बीच समानता का अध्ययन।

जैसा पहले कहा जा चुका है आनुवंशिकता और पर्यावरण परस्पर क्रिया करते हैं, आनुवंशिकता बच्चे के पर्यावरण को रूप देती है। शारीरिक गठन और रूप वंशागत होता है किंतु कुछ कारक उसमें जुड जाते हैं। बच्चे की सुन्दरता वंशागत है किंतु सुन्दर बच्चा बचपन से ही प्रशंसा का पात्र हो जाता है जबकि सामान्य बच्चे इससे वंचित रह जाते हैं, और जिसमें कोई कमी है वह कभी-कभी उपहास का भी शिकार हो जाता है। प्रतिभाशाली बच्चे को प्रशंसा और प्रोत्साहन मिलता है जिससे वह अपनी प्रतिभा को और विकसित करने की ओर प्रेरित होता है। दूसरी ओर सीमित योग्यता वाले बच्चे को, बिना उसकी किसी गलती के अकसर डांट खानी पड़ती है। एक लम्बे तगड़े बच्चे के प्रति, एक छोटे बच्चे की अपेक्षा अलग प्रकार का व्यवहार होता है, विशेषकर, खेल के साथियों द्वारा।

पर्यावरण का प्रभाव

गर्भाधान के बाद पर्यावरण ही बच्चे के विकास पर प्रभाव डालता है। पूर्व-प्रसव के विकास को अध्याय 3 में हमने पढ़ा था। माँ का स्वास्थ्य और आहार जो उसे मिलता है, उसका प्रभाव भ्रूण पर पड़ता है। हमने पढ़ा था कि कुछ बीमारियां, जैसे जर्मन खसरा (German measles) यदि माँ को लग जाए तो इसका शिशु पर, शारीरिक और बौद्धिक दोनों ही रूप से प्रभाव पड़ता है। यह भी देखा था कि जन्म के समय बच्चे को क्षति से, जिसके दूरगामी प्रभाव हो सकते हैं, बचाने के लिए काफी सावधानी की आवश्यकता होती है।

नवजात शिशु ऐसी दुनियाँ में प्रवेश करता है जिसका भौतिक और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण काफी उलझा हुआ है। यह पर्यावरण घर, स्कूल, खेल के साथी, और विभिन्न सामाजिक संस्थाओं द्वारा मुहैया किया जाता है।

घर और परिवार

बच्चे का सबसे पहला पर्यावरण घर है और उसका सभी पहलुओं पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

भौतिक पक्ष

किस प्रकार का आहार बच्चे को मिलेगा यह घर पर निर्भर करता है। क्या उसे प्रोटीन, केल्सियम, विटामिन आदि मिलेंगे जिनकी उसे वृद्धि और विकास के लिए आवश्यकता है।

यद्यपि कुछ बीमारियां या शारीरिक कमजोरियां वंशागत हैं, बच्चे का बीमारी से सुरक्षित रहना इस बात पर निर्भर करता है कि उसे कितना स्वच्छ और साफ रखा जाता है, छूत की बीमारियों से उसका कितना बचाव किया जाता है, कहां तक उसे प्रतिरक्षण (immunity) के लिए टीके लगे हैं, और कहां तक उसका अपना प्रतिरोध (resistance) विकसित हुआ है।

घर और परिवार पर यह निर्भर करेगा कि बच्चा भीड़ वाले बन्द कमरे में, जहां हवा नहीं आती, सोता है, या उसे पर्याप्त ताजी हवा मिलती है और खेलने के लिए स्थान मिलता है। कहां तक उसे आराम मिलता है या छोटी आयु से ही काम करना पड़ता है। कभी-कभी, सम्पन्न परिवारों में भी बच्चे को खेलने या आराम करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता, क्योंकि माता-पिता अच्छे नम्बर लाने के लिए बच्चे पर अत्यधिक दबाव डालते हैं।

संवेगात्मक पक्ष

किसी भी मामले में परिवार का इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना संवेगात्मक पक्ष में। शारीरिक देख-रेख दूसरों द्वारा या संस्था द्वारा मुहैया की जा सकती है किंतु

घनिष्ठ पारिवारिक संबंध, जो बच्चे के स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं, परिवार से ही प्राप्त होते हैं। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी शिशु को वात्सल्यमय देख-रेख चाहिए। बच्चे के लिए दुलार और ममता आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं के आधार पर वे भावी जीवन में अनुरागपूर्ण और स्नेहमय संबंध कायम कर सकेंगे।

माता-पिता का बच्चे पर कई प्रकार से प्रभाव पड़ता है। यदि वे स्नेहमय और समय पर बच्चे को पुरस्कृत करते हैं तथा जीवन की साधन सुविधाओं का आनन्द उठाने लगते हैं, तो बच्चे की उनके साथ एकात्मीकरण करने की अधिक संभावना है। एकात्मीकरण अन्तःकरण से विकास के लिए और व्यक्तित्व को स्थायित्व प्रदान करने के लिए आवश्यक है। सही और गलत में भेद कर पाना भी, माता-पिता द्वारा दिए गए पुरस्कार और दण्ड, तथा आचरण और मूल्य जिन पर वे बल देते हैं, निर्भर करेगा।

जिस प्रकार का अनुशासन माता-पिता लागू करते हैं उसका भी प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। विवेकपूर्ण किंतु स्थिर नियंत्रण से बच्चा सीखेगा कि किस प्रकार के व्यवहार की उससे अपेक्षा की जाती है। यदि माता-पिता अकसर शारीरिक दण्ड का प्रयोग करते हैं, वे एक आक्रामक व्यवहार का नमूना प्रस्तुत करते हैं, और बच्चा भी आक्रामक होना सीखेगा। अत्यधिक कठोर दण्ड, विशेषकर, जब वह स्नेह के वंचन या वंचन के भय का रूप लेता है, बच्चे को भीरू और दब्बू बना देता है। सारा जीवन वह डरनेवाला बना रहेगा, और पहलशक्ति (initiative) का अभाव प्रदर्शित करेगा।

माता-पिता के अलावा घर में भाई-बहन, और परिवार के अन्य सदस्य भी होते हैं। सभी का प्रभाव बच्चे पर पड़ता है, किसी का कम किसी का ज्यादा।

माता-पिता कहां तक सभी बच्चों के साथ समान व्यवहार करते हैं या क्या वे कुछ के प्रति अधिक अनुग्रह व्यक्त करते हैं, एक महत्वपूर्ण और विचारणीय विषय है। कभी-कभी जिस बच्चे के प्रति विशेष अनुकम्पा की जाती रही है वह अपेक्षा करने लगता है कि उसकी ही बात मानी जाए, और सब में उसे सर्वोत्तम हिस्सा मिले। कभी उपेक्षित बच्चा अपने अधिकार का विशेष दावा करता है, या अपने हिस्से से अधिक वस्तुएं प्राप्त करने की कोशिश करता है, क्योंकि यह उसके लिए उस स्नेह के प्रतीक हैं जिससे वह वंचित रह गया है। जन्म क्रम और कहां तक नए शिशु के आने पर, बच्चा माता-पिता की देख-रेख प्राप्त करता रहता है, या अपेक्षाकृत उस पर ध्यान नहीं दिया जाता है, यह भी बच्चे के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालता है।

खेल में और आपस में झगड़ने में, भाई-बहन समझौता करना और दृढ़ रहना दोनों ही बातें सीखते हैं।

पारिवारिक संबंध जिनका बच्चे से सीधा संबंध नहीं है, वे भी बच्चे पर प्रभाव डालते हैं। यदि माता-पिता बच्चे के सामने एक दूसरे से अकसर झगड़ते हैं, या अन्य तनावों से ग्रसित हैं, तो इनसे बच्चे में भी तनाव पैदा होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि कुछ अनुक्रियाएं करने की प्रवृत्तियां जो वंशागत प्रतीत होती हैं, अधिकतर घर द्वारा निर्धारित होती हैं। घर पर निर्भर करेगा कि कहां तक बच्चा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना सीखेगा, और जो अपेक्षाएं उससे की जा रही हैं उनके प्रति एक स्वस्थ समायोजन करेगा, या समस्यात्मक व्यवहार करेगा।

बौद्धिक पक्ष

प्रारंभिक विकास के अध्याय 4 में हमने देखा था कि बच्चे का भाषा विकास इस बात पर निर्भर करता है. कि माता-पिता और अन्य वयस्क बच्चे से कितनी बातचीत करते हैं और कैसी भाषा का प्रयोग करते हैं। जैसे वह बड़ा होता है उसकी योग्यताओं का विकास इस बात पर निर्भर करेगा कि उसे अपने वातावरण का पर्यवेक्षण करने की कहां तक सुविधा मिलती है, किस प्रकार की खेल सामग्री उसे दी जाती है कहां तक उसे पुस्तकें उपलब्ध हैं, और वयस्कों का उसके साथ क्या वार्तालाप होता है।

शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक कारकों की पारस्परिक क्रिया

ऊपर दिए कारकों का, चाहे वे शारीरिक, भावात्मक या बौद्धिक हों, व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर प्रभाव पड़ता है। शारीरिक कारक बच्चे के स्वस्थ शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं, किंतु ये यहीं तक सीमित नहीं हैं। इनका प्रभाव बौद्धिक और भावात्मक विकास पर भी पड़ता है। यह पाया गया है कि जो बच्चे प्रोटीन की कमी से ग्रसित हैं वे बौद्धिक कार्यों में अच्छा नहीं कर पाते। प्रोटीन की कमी का मस्तिष्क के विकास पर प्रभाव पड़ता है। इस कमी का यह भी प्रभाव हो सकता है कि बच्चे में लग कर कार्य करने की शक्ति में कमी रहे। एक बीमार और कुपोषित बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है और जल्दी रोने लगता है। इससे दूसरों को गुस्सा आता है किंतु बच्चे का इस पर बस नहीं होता । एक स्वस्थ बच्चा खेल में अच्छा हो सकता है इससे वह अन्य बच्चों में लोकप्रिय हो जाएगा और उसकी आत्म-संकल्पना सकारात्मक बनेगी, जबकि अदना बच्चा अपने आप को हीनं अनुभव करेगा। जो लम्बे समय तक बीमार रहता है, वह हो सकता है कि अपने आप में पलायन करके खो जाए। यह भी संभव है कि माता-पिता अत्यधिक लाड़-प्यार करके उसकी संगत और असंगत सभी इच्छाओं को पूरा करने की कोशिश करें। इसी प्रकार भावात्मक और बौद्धिक कारक शिशु के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते हैं। स्वस्थ

रहने के लिए बच्चे को खुश रहना चाहिए। अध्ययन करने के लिए और सीखने में अच्छी प्रगति करने के लिए, बच्चा घबराहट से मुक्त होना चाहिए। दूसरी ओर, अपनी योग्यताओं को विकसित करना और उपयोग करना बच्चे की शारीरिक कुशलता और संवेगात्मक स्वास्थ्य को बढ़ाता है।

पड़ोस

जिस मोहल्ले में बच्चा रहता है उसका प्रभाव बच्चे पर कई प्रकार से पड़ता है। गांवों में बच्चों को खेल की जगह मिलती है जबकि जो भीड़-भाड़ वाले शहरों में रहते हैं उन्हें सीमित जगह से ही संतोष करना पड़ता है और प्रदूषित वायु में साँस लेनी होती है। शहर में भी जो गन्दी बस्तियों में रहते हैं उनकी हालत अच्छे मोहल्लों में रहने वालों की अपेक्षा बदतर रहती है। पड़ोस पर निर्भर करता है कि बच्चे के लिए कहां तक छूत की बीमारियों का और अन्य खतरे हैं, और क्या समय पर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध हो सकेंगी। गांव में बच्चे बीमारियों से अकसर पीड़ित रहते हैं क्योंकि उन्हें आवश्यक चिकित्सा नहीं मिल पाती। पड़ोस पर यह भी निर्भर करता है कि बच्चा किन लोगों के साथ खेलता है और किस प्रकार की भाषा और आदतें उनसे सीखता है।

कहां तक बच्चे को रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म, संगीत सभा या पुस्तकालय की सुविधा सुलभ है, यह निर्भर करेगा कुछ हद तक माता-पिता के सांस्कृतिक स्तर पर और कुछ पड़ोस पर।

राज्य और क्षेत्र

देश के जिस क्षेत्र में बच्चा रहता है उसका प्रभाव उस पर पड़ता है। हिमालय के ठंडे प्रदेश में रहने वालों के जीवन के ढंग पर ठंड का प्रभाव पड़ता है, जबकि देश के गर्म भागों में जीवन का ढंग भिन्न होता है। विभिन्न प्रदेशों के भोजन में अन्तर मिलता है। परंपराओं, रिवाजों में और किस प्रकार के आचरण पर बल दिया जाता है, इनमें भी अन्तर होता है।

स्कूल

स्कूल के प्रभाव का शिक्षक से घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि इस पर उसका कुछ हद तक नियंत्रण हो सकता है। स्कूल में प्रवेश बच्चे का घर के बाहर का सबसे पहला समंजन है। स्कूल में उसका खुश या दुःखी रहना, उसके कार्य और उसके दृष्टिकोण पर असर डालेगा। स्कूल में बच्चा प्रतिदिन स्पर्धा का सामना करता है। उसे सफलता और उसफलता के अनुभव होते हैं। इनका प्रभाव उसकी आत्म-संकल्पना पर पड़ता है। यदि शिक्षक उसके साथ सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार करता है तो इससे उसे मदद मिलेगी, यदि कटु बोलेगा या उपहास करेगा तो इससे उसका आत्म-विश्वास

कमजोर होगा। असफल और हतोत्साहित होने के कारण बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। इस प्रकार ये शिक्षा प्राप्त करने और अपने जीवन को बेहतर बनाने के अवसर खो देते हैं।

स्कुल में बच्चों को एक अलग प्रकार के अनुशासन से समंजन करना पड़ता है। उन्हें लम्बे समय तक एक आसन में बैंठने में कठिनाई हो सकती है। जमीन पर भी बैठने में अकसर सीमित जगह के कारण बैठने की स्थिति आराम देह नहीं होती। कभी-कभी बच्चों को खड़े होने और शरीर को मोड़ने और तानने का व्यायाम करने से मदद मिलती है।

स्कूल, बच्चे को अन्य बच्चों के जो विभिन्न पृष्ठिभूमि से आते हैं, सम्पर्क में आने का अवसर प्रदान करता है। इससे कई लाभ हो सकते हैं। उन्हें अन्य समुदायों के बारे में पता लगता है। वे अन्य जाति, धर्म और राज्य के लोगों को स्वीकार करना सीखते हैं। अन्य बच्चों के सम्पर्क से उनकी जानकारी और ज्ञान बढ़ता है। साथ ही साथ यह खतरा भी रहता है कि वे बुरी आदतें और अभिवृत्तियां भी अपना लें।

यद्यपि स्कूल में लम्बे समय तक रहने से बच्चे के स्वास्थ्य पर जोर पड़ता है, विशेषकर वे बच्चे जो बिना कुछ खाए प्रातः स्कूल आते हैं, स्कूल में बच्चों के स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। मध्याह्न का भोजन बच्चों की खुराक की कमी को पूरा कर सकता है और अपने देश में अधिकांश बच्चों को इस की आवश्यकता है। बच्चों को स्वच्छता और स्वास्थ्य संबंधी अच्छी आदतें सिखाई जा सकती हैं। अनेक बच्चे ऐसे होते हैं जिनकी नियमित डाक्टरी जांच घर पर रहते हुए नहीं होती है। स्कूल में डाक्टरी परीक्षण और उपचारी कार्य बच्चे के स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए काफी हितकर हो सकता है।

उपचारी कार्य केवल शारीरिक समस्याओं के निराकरण के लिए ही नहीं होता, किंतु पढ़ाई में कठिनाइयों को दूर करने के लिए और समंजन की समस्याओं को हल करने के लिए भी होता है। इन विषयों पर अलग अध्यायों में चर्चा की जाएगी यहां पर इतना कहना पर्याप्त होगा कि बच्चे के भौतिक और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण को अनुकूल बनाने के लिए शिक्षक महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है।

अध्याय 13

बच्चों की आवश्यकताएं

श्रीराम मूर्ती
ईवलिन मार

बच्चों की बहुत सी आवश्यकताएं होती हैं। वैसे तो हम सभी की आवश्यकताएं हैं, किंतु कुछ आवश्यकताएं बाल्यकाल में महत्त्वपूर्ण होती हैं। कुछ हद तक हम सब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर करते हैं, किंतु वयस्कों की अपेक्षा बच्चे दूसरों पर अधिक निर्भर करते हैं। इसलिए जिन लोगों को बच्चों की देख-रेख करनी है उनको बच्चों की आवश्यकताओं के बारे में जानना चाहिए। यदि आवश्यकताओं की पूर्ति समुचित नहीं होती तो इसका प्रभाव बच्चे के मानसिक और शारीरिक विकास पर पड़ेगा। यदि आवश्यकताओं की पूर्ति कुछ सीमा तक नहीं होती, जैसे, साँस लेने के लिए हवा कुछ समय तक नहीं मिलता या भोजन कुछ दिनों तक नहीं मिलता तो इसका परिणाम मृत्यु होगा।

बच्चों की आवश्यकताओं को शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक आवश्यकताओं में बांटा जा सकता है। किंतु आवश्यकताएं अन्योन्याश्रित (interdependent) होती हैं। यदि बच्चा आहार से वंचित रखा गया तो न केवल उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, किंतु वह मानसिक रूप से इतना सतर्क नहीं रहेगा जितना उसे होना चाहिए। इसका उसके संवेगात्मक और सामाजिक व्यवहार पर भी असर पड़ेगा।

शारीरिक आवश्यकताएं

मानव की आवश्यकताएं जैसे **हवा, पानी, भोजन, रोशनी, आराम, नींद और शारीरिक क्रिया** के बारे में हम सब अवगत हैं। ये आवश्यकताएं बाल्यावस्था में विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण हैं। यदि बच्चों को पर्याप्त ताजी हवा, स्वच्छ पानी, प्रकाश, संतुलित आहार, पर्याप्त आराम, नींद और शारीरिक क्रिया के अवसर नहीं मिलते तो उनके मौजूदा स्वास्थ्य पर तो असर पड़ेगा ही, साथ ही साथ उनकी वृद्धि और विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिए, यदि बच्चे को बढ़ने के

काल में पर्याप्त कैल्सियम नहीं मिलता तो उसकी हड्डियां ठीक से विकसित नहीं हो पाएंगी। समय निकल जाने पर कैल्सियम देने से समस्या का उपचार नहीं होगा।

दुर्भाग्य से अपने देश में बहुत से बच्चों की ये बुनियादी आवश्यकताएं भी समुचित रूप से पूरी नहीं होतीं। बच्चे अल्पपोषित रहते हैं, उन्हें पर्याप्त वस्त्र या तो नहीं मिलते या वे अनुपयुक्त होते हैं, कुछ बच्चे ऐसे बन्द मकानों या झुग्गियों में रहते हैं जहां वायु संचार नहीं होता। शिक्षक इन समस्याओं के लिए क्या कर सकता है ? जहां पर मध्याह्न भोजन की व्यवस्था है, या बच्चों को दूध दिया जाता है, वहां ऐसे कार्यक्रमों में शिक्षक को अपना पूरा योग देना चाहिए। यदि ऐसी व्यवस्था नहीं है तो शिक्षक को इसको लागू करने का प्रयास करना चाहिए। समुदाय और अभिभावक-शिक्षक संघ द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है। इस प्रकार की सहायता का लाभ अपने देश में बहुत कम उठाया गया है। किंतु जहां शिक्षकों ने प्रयास किया है और माता-पिता का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की है वहां परिणाम उत्साहवर्धक मिले हैं। कुछ मामलों में बहुत गरीब बच्चों के लिए वस्त्र तक उपलब्ध कराए गए हैं।

कुछ माता-पिता बच्चों को अच्छा भोजन देने की स्थिति में होते हैं, किंतु अच्छा सन्तुलित आहार क्या होता है इसके बारे में उन्हें सलाह चाहिए। उदाहरण के लिए, कुछ माता-पिता समझते हैं कि भोजन में जितना घी, तेल होगा, उतना ही भोजन पुष्टिकर होगा। शिक्षक उनको ताजे फल और सब्जियों का महत्व समझा सकते हैं। एक महत्वपूर्ण बात जो शिक्षक को जाननी चाहिए, वह है, अपर्याप्त आहार की समस्या, कभी अल्प-पोषित बच्चा आलसी लगता है या कोई अन्य समस्या से ग्रसित लगता है। ऐसे बच्चे को सहानुभूति और मदद की आवश्यकता होती है।

ऊपरी तौर से देखने में लगता है कि ताजी हवा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कोई समस्या नहीं होनी चाहिए। लेकिन बच्चे अकसर ऐसी कक्षाओं में बैठे दिखाई देते हैं, जिनमें वायु संचार पर्याप्त नहीं है। ऐसा होना नहीं चाहिए क्योंकि अपने देश के अधिकांश भाग में मौसम ऐसा रहता है कि खिड़की खुली रखी जा सकती है। स्कूल के भवनों में पर्याप्त खिड़कियां होनी चाहिए। किंतु कक्षा में कितना ही अच्छा वायु संचार क्यों न हो सारे समय कक्षा में बैठे रहना ठीक नहीं । कुछ समय उन्हें खुली हवा में व्यतीत करना चाहिए और स्कूल की समय-सारिणी में इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। यह शहरों की घनी आबादी में रहने वाले बच्चों के लिए विशेष रूप से आवश्यक है।

बच्चे स्वभाव से क्रियाशील होते हैं। उनके लिए लम्बे समय तक एक आसन में बैठना कठिन होता है। उनकी आवश्यकता है गतिशील होना, कुछ काम करना, कभी दौड़ना और कूदना। जितना बच्चा छोटा होता है, उतना ही कठिन उसके लिए

स्थिर बैठना होता है। छोटे बच्चों को कक्षा में इधर-उधर आ जा सकने और कार्य करने में गतिशील होने की सुविधा चाहिए। खेल के घण्टे और अवकाश, ताजी हवा के ही लिए आवश्यक नहीं, बल्कि इनसे क्रियाशीलता की आवश्यकता की भी पूर्ति होती है। खेल और क्रीड़ा के लिए पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए।

बच्चों को विश्राम और नींद की आवश्यकता होती है। यदि छोटे बच्चों को सारे दिन स्कूल में रहना है तो उनके लिए विश्रान्ति के काल खण्ड की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि बच्चे थके दिखाई दें तो उनको थोड़ी देर विश्राम करने देना चाहिए। जिन बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है उन्हें अधिक विश्राम की आवश्यकता होती है और इसकी अनुमति देनी चाहिए।

बच्चों को स्वच्छता और स्वास्थ्य की देख-रेख चाहिए। शिक्षकों की स्वास्थ्य कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। वे बच्चों की उंगलियां नाखून, हाथ, बाल, दांत, चेहरे और शरीर की दिखावट, स्वच्छता और स्वास्थ्य की समस्याओं के लिए जांच कर सकते हैं। जो बच्चे गन्दे हैं उनको साबुन, कंघी और तौलिया दिया जाना चाहिए और अगले दिन साफ आने की सलाह दी जानी चाहिए। अगर स्वास्थ्य के खराब होने के लक्षण दिखें, जैसे, त्वचा पर धब्बे या दांतों का खराब होना तो उपचार के लिए व्यवस्था करनी चाहिए। स्कूल में पीने के लिए साफ पानी की, जो ढ़क कर रखा हो और गर्द से सुरक्षित हो, व्यवस्था होनी चाहिए। बच्चों के लिए शौचालय कम होते हैं, और वे सदैव बुरी हालत में होते हैं। यह देखना आवश्यक है कि वे साफ रखे जाएं, काफी पानी की व्यवस्था हो, और बच्चे उनका सहीं ढंग से उपयोग करना सीखें। नियमित डाक्टरी जांच होनी चाहिए और उसके अभिलेख रखे जाने चाहिए। छूत की बीमारियों से बचने के लिए टीके लगवाने की व्यवस्था करनी चाहिए। कक्षा में किस प्रकार एक दूसरे से लगने वाली बीमारियों, सर्दी-जुखाम, पेचिश, खांसी, खुजली आदि से बचा जा सकता है इस पर विचार विनिमय होना चाहिए। व्यक्तिगत सफाई और वातावरण साफ रखने की आदतें बच्चों में विकसित करनी चाहिए। तेजी से बढ़ने की अवस्था में बच्चे जल्द थक जाते हैं। उनकी शक्ति वृद्धि में लग जाती है, और इसलिए उन्हें विश्राम की आवश्यकता होती है। यह विशेषरूप से पूर्व-किशोरावस्था में वृद्धि की लहर आने के दौरान लागू होता है। एक बड़े डील-डौल वाले बच्चे को माता-पिता आलसी समझते हैं। सही बात तो यह कि उसके तेजी से बढ़ते हुए शरीर के कारण वह थका हुआ रहता है। कुछ बच्चों को पर्याप्त निद्रा नहीं मिलती क्योंकि उन्हें घर में माता-पिता की मदद करनी होती है। उम्र में बड़े बच्चों के साथ अकसर यह समस्या रहती है। कुछ को पर्याप्त नींद इसलिए नहीं मिलती कि उनके माता-पिता इस बात को नहीं समझते कि

वयस्यों की अपेक्षा बच्चों को अधिक नींद की आवश्यकता होती है। इन मामलों में शिक्षक का निर्देशन मदद करेगा।

भावात्मक और सामाजिक आवश्यकताएं

बहुत सी भावात्मक और सामाजिक आवश्यकताएं, जैसे, **स्नेह, अपनापन** इत्यादि ऐसी हैं जिनकी पूर्ति मानव के सुख के लिए आवश्यक हैं। इन आवश्यकताओं की बाल्यकाल में महत्वपूर्ण भूमिका है, और इनकी पूर्ति का व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है।

स्नेह सबसे मूलभूत आवश्यकता है। यदि बच्चों को स्नेहपूर्ण देख-रेख नहीं मिलती तो इसका उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जिस बच्चे को स्नेह नहीं मिलता और स्नेह के अवसर नहीं मिलते, वह स्नेह करने की क्षमता खो देता है, और जीवन भर उसके मानवीय संबंध ठीक नहीं रहते। एक बच्चा, जिसे लगता है कि उसे कोई प्यार नहीं करता और उसकी उपेक्षा की जाती है, वह विभिन्न तरीकों से वयस्कों का ध्यान अपनी ओर खींचने की कोशिश करता है, जिससे कभी-कभी वयस्क चिढ़ जाते हैं, या वह पलायन करता और अपनी स्वाभाविकता को खो देता है। इसके कारण उसकी स्नेह मिलने की पात्रता और भी कम हो जाती है और इस प्रकार एक कुचक्र बन जाता है। एक बच्चा जो महसूस करता है कि उसे कोई प्यार नहीं करता दुःखी रहता है और इसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। गंभीर मामलों में शिशु, जिन्हें स्नेहपूर्ण देख-रेख नहीं मिली, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर भी, कमजोर होते जाते हैं, और यहां तक कि उनकी मृत्यु भी हो जाती है।

स्नेह से निकट से जुड़ी हुई आवश्यकता है अपनेपन की। बच्चे परिवार में अपनापन चाहते हैं, और जैसे वे बड़े होते हैं वे विभिन्न समूहों में सम्मिलित होना चाहते हैं। शिक्षक के व्यक्तिगत ध्यान देने से बच्चे अपनापन महसूस करते हैं, और उसकी कक्षा उन्हें अच्छी लगती है।

प्राथमिकशाला के वर्षों में समूहों में सम्मिलित होने और समहों द्वारा स्वीकार किए जाने की बच्चों की एक तीव्र इच्छा होती है। यदि उन्हें लगता है कि समूह में वे शामिल नहीं किए गए तो वे समूह का स्वीकरण प्राप्त करने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। कुछ दबे हुए बच्चे अधिक लोकप्रिय बच्चों की आज्ञा दास जैसे पालन करते हैं। अधिक हिम्मत वाले, दूसरों पर प्रभाव डालने के लिए, खतरे के कार्य भी कर सकते हैं। वे कुछ असामाजिक कार्य तक कर सकते हैं, यदि उन्हें लगे कि इससे वे समूह द्वारा स्वीकार किए जाएंगे। बच्चों को समूह में सम्मिलित होने में मदद करके, ऐसी स्थितियों से बचाया जा सकता है। क्लब, सोसाइटी, टीम से न

केवल सहगामी क्रियाएँ बढ़ती हैं, बल्कि बच्चों को अपनत्व की भावना भी प्राप्त होती है जब इन क्रियाकलापों का आयोजन स्कूल में किया जाए तो शिक्षक को देखना चाहिए कि प्रत्येक छात्र कम से कम एक क्लब या सोसायटी का सदस्य है, और यदि ऐसा नहीं है तो इसके लिए उसे आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

बच्चे, यद्यपि दूसरों के साथ रहना चाहते हैं, विभिन्न समूहों का स्वीकरण चाहते हैं, मिलकर कार्य करना चाहते हैं, किंतु, साथ ही साथ वे अकेले भी रहना चाहते हैं। कभी-कभी बैठकर दिवा स्वप्न देखना और सोच-विचार कर चीजों को सुलझाना चाहते हैं। यद्यपि अत्यधिक दिवा स्वप्न देखना ठीक नहीं है और इससे बचना चाहिए, फिर भी कभी-कभी बच्चों को अकेला छोड देना चाहिए, यदि ऐसा भी लगे कि वे बेकार बैठे हुए हैं अपनी रुचियों का अनुसरण करने के लिए और किसी 'हौबी' पर कार्य करने के लिए भी उन्हें एकान्त की आवश्यकता होती है। उनको कभी-कभी अकेला रहना इसलिए भी आवश्यक है कि वे स्वयं का साथ ढूंढना और उसका आनन्द लेना सीख सकें।

बच्चों के लिए सफलता के अनुभव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ऐसे अनुभव संतोषप्रद होते हैं और बच्चों को नए काम करने के लिए विश्वास उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह प्रतिभाशाली हो या मन्द बुद्धि का हो, यह अनुभव चाहिए। बच्चों को **दूसरों से सराहना** चाहिए, चाहे यह उनके काम के समर्थन के रूप में हो या जो कुछ उन्होंने किया है उसकी सराहना हो। बच्चों को **स्वतंत्रता** चाहिए। वे चाहते हैं कि अपने आप काम करें, अपने निर्णय लें, और दायित्व वहन करें। यद्यपि बच्चे स्वतंत्रता चाहते हैं किंतु साथ में वे **नियंत्रण और अनुशासन** भी चाहते हैं। स्वतंत्र रूप से और कुछ नया करने में उन्हें इस बात का विश्वास चाहिए कि यदि वे जरूरत से ज्यादा आगे बढ़ जाते हैं तब उन्हें कोई रोकेगा। किंतु अनुशासन विवेकपूर्ण और संगत होना चाहिए, न कि कठोर। ऊपर दी गई आवश्यकताओं की पूर्ति से बच्चों में आत्म-विश्वास बढ़ेगा। आत्म-विश्वास पर निर्भर करेगा कि वे क्या करने की कोशिश करेंगे, अपने आप से क्या अपेक्षाएं रखेंगे, और असफलता का सामना करने में कितना प्रयास करेंगे। आत्म-विश्वास उन्हें मानवीय सबंधों को स्थापित करने में भी मदद करेगा।

बच्चों को **सुरक्षा** चाहिए। शारीरिक खतरे से बचाव की आवश्यकता तो है ही, जिससे जान और शरीर की रक्षा हो सके। किंतु हमें जानना चाहिए कि बच्चों का देखने का दृष्टिकोण हम से फर्क होता है। बच्चों को नई जगह और नए चेहरों से डर लगता है। उन्हें ऊंची आवाज से डर लगता है। हम जानते हैं कि ऊंची आवाज से सामान्यतया कोई खतरा नहीं है, या किसी नई चीज से, किंतु बच्चे यह बात नहीं जानते और हमें उनके डर को समझना चाहिए। अधिकतर ऐसी परिस्थितियों में यदि

वे किसी वयस्क का सानिध्य, जिसके प्रति उनके मन में स्नेह और विश्वास हो, उनको संरक्षित अनुभव कराने में पर्याप्त होगा।

बच्चों को **स्नेह के प्रति आश्वस्त** अनुभव करना चाहिए। उन्हें अपने माता-पिता का स्नेह चाहिए। कभी-कभी माता-पिता बच्चों को अनुशासित करने के लिए, जब वे अवज्ञा करते हैं, उन्हें ऐसा महसूस करवाते हैं कि अब वे उन्हें प्यार नहीं करते। ऐसे माता-पिता बच्चों को आज्ञाकारी और अनुशासित बनाने में सफल तो हो जाते हैं, किंतु बच्चों के मन में चिंता घर कर लेती है और उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों को दूसरों में विश्वास चाहिए। उन्हें ऐसा लगना चाहिए कि माता-पिता और अन्य वयस्क उन्हें सुरक्षा, सहायता और निर्देशन प्रदान करने के लिए हैं। उन्हें **दूसरों में विश्वास** चाहिए। विशेषकर उनसे संबद्ध वयस्कों में। इससे उनकी स्वयं सत्यनिष्ठा विकसित होगी और वे भरोसे योग्य बनेंगे। कभी-कभी माता या पिता की मृत्यु के कारण या उनके बीच संबंध विच्छेद होने के कारण बच्चा माता या पिता को खो देता है। इससे उसके मन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है और उसे विशेष स्नेह और आश्वासन की आवश्यकता होती है। घर में झगड़ों से, खासकर, जब माता-पिता बच्चों की उपस्थिति में आपस में झगड़ते हैं, बच्चों के मन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है।

बच्चों को व्यवस्थित दुनिया चाहिए जिसमें कुछ सीमा तक भविष्य कथन किया जा सके कि कब वे क्या अपेक्षाएं करें। जैसा ऊपर कहा गया है, वे आश्वस्त होना चाहते हैं कि उनके पास घर है और माता-पिता हैं, जो उनको प्यार करते हैं। वे यह जानना चाहेंगे कि माता-पिता और अन्य वयस्कों से वे क्या अपेक्षा कर सकते हैं। वे ऐसे अनुशासन के बजाए जो अनिश्चित हो और किसी की सनक पर चलता है, ऐसा अनुशासन पसन्द करते हैं जिसमें उनको पता हो कि क्या माना जाएगा और क्या नहीं।

जब पहली बार बच्चे स्कूल आते हैं तो वे अपने आपको नई जगह में पाते हैं और उन्हें बहुत से नए चेहरे दिखाई देते हैं। इससे असुरक्षा की भावना मन में उठती है। कोई-कोई बच्चे झक्की (cranky) हो जाते हैं। उनसे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और उनका मनोबल बढ़ाना चाहिए।

बौद्धिक आवश्यकताएं

अन्य आवश्यकताओं की अपेक्षा बौद्धिक आवश्यकताओं की कम चर्चा होती है, शायद इसलिए, कि इनको अन्य आवश्यकताओं की तुलना में कम समझा जाता है। इसका कारण यह हो सकता है कि उनके वचन का प्रभाव इतना स्पष्ट नहीं होता। शारीरिक वृद्धि के समान बौद्धिक वृद्धि के लिए भी उद्दीपन, सुविधाएं और निर्देशन

जैसी खुराक की आवश्यकता होती है।

सीखने और जानने की इच्छा मानव में एक मूल इच्छा है। यह बच्चों में बहुत तीव्र होती है। इसको हम उनके प्रश्नों में और जिस तरह वे अपने चारों ओर की चीजों का निरीक्षण करते हैं, देख सकते हैं। हम बच्चों से कितनी बार कहते हैं 'मत छुओ'। हमें यह कहना पड़ता है क्योंकि बच्चे प्रत्येक नई वस्तु का परीक्षण करना चाहते हैं।

बच्चों को अपनी **योग्यताओं को व्यक्त करने के लिए माध्यम** चाहिए और वे उन्हें विकसित करना चाहेंगे। वे अपनी बुद्धि का उपयोग करना और समस्याओं पर कार्य करना चाहेंगे। योग्यताओं का उपयोग करना संतोषदायक होता है और उनका उपयोग न कर सकने से निराशा होती है।

बच्चों को **आत्म अभिव्यक्ति** के लिए अवसर चाहिए, वे **सर्जनात्मक** होना चाहते हैं। जब उन्हें बोलने और गाने की स्वतंत्रता मिलती है, वे कितने खुश होते हैं। उन्हें मिट्टी और कागज से खेलना अत्यन्त रुचिकर लगता है, क्योंकि वे इस क्रिया में कुछ बना रहे हैं, चाहे वे खिलौने बनाएं या मिट्टी के मकान। यदि बच्चों को पेन्सिल और कागज दें, जिस पर वे जो चाहे खींच सकें, या चील बिलौटे बना सकें, या डण्डे से जमीन पर कुछ खींच सकें, तो वे बहुत खुश होते हैं। जैसे बच्चे बड़े होते हैं अधिक जटिल चीजें बनाना पसन्द करने लगते हैं। इस इच्छा को वे मिट्टी से कोई सुन्दर चीज या औजारों से लकड़ी को तराश कर कोई चीज बना कर, या कपड़ों को सीकर गुड़िया, या अन्य कोई कला या कारीगरी की वस्तु बनाकर व्यक्त कर सकते हैं। वे अपने विचार कागज पर लिखने में, कहानियां लिखने में खुश होते हैं। उन्हें संगीत, नृत्य, नाटक अच्छे लगते हैं, न केवल सुनने या देखने के लिए, किंतु ऐसे क्रियाकलापों में वे सक्रिय भाग लेना और इनके द्वारा आत्म अभिव्यक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसी आवश्यकताओं को, जिनमें योग्यताओं का उपयोग करने, उनके द्वारा आत्मअभिव्यक्ति प्राप्त करने, सर्जनशील होने की आवश्यकताएं शामिल हैं, अकसर आत्म-कार्यान्वियन (self actualization) की आवश्यकता कहते हैं।

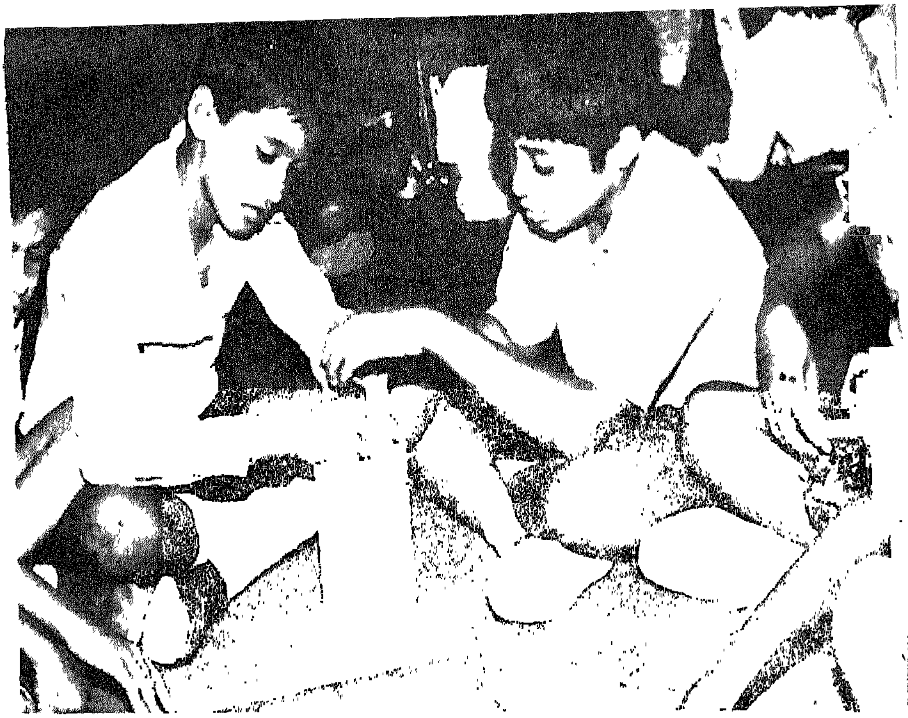
सौन्दर्य की भी एक आवश्यकता है। किसी सुन्दर चीज को देखना, अच्छे संगीत को सुनना या किसी रूप में सौन्दर्य का अनुभव करना, विशेषकर कोई सुन्दर चीज बनाना अत्यन्त सुखद होता है और इस आवश्यकता की पूर्ति करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों को सीखने की, अपनी योग्यताओं को विकसित करने की, सर्जनात्मक होने और सौन्दर्य की आवश्यकताएं होती हैं। फिर क्यों इतने छात्रों को सीखने के प्रति अरुचि होती है? क्योंकि वे कक्षा से बचना चाहते हैं, या क्यों केवल परीक्षा पास करने में ही उनकी रुचि होती है? सर्जनात्मक

कार्य का स्कूल में इतना कम स्थान क्यों है? इतने व्यक्ति क्यों नीरस पर्यावरण से संतुष्ट रहते हैं, सुन्दरता के स्थान पर क्यों सस्ते मनोरंजनों के पीछे जाते हैं? शायद इसका कारण यह है कि स्कूल का कार्यक्रम बच्चों की आवश्यकताओं और रुचियों से संबंधित नहीं है उन्हें हम कक्षा में निष्क्रिय बैठाकर शिक्षक को सुनने के लिए मजबूर करते हैं, जबकि उन्हें सक्रिय होना चाहिए और स्वयं समस्याओं के हल ढूंढने चाहिए। उन्होंने जो कुछ सीखा है उसे उन्हें पुनः प्रस्तुत करने को कहा जाता है, जबकि उनको अपने स्वयं के विचार व्यक्त करने के लिए और सर्जनात्मक होने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उनमें बहुत से अनाकर्षक घरों, गंदी बस्तियों, मैली-कुचैली सड़कों से स्कूल आते हैं, जो स्वयं में नीरस और अनाकर्षक हैं। उन्हें प्रकृति में और कला में सौन्दर्य को अनुभव करने के कम ही अवसर मिलते हैं। जब सौन्दर्य को जानने के उन्हें अवसर ही नहीं मिलेंगे तो कैसे वे उसकी ओर अग्रसर हो सकेंगे?

बच्चों की बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षकों का महत्वपूर्ण कार्य है। शिक्षण कार्यक्रम और शिक्षण विधियां उनकी आवश्यकताओं से संबंधित की जानी चाहिए। शिक्षक सोचेंगे कि यह संभव नहीं है क्योंकि उन्हें तो वही पढ़ाना है जो पाठ्यक्रम में है। किंतु बच्चों की आवश्यकताओं की ओर संवेदी होकर वे फिर भी बहुत कुछ कर सकते हैं। इस प्रकार बच्चे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भागीदार हो सकेंगे, वे कहीं अधिक सीख सकेंगे और जो कुछ सीखेंगे उसे याद रखेंगे। इस दृष्टि से अब हम देखेंगे कि क्या-क्या व्यावहारिक बातें शिक्षक कर सकते हैं।

1. बच्चों से अपने पर्यावरण के बारे में खोजबीन करने और सीखने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। वे लकड़ी ; श्यामपट्ट, चाक, को स्पर्श करके अपने आप बनावट में अन्तर नोट कर सकते हैं। उनको पोधों के विभिन्न भागों के बारे में बताने के बजाए, छोटे पौधों को जमीन से निकाल कर उनके भागों का निरीक्षण करवाना चाहिए। इसी प्रकार उनके पर्यावरण में बहुत सी वस्तुएं हैं जिनसे वे बहुत कुछ सीख सकते हैं।
2. बच्चे सरल वस्तुओं से प्रयोग करें। वे जोड़ और घटाना कागज पर करने के पहले गोलियों या लकड़ियों को लेकर करें। वे विभिन्न आकार के बर्तनों में पानी डालें और देखें की पानी का स्तर कितना रहता है।



चित्र-8 बच्चों को सर्जनात्मक खेल के लिए अवसर चाहिए

3. अपनी रुचियों का अनुसरण करने में, अपने आप पठन सामग्री का चुनाव करके स्वयं पढ़ने को प्रोत्साहित करना चाहिए। उदाहरण के लिए एक बच्चे की रुचि मशीनों में, दूसरे की पौधों में या किसी अन्य की चित्रकारी में हो सकती है। अपनी रुचियों को विकसित करने के लिए उनके पास सुविधाएं होनी चाहिएं।
4. बच्चों को अपने स्वयं के मापदण्ड निर्धारित करने में और उनको प्राप्त करने का प्रयास करने में मदद करनी चाहिए। इससे जो प्रतिभाशाली हैं वे ऊंचे लक्ष्य बनाऐंगे और अन्य पर यह दबाव नहीं पड़ेगा कि वे भी उतने ही ऊंचे लक्ष्य बनाएं।
5. बच्चों को सुन्दर चीजों जैसे फूल, तितलियों, पैड़ों का अवलोकन करने और वर्णन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि शहर के जिस भाग में स्कूल है वहां यदि फूल उपलब्ध नहीं हों, शिक्षिका कक्षा में फूलों की तस्वीरें या अन्य सुन्दर वस्तुएं ला सकती है और बच्चों में उनके सौन्दर्य का बोध कराने में मदद कर सकती है। कक्षा को जितनी आकर्षक हो सके बनानी चाहिए और बच्चों को स्वच्छ और सुन्दर रखना सिखाना चाहिए।

6. बच्चों को आत्मअभिव्यक्ति के अवसर देने चाहिए। उन्हें अपने अनुभव बताने और अपने विचार प्रकट करने के अवसर देने चाहिए। शिक्षक बच्चों के समूहों से कोई कहानी रचना करने को कह सकता है। उन्हें अपने हाथ से कार्य करने के अवसर देने चाहिए। छोटे बच्चे उंगलियों से चित्र (finger painting) और मिट्टी से वस्तुएं बना सकते हैं। जैसे वे बड़े होते हैं आरेखन और चित्रकारी सीख सकते हैं और प्रतिरूपण (modelling) भी जारी रख सकते हैं।

बच्चों को अपनी आवश्यकताओं का सामना करना सीखना चाहिए

हमने बच्चों की विभिन्न आवश्यकताओं और उनके महत्व की विवेचना की है। इसके मतलब यह नहीं हैं कि सभी बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति पूरी तौर से होनी चाहिए। इतना वंचन भी नहीं होना चाहिए कि बच्चा पूरी तौर से कुण्ठित अनुभव करे और उसके विकास पर कुप्रभाव पड़े। किन्तु सभी बच्चों को कुछ मात्रा में कुंठा को सहन करना और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं प्रयास करना सीखना चाहिए। उदाहरण के लिए निष्पादन की आवश्यकता (need for achievement) की पूर्ति के लिए उसे स्वयं प्रयास करना होगा। बच्चे को यह भी सीखना चाहिए कि उसकी आवश्यकताएं अन्य की आवश्यकताओं से टकरा सकती हैं। उसे आदान-प्रदान सीखना चाहिए और दूसरों का लिहाज करने वाला होना चाहिए। इस प्रकार उसे दूसरों की कद्रदानी मिलेगी और मित्रता बढ़ेगी और इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकेगी।

जैसे बच्चे बड़े होते हैं वे सीखेंगे कि उनकी स्वयं की कुछ आवश्यकताओं में परस्पर विरोध है। उदाहरण के लिए, अपनी बात को बलपूर्वक कहना और दूसरों का खुश रखना, निष्पादन की आवश्यकता और मित्रों के साथ गपशप की इच्छा जिसमें बहुत सा समय व्यतीत हो जाता है। इन विरोधों का समाधान ढूंढने के लिए उन्हें निश्चय करना होगा कि उनके लिए क्या अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए उन्हें मूल्यों के महत्व के अनुसार एक माप बनाना होगा। उन्हें निश्चय करना होगा कि रुपया वे फैन्सी (fancy) कपड़ों पर खर्च करें या किताबों पर। इसी प्रकार, समय को वे कैसे व्यतीत करते हैं, यह भी उनके मुल्यों पर निर्भर करेगा।

अध्याय 14

खेल का विकास में कार्य

रविता देवेन्द्रनाथ

एक बच्चे के पिता से बात करते हुए शिक्षिका ने कहा, अदिल को गुट्टों से खेलना अच्छा लगता है। इस कथन पर शिक्षिका यह दर्शाती है कि वह बच्चे के जीवन में खेल के अर्थ को समझती है। खेल बच्चे का स्वाभाविक कार्य है। भोजन करते हुए या दूसरों के आदेश पर कुछ करने को छोड़ कर, जो कुछ भी जाग्रत अवस्था में बच्चे करते हैं, वह खेल है। ये वे अपनी स्वयं की इच्छा से करते हैं। खेल से बच्चे की बहुत सी आवश्यकताएं पूरी होती हैं। खेल से बच्चों को पता चलता है कि वे क्या कर सकते हैं, वे कैसे विचार करते हैं और उनकी क्या भावनाएं हैं। खेल में वह अपनी पेशियों के प्रयोग के अवसर प्रदान करता है, समन्वय विकसित करता है, और अपने शरीर पर स्वयं के नियंत्रण में प्रवीणता प्रदान करता है। खेल के द्वारा बच्चे अपने आसपास के पर्यावरण के बारे में खोजबीन करते हैं और बाह्य जगत के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। यदि हम बच्चों के खेल का अवलोकन करें तो हम देखेंगे कि कैसे यह इन सभी पक्षों को विकसित करता है। इसकी विवेचना नीचे की जा रही है।

व्यायाम के अवसर

बच्चों को यदि खुली जगह मिले तो हम देखेंगे कि वे दौड़ते और कूदते हैं। वे कोई खेल खेलेंगे, या उत्साह के बाहुल्य से चारों ओर दौडेंगे और अपनी शक्ति को क्रिया द्वारा निकालेंगे। किसी भी स्थिति में उनके शरीर को वह कसरत मिल जाती है जिसकी उन्हें आवश्यकता है। कसरत से उन्हें अधिक सांस लेनी पड़ती है, जिससे उन्हें अधिक आक्सीजन मिलती है, भूख लगती है और मांस-पेशियों में ताकत आती है।

पेशियों का समन्वय और कौशलों को सीखना

खेल से पेशियां केवल मजबूत ही नहीं होतीं, किंतु उनसे नियंत्रण भी प्राप्त

होता है और व्यक्ति अनेक कौशल सीखता है। बच्चा यदि एक गुट्टे पर दूसरा रख रहा है तो वह वस्तुओं को अपनी इच्छानुसार व्यवस्थित करना भी सीख रहा है। गेंद को फेंकने और रोकने में बच्चे पेशियों के समन्वय के साथ एक कौशल भी सीख रहे हैं। उनमें से बहुत से चाहते हैं कि उन्हें एक बैट मिल जाए। यदि बैट नहीं है तो किसी भी डण्डे से उसका काम लिया जाता है और गेंद मारने का अभ्यास किया जाता है। उनसे कोई अभ्यास करने को नहीं कहता। वे अपने आप अभ्यास करते हैं।

एक कक्षा मनोरंजन के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही है। जुबैदा कार्यक्रम बोर्ड पर लिख रही है। वह सावधानी से लिखती है। यदि कोई अक्षर उसे ठीक नहीं लगता तो वह उसे मिटाकर फिर से लिखती है। इस प्रकार खेल में बच्चे अपने लिए मापदण्ड निर्धारित करते हैं, उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और इसके द्वारा विभिन्न कौशलों में प्रवीणता प्राप्त करते हैं।

टीम कार्य

कुछ बच्चे समय से पहले स्कूल आ जाते हैं। उनको लगता है कि जब तक स्कूल की घण्टी नहीं बजती उनके पास कुछ समय है। वे दो टीम बना कर खेल शुरू करते हैं। अमित उनको संगठित कर रहा है और प्रत्येक को उसका स्थान बता रहा है। जैसे और बच्चे आते हैं अमित उन्हें बताता है कि, किस टीम में वे सम्मिलित हों।

कक्षा द्वारा मनोरंजन कार्यक्रम, जिसका जिक्र ऊपर किया गया है, जुबैदा का दायित्व श्यामपट्ट पर लिखने का था, सुषमा और रश्मि कमरे को सजा रही थीं, और लोग गाने और अभिनय करने की तैयारी कर रहे थे।

हम देखते हैं कि खेल के द्वारा बच्चे टीम में मिल कर काम करना, दायित्व लेना और विभिन्न परिस्थितियों में नेतृत्व लेना सीखते हैं।

ज्ञान में विस्तार

संध्या ढल चुकी है। बच्चे किसी चीज को झुककर देख रहे हैं। यह जुगनू है। उन्हें जो प्रकाश जुगनू से निकलता है उसे देखकर आश्चर्य होता है। जुगनू उड़ता है और वे उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। उनमें से एक ने एक कपड़े में जुगनू पकड़ लिया है। वे उसको एक बच्चे के पिता के, जो जीवविज्ञान के शिक्षक हैं पास जाते हैं और उनसे पता करते हैं कि जुगनू में प्रकाश का क्या रहस्य है।

सृजनात्मक कार्य और समस्या समाधान

बच्चों के खेल में सृजनात्मक कार्य भी सम्मिलित हैं। लड़के लकड़ी के टुकड़ों पर हथौड़ी मार रहे हैं। वे एक शैड बनाने में व्यस्त हैं। लड़कियां फर्नीचर को सजा

रही हैं। वे गुडिया के लिए छोटा सा घर बना रही हैं। जब कोई त्यौहार आता तो अनेक सृजनात्मक कार्य किए जाते हैं। बच्चे ईद, दिवाली या क्रिसमस पर अपने आप कार्ड बनाते हैं। वे अपने घरों को त्यौहार के लिए सजाते हैं। जन्माष्टमी निकट आने पर बच्चे विशेष रूप से व्यस्त रहते हैं। वे पत्थर, रेत, लकड़ी की टहनियां इकट्ठा करते हैं। वे इनसे एक सुन्दर पहाड़ का दृश्य बनाएंगे। वे बहती हुई एक नदी भी दिखाना चाहते हैं। इसमें समस्याएं उठती हैं और उनके हल ढूंढने होते हैं। यह एक सर्वोत्तम प्रायोजना कार्य है, जो बच्चों की ही पहल पर पूरा किया जाता है।

संवेगों का निकास और रोल प्लेइंग

दौड़ने, चिल्लाने, और शारीरिक कसरत में कुछ सीमा तक तनाव के निकास में मदद मिलती है। खेल संवेगात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक अधिक प्रत्यक्ष अवसर प्रदान करता है। एक बच्चा जिसे घर में दूसरों की आज्ञानुसार कार्य करना पड़ता है, खेल में दुसरों को संगठित करने का अवसर पाता है। छोटे बच्चे खेल में गुड्डे या किसी वस्तु को उन्हीं शब्दों में डांटते हैं जिनमें बच्चे को डांटा गया था, दवा पीने के लिए फुसलाते हैं, या उस अनुभव को जिसके कारण घबराहट या भय उत्पन्न हुआ था खेल में फिर से दोहराते हैं। नाटक के खेल में विभिन्न भुमिकाओं को अपनाने का और विभिन्न संवेगों की फिर से अनुभव करने के अवसर मिलते हैं। "रोल प्लेइंग" से बच्चों को पता चलता है कि यदि आप को दूसरे व्यक्ति की स्थिति में रखा जाए तो कैसा लगता है। छोटे बच्चे अधिकतर घर की घटनाओं को लेकर अभिनय करते हैं जिनमें वे माता, पिता इत्यादि बनते हैं। बड़े बच्चे कहानियों या घटनाओं को लेकर, जिनके बारे में उन्होंने पढ़ा या सुना है, अभिनय करते हैं। बाल्यावस्था के मध्य में बच्चों को संगठित खेल अच्छे लगते हैं, वे किसी समूह जैसे क्लब के सदस्य होना चाहते हैं।

शिक्षा में खेल का स्थान

बच्चों को खेल में मजा आता है, इससे अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और खेल से वे बहुत कुछ सीखते हैं। शिक्षक खेल का उपयोग बच्चों को बहुत सी बातें सिखाने में कर सकते हैं। खेल वह है जिसमें बच्चे अपनी मर्जी से कार्य करते हैं। यदि वे कुछ सीख रहे हैं जिसमें उन्हें आनन्द आ रहा है, तो उनके लिए यह खेल का रूप ले लेता है। एक रोचक कक्षा या एक अच्छी पुस्तक, सभी खेल का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें बच्चों का मन लगा रहता है और वे खुशी से सीखते हैं।

बहुत से क्रियाकलाप ऐसे हैं जिनमें बच्चों के लिए खेल और शिक्षा दोनों ही मौजूद रहते हैं, और जिनका प्रयोग हम शिक्षण में कर सकते हैं। पहेलियां और

क्विज (quiz) शिक्षण में प्रयोग की जा सकती है। जानकारी को हम कॉमिक (comic) द्वारा भी, जो बच्चों का ध्यान अनायास खींच लेते हैं, प्रस्तुत कर सकते हैं। मॉडल (model) बनाना, अप्रयोजना, भ्रमण, यदि ठीक ढंग से संचालित किए जाएं, तो वे खेल हैं जिनके द्वारा बच्चे सीख सकेंगे।

नाटक शिक्षण का एक समृद्ध स्रोत है। इतिहास के दृश्य, अन्य देशों के जीवन की झलकियां, नाटक द्वारा प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जिनसे पाठ्यपुस्तकों की अपेक्षा अधिक स्थायी ज्ञान अर्जित हो सकेगा। नाटक का प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने के लिए और सामाजिक संवेदना जाग्रत करने के लिए भी किया जा सकता है। नाटक से बच्चों को सही और स्पष्ट बोलने के अवसर मिलते हैं, वे ठीक ढंग से अंग विन्यास (posture) करना सीखते हैं और अच्छी आदतें अपनाते हैं। नाटक द्वारा बच्चों में सृजनात्मक आत्माभिव्यक्ति विकसित होती है। फिर भी, इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि जैसा अकसर होता है नाटक में भाग लेने के अवसर कुछ ही छात्रों तक सीमित न रह जाएं। कक्षा में अनौपचारिक नाटक प्रत्येक छात्र को भाग लेने का अवसर प्रदान करते हैं और इसलिए इन्हें भी आयोजित करना चाहिए। कार्यक्रम आयोजित करना, स्कूल में दायित्व लेना, ये सब बच्चों के लिए खेल का रूप ले सकते हैं और इनके द्वारा वे उपयोगी आचरण भी सीखते हैं।

यदि एक शिक्षक को अपने कार्य में आनन्द आता है तो यह उसके लिए खेल के समान है और वह अपने कार्य को उत्साहपूर्वक अच्छी तरह करेगा।

शिक्षा को जितना अधिक आनन्दायक बना कर खेल में परिणित किया जा सके, उतना ही अधिक बच्चे सीखेंगे और सभी सम्बद्ध व्यक्तियों को इससे संतोष और खुशी होगी।

भाग–3

व्यक्तिगत विभिन्नताएं

व्यक्तिगत विभिन्नता और विशिष्ट बालकों पर ये अध्याय इस खास उद्देश्य से लिखे गए हैं। शिक्षक समझे कि एक ही आयु के बच्चों में बहुत सी समानताओं के होने पर भी उनमें अन्तर होते हैं, जो मामूली से लेकर अत्यधिक तक होते हैं। प्रत्येक बच्चा निराला होता है और उसको वैसा ही मान कर व्यवहार करना चाहिए। इस समझ से आशा की जाती है, शिक्षक अनुदार टिप्पणी, कटु आलोचना और प्रतिकूल तुलना नहीं करेगा।

यहां उद्देश्य यह है कि भावी शिक्षक अपने छात्रों के प्रति व्यवहार में अधिक समझने वाले, ख्याल रखने वाले और सहृदय बनें। जो चर्चा की जाएगी उसका अभिप्राय यह नहीं है कि शिक्षक इस ज्ञान के आधार पर बच्चों को धीमी गति से सीखने वाला, विकलांग आदि श्रेणियों में बांटें और उनको हीन मानें। शिक्षक को जानना चाहिए कि व्यवहार की समस्याएं घर की स्थितियों का परिणाम होती हैं। किसी बच्चे को पढ़ाना चाहे कितना दुष्कर क्यों न लगे कभी इस प्रकार की बातें कह कर 'पता लगता है कि कैसे घर से तुम आते हो।' ताना नहीं देना चाहिए। यदि बच्चे की घर की परिस्थितियां दुःखदायी हैं तो हमको उसके प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। यदि बच्चे ने सुसंस्कृत व्यवहार नहीं सीखा, तो शायद यह उसका कसूर नहीं है। ऐसी ही परिस्थितियों में जिस चीज का घर में अभाव है उसकी पूर्ति करने की कोशिश करके शिक्षक को बच्चे की मदद करनी चाहिए।

व्यक्तिगत विभिन्नता के ज्ञान के आधार पर उपयुक्त पाठ्यक्रम निर्मित करना चाहिए और उचित विधियां, सामग्री और निर्देशन के तरीकों का चयन करना चाहिए। इनके अतिरिक्त बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लचीला उपागम अपनाना चाहिए।

अध्याय 15

व्यक्तिगत विभिन्नताएं

लीला एच. मन्हास

हमारे दिन-प्रति-दिन के अवलोकन हमें बताते हैं कि कोई दो व्यक्ति बिलकुल एक समान नहीं होते । कुछ बच्चे लम्बे होते हैं, कुछ छोटे, कुछ मोटे, कुछ दुबले, कुछ शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ और बलवान व कुछ कमजोर, कुछ सतर्क और तुरन्त अनुक्रिया करने वाले, कुछ मन्द और सुस्त। इसी प्रकार, स्फूर्तिवान और ढीले-ढाले, चारू और बेढंगे, साहसिक और भीरू, स्नही तथा मिलनसार और एकाकी तथा गैर-मिलनसार होते हैं। प्रत्येक बच्चे को एक अलग व्यक्ति के रूप में देखा जाना चाहिए और उसकी क्षमताओं के अधिकतम विकास के लिए उसको निर्देशन देकर मदद की जानी चाहिए। ऐसी दशा में ही वह स्कूल और पर्यावरण के अन्य अनुभवों से पूरा लाभ उठा सकेगा और अपने जीवन के लक्ष्य की ओर तैयारी कर सकेगा।

बच्चों में विभिन्नताएं कम, मामूली या अत्यधिक हो सकती हैं। एक ही आयु समूह के अधिकांश बच्चे कम या मामूली अन्तार जिनका विस्तार (range) सीमित होता है, प्रदर्शित करते हैं। इने-गिने बच्चे ऐसे निकल आएंगे जो अपने आयु समूह के अधिकांश बच्चों से घनात्मक या ऋणात्मक दिशा में सार्थक रूप से भिन्न होंगे। हो सकता है कि एक बच्चा उत्कृष्ट बुद्धि का हो और दूसरा अत्यन्त मन्द बुद्धि का। कुछ बच्चे कुछ बातों में आपस में समान होते हैं, किन्तु कुछ अन्य बातों में उनमें अन्तर होता है। स्कूल के पाठ्यक्रम और कक्षा के क्रियाकलाप आयोजित करने में, शिक्षण विधियों को अनुकूल बनाने में, और दायित्व देने में इन अन्तरों पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। जो बच्चे अपने आयु समूह से अत्यधिक भिन्न हैं उनके लिए विशेष शैक्षिक प्रबन्ध करना पड़ेगा। जिनमें थोड़ा अन्तर होता है उनके लिए शिक्षण विधि, कार्य विधि और शिक्षक-छात्र पारस्परिक क्रिया में कुछ परिवर्तन करने आवश्यक होंगे।

यह भी देखा गया है कि विभिन्नताएं व्यक्ति के बीच ही नहीं होतीं बल्कि एक ही व्यक्ति में भी होती हैं। कोई व्यक्ति सभी योग्यताओं में समानरूप से अच्छा या कमजोर नहीं होता। उदाहरण के लिए, एक बालक गणित में बहुत तेज हो सकता है किन्तु भाषा में बहुत कमजोर। एक अन्य बालक शास्त्रीय-विषयों में उत्कृष्ट हो सकता है किन्तु खेल के मैदान पर वह बहुत घटिया खिलाड़ी साबित हो। कुछ अभिनय, नृत्य और संगीत में बहुत अच्छे हो सकते हैं, किन्तु दस्तकारी की ओर उनका कोई झुकाव न हो। दूसरी ओर, कुछ हाथ के कार्य में बहुत अच्छे हो सकते हैं, किन्तु, उन समस्याओं को हल करने में, जिनमें अमूर्त प्रतीकों की आवश्यकता होती है, वे बहुत कमजोर पाए गए।

किस प्रकार बालक विभिन्न परिस्थियों और विभिन्न व्यक्तियों के साथ अनुक्रिया करता है इसमें भी अन्तर मिलता है। कुछ लोग बच्चे से अच्छे से अच्छा कार्य करवा लेते हैं, अन्य उसका तिरस्कार करके या सही ढंग से व्यवहार न करके उसके दुर्बल पक्षों को ही उद्घटित करते हैं। वह अपने मित्रों और सहपाठियों का बहुत ख्याल रखने वाला और शिक्षकों का आदर करने वाला हो सकता है, किन्तु माता-पिता के प्रति उसका व्यवहार अशिष्ट हो और भाई, बहन पर वह अपनी धौंस जमाता हो।

शिक्षण-अधिगम स्थिति में इन सभी विभिन्नताओं पर मुनासिब ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि वे बच्चे के व्यवहार का अभिन्न अंग हैं।

हमें यह भी समझना चाहिए कि वैयक्तिक विभिन्नताएं एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं। केवल अध्ययन की सुविधा के लिए हम व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का श्रेणियों के अन्तर्गत विभाजन करते हैं। वास्तव में बच्चा या व्यक्ति एक समग्र प्राणी के रूप में क्रिया करता है। यदि हमें उसके विकास का पथ प्रदर्शन करना है, और उसे शिक्षित करना है, हमें उसके अनोखे व्यक्तित्व को समझना होगा।

शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में वैयक्तिक विभिन्नताएं

हम सब इस बात से सहमत हैं कि व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं और आचरण में अन्तर होता है। यह अन्तर विभिन्न सीमा तक और विभिन्न प्रकार का होता है। अब हम देखेंगे कि इन विभिन्नताओं के ज्ञान का शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में क्या प्रासंगिकता है।

एक नई शिक्षिका सत्र के आरंभ में पहली कक्षा में जाती है। वह क्या पढ़ाने जा रही है, कैसे पढ़ाएगी, किस गति से आगे बढ़ेगी, आदि के बारे में उसके मन में उत्साहपूर्ण योजनाएं चल रही हैं। उन योजनाओं में उसने बच्चों में व्यक्तिगत विभिन्नताओं के लिए कोई स्थान नहीं रखा। उसने मान लिया है कि क्योंकि बच्चे

एक ही कक्षा में हैं, वे लिखने पढ़ने और अंक में एक ही स्तर पर होंगे। ऐसे स्पष्ट अन्तरों की ओर वह ध्यान नहीं देती जैसे बच्चों की आयु, योग्यता, स्तर अनुभव की पृष्ठभूमि, पूर्व-ज्ञान, पारिवारिक पालन-पोषण, और वर्तमान परिस्थितियां। इस समझ के आने में अधिक समय नहीं लगेगा कि उसके अधिक से अधिक प्रयासों के बावजूद सभी बच्चों को कठिनाई के समान स्तर और सीखने की समान गति पर नहीं लाया जा सकता।

यह सोच कर कि कुछ बच्चे कक्षा में ध्यान नहीं दे रहे और परिश्रम नहीं कर रहे, वह दण्ड देना और डांटना या पढ़ने के लिए पुरस्कार देना प्रारंभ करती है। उसे पता चलता है कि इन तरीकों से कुछ ही बच्चों में उन्नति दिखाई देती है। फिर वह भिन्न-भिन्न बच्चों को पृथक विधियों द्वारा पढ़ाने का प्रयास करती है। कमला को तभी समझ में आता है जब प्रत्यक्ष उदाहरण दिए जाएं और प्रायोगिक प्रदर्शन किए जाए। दूसरी ओर, सरला और विमला, जो थोड़ी बड़ी हैं, जल्दी समझ जाती हैं, और केवल मौखिक निर्देश और व्याख्या से अपना कार्य संतोषप्रद ढंग से कर लेती हैं। शिक्षिका का ध्यान संजीव की ओर जाता है, जो इतना दबा और डरा हुआ है कि वह कोई नया कार्य नहीं करता। स्कूल के कार्य के प्रति उसमें ऊब और अनिच्छा है, स्कूल जाने के लिए उसे मनाना पड़ता है, और कक्षा के कार्य को पूरा करने के लिए उसे निरंतर प्रोत्साहन और मदद की आवश्यकता पड़ती है। इसके विपरीत, राम और शमशेर स्कूल आने के लिए उत्सुक रहते हैं, नए कार्य को करने में उनमें उत्साह है, और अपने-आप छानबीन और प्रयोग करने में उन्हें आनन्द आता है।

एक सतर्क शिक्षक जिन बच्चों को पढ़ाता है उनमें इस प्रकार की और अन्य अनेक विभिन्नताओं को देखता है। इस बात को समझ कर कि विभिन्नताएं कक्षा के वातावरण पर और अधिगम पर सार्थक रूप से प्रभाव डालती हैं शिक्षक प्रत्येक बच्चे के बारे में अधिक जानकारी, जो केवल बाहर से दृष्टिगोचर होने वाली विभिन्नताओं तक सीमित नहीं हैं, प्राप्त करने की कोशिश करता है।

कुछ महत्वपूर्ण विभिन्नताओं की चर्चा आगे की जाएगी।

एक ही कक्षा के बच्चों में असमानताएं

शारीरिक विभिन्नताएं

1. तैथिक आयु में अन्तर : यद्यपि स्कूल में प्रवेश की लघुतम आयु सब पर लागू होती है फिर भी एक ही कक्षा के बच्चों की आयु में अन्तर देखा जाता है। ये अन्तर कुछ माह से लेकर दो वर्ष या इससे अधिक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए पहली कक्षा में आयु पाँच वर्ष से लेकर साढ़े सात वर्ष हो सकती है। इन वर्षों

में बच्चा मानसिक परिपक्वता में आगे बढ़ रहा है और विभिन्न अनुभवों को संचित कर रहा है। इसलिए थोड़े समय का अन्तर भी सीखने की क्षमता में अन्तर लाता है। यह अन्तर हम संकल्पनाओं के विकास में, शब्द भंडार में, सामान्यीकरण और तर्क करने की योग्यता में प्रतिबिंबित होते देखते हैं।

2. परिपक्वन की गति में अन्तर : शारीरिक और मानसिक विकास और परिपक्वन बच्चों में विभिन्न गति से होता है। इसका अन्तर्निहित अर्थ यह हुआ कि बच्चे एक ही आयु के होते हुए भी, यह आवश्यक नहीं कि उनमें स्कूल की पढ़ाई के लिए समान मानसिक और भावात्मक परिपक्वता हो। उदाहरण के लिए कुछ पाँच वर्षीय बच्चे स्कूल में प्रवेश लेने पर लिखने-पढ़ने की औपचारिक पढ़ाई के लिए तैयार हो सकते हैं। अन्य पाँच वर्षीय बच्चों को तत्परता के उसी स्तर पर पहुंचने और पढ़ाई लिखाई में जमने में अभी समय लगेगा। उनके लिए अनौपचारिक पढ़ाई प्रारंभ करने के पहले अनौपचारिक क्रियाकलापों की आवश्यकता होगी।

विभिन्न बच्चे विभिन्न आयु पर शारीरिक परिपक्वता प्राप्त करते हैं। शारीरिक परिपक्वता का सीखने की तत्परता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, क्योंकि सीखने की क्षमता का स्नायुतंत्र की परिपक्वता, पेशियों के विकास, शरीर के अनुपात और संवेदी इंद्रियों के क्रियान्वयन से घनिष्ट संबंध हैं। बालक से उसकी क्षमता से अधिक कार्य की अपेक्षा करना प्रतिरोध और कुंठा उत्पन्न करता है। दूसरी ओर यदि बच्चा सीखने के लिए तत्पर है तो वह बहुत तेजी के साथ सीखेगा।

शारीरिक परिपक्वता भी शीघ्र और देर से परिपक्वता प्राप्त करने वालों के बीच अभिरुचियों में अन्तर होने का एक कारण है। ये अन्तर हम बालकों में जो खेल वे खेलते हैं, क्रियाकलाप, जिनमें वे भाग लेते हैं और शारीरिक कौशल में जो प्रवीणता वे प्राप्त करते हैं, उनमें देखा जा सकता है। यह स्कूल का दायित्व है कि कुछ बालकों के घर और पड़ोस के पर्यावरण में जो कमियां हैं उनकी पूर्ति के लिए उपयुक्त क्रियाकलाप और शारीरिक विकास के लिए अवसर प्रदान करें। यह याद रखना चाहिए कि उपयुक्त शारीरिक विकास संतोषप्रद मानसिक क्रियान्वयन के लिए आवश्यक हैं।

3. अन्य शारीरिक पहलुओं में अन्तर : सभी बच्चे समान ऊंचाई, समान रूप से हृष्ट-पुष्ट या समान वजन के नहीं होते। कुछ बलिष्ठ होते हैं और उनमें अधिक समय तक कार्य करने की क्षमता होती है, जबकि कुछ कमजोर लगते हैं और कठिन कार्य करने की उनमें शक्ति नहीं होती है।

कुछ मजबूत और तगड़े होते हैं, कुछ सामान्य और कुछ बीमार से दिखाई देते हैं। उनके अंग विन्यास, शारीरिक दिखाव-बनाव में अन्तर दिखाई देता है। क्योंकि

सीखने में छात्र पर इन अन्तरों का प्रभाव पड़ता है, ये सीखने की परिस्थिति पर प्रभाव डालते हैं। इसलिए इन अन्तरों के निहितार्थ को शिक्षक को समझना चाहिए और विभिन्न बच्चों के लिए सीखने के पर्यावरण में परिवर्तन करके उपयुक्त बनाना चाहिए।

उदाहरण के लिए, कक्षा में बैठने की व्यवस्था ऊंचाई के अनुसार की जानी चाहिए और यदि कोई शारीरिक दोष हो तो उस पर भी ध्यान देना चाहिए। जो ठिगने हैं या जिनमें दृष्टि या श्रवण का दोष है, उन्हें आगे बैठाने की व्यवस्था करनी चाहिए। शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों के लिए विशेष व्यवस्था करनी होगी। इनमें से कुछ बालकों के लिए पढ़ाने के विशेष तरीके अपनाना आवश्यक होगा। अन्य बच्चे इनको स्वीकार करें और इनसे मित्रता करें इसके लिए विशेष प्रयत्न करने होंगे।

4. स्वास्थ्य की स्थिति : शिक्षक को यह समझना चाहिए कि किस प्रकार बालक की सामान्य स्वास्थ्य स्थिति का उसके व्यवहार पर, जिसमें सीखना और शैक्षिक कार्य सम्मिलित हैं, असर पड़ता है। इससे वह न केवल बच्चे के साथ अधिक समझदारी का व्यवहार करेगा बल्कि बच्चे की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शैक्षिक कार्य में समंजन करेगा। यदि बच्चे का स्वास्थ्य ठीक नहीं हो तो वह उसके कारणों का पता लगाने का प्रयास करेगा और जहां तक संभव हो बच्चे के स्वास्थ्य को अच्छा बनाने की कोशिश करेगा या कम से कम उसके ऊपर अनावश्यक मानसिक या शारीरिक बोझ नहीं डालेगा।

शक्ति और दम (stamina) की कमी न्यूनपोषण और कुपोषण के कारण होती है। एक बालक जो बिना कुछ खाए स्कूल आता है वह बजाए शिक्षक को सुनने के खाने के बारे में सोचेगा। ऐसे बच्चे अकसर स्कूल के कार्य की ओर उदासीन रहते हैं। पहले उनकी भोजन की प्रारंभिक आवश्यकता पूरी होनी चाहिए और इसके बाद ही उन्हें मानसिक कार्य में लगाने का प्रयास किया जा सकता है।

5. शारीरिक स्वास्थ्यता और थकान : ऐसा देखा गया है कि कुछ बच्चे जब स्कूल आते हैं तो थके हुए दिखाई पड़ते हैं। स्वाभाविक ही है पढ़ाई के प्रति उनकी अनुक्रिया और उन बच्चों की अनुक्रिया में, जो आने पर ताजा महसूस करते हैं, गुणात्मक अन्तर होगा। कुछ बच्चों को स्कूल पहुंचने के लिए लम्बी दूरी या तो पैदल या बस द्वारा तै करनी पड़ती है। स्कूल पहुंचने तक वे थके और परिश्रान्त हो जाते हैं, और इसलिए अपनी ओर से उत्तम प्रयास नहीं कर पाते, जबकि दूसरे जो पास की जगहों से आते हैं या उनका स्वयं का वाहन है वे आने पर ताजगी महसूस करते हैं और इस प्रकार अधिक अनुकूल स्थिति में रहते हैं।

6. रूपरंग में अन्तर : कक्षा में कुछ बच्चे अपने सुन्दर रूप के कारण अलग दिखाई देते हैं, बाकी साधारण, कुछ असुन्दर और कुछ कुरूपता के समीप होते हैं। रूपरंग के इन अन्तरों का छात्रों के बीच आपसी संबंधों, तथा शिक्षक छात्र के बीच संबंधों पर असर पड़ता है, क्योंकि कुछ सीमा तक रूपरंग का प्रभाव दूसरों की बच्चे के प्रति अनुक्रियाओं पर पड़ता है। ये व्यक्तिगत अन्तर्सम्बन्ध बच्चे की आत्मसंकल्पना, आत्मविश्वास, जीवन के प्रति दृष्टिकोण और स्कूल के कार्य में रुचि पर प्रभाव डालते है। शिक्षक को बच्चों के अन्य सबल पक्षों को उजागर करना चाहिए, जिससे उनका विश्वास सुदृढ़ हो सके, और एक स्वस्थ व्यक्तित्व की बुनियाद रखी जा सके।

शारीरिक गठन भी व्यक्ति की आत्म संकल्पना को प्रभावित कर सकता है क्योंकि वयस्कों और अन्य बच्चों द्वारा शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्ति से कुछ अपेक्षाएं की जाने लगती हैं। सहपाठियों द्वारा अधिकतर लम्बे और गठे हुए बदन वाले लड़के को नेता चुना जाता है।

क्योंकि व्यक्तित्व के सभी पहलू अन्तर्सम्बन्धित हैं, शारीरिक अन्तर सभी पक्षों को प्रभावित करेंगे।

मनोवैज्ञानिक पहलुओं में अन्तर

1. संवेगात्मक अन्तर : बच्चों में संवेगात्मक अन्तर मिलते हैं जो बहुत मामूली से लेकर बहुत अधिक तक देखे गए हैं। कुछ बच्चे अधिक समय खुश और शान्त रहते हैं, कुछ चिड़चिड़े होते हैं और जरा सी बात पर अपना सन्तुलन खो देते हैं। कुछ में कुण्ठा को सहने की काफी क्षमता होती है और असफलता के बावजूद प्रयास करते रहते हैं, जबकि अन्य बहुत जल्दी निराश हो जाते हैं।

बच्चे विभिन्न परिस्थितियों मे भी विभिन्न प्रकार से व्यवहार करते पाए गए हैं। एक बालक घर में बेधड़क खूब बातचीत कर लेता है, किन्तु स्कूल में दबा रहता है। दूसरा जिस शिक्षक को पसंद करता है उसे खुश करने के लिए अच्छे से अच्छा कार्य करता है, किन्तु दूसरे शिक्षक के प्रति, जिसे वह मानता है कि पक्षपात करता है, अशिष्ट और दुराग्रहपूर्ण व्यवहार करता है। यह देखने में आता है कि भिन्न-भिन्न बालक एक ही प्रकार की परिस्थितियों में अलग-अलग प्रकार का व्यवहार करते हैं। दो बच्चों को गृहकार्य न करने पर शिक्षक डांटता हैं एक बच्चा इसे स्वीकार कर लेता है और निश्चय करता है कि भविष्य में गृहकार्य करेगा। दूसरे बच्चे पर डांट का बुरा प्रभाव पड़ता है, वह रोता है और अगले दिन स्कूल जाने को मना करता है। इन अनुक्रियाओं में अन्तर इसलिए है कि प्रत्येक बच्चे का अपना विशेष स्वभाव होता है, जिसका आधार वे विशेष अनुभव हैं जिनसे उनका वर्तमान व्यक्तित्व बना है। उसके व्यक्तित्व के विशेषक उसकी वर्तमान परिस्थितियों से संयुक्त हो कर

विभिन्न स्थितियों में उसकी प्रक्रियाओं को निर्धारित करते हैं। एक समझदार और सहानुभूतिशील शिक्षक कक्षा की परिस्थितियों को अधिक सुरक्षित और अनुमतिबोधक बनाता है और बच्चों के मन में डर को दूर करता है। इसके अतिरिक्त वह कार्य को अधिक रोचक और चुनौतीपूर्ण बनाता है, उनको प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करता है अपने व्यवहार में न्यायोचित और संगत होता है , और विभिन्न प्रकार के सृजनात्मक कार्यों को मुहैया करता है जिससे उनके तनावों का भी निकास हो सके।

2. सामाजिक : एक ही कक्षा के बच्चें में, यदि वे विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर, विभिन्न समुदाय, विभिन्न क्षेत्रों या विभिन्न व्यावसायिक समूह से आते हों, जिसके कारण उनके घर की अलग-अलग पृष्ठभूमि हो तो उनके सामाजिक व्यवहार में अन्तर मिलता है। इन अन्तरों को हम उनके उठने-बैठने और बात करने के तौर तरीकों में, कपड़ों के चुनाव, शिष्टाचार, काम करने की आदतें, भाषा गठन, शब्द-भण्डार, संकल्पना निर्माण, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जिसमें अनुभवों की पुष्ठभूमि सम्मिलित है, निष्पादन प्रेरणा और पढ़ाई के लिए तत्परता में देख सकते हैं। ये अन्तर शिक्षक-छात्र और छात्र-छात्र संबंधों में प्रतिबिम्बित होते हैं और सीखने की परिस्थितियों पर विशेष प्रभाव डालते हैं। इसलिए विभिन्न बच्चों में सीखने की तत्परता और स्कूल के प्रति अभिवृत्तियों में बहुत अन्तर होगा और बाद के निष्पादन में भी काफी अन्तर रहेगा।

बच्चों की अन्य बच्चों की ओर प्रतिक्रिया में अन्तर और कक्षा में उनका सामाजिक स्तर भी शिक्षण-अधिगम परिस्थिति पर प्रभाव डालेगा। मैत्रीपूर्ण व्यवहार करने वाले और मिलनसार बच्चे दूसरे के साथ हिलमिल जाते हैं। सहयोगशील होने के कारण वे किसी परियोजना की टीम में अच्छा कार्य कर लेते हैं। मित्रवत आचरण करने के कारण लोकप्रिय हो जाते हैं जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है और वे अच्छे से अच्छा कार्य करने के लिए तैयार रहते हैं। दूसरों से भी उत्तम कार्य करवाने के लिए वे तत्पर रहते हैं।

पहले के और अभी के खेल के साथियों का प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं पर पड़ता है। ये प्रभाव हम उसकी 'रुचियों', 'हॉबी', 'शैक्षिक-कार्य, शैक्षिक-कौशलों के सीखने की और अभिवृत्तियों, शिक्षक और अन्य कक्षा के बच्चों के प्रति व्यवहार और उसके स्कूल के पर्यावरण में देख सकते हैं।

3. बौद्धिक : शिक्षक जिन बच्चों को पढाता है उनमें ऐसी काफी विभिन्नताओं को देख सकता है जिनका संबंध सीखने और निष्पादन से है।

ऐसे बच्चे कक्षा में होते हैं जो यह सब समझ लेते हैं कि उनके चारों ओर क्या हो रहा है, शिक्षक और कक्षा के अन्य बच्चे क्या कह रहे हैं, उनके निकट

के पर्यावरण में क्या हो रहा है और उन्हें इसके प्रति किस प्रकार अनुक्रिया करनी चाहिए। ऐसा लगता है कि उनकी दृष्टि से कुछ नहीं छूटता। उसी कक्षा में ऐसे भी कुछ बच्चे होते हैं जिन्हें बताना पड़ता है कि उनके आस-पास क्या हो रहा है और उन्हें किस प्रकार अनुक्रिया करनी चाहिए। कुछ अन्य बच्चे अवलोकन करने में बहुत सुस्त होते हैं और पर्यावरण के उद्दीपनों की ओर अनुक्रिया करने में और भी धीमे होते हैं यद्यपि शिक्षक का प्रोत्साहन उन्हें मिलता रहता है उन्हें कोई बात समझने में काफी देर लगती है और जब तक उन्हें मूर्त सामग्री और उदाहरण देकर समझाया नहीं जाता वे केवल मौखिक शिक्षण नहीं समझ पाते।

कक्षा में बाकी बच्चों को कार्य का मूल्यांकन अच्छे से अच्छा कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने पर, संतोषप्रद, औसत अच्छा या बहुत अच्छा श्रेणियों में किया जा सकता है। इन बच्चों में कक्षा के कार्य करने की योग्यता है और ये कक्षा का कार्य भली प्रकार कर सकेंगे यदि ये कक्षा में नियमित आते रहें, पढ़ाई पर ध्यान देते रहें और कोई बाधा, उनके स्वयं के व्यक्तित्व की या पर्यावरण की, उनके मार्ग में नहीं आए।

4. **तत्परता :** सीखने की तत्परता में भी अन्तर देखे जाते हैं। योग्यता और पूर्व-अनुभव में अन्तर होने के कारण, स्कूल में प्रवेश लेने पर या अगली कक्षा में चढ़ाए जाने पर, या कोई नए विषय जैसे गणित का कोई नया प्रकरण शुरू किए जाने पर सभी बच्चे सीखने के एक ही स्तर पर नहीं होते। नई परिस्थिति में इससे अन्तर पड़ता है क्योंकि मूलभूत संकल्पना और नए पाठ में आधार के रूप में जिस ज्ञान की आवश्यकता है, वह बच्चों के सामान रूप से नहीं मिलता।

5. **सीखने के लिए उत्सुकता :** प्राथमिक शाला की आयु के बच्चे कुल मिलाकर सीखने के लिए उत्कण्ठित रहते हैं। फिर भी सीखने के प्रति जो उत्सुकता और उत्कण्ठा वे प्रदर्शित करते हैं उनमें अन्तर होता है। ये अन्तर आंशिक रूप से उनके प्रारंभिक पालन-पोषण उनके घर के अनुभव और सबसे महत्वपूर्ण, उसकी बौद्धिक क्रियाशीलता पर निर्भर करते हैं।

6. **सफलता के अनुभव :** प्रारंभ में पढ़ाई के क्षेत्र में सफलता भी अधिक प्रयास की ओर प्रेरित करने और सीखने के प्रति उत्सुकता जाग्रत करने में महत्वपूर्ण कारक हैं जिन बच्चों को पूर्व सफलता मिली है वे अपने प्रयासों में सफलता प्राप्त होने तक अधिक स्थिरता व्यक्त करते हैं।

7. **अवधान का विस्तार :** अवधान के विस्तार में और कितने समय तक लगातार बच्चा किसी क्रियाकलाप पर ध्यान दे सकता है और ध्यान को कहां तक केन्द्रित कर सकता है, इनमें अन्तर होते हैं और ये अन्तर शैक्षिक निष्पादन के

अन्तरों के लिए उत्तरदायी हैं। शिक्षक अपने पाठ को अधिक रोचक तथा दैनिक जीवन से संबद्ध करके और बच्चों के विकास के स्तर के उपयुक्त बनाकर, बालकों के अवधान को अधिक समय तक प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता को जो क्रियाकलाप हो रहे हैं उनका प्रयोजन बच्चों को बताकर और उनको उसमें सक्रिय भाग देकर मजबूत किया जा सकता है।

8. शैक्षिक निष्पादन : अपनी कक्षा के बालकों के शैक्षिक निष्पादन में अन्तर ही अधिकतर शिक्षकों का ध्यान बालकों में व्याप्त अन्तरों की ओर आकृष्ट करते हैं। यद्यपि एक कक्षा में सभी बालकों को एक ही शिक्षक कोई विषय पढ़ाता है, और सभी के लिए सामान विधि अपनाता है, वे निष्पादन में अलग-अलग स्तर व्यक्त करते हैं। ऊपर दिए गए कोई भी कारक, अधिकतर कई मिल कर, इन अन्तरों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

निष्पादन में अन्तर के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारण बौद्धिक योग्यता में अन्तर है, किन्तु अन्य बातों का भी प्रभाव पड़ता है, जैसे शैक्षिक कार्यों में रुचि। उदाहरण के लिए, एक बच्च स्कूल के कार्य में, जो उसकी दिन-प्रति-दिन की परिस्थितियों से दूर है, रुचि नहीं लेता, या स्कूल के ऐसे कार्य के प्रति, जिसका उसके स्कूल छोड़ने के बाद के कार्यक्षेत्र से कोई संबंध नहीं है, उदासीन रहता है, तो निश्चय ही उसके निष्पादन में गिरावट आएगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊपर दिए गए कारकों के कारण विस्तृत अन्तर उत्पन्न होते हैं। इनके प्रति जागरुकता और कारणों की समझ, शिक्षक को अपने शिक्षण को बालकों के लिए प्रभावशली अर्थयुक्त बनाने के लिए आवश्यक है।

एक समझदार शिक्षक इन अन्तरों को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक क्रियाकलापों की एक ऐसे समृद्ध और विविधतापूर्ण कार्यक्रम की योजना बनाता है कि विभिन्न कुशलताएं और क्षमताएं सामने आ सकें। इन क्रियाकलापों में परियोजनाएं, भ्रमण, सर्जनात्मक और अभिव्यंजक क्रियाकलाप, संगीत, नाटक, वाद-विवाद और शरीरिक क्रियाकलाप सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त वह पर्यावरण से प्राप्त अवसरों का उपयोग सभी बच्चों में सीखने के प्रति रुचि, उत्सुकता, और उत्कंठा जाग्रत करने में करेगा जिससे उनका अवधान प्राप्त हो सके।

अध्याय 16

विभिन्न घरों और सामाजिक पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चे

लीला एच. मन्हास

बालक की स्कूल, और सामान्य रूप से शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति, साथ ही साथ शिक्षकों सहपाठियों और पड़ोसियों के प्रति व्यवहार उस पर्यावरण से बहुत कुछ प्रभावित होता है जो उसके घर, पड़ोस और समुदाय में व्याप्त है। बालक विभिन्न घर और परिवार की पृष्ठभुमि से आते हैं। इस पृष्ठभूमि का उनके भावात्मक और सामाजिक समंजन पर सार्थक रूप से प्रभाव पड़ा है और पड़ता रहेगा। घरों में कई प्रकार की विभिन्नताएं होती हैं। कुछ घर ऐसे होते हैं जिनमें बच्चों को सभी प्रकार की सुविधाएं और कहीं-कहीं ऐशो आराम की चीजें भी उपलब्ध होती हैं, अन्य ऐसे जहां सारा परिवार एक कमरे या झुग्गी में रहता है और बच्चों की मूल आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं होती। किन्हीं घरों में बच्चों को अच्छी किताबें उपलब्ध होती हैं और माता-पिता उनके साथ विभिन्न विषयों पर विचार विनियम करते हैं, अन्य घरों में, यहां तककि समृद्धिशाली घरों में भी कुछ ऐसे होते हैं जहां बहुत कम बौद्धिक चर्चा होती है और बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता। आर्थिक दृष्टि से वंचित घरों में बच्चों के पास कोई भी किताब नहीं होती और माता-पिता कम पढ़े-लिखे होने के कारण बौद्धिक उद्दीपन प्रदान नहीं कर पाते। माता-पिता बच्चों से कितना स्नेह करते हैं इसमें भी अन्तर होता है। ऐसे घर होते हैं जहां खुशी का पर्यावरण है, और ऐसे भी घर हैं जहां मनमुटाव है। माता-पिता के अलग हो जाने से या इनमें से एक की मृत्यु हो जाने से भग्न परिवार भी हैं। इन सभी कारकों का प्रभाव बच्चे की सीखने की तत्परता पर पड़ता है। अपने देश में अब बहुत से ऐसे बच्चे स्कूल आ रहे हैं जो अपने परिवार में पढ़ने वाले प्रथम व्यक्ति हैं। इसलिए, हमें उनकी समस्या पर विशेष ध्यान देना चाहिए और इसे एक अलग अध्याय (अध्याय 17) में जो पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी पर है, दिया जा रहा है। यहां हम घरों में अन्य मनोवैज्ञानिक और मौलिक अन्तरों की विवेचना करेंगे।

घर के मनोवैज्ञानिक कारक

(क) माता-पिता और बच्चे के संबंध : माता-पिता और बच्चे के बीच संबंध का प्रभाव बच्चे के समंजन पर पड़ता है। जो माता-पिता बच्चे के स्कूल के कार्य में काफी रुचि लेते हैं उनका स्कूल के निष्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। माता-पिता और बच्चों में एक सुहृद और स्नेहपूर्ण संबंध, माता-पिता के बच्चों के साथ समय व्यतीत करने में, उनको कहानी पढ़ कर सुनाने में, उनके साथ खेलने में, उनके साथ योजनाओं पर चर्चा करने में, उनका गृहकार्य देखने और करने में मदद करने में, स्कूल में मिलने आने में, और बच्चे की कुशलता में रुचि लेने में, व्यक्त होते हैं। इन सब का बच्चे की शिक्षण-अधिगम परिस्थिति के प्रति अनुक्रियाओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और एक स्वस्थ व्यक्तित्व के निर्माण में मदद मिलती है। अध्ययनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि जिन बच्चों को घर में पर्याप्त स्नेह मिलता है और जो स्वीकार किए जाते हैं, वे सामाजिक दृष्टि से अच्छा व्यवहार प्रदर्शित करते हैं और सहयोगशील, मैत्रीपूर्ण व्यवहार करने वाले वफादार, ईमानदार, निष्कपट, भावात्मक रूप से स्थिर और प्रसन्नचित्त पाए जाते हैं।

दूसरी ओर, वे बच्चे हैं जो घर में उपेक्षित रहते हैं, और जिनके माता-पिता उनमें, या उनके स्कूल के कार्य में रुचि नहीं लेते। वे स्कूल में अकसर दुःखी रहते



चित्र—9. गरीब किन्तु सुखी परिवार

हैं, और स्कूल के कायदे कानून के प्रति विद्रोह करते पाए जाते हैं। वे हो सकता है कि कक्षा में दिवा-स्वप्न देखते रहते हैं, या माता-पिता के प्रति नाराजगी का सामान्यीकरण करके इसे शिक्षक की ओर अन्तरित करें और उसके प्रति अशिष्टता का व्यवहार करें या उसके साथ सहयोग से मना कर दें।

(ख) घर का बौद्धिक वातावरण : माता-पिता बच्चे के स्कूल के कार्य में कितनी रुचि लेते हैं और कितना प्रोत्साहित करते हैं, घर का बौद्धिक वातावरण कैसा है, ये सब शैक्षिक निष्पादन में महत्वपूर्ण कारक हैं माता-पिता का शैक्षिक स्तर, ज्ञान और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को वे कितना महत्व देते हैं, साथ ही साथ उनके मूल्य, उनकी अपनी स्वंय की और अपने बच्चों के लिए अभिलाषाएं, ये सब घर के बौद्धिक वातावरण को निर्धारित करती हैं। अधिकतर उच्च और मध्यवर्गीय माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल का कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि बच्चे के भावी सुखी जीवन के लिए यह आवश्यक है, और यदि बच्चा सफल नहीं होता तो उनके सामाजिक स्तर को क्षति पहुंचेगी। ऐसे कारक बच्चों में पढ़ाई के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियां निर्मित करते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि शिक्षित माता-पिता बच्चे पर उसकी योग्यता से अधिक से अधिक निष्पादन के लिए अत्यधिक दबाव डालते हैं, या उसकी धर या पड़ोस के अन्य बच्चों से प्रतिकूल तुलना करते हैं। इसका बच्चे के शैक्षिक निष्पादन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

(ग) घर में पारस्परिक संबंध : माता-पिता के बीच संबंधों का भी बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। जब माता-पिता मिल कर रह नहीं पाते और उनके बीच में बराबर मनमुटाव चलता है, बच्चा चिन्ताग्रस्त हो जाता है, और पढ़ाई में मन नहीं लगा पाता। वह अधिकतर कक्षा में अन्यमनस्क रहता है और अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। माता-पिता की बीमारी भी घर में चिन्ता और असुरक्षा के वातावरण का संचार करती है, जिसका बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य पर और स्कूल के कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे बच्चे बहुत प्रभावशाली शिषण के प्रति भी अनुक्रिया नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी भावात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती और इसके कारण व्यवहार में कम या अधिक गड़बड़ी उत्पन्न हो सकती है।

बच्चे के अपने भाई-बहन से संबंधों का प्रभाव उसके सहपाठियों और अन्य लोगों के संबंधों पर भी पड़ता है। घर में स्नेहपूर्ण संबंध बच्चे के घर और घर के बाहर भी मैत्रीपूर्ण, मिलसार और दूसरों की सहायता करने वाला बनाते हैं, जबकि स्नेह का अभाव उसे लड़ाका और पलायनवादी बनाता है।

इसका आशय हुआ कि यधपि शिक्षक बच्चे की परिस्थिति से समायोजन करने में मदद कर सकता है, वह कहां तक इसमें सफल होगा यह घर की परिस्थितियों पर

निर्भर करेगा। उसे न केवल घर की परिस्थितियों की जानकारी होनी चाहिए, किन्तु माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों का सहयोग भी प्राप्त होना चाहिए जिससे बच्चे के प्रति स्कूल और घर के व्यवहार में संगति आ सके।

माता-पिता का सामाजिक-आर्थिक स्तर

(क) बौद्धिक प्रेरणा के लिए अवसर और प्रोत्साहन : भारत में बहुधा माता-पिता का सामाजिक-आर्थिक स्तर और साथ-साथ उनके व्यावसायिक समूह की सदस्यता, सामान्य रूप से जीवन के प्रति और विशेषकर शिक्षा के प्रति उनके दृष्टिकोण को निर्धारित करता है। ये अभिवृत्तियां बच्चों तक पहुचती हैं और उनके कक्षा के व्यवहार, उनकी काम करने की आदतें, उनकी रुचिया, उनकी अभिलाषाएं और अपने लिए जो लक्ष्य वे निर्धारित करते हैं, उनमें प्रतिबिंबित होती है। उदाहरण के लिए, मध्यम और उच्च वर्ग के परिवारों में शैक्षिक सफलता को मूल्यवान माना जाता है और न केवल माता-पिता और शिक्षक बल्कि हमजोलियों द्वारा भी इसे पुरस्कृत किया जाता है। ऐसे घरों से आने वाले बच्चों को पढ़ाई के लिए अच्छा प्रयास करने की और उच्च सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा दी जाती है। यह देखा गया है कि माता-पिता जो उच्च व्यवसायों में लगे होते हैं, जैसे डॉक्टर, शिक्षक, इंजीनियर आदि वे इस बारे में कि उनके बच्चों को स्कूलों में क्या पढ़ाया गया, और शिक्षक ने किस प्रकार पढ़ाया और निर्देशन किया, अधिक रुचि लेते हैं। घर में उनके बच्चों को किताबें, पत्रिकाएं, जर्नल, "कॉमिक्स" आदि मिलते रहते हैं। उनकी स्वयं की सांस्कृतिक रुचियों के कारण वे अपने बच्चों को दूरदर्शन के ऐसे कार्यक्रमों को देखने ओर रेडियो पर ऐसे प्रसारणों को सुनने के लिए अधिक अवसर प्रदान करते हैं जिनसे उनका अपने चारो ओर की दुनिया का ज्ञान और जागरुकता बढ़ती है और विचार तथा तर्क करने की प्रेरणा मिलती है। शिक्षित माता-पिता शिक्षा संबंधी और सामयिक घटनाओं पर बच्चे की उपस्थिति में आपस में चर्चा करते हैं, कहानियां और साहित्य जो उन्हें रोचक लगता है पढ़कर सुनाते हैं, उन्हें संग्रहालय, कला विधियां, चिड़ियाघर, मेले, प्रदर्शनियां, बगीचे, फूलों की प्रदर्शनी, आदि दिखाने ले जाते हैं और विभिन्न अनुभवों को मुहैया करते हैं। इसके अलावा, भाषा का वे एक अच्छा नमूना प्रस्तुत करते हैं। वे बच्चे की स्कूल की गतिविधियों की रिपोर्ट में रुचि लेते हैं और उनके प्रयासों के लिए प्रशंसा करते हैं। स्कूल में सफलता पर अक्सर वे उसको मिठाई दे कर या जेब खर्च बढ़ाकर पुरस्कृत करते हैं। ये इनाम बच्चों को और अधिक श्रम करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह देख कर शैक्षिक कुशलताओं के आधार पर उसके पिता का सफल डॉक्टर या इंजीनियर बनना संभव हो सका, बच्चा स्कूल की शिक्षा से दूर भविष्य में प्राप्त होने वाले पुरस्कारों को समझ पाता है।

इनका प्रभाव उसके शिक्षा संबंधी लक्ष्य जो उसके अपने लिए निर्धारित किए हैं, जिन विषयों को चुना है और जो उसके जीवन की आकांक्षाएं हैं, उन पर पड़ता है।

दौलत अपने आप में सदैव लाभप्रद नही है। धनी माता-पिता के बच्चे लाड़ प्यार, अत्यधिक देख-रेख और हर कार्य में मदद के कारण अपनी पढ़ाई में स्वयं परिश्रम करने की आदत नहीं बना पाते। उनकी रुचि केवल मौज मजा करने और शरारत करने में रहती है। व्यापारी वर्ग के बच्चों को, जिनसे आगे चल कर अपने पारिवारिक व्यवसाय में लगने की अपेक्षा की जाती है, अपने भावी व्यवसाय से असंबद्ध विषयों में उत्तम कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं होते। जो बच्चे निम्न सामाजिक-आर्थिक परिवारों से और गरीब घरों से आते हैं, उनमें अकसर देखा गया है कि संतुलित आहार, उपयुक्त कपड़े और उपयुक्त निवास की मूल आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं। ये अल्पपोषित बच्चे कक्षा के अनुभवों से पूरा लाभ नहीं उठा पाते। इसके अलावा इन्हें स्कूल के समय के पहले या बाद में घर में या घर के बाहर काम करना पड़ता है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि ये पढ़ाई में असफल होते हैं। इनमें अधिकांश बच्चे भीड़ भाड़ वाले घरों में या एक कमरे के मकान में या गन्दी बस्तियों में रहते हैं, जहां किसी भी प्रकार के बौद्धिक प्रेरकों का सर्वथा अभाव रहता है। इस प्रकार के पर्यावरण का उनकी शैक्षिक प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन बच्चों के लिए शान्त जगह में पढ़ाई की कोई व्यवस्था नहीं होती। क्योंकि, अधिकतर माता-पिता और अन्य वयस्क शिक्षित नहीं होते या उन्हें बहुत कम शिक्षा मिली होती है, उनके परिवार में गृहकार्य पूरा कराने में मदद करने के लिए कोई व्यक्ति सक्षम नहीं होता। शैक्षिक प्रगति की ओर प्रेरित करने के लिए बच्चों को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। बल्कि पढ़ाई की आवश्यकताओं और घर पर पढ़ाई रहने के लिए साधन सुविधाओं के बारे में माता-पिता ठीक से समझ नहीं पाते। बीच-बीच में विभिन्न कार्यों और आदेशों को पूरा करने के कारण बच्चे की पढ़ाई में बार-बार विघ्न पढ़ता है और वह कार्य पर पूरी तौर से ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। बच्चे के स्कूल के कार्य में कोई रुचि नहीं ली जाती और स्कूल में सफलता माता-पिता या हमजोलियों द्वारा पुरस्कृत नहीं की जाती। शैक्षिक रुचियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है, और बच्चों को शिक्षा संबंधी उच्च लक्ष्यों के बनाने में निरुत्साहित किया जाता है क्योंकि माता-पिता जानते हैं कि उनको प्राप्त करने के लिए पर्याप्त लम्बे समय तक वे बच्चों को स्कूल में नहीं रख पाएंगे। ये बच्चे सफेदपोश नौकरियों के लिए शायद ही कभी आकांक्षा करते हों और इसलिए कठिन परिश्रम करने के लिए उनमें प्रेरणा नहीं होती। इनमें से बहुत से बच्चे, मध्य या उच्च वर्ग की अपेक्षा काफी अधिक अग्र पर स्कूल में भरती होते हैं। अन्य बच्चों से आयु में बड़े होने

के कारण उनकी रुचियां अलग होती हैं और कक्षा के समूह से मेल नहीं खातीं।

इस प्रकार परिवार की आर्थिक स्थिति का, बच्चे की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति, शैक्षिक कौशलों में उसकी अभिरुचि, उसकी अन्य शिक्षकों और सहपाठियों के साथ पारस्परिक क्रिया, उसके अनुभवों की पृष्ठभूमि, स्कूल के कार्य के प्रति तत्परता और घर में पढ़ाई की साधन सुविधाओं पर प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा स्कूल के पाठ्यक्रम का मध्यवर्ग की ओर झुकाव होता है और यह गरीब घरों या ग्रामीण परिवेश से आने वाले छात्रों के लिए बहुत अर्थयुक्त नहीं होता। उनके जीवन से यह पाठ्यक्रम बहुत दूर हो सकता है।

(ख) पड़ोस : सामाजिक श्रेणी की पृष्ठभूमि बच्चों में अनेक प्रकार के अन्तरों का कारण है। बहुत सीमा तक सामाजिक श्रेणी पर निर्भर करेगा कि परिवार किस मौहल्ले या पड़ोस में रहेगा, किस प्रकार के विश्वासों, अन्ध-विश्वासों और पूर्वाग्रहों के सम्पर्क में आएगा, कौन सी परम्पराओं और रीति-रिवाजों को अपनाएगा, किस प्रकार के नैतिक और सामाजिक मूल्यों को निर्मित करेगा, किस प्रकार के मनोविनोद के साधन उसे उपलब्ध होंगे और किन में वो भाग ले सकेगा। बच्चा किन साथियों के साथ खेलेगा और किस स्कूल में पढ़ेगा यह भी आज समाज की श्रेणी पर निर्भर करेगा। इन सब का बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है, और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति उनकी अनुक्रियाओं में, और स्कूल, कक्षा और खेल के मैदान पर उनके व्यवहार में प्रतिबिम्बित होता है।

(ग) माता-पिता के नियंत्रण का स्वरूप : सामाजिक स्तर के बच्चों के पालन की प्रथाओं में भी मिलते हैं। एक जटिल पद्धति द्वारा, जिसमें किसी व्यवहार को दण्डित और किसी को पुरस्कृत किया जाता है, माता-पिता अपनी सामाजिक श्रेणी द्वारा स्वीकृत अनुक्रियाएं , मूल्य और विश्वास सिखाते हैं। इस सामाजिक श्रेणीगत प्रशिक्षण का परिसर भोजन करने के कायदे से लेकर, बच्चे के खेल के साथियों का चुनाव और उसके शैक्षिक तथा व्यावसायिक लक्ष्यों तक पहुंचता है। यह बच्चे के जीवन के अनेक पहलुओं को निर्धारित करता है, जैसे, उसके मनोरंजन का समय और स्थान, घर के कार्य जिन्हें करने की अपेक्षा उससे की जाती है, घर में जिन कमरों और वस्तुओं का उपयोग वह कर सकता है, किस प्रकार के कपड़े उसे पहनने हैं, कितनी पढ़ाई उसे करनी चाहिए। कितना पैसा उसे दिया जा सकता है और उस पर उसका क्या नियंत्रण होगा और यहां तक कि उसकी उचित और अनुचित के प्रति संकल्पनाएं।

(घ) जाति और धर्म : जाति और धर्म और उनके साथ संलग्न विश्वास, मूल्य और पूर्वाग्रह भी दूसरों के प्रति उसकी अनुक्रियाओं को निर्धारित करते हैं, और

उसकी आत्म संकल्पना पर भी इनका प्रभाव पड़ता है। हो सकता है एक हरिजन बालक अपने सहपाठियों के सम्मुख, जो तथाकथित "ऊंची जाति" के हैं, हीन भावना का अनुभव करे, और उनके साथ सामाजिक-सांस्कृतिक और शैक्षिक क्रियाकलापों में सम्मिलित होने में संकोच करे। इसके कारण यह प्रश्न पूछने या प्रश्नों का उत्तर देने में अनिच्छा महसूस करता है। इसके अलावा, यदि शिक्षक किसी अन्य जाति या धार्मिक संप्रदाय का है, तो संभव है कि छात्रों से जिस प्रकार के व्यवहार की वह अपेक्षा करता है उसे न पाकर, उनकी अलग बोली, उच्चारण, शिष्टाचार में कमियां, मूल्य, उद्देश्य, अभिवृत्तियां और व्यवहार के अन्य सूक्ष्म अन्तर उसे बुरे और असहनीय लगें।

परिवार के धार्मिक विश्वासों का बच्चे के अन्तः करण या पराहम् (superego) विकसित करने में महत्वपूर्ण कार्य होता है। बच्चे के नैतिक मूल्य और इनका मापदण्ड, आदर्श, पापशंका (scruples) आदि का आधार माता-पिता, शिक्षकों और समुदाय के अन्य सदस्यों के धार्मिक आचरण में होता है। धार्मिक विश्वास चरित्र को सुगठित करके और अभिवृत्तियों और आदतों को विकसित करके बच्चे के व्यक्तित्व को भी प्रभावित करते हैं। धार्मिक रीतियों और परम्पराओं द्वारा कुछ पूर्वाग्रह और अन्य अन्धविश्वास भी बच्चे सीखते हैं। क्योंकि, देश में बहुत से धार्मिक संप्रदाय हैं, इसलिए एक कक्षा में बच्चों में बहुत सी समानताओं के होते हुए भी उनके द्वारा विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व किए जाने के कारण बहुत से अन्तर अवश्य होंगे।

(ड) क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : धार्मिक अन्तरों के साथ-साथ, बच्चों की क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का उनके व्यवहार की अधिगम की ओर अतिक्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। कुछ बच्चे कठिन परिश्रम करने की आदत सीखते हैं, कुछ का जीवन के प्रति आराम का दृष्टिकोण होता है, कुछ शिक्षा और शैक्षिक निष्पादन को महत्व देते हैं-जबकि अन्य इसकी ओर उदासीन होते हैं, कुछ सर्जनात्मकता को बढ़ावा देते हैं जबकि कुछ ओदश पर चलने को। सांस्कृतिक क्रियाकलापों में भी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में और एक राज्य से दूसरे राज्य में अन्तर होता है। पहनावा, भोजन की आदतें, बच्चों को अनुशासित करने का ढंग और अभिलाषाओं, आकांक्षाओं, आदि में अन्तर मिलते हैं। ये सभी अन्तर शिक्षण-अधिगम परिस्थिति में प्रतिबिम्बित होते हैं और इसलिए शिक्षक को इन पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

(च) भाषा : एक अन्य सामाजिक पहलू भाषा है, जो व्यक्तिगत विभिन्नता के पीछे होती है। जिस प्रकार की भाषा परिवार के लोग बोलते हैं वह बच्चों में अन्तर का महत्वपूर्ण कारक होती है। उदाहरण के लिए दो बच्चे हिन्दी माध्यम से पढ़ते हैं उनमें सभी की मातृभाषा हिंदी नहीं होती। उन सब को हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान

हो सकता है, किन्तु उच्चारण में, अभिव्यक्ति में और भाषा की सूक्ष्म अन्तरों की समझ में अन्तर होगा। इन अन्तरों का कुछ सीमा तक शैक्षिक निष्पादन पर प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि जिन बच्चों की मातृभाषा हिन्दी है उन्हें पढ़ाई में सरलता होगी और दूसरों को कुछ कठिनाई होगी। हिन्दी बोलने वाले परिवार जब अन्य राज्यों में आते हैं, वहां कोई अन्य राज्य-भाषा है तब उनके सामने भी भाषा की समस्या उत्पन्न होती है।

अध्याय 17

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी

लीला एच. मन्हास

सभी सभ्य समाजों में एक आयु पर पहुंचने पर बच्चों से स्कूल जाने की अपेक्षा की जाती है। विकसित देशों में स्कूल की हाजरी सभी स्कूली आयु के बच्चों के लिए, चाहे वे लड़के हों या लड़की और चांहे वे किसी भी सामाजिक-आर्थिक स्तर के क्यों न हों, अनिवार्य है। यह स्थिति विकासशील देशों में नहीं है। यहां जनसंख्या का काफी भाग ऐसा है जो कभी स्कूल नहीं गया और स्कूल के बारे में उन्हें कोई भी जानकारी नहीं है। भारत में हम काफी समय से अनिवार्य शिक्षा की चर्चा कर रहे हैं, किन्तु अभी तक इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि स्कूली आयु के सभी बच्चे स्कूल जाएं, कोई दवाब प्रयोग में नहीं लाया गया है। फिर भी जन सम्पर्क माध्यम द्वारा और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा औपचारिक शिक्षा के मूल्य को आम जनता को बताने के लिए काफी प्रचार किया गया है। स्कूल जाने के लिए विभिन्न माध्यमों द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है। शहर के करीब-करीब सभी मौहल्लों और ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल खोले गए हैं, और इसलिए स्कूल जाना अब अधिक सरल हो गया है। अब बहुत से माता-पिता इस बात को मानने लगे हैं कि शिक्षित होना केवल प्रतिष्ठा का ही सूचक नहीं है किन्तु इससे नौकरी के अवसरों में वृद्धि होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि बहुत से उन माता-पिताओं ने जो स्वयं कभी स्कूल नहीं गए, अपने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू कर दिया है। इनको हम पहली पीढ़ी के सीखने वाले कहेंगे, क्योंकि वे अपने परिवार की पहली पीढ़ी के सदस्य हैं जिन्होंने स्कूल जाना प्रारंभ किया।

सभी स्कूल प्रवेश के लिए लघुतम आयु निर्धारित करते हैं। इसके पीछे यह विश्वास है कि इस आयु पर पहुचने पर बच्चे शारीरिक, मानसिक, भावात्मक और सामाजिक रूप से समूह में औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए परिपक्व हो जाते हैं। कक्षा का संगठन भी आयु के आधार पर किया जाता है, क्योंकि यह माना जाता

है कि एक ही आयु के बच्चों के समूह में अनेक संलक्षण समान होते हैं, और इसलिए, एक ही समूह में आसानी से सबको पढ़ाया जा सकता है। बच्चों के निकट संपर्क में आने के बाद शिक्षक इस बात को समझने लगता है कि आयु की समानता से अन्य सभी पहलुओं में बच्चे समान नहीं हो जाते। एक ही कक्षा के छात्रों में काफी बड़े अन्तर देखे जा सकते हैं। स्कूली बच्चों में विभिन्नता का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, स्कूल की पढ़ाई के लिए तत्परता का स्तर। यह तत्परता का स्तर केवल बच्चों के शारीरिक, मानसिक और भावात्मक परिपक्वता पर ही निर्भर नहीं करता, काफी हद तक, यह उनके घर की पृष्ठभूमि और प्रारंभिक वर्षों में अनुभवों की गुणात्मकता पर भी निर्भर करता है।

जिस प्रकार के पर्यावरण से उनका संपर्क हुआ, और उससे जो प्रेरक प्राप्त हुए, उनका स्कूल की पढ़ाई के लिए तत्परता विकसित करने में महत्वपूर्ण कार्य है। उदाहरण के लिए, सीमा और वीना एक ही कक्षा में पढ़ती हैं और लगभग एक ही आयु की हैं। सीमा कक्षा में सतर्क बैठती है और ध्यान से पढ़ती है और जो कुछ शिक्षिका कहती है उसे शीघ्र समझ जाती है। उसका भाषा पर अच्छा अधिकार है और अपनी बात सहपाठियों से सरलता से कह लेती है। दूसरी ओर वीना कक्षा में चकराई सी बैठी रहती है। शिक्षिका क्या समझा रही है यह उसके बहुत कम समझ में आता है इसलिए, जिस प्रकार के उत्तरों की अपेक्षा शिक्षिका उससे करती है वैसे वह नहीं दे पाती, प्रश्न पूछने में या प्रश्नों का उत्तर देने में वह संकोच करती है, क्योंकि उसके बोलन का तरीका और उसकी भाषा अधिकांश सहपाठियों से भिन्न है। उसमें आत्म विश्वास की कमी है, क्योंकि उसके कपड़े, कक्षा की अन्य लड़कियों के सामान, फैशन के नहीं हैं, और उसके व्यवहार का ढंग और अभिवृत्तियां तथा मूल्यं भी भिन्न हैं। इसके कारण वह अपने आप को दूसरों से खींच कर स्वयं में ही सीमित कर लेती है।

अब हम सीमा और वीना की पृष्ठभूमि के बारे में पता करने का प्रयास करें जिसके कारण उनके व्यवहार में ये अन्तर है। सीमा के माता-पिता ने उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की है। उसके सभी संबंधी, चाचा, चाचियां, चचेरे भाई, बहन और दादी-दादा शिक्षित हैं। उसके बड़े भाई और बहन स्कूल जाते हैं। जहाँ तक सीमा को बचपन की याद है, उसने उन्हें स्कूल जाते देखा है। स्कूल के अनुभवों के बारे में उन्हें बात करते सुना है, और स्कूल में क्या होता है इसके बारे में सीमा के सामने काफी स्पष्ट तस्वीर है। इस सब से वह स्कूल जाने और जो उसके भाई बहन पढ़ रहे हैं, वह पढ़ने की इच्छुक है। स्कूल में प्रवेश लेने के पहले उसने कुछ कविताएं सुनाना सीख लिया था जिससे उसका शर्मीलापन कम हुआ। वह अक्षरों और संख्या

से परिचित हो गई थी जो उसके भाई और बहन ने उसे सिखाए थे। सीमा के घर में जो भाषा बोली जाती है वह स्कूल में उपयोग की जाने वाली भाषा के समान है। इसलिए वह शिक्षिका की बात को आसानी से समझ जाती है और कक्षा के साथियों से वार्तालाप में भाग लेती है। क्योंकि उसके घर में बहुत सी किताबें और पत्रिकाएं हैं, इसलिए किताबें उसके लिए कोई नई चीज नहीं हैं। वह घर में देखती रहती है कि उसके माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य काफी समय पढ़ने में व्यतीत करते हैं। उसे भी दो वर्ष की आयु से उपहार में तस्वीरों की किताबें मिलती रही हैं। उन्हें संभाल कर रखने, देखने और उनके बारे में बात करने के लिए उसे प्रोत्साहन भी मिलता रहा है। उसके माता-पिता उसे कहानियां पढ़ कर सुनाते रहे हैं। वे उसे विभिन्न वस्तुएं दिखाते रहे हैं और विभिन्न आवाजों को सुनने, वस्तुओं को छूने और उठाने, अपने चारों ओर के पर्यावरण की छानबीन करने के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं। इन अनुभवों ने उसकी संकल्पनाओं को विकसित करने में और शब्द भण्डार बढ़ाने में मदद की है। उसे मालूम हो गया है कि उसके माता-पिता कितनी उच्च अभिलाषाएं रखते हैं और वह जानती है कि इनकी पूर्ति अच्छी शिक्षा द्वारा ही हो सकती है। इसलिए पढ़ना-लिखना सीखने के लिए उसमें तीव्र इच्छा है।

दूसरी ओर वीना भी उसी कक्षा में है। उसके परिवार में माता-पिता, दादी-दादा, चाचा-चाची और अन्य बड़े लोग कभी स्कूल नहीं गए। उसके घर में शिक्षा को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता। उसके माता-पिता डींग मारते हैं कि उन्होंने बिना किसी शिक्षा के सरलता से काम चला लिया। उनकी अभिवृत्तियां, मूल्य, रुचियां, मनोविनोद सभी शिक्षित लोगों से इतने भिन्न हैं कि वीना उन अनुभवों से वंचित रह गई ज़ो स्कूल के लिए तत्परता विकसित करते हैं और बाद में स्कूल में समंजन में सहायक होते हैं। उसका पुस्तकों से संपर्क पहली बार तब हुआ जब वह स्कूल आई। उसके पास कभी तस्वीरों की कोई किताब नहीं थी। जब उसे कागज की जरूरत होती है तो वह किताब का पन्ना फाड़ लेती है और उसके समझ में नहीं आता कि इस पर शिक्षिका क्यों नाराज होती है। उसके घर में कागज का उपयोग तो जब जरूरत हो फाड़ कर ही किया जाता है। शिक्षिका की भाषा वीना के घर की बोली से भिन्न है, इसलिए ज्यादा समय उसके समझ में नहीं आता कि शिक्षिका क्या कह रही है। शिक्षिका को गुस्सा आता है जब वीना उसके निर्देशों का पालन नहीं करती। वह यह नहीं जानती कि वीना उसकी बात समझ ही नहीं पाई। शिक्षिका सोचती है कि वीना हठी है।

क्योंकि उसके परिवार से कोई स्कूल पढ़ने नहीं गया। वीना यह नहीं समझ पा रही कि स्कूल से वह क्या अपेक्षाएं करे, और दूसरे उससे किस प्रकार के व्यवहार

की अपेक्षा करते हैं। इसलिए स्कूल में उसका समंजन नहीं हो पा रहा। इन सभी समस्याओं के कारण उसके सामने काफी कठिनाइयां हैं और अन्य बच्चों के समान वह स्कूल की पढ़ाई और सामाजिक क्रियाकलापों के लिए तैयार नहीं।

कक्षा की पढ़ाई तभी प्रभावशाली और सभी छात्रों के लिए उपयोगी हो सकती है, जब शिक्षक उनके घर की पृष्ठभूमि और पड़ोस को ध्यान में रखें और इस जानकारी के आधार पर उनकी पढ़ाई के लिए तत्परता का पता लगाए। इसके आधार पर शिक्षक अपने शिक्षण के ढंग में उपयुक्त परिवर्तन कर सकता है। क्योंकि पहली पीढ़ी में पढ़ाई की शुरुआत करने वाले अधिक संख्या में स्कूल आ रहे हैं, इससे समस्या पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

स्कूल की स्थिति में समंजन की समस्या

वीना के समान अनेक पहली पीढ़ी के सीखने वालों को स्कूल के जीवन और आवश्यकताओं के बारे में कोई जानकारी नहीं होती। वे नहीं जानते कि उनसे किस प्रकार के कार्य की अपेक्षा की जाएगी, किस प्रकार का अनुशासन होगा, किस प्रकार के मूल्य और अभिवृत्तियों को शिक्षक स्वीकार करेंगे, और कौन से समूह के नियम उन्हें मानने होंगे। उन्हें कक्षा की दैनिक गतिविधियों को अपनाने में कठिनाई होती है, क्योंकि शान्त बैठने की उनकी आदत नहीं है। स्कूल की औपचारिकता और अनुशासन से वे परेशान हो जाते हैं। यह स्वाभाविक है कि वे स्कूल में अपने आप को "जल बिन मीन" के समान पाएं। स्कूल परिस्थितियों के साथ समंजन में उन्हें अधिक समय लगेगा।

पहली पीढ़ी के सीखने वाले अपने सहपाठियों से अनेक बातों में भिन्न होते हैं। उनका व्यवहार, कपड़े, भोजन, रुचियां, इत्यादि फर्क होती हैं। इन अन्तरों को अन्य बच्चे स्वीकार नहीं कर पाते, और उनका मजाक उड़ाते हैं। इससे उनके आत्मविश्वास को ठेस पहुंचती है, और सामाजिक समंजन और शैक्षिक निष्पादन पर अवांछित प्रभाव पड़ता है।

शाब्दिक ज्ञान सीखने की समस्या

पहली पीढ़ी के सीखने वाले किताबों की दुनिया से परिचित नहीं होते, क्योंकि उनके घर में किताबें नहीं होतीं। पढ़ने में उनकी रुचि कभी जाग्रत नहीं की गई क्योंकि उनके घर में कभी कोई नहीं पढ़ा। ऐसी स्थिति में बच्चों को कोई चीज पढ़कर सुनाने का तो सवाल ही नहीं उठता। उनकी आदत किताबों के बजाय मौखिक रूप से जानकारी प्राप्त करने की है इसलिए उन्हें पढ़ना सीखने की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती। उन्हें शिक्षक की बात समझने में कठिनाई होती है क्योंकि शिक्षक के बोलने का ढंग उनसे भिन्न है। शिक्षक सामान्यतः शहरी शिक्षित

माध्यम वर्ग की भाषा बोलते हैं, जबकि ये बच्चे अपने अंचल की बोली बोलते हैं। अनुभवों की पृष्ठभूमि सीमित होने के कारण, उनका शब्द भण्डार कम होता है और संकल्पनाएं अल्पविकसित और अकसर गलत होती हैं। परिणाम यह होता है कि शिक्षक की बहुत सी बातें उनकी समझ में नहीं आतीं। वे चकराए से रहते हैं और जैसी शिक्षक अपेक्षा करता है वैसी अनुक्रिया नहीं कर पाते। इससे शिक्षक को, जो बच्चे की कठिनाई से अनभिज्ञ है, गुस्सा आता है। वह बच्चे को डांटता और दण्डित करता है, जबकि बच्चे की कोई गलती नहीं होती, और बच्चे में हीनता की भावना पैदा करता है। बच्चा जिसके साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जाता है कुढ़ता और दुःखी होता है और प्रवेश के समय स्कूल के प्रति जो थोड़ी-बहुत रुचि होती है वह भी खो देता है।

अपर्याप्त बुनियादी संकल्पनाएं

पहली पीढ़ी के सीखने वालों के सामने और भी कठिनाईयां होती हैं। उनमें से अधिकांश निम्न सामाजिक-आर्थिक समूहों से, या दूरस्थ जनजातीय अंचलों या ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं। इसलिए उन्हें ऐसे अनुभवों की पृष्ठभूमि बहुत सीमित होती है जिस पर स्कूल की पढ़ाई को आधारित किया जा सके। इससे शिक्षक के सामने समस्याएं उठती हैं, क्योंकि शिक्षक को प्राठ योजना उसके ख्याल से जो कुछ बच्चे जानते हैं उसे ध्यान में रखकर बनानी होती है। किन्तु ऐसा करने में उसका ध्यान केवल शहरी माध्यम वर्ग के बच्चों की ओर ही, जिनसे वह परिचित है, जाता है। वह मान लेता है कि कक्षा के सभी बच्चों को उन्हीं के समान अनुभव है और उन्होंने आगे आने वाले अधिगम के लिए अधिकांश संकल्पनाएं विकसित कर ली हैं। क्योंकि पहली पीढ़ी के सीखने वालों को वे सभी मूलभूत संकल्पनाएं नहीं होतीं जिनकी शिक्षक अपेक्षा करता है, वे अन्य बच्चों से पिछड़ जाते हैं।

प्रेरणा की कमी

माता-पिता जो स्वयं कभी स्कूल नहीं गए, जैसे किसान, मजदूर आदि और जिन्हें अपने सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने की कोई आकांक्षा नहीं है, उन्हें शिक्षा का महत्व दिखाई नहीं देता, और इसलिए, अपने बच्चों को स्कूल के कार्य में रुचि लेने और अच्छे से अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं कर पाते। इन बच्चों को लगता है कि उन्हें जबरदस्ती पढ़ाया जा रहा है और उतना अच्छा कार्य नहीं कर पाते जितना वे जो अपनी स्वयं की इच्छा से पढ़ रहे हैं।

घर में निर्देशन और प्रोत्साहन की कमी

अशिक्षित माता-पिता अपने बच्चों के स्कूल के कार्य में रुचि नहीं ले पाते। वे गृहकार्य में बच्चों की मदद कर पाते और न ही व्यक्तिगत या शैक्षिक निर्देशन दे

पाते हैं। इन घरों में बच्चों को शायद ही कोई बौद्धिक प्रेरक प्रस्तुत किये जाते हैं। इसके विपरीत, माता-पिता की बोली, जो बच्चे के अनुकरण के लिए नमूना होती है, प्रायः अशुद्ध होती है, और जिन बातों पर चर्चा की जाती है, जिन कार्यक्रमों को रेडियो पर सुना जाता है और परिवार की रुचियां, वे सब पहली पीढ़ी के सीखने वालों की सुशिक्षित परिवारों की तुलना में सांस्कृतिक स्तर की दृष्टि से बहुत भिन्न होती है। इस सब का पढ़ाई की तत्परता के स्तर पर प्रभाव पड़ता है और इन बच्चों को इन कमियों का सामना करना पड़ता है

अशिक्षित माता-पिता पढ़ाई के लिए आवश्यक स्थितियों को समझ नहीं पाते। बच्चे की पढ़ाई के समय घर के काम बता कर, छोटे भाई बहन की देख-रेख करने को या बाजार से कुछ लाने के लिए कह कर, विघ्न डालते रहते हैं। वे पढ़ने के लिए शान्त जगह की व्यवस्था शायद ही कभी कर पाते हैं। उन्हें किताबें, लेखन सामग्री और स्कूल की अन्य जरूरतों पर खर्च करना अकसर बुरा लगता है, क्योंकि उन्हें यह दिखाई नहीं देता कि इस लागत की वापसी होगी।

शिक्षक क्या मदद कर सकता है

शिक्षक को, जब बच्चे उसकी कक्षा में आएं तो पहले प्रत्येक की पृष्ठभूमि के बारे में पता करना चाहिए। स्कूल के अभिलेख से उसे पता लगाना चाहिए कि उसकी कक्षा में पहली पीढ़ी का सीखने वाला कोई छात्र या छात्रा है। यदि है तब उसे उनकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, और उनमें जिन बातों में कमियां हैं उन्हें, प्रत्यक्ष अनुभव देकर, जो उन्हें पहले प्राप्त नहीं हुए थे, दूर करना चाहिए। इन बच्चों से उसे बहुत सरल भाषा का उपयोग करते हुए धीमे और स्पष्ट बोलना चाहिए और इस बात को सुनिश्चित करना चाहिए कि जो कुछ कहा जा रहा है वह वे समझ रहे हैं। उनका शब्द भण्डार बढ़ाने के लिए और सकल्पनाएं विकसित करने के लिए मूर्त अनुभव जैसे, देखने, सुनने, चखने, सूंघने को शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए। उन्हें पास की जगहों पर भ्रमण के लिए ले जाना चाहिए जिससे वे चीजों को देख सकें, पर्यावरण की छानबीन कर सकें, और उस पर चर्चा कर सकें। उन्हें खेल, क्रीड़ा और नाटक में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। गृहकार्य स्कूल में ही करवाने के लिए कुछ व्यवस्था करनी चाहिए। जिससे किसी शिक्षक की उन्हें मदद करने की जिम्मेवारी दी जा सके। आकर्षक पढ़ने की सामग्री, जिसमें दैनिक जीवन के चित्र हों और जिनसे बच्चे परिचित हों और जो उनकी आयु और रुचियों के अनुकूल हों, उन्हें उपलब्ध करानी चाहिए। उनको कहानियां सुनानी चाहिए और उनको साथ में लेकर नाटक खेला जाना चाहिए। उन्हें जहां तक सम्भव हो, बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था में शिक्षण, खेलों और

क्रियाकलापों द्वारा, जिनमें बच्चों को आनन्द आता है और वे सीखते भी हैं, किया जाना चाहिए। एक सुनियोजित प्रयास किया जाना चाहिए कि इन बच्चों को भी वे शैक्षिक और सांस्कृतिक अनुभव प्राप्त हो सकें जो शिक्षित परिवारों में बच्चों को अपनी वृद्धि के दौरान घर पर मिलते हैं। शुद्ध बोलने की अच्छी आदतें विकसित करने के लिए, बच्चे के शब्द भण्डार को बढ़ाने को प्रथम स्थान देना चाहिए।

अन्य बातों के साथ इन बच्चों को कक्षा के छात्रों द्वारा अपनाए जाने में शिक्षक को मदद करनी चाहिए। इसके लिए हमें एक सुनियोजित प्रयास करना पड़ेगा। जिसमें एक ओर तो इनमें वे सामाजिक कौशल, जिनकी इनमें कमी है और जो शिक्षित समुदाय द्वारा महत्वपूर्ण माने जाते हैं, विकसित करने का प्रयास करें, और दूसरी ओर अन्य बच्चों को इस प्रकार समझाएं कि वे उनके व्यवहार में कमियों के कारण इनका मज़ाक न बनाएं और उन्हें स्वीकार करें। क्योंकि शिक्षक कक्षा का नेता होता है, वह इन बच्चों को अन्य बच्चों के समकक्ष लाने में मदद करके और इन्हें स्वीकार करके एक सही वातावरण को बना सकता है।

अध्याय 18

बंधन

फ्रैनी जेड़ तारापौर

प्रत्येक शिक्षक एक ऐसी कक्षा की कामना करता है जिसमें बच्चे खुश, सक्रिय, जिज्ञासु, सतर्क, शिक्षा प्राप्त करने के लिए इच्छुक, कल्पनाशील, सृजनशील, अपने विचारों को भली प्रकार प्रकट करने में सक्षम अपने कार्य में नियमित और वयस्कों तथा अन्य बच्चों के साथ मिलनसार हों। एक शिक्षक के नाते आप जल्द ही स्पष्ट अनुभव करेंगे कि यद्यपि बच्चे अनेक बातों में समान होते हैं, फिर भी, उनमें एक दूसरे से अन्तर होता है। उनकी अनुक्रियाओं में अन्तर दिखाई देता है, और एक ही बच्चा अलग-अलग समय पर भिन्न प्रकार से अनुक्रिया करता है उदाहरण के लिए कुछ बच्चों का निकट से अवलोकन करिए। मोहन शारीरिक रूप से कमजोर है, कक्षा में बिलकुल सतर्क नहीं रहता और न ही सक्रिय है। सात वर्षीय सीता, अपनी कक्षा में अच्छी थी किन्तु हाल में क्षुब्ध दिखाई देने लगी है। वह बैठी टक-टकी लगाए देखती रहती है और अकसर विचारों में खोई दिखाई देती है। अशोक और प्रीती दोनों ही पढ़ाई में कमजोर हैं। इन बच्चों के साथ क्या गड़-बड़ है ? क्या ये मन्द बुद्धि के हैं ? नही, इनमें से प्रत्येक के व्यवहार का कारण भिन्न है। मोहन की समस्या है भूख। उसे खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। वह कक्षा में कैसे ध्यान दे सकता है, जबकि वह अधिकतर भूखा रहता है। सीता के पिता ने अधिक पीना शुरू कर दिया है। वे अकसर घर में उग्र हो जाते हैं और घर छोड़ने की धमकी देते हैं। अशोक के माता-पिता उसकी पढ़ाई में सहायता नहीं कर पाते क्योंकि वे स्वयं अशिक्षित हैं। प्रीती धनी परिवार से आती है पर उसके माता-पिता के पास उसके लिए समय नहीं है। वह अपनी आया ही के साथ घर पर रहती है। परिवार और सामाजिक पृष्ठभूमि के प्रभाव का विवेचन अध्याय 16 में किया जा चुका है। यहां इनका उल्लेख केवल सुस्पष्ट प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव की ओर ध्यान दिलाने के उद्देश्य से किया गया है।

वर्षों से शिक्षा-शास्त्री ऊपर दी गई समस्याओं तथा ऐसे बच्चों की कई अन्य समस्याओं के प्रति जो शिक्षण के प्रति सकारात्मक रूप से अनुक्रिया नहीं करते, चिन्तातुर रहे हैं। इन बच्चों में अधिकतर, शैक्षिक उपलब्धि सामान्य से नीचे, सामाजिक संबंध अपर्याप्त तथा असामाजिक गतिविधियों के प्रति झुकाव होता है। इनका अधिक संख्या में स्कूल छोड़ देना भी एक अन्य परेशानी पैदा करने वाला कारक है।

बहुत समय तक आनुवंशिकता को ही बच्चों की अधिकतर समस्याओं का प्रमुख कारण माना गया था। विभिन्न शोधकर्ताओं के क्रमबद्ध शोध ने हमें बहुत से ऐसे घटकों की ओर, जो बच्चों के स्वस्थ्य शारीरिक वर्धन और विकास के लिए आवश्यक हैं, सजग किया है। ये घटक उनके विकास के लिए अनिवार्य हैं तथा बच्चे के जीवन में इनमें से एक की भी कमी उसके व्यक्तित्व पर अवांछनीय प्रभाव डालती है। बच्चे के जीवन में इन घटकों में से किसी एक की भी कमी वंचन कहलाती है।

वंचन के कारण

हमारे देश में, गरीबी और निरक्षरता, दो मुख्य समस्याएं हैं, और ये कई अन्य समस्याओं का मुख्य कारण हैं। कई समस्याएं चक्रीय और अन्योन्याश्रित प्रकृति की होती हैं, और इसलिए, अधिकतर लोग इनसे छुटकारा नहीं पा पाते। उदाहरण के लिए गरीबी के कारण माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते तथा उचित शिक्षा के अभाव में इन बच्चों को बड़े होने पर अच्छी नौकरी मिलना कठिन हो जाता है।

भौतिक आवश्यकताओं का वंचन

गरीबी के कारण बहुत से लोग गन्दी-बस्तियों में या शहरों में पटरियों पर रहते हैं जहां मूलभूत सुविधाओं का अभाव होता है और उन्हें गन्दगी और बीमारी में रहना पड़ता है। आराम से परिवार के रहने के लिए झुग्गियां बहुत छोटी पड़ती हैं। ये एक दूसरे के इतने पास होती हैं कि बच्चों को खेलने के लिए खुली जगह का अभाव रहता है। यहां अधिकतर बच्चों के लिए दो बार का पूरा भोजन मिलना एक प्रकार की विलासिता है। माता और पिता दोनों सुबह काम के लिए निकल पड़ते हैं, शाम को देर से लौटते हैं और बच्चों को अपनी परवाह स्वयं करने के लिये छोड़ देते हैं। यदि माता-पिता की कोई निश्चित नौकरी है और वे बस्ती में स्थाई रूप से रहते हैं तो उनके बच्चे, पास के किसी स्कूल में पढ़ सकते हैं किन्तु यदि माता-पिता इमारत निर्माण कार्य में लगे हुए हैं, तब उन्हें रहने के लिए एक जगह छोड़ कर दूसरी जगह जाना पड़ता है और इसके कारण बच्चों का नियमित स्कूल जाना कठिन हो जाता है।

गन्दी बस्तिया अकसर ऐसे स्थल हैं जहां असामाजिक कार्य होते रहते हैं और बच्चे छोटी आयु से अवांछनीय आदतें सीखने लगते हैं।

छोटे बच्चे माता-पिता की आय की पूर्ति के लिए अकसर काम पर जाते हैं। बाल्यावस्था वह समय है जब इन्हें खेलना और स्कूल में पढ़ना चाहिए। इसके स्थान पर इन पर छोटी आयु से ही दायित्व लाद दिए जाते हैं। गांवों में भी जीवन यहां से बहुत भिन्न नहीं होता हैं गरीबी, आहार की कमी, पीने के लिए अस्वच्छ पानी, चिकित्सा और शिक्षा की सुविधाओं का अभाव, ये सब ग्रामीण परिवारों के लिए निरन्तर चलने वाली समस्याएं हैं।

उपयुक्त चिकित्सा सुविधाओं के उपलब्ध न होने के कारण कम आय वाले परिवारों के बच्चें में अवयवों की कमजोरियां जैसे, दृष्टि दोष, श्रवण दोष, और अन्य बीमारियां अधिक पाई जाती हैं, जो उनकी शक्ति को सोख लेती हैं।

औसत भारतीय बच्चे की जन्म से ही शुरुआत विषम होती है। उसकी मां जो बचपन से ही अल्प पोषित है, बार-बार गर्भवती होने के कारण और भी कमजोर हो जाती है और अजन्मे शिशु को अच्छा आहार प्रदान नहीं कर पाती। इसका परिणाम यह होता है कि नवजात शिशु जन्म के समय छोटा होता है और बाद में भी आहार की कमी और बार-बार बीमार पड़ने के कारण कमजोर रहता है।हमारे देश में बहुत से बच्चे ऐसे हैं जो प्रोटीन की कमी या प्रोटीन और कैलोरी (calorie) की कमी से ग्रसित रहते हैं।कैलोरी की कमी से तात्पर्य है कि शरीर को भोजन से जितनी ऊर्जा की आवश्यकता है उसकी पूर्ति नहीं होती। इन कमियों से न केवल शारीरिक वृध्दि ठीक से नहीं होती बल्कि इन बच्चों का शारीरिक गठन भी ठीक नहीं होता। इनके हृदय का आकार तो सामान्य या करीब-करीब सामान्य के बराबर होता है, धड़ की वृध्दि मन्दित हो जाती है और पैर अपेक्षाकृत छोटे रह जाते हैं।

शोध अध्ययनों से पता चला है कि कुपोषण मस्तिष्क के विकास और बौध्दिक क्रियाशीलता को मन्दित करता है। जो बच्चे कुपोषण से अत्यन्त ग्रस्त रहे उनकी वृध्दि का स्तर अपने स्वस्थ भाई-बहन की अपेक्षा नीचा पाया गया। वे बच्चे मनोगामक (psychomotor) क्रियाशीलता, भाषा, अधिगम, स्मृति, तर्क और समस्या समाधान क्षमता में भी पिछड़े पाए गए हैं।

कुपोषण के दूरगामी परिणाम बच्चों के व्यवहार में देखे जा सकते हैं। अल्पपोषित बच्चे चिड़चिड़े, सुस्त और अपने आस-पास के परिवेश के प्रति उदासीन पाए गए हैं। उनके अवधान का विस्तार छोटा होता है। वे कुतूहल या छानबीन करने की इच्छा नहीं दर्शाते। उनमें भोजन के लिए चिन्तित होने की प्रवृत्ति होती है क्योंकि वे अगले खाने के लिए चिन्तित रहते हैं, कक्षा की पढ़ाई की ओर उनका ध्यान और रुचि कम हो जाती है।

पोषण की आवश्यकताओं के अलावा, पर्याप्त नींद, आराम, व्यायाम, उपयुक्त निवास की व्यवस्था, कपड़े और चिकित्सा ये सब व्यक्ति में स्वस्थ मनोदशा विकसित करने में सहायक होते हैं। इनमें से किसी के भी वंचन की स्थिति में बच्चा अपने में स्फूर्ति का अनुभव नहीं करेगा, और स्कूल की सुविधाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाएगा।

बौद्धिक आवश्यकताओं का वंचन

जिन कारकों का ऊपर वर्णन किया गया है केवल उन्हीं के द्वारा स्कूल की सफलता प्राप्त नहीं होगी। शारीरिक वंचन के अलावा सांस्कृतिक वंचन के भी अवांछनीय परिणाम होते हैं। घर के पर्यावरण का बच्चे के स्कूल के निष्पादन पर काफी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया, घरों में जहां अच्छी भाषा बोली जाती है, माता-पिता बच्चों के कार्य में रुचि लेते हैं, प्रोत्साहित करते हैं और पुरस्कार देते हैं, और बच्चे के निष्पादन के प्रति सचेत रहते हैं, वहां बच्चे को बौद्धिक विकास के लिए उद्दीपन मिलता है और बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। बच्चों के प्रत्यक्षज्ञानात्मक विकास में मदद मिलती है यदि घर में उन्हें विभिन्न प्रकार के अनुभव प्रदान किए जाएं। बच्चों को उन घरों में मानसिक विकास में लाभ होता है जहां भाषा का उपयोग समझने, अपने पर्यावरण में तुलना और विभेदीकरण करने में, और चिन्तन को प्रेरित करने में किया जाता है, और जहां माता-पिता बच्चों को दूरवर्ती पुरस्कारों और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इन कारकों में से बहुत से, सांस्कृतिक दृष्टि से वंचित घर में, या तो होते ही नहीं या बहुत कम मात्रा में होते हैं। ऐसे परिवार अधिकतर अधिक सदस्यों वाले, गरीबी से ग्रसित और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करते हुए होते हैं। उनकी शिक्षा का स्तर निम्न होता है और उनमें अपनी बात कहने की योग्यता कम होती है। वे किसी प्रकार भी बच्चों के लिए प्रेरणादायी पर्यावरण मुहैया कराने में सक्षम नहीं होते।

वंचित घरों के बच्चे सुनने और देखने के विभेदीकरण में कमजोर होते हैं। मध्यम वर्ग के बच्चों की अपेक्षा उनका शब्द भण्डार सीमित होता है। अमूर्त भाषा में भी वे पिछड़े होते हैं यानी अमूर्त विचारों को व्यक्त करने के लिए उनके पास शब्द नहीं होते। व्याकरण की दृष्टि से भी उनकी भाषा अशुद्ध होती है। स्कूल के प्रथम वर्ष से ही ऐसे कार्यों का बाहुल्य होता है जो भाषोन्मुख होते हैं। इनके लिए वंचित बालक में तत्परता की कमी होती है।

सांस्कृतिक दृष्टि से वंचित बच्चों को अमूर्त संकल्पनाओं को विकसित करने में और सामान्यीकरण करने में विशेष कठिनाई होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सांस्कृतिक रूप से पिछड़े हुए बच्चों में अधिगम

का आधार कमजोर होता है, उनके अनुभव इतने सीमित होते हैं कि स्कूली शिक्षा के जटिल कार्यों के लिए उनकी तैयारी बहुत कमजोर होती है। स्कूल में प्रवेश लेने के बाद वे अपने सहपाठियों से शैक्षिक निष्पादन में पिछड़ने लगते हैं। समय के साथ यह दूरी बढ़ती जाती है। बार-बार असफल होने से भग्नाशा होती है जिससे स्कूल की शिक्षा के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है। अब ये बच्चे चाहते हैं कि किसी प्रकार स्कूल की चारदीवारी से छुटकारा हो।

भावात्मक आवश्यकताओं का वंचन

एक तीसरा वंचन का क्षेत्र है भावात्मक आवश्यकताएं। मानव के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के लिए माता-पिता के साथ निरन्तर निकट के स्नेहपूर्ण संबंध होने चाहिएं। यह मान लिया जाता है कि सभी बच्चों को माता-पिता प्यार करते हैं। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है। ऐसे अनेक बच्चे हैं जिनका पैदा होना माता-पिता नहीं चाहते थे। हो सकता है कि उनके पहले से ही ज्यादा बच्चे हों, या माता-पिता के आपसी संबंध अच्छे नहीं हों और ऐसी हालत में वे अपनी जिम्मेदारी बढ़ाना नहीं चाहते हों। कुछ बच्चे विभिन्न कारणों से इतने भाग्यशाली नहीं होते कि अपने माता-पिता के साथ रहें और उन्हें किसी संस्था में पाला जाता है। सामान्यतया संस्था में शिशु की शारीरिक देखरेख होती है, यानी उसे साफ रखना, समय पर भोजन देना और बीमारी से इलाज कराना इत्यादि पर ध्यान दिया जाता है। पहले यह समझा जाता था कि यह बच्चे के विकास के लिए पर्याप्त है, किंतु हाल के प्रेक्षण इसकी पुष्टि नहीं करते। कुल मिलाकर संस्था में पाले गए शिशु विकास के प्रत्येक पहलू में पिछड़े होते हैं। इसका कारण उस स्नेह का वंचन है जो संस्था में शिशुओं को अकसर प्राप्त नहीं होता।

जीवन के प्रारंभिक वर्षों में माता-पिता के प्यार का वंचन बच्चे के व्यक्तित्व पर दूरगामी और कभी-कभी स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है। प्रारंभ में भावात्मक वंचन बौद्धिक विकास को स्थायी रूप से दुर्बल करता है और सामाजिक परिपक्वता और सामाजिक योग्यता में कमी आती है। इन बच्चों में कुसमायोजन और विकृतियां अधिक होती हैं। ऐसे भी संकेत मिले हैं जो बच्चे प्रारंभिक वर्षों में भावात्मक वंचन से ग्रस्त रहे हैं उनमें अपराध का अनुपात भी अधिक होता है ये बच्चे बहुत छोटी आयु से ही भाषा विकास में पिछड़ जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वंचन चाहे वह शारीरिक, बौद्धिक या भावात्मक हो, इसका प्रभाव विकास के प्रत्येक पहलू पर पड़ता है। वंचन से ग्रस्त बच्चों के लिए विशेष ध्यान और उपचारी कार्यक्रम की आवश्यकता होती है।

अध्याय 19

प्रतिभाशाली बच्चे

लीला. एच. मन्हास

शिक्षकों के नाते, वैयक्तिक विभिन्नताओं में हमारी सबसे अधिक रुचि बौद्धिक योग्यता में है, क्योंकि हमें शिक्षण विधि का चयन करने में और कक्षा के क्रियाकलापों की योजना बनाने में बुद्धि के अन्तरों पर ध्यान देना पड़ता है। एक कक्षा में हमें कुछ थोड़े बच्चे ऐसे मिलेंगे जो बहुत बुद्धिमान हैं, उनसे कुछ अधिक संख्या में वे मिलेंगे जो श्रेष्ठ हैं या औसत से अच्छे हैं, अधिकांश सामान्य या औसत बुद्धि के और थोड़े वे जो मन्द बुद्धि के या धीमी गति से सीखने वाले मिलेंगे।

शिक्षण कार्य की योजना सामान्यतया औसत या समूह में मध्य की योग्यता को ध्यान में रखकर बनाई जाती है और उसमें कुछ प्रावधान ऐसे बच्चों के लिए भी होता है जो औसत से ऊपर या औसत से नीचे हैं। जो बच्चे श्रेष्ठ हैं और जो मन्द या धीमी गति से सीखने वाले हैं, वे सामान्य शिक्षण से ऊब जाते हैं और अपने आप को उपेक्षित अनुभव करते हैं, क्योंकि जिस प्रकार के कार्य की उनसे अपेक्षा की जाती है व उनकी बुद्धि के अनुरूप नहीं है। इससे कक्षा के क्रियाकलापों में वे रुचि खो देते हैं, और उनका समस्यात्मक व्यवहार की ओर प्रवृत्त होने का अंदेशा रहता है। इसलिए कक्षा में हमें इन बच्चों की ओर अधिक सचेत रहना चाहिए और यह सीखना चाहिए कि कैसे हम स्वयं या विशेषज्ञ की मदद से इनका पता लगाएं। इसके बाद ही हम शिक्षण का ऐसा कार्यक्रम बना सकेंगे जिससे कक्षा के सभी बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। पहले हम बहुत बुद्धिमान या प्रतिभाशाली छात्रों को लें।

प्रतिभाशाली कौन है

बुद्धि परीक्षण की शुरुआत के प्रारंभिक वर्षों में केवल वे ही, जो मानकित वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण पर 130 या उससे अधिक बुद्धिलब्धि प्राप्त करते थे, प्रतिभाशाली

माने जाते थे। इन बच्चों को हम बुद्धिसम्पन्न प्रतिभाशाली (Intellectually Gifted) कहते हैं। हाल में प्रतिभाशाली शब्द का विस्तृत अर्थ में उपयोग किया जाने लगा है और इसमें वे बच्चे भी शमिल किए गए हैं जो विशिष्ट योग्यताएं प्रदर्शित करते हैं, उच्च कोटि की सृजनात्मक योग्यता और उच्च नेतृत्व की योग्यता इस प्रकार बौद्धिक प्रतिभा के अतिरिक्त जिनमें संगीत, चित्रकला, सृजनात्मक लेखन, नाटक, यांत्रिकी कौशल, सामाजिक नेतृत्व में से किसी में प्रतिभा के संकेत मिलते हैं, वे प्रतिभाशाली माने जा सकते हैं। यहां यह याद रखना चाहिए कि बच्चों को तभी प्रतिभाशाली माना जाएगा जब उनकी विशेष रुचियां, योग्यता और शिक्षा की आवश्यकताएं औसत से इतनी उच्च हों कि सामान्य कक्षा की परिस्थिति में इनके लिए सरलता से व्यवस्था करना संभव नहीं हो, और स्कूल में या स्कूल के बाहर इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति और क्षमताओं के विकास के लिए कोई विशेष व्यवस्था करनी आवश्यक हो। पहला कार्य है इन बच्चों का पता लगाना जिससे इनकी योग्यताएं और क्षमताएं बेकार न जाएं और उपयुक्त क्रियाकलापों और अनुभवों द्वारा इनका पूरे तौर से विकास किया जा सके। इस कार्य में माता-पिता, शिक्षक और मनोवैज्ञानिक सभी को अपनी भूमिका निभानी है। शिक्षक और माता-पिता बारीकी से अवलोकन करके ऐसे बच्चों का पता लगा सकते हैं जो होनहार प्रतीत होते हैं। इसके बाद इन बच्चों का मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जा सकता है। बहुत से होनहार बच्चे पहचान में नहीं आते, इस कारण शिक्षकों और माता-पिताओं के लिए कुछ निर्देशक बिन्दु देना आवश्यक है।

क्या देखना चाहिए

कफ और डीहान ने विशेष योग्यताओं को पहचानने के लिए शिक्षक के लिए विशेष संदर्शिका बनाई है।

1. सरलता और तेजी से सीखता है।
2. सहज बुद्धि (common sense) और व्यावहारिक ज्ञान का उपयोग करता है।
3. चीजों को युक्तिसंगत करता है, स्पष्ट विचार करता है, संबंधों को पहचानता है, अर्थ समझता है।
4. बिना बहुत रटे जो पढ़ा या सुना उसे याद रखता है।
5. ऐसी बहुत सी बातों को जानता है जिनसे अन्य लोग अनभिज्ञ हैं।
6. अनेक शब्दों का सरलता और परिशुद्धता से उपयोग करता है।
7. अपनी कक्षा से एक या दो वर्ष आगे की किताबें पढ़ सकता है।
8. कठिन मानसिक कार्य करता है।
9. अनेक प्रश्न पूछता है और बहुत सी चीजों में उसकी दिलचस्पी है।
10. अपनी कक्षा से एक या दो वर्ष आगे का शैक्षिक कार्य कर लेता है।

11. मौलिक है, अच्छे और असमान्य विधियों और विचारों का प्रयोग करता है।
12. सतर्क रहता है, बारीकी से देखता है और तेजी से उत्तर देता है।

प्रतिभा को पहचानने की विधियां

प्रतिभाशाली बच्चों के कुछ प्रभेदक व्यवहारों का अनौपचारिक अवलोकन सर्वोत्तम रहेगा और कुछ के लिए नियंत्रित विधियां जैसे मनोवैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक होगा। उदाहरण के लिए धारा प्रवाह बोलना, सृजनात्मक कार्य करना, विशिष्ट योग्यताओं को प्रदर्शित करना और नवीन तथा मौलिक विचारों को व्यक्त करना, इन सबका अवलोकन कक्षा में और कक्षा के बाहर अनौपचारिक परिस्थितियों में किया जा सकता है दूसरी ओर प्रतिभाशाली बच्चों की योग्यता के ऊपरी स्तर का पता परीक्षण द्वारा ही लगाया जा सकता है और वह प्रतिभाशाली व्यक्तियों का पता लगाने का औपचारिक तरीका है। बच्चों का अनौपचारिक अध्ययन शिक्षकों, सहपाठियों, माता-पिता और मित्रों द्वारा अवलोकन से किया जाता है।

शिक्षक के अवलोकन

हमें उन बच्चों का पता लगाना होगा, जो कुछ समझाया जा रहा है उसे जल्दी समझ जाते हैं, जो तथ्यों को अन्य बच्चों की अपेक्षा जल्दी पकड़ लेते हैं, जिनमें वस्तुओं और परिस्थितियों में समानता और अन्तर देखने की योग्यता है, और जो समान पहलुओं को नोट करनें में अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण हैं, जो अपने पूर्वानुभवों की समस्याओं का हल निकालने में सहजता से उपयोग करते हैं क्योंकि उन्हें दोनों परिस्थितियों में समनाताएं दिखाई देती हैं, जो चीजों को मौलिक ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं और काफी सहजबुद्धि व्यक्त करते हैं, जिनकी तर्क करने की योग्यता अपनी आयु के अन्य साथियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है, जिनमें बहुत कुतूहल है और जो सदैव पता करने का प्रयास करते हैं कि वस्तुएं क्यों और कैसे कार्य करती हैं, जैसे, वे चाबी वाले खिलौने को खोलकर उनके पुरजों की जांच और छानबीन कर और विभिन्न प्रकार की सामग्री के प्रयोग करके देखते हैं, इत्यादि जो बहुत कल्पनाशील होते हैं, जिनका शब्दभण्डार काफी बड़ा है और जिनका भाषा पर अच्छा अधिकार है, और जो एक क्रियाकलाप पर अपनी आयु के अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक समय तक ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

हमजोलियों की राय

स्वयं बच्चों का अवलोकन करने के अतिरिक्त हम कक्षा के बच्चों से एक दूसरे के प्रति अपनी राय देने को कह सकते हैं। इससे न केवल अत्यन्त उच्च बुद्धि के बच्चों का पता लगाने में मदद मिलेगी बल्कि उनका भी पता लगेगा जिनमें नेतृत्व के गुण हैं।

इसके लिए "बुझो कौन" (guess who) परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है। इस परीक्षण में संक्षिप्त विवरण "शब्द चित्र" के रूप में दिया जाता है और बच्चों से पूछा जाता है कि कौन सा बच्चा इस विवरण के उपयुक्त बैठता है।

बच्चे के विकास की गति पर माता-पिता और मित्रों की राय

स्कूल में प्रवेश लेने के बहुत पहले बौद्धिक प्रतिभाशाली बच्चों को माता-पिता या परिवार के मित्र पहचान लेते हैं। यह पहचान बच्चे की विकास की गति के निकट के प्रेक्षण पर आधारित होती है। प्रतिभाशाली बच्चों का, सामान्यतः अधिक तेजी से विकास होता है, वे बैठना, खड़े होना, चलना और बोलना अन्य बच्चें की अपेक्षा कम आयु में सीख लेते हैं। इसके मतलब यह हुए कि ये विकास के प्रमुख सोपानों को अन्य बच्चों से बहुत पहले पार कर लेते हैं। भाषा और समझ में ये छोटी आयु में काफी अगवर्ती विकास प्रदर्शित करते हैं। इस तीव्र विकास के लक्षण कुछ व्यवहारों के उदय होने से प्रकट होते हैं, जैसे :

1. विस्तृत शब्दावली का छोटी आयु में सही उपयोग।
2. लम्बे वाक्यों का सही उपयोग और छोटी आयु में कहानी सुनाना या दोहराना।
3. पर्यावरण की चीजों का तीक्ष्ण प्रेक्षण और देखी हुई वस्तुओं की बारकी से याद।
4. किताबों, कैलेण्डरों और घड़ियों में पहले से ही रुचि प्रदर्शित करना।
5. किसी काम पर अपनी आयु के अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक समय तक ध्यान केन्द्रित कर पाना।
6. आरेखण, संगीत, कला या यांत्रिक क्रियाकलापों में प्रतिभा का परिचय देना।
7. छान-बीन करनें में, प्रयोग करने में, कारण और परिणाम का संबंध पता करने में रुचि दिखाना, जैसे , चाबी से चलने वाले खिलौनों, घड़ियों को खोल कर देखना कि वे कैसे कार्य करती हैं, इत्यादि।
8. बहुत कम आयु में पढ़ना शुरू कर देना।

शिक्षकों ने जो जानकारी स्वयं के अवलोकन और बच्चों की राय से एकत्रित की है उसे, माता-पिता और परिवार के मित्रों द्वारा ऊपर दिए गए बिन्दुओं पर जानकारी प्राप्त करके, पूरा कर सकते हैं। इससे उन्हें प्रतिभाशाली बच्चों का पता लगाने में मदद मिलेगी।

हमें याद रखना चाहिए कि कुछ प्रतिभाशाली बच्चे इनमें से कुछ या सभी लक्षणों को प्रदर्शित न करें, और इसका कारण यह हो सकता है कि उनका पालन प्रेरणाविहीन और वंचित परिस्थितियों में हुआ हो। हो सकता है कि हम इनकी प्रतिभा को पहचान न सकें। विभिन्न प्रकार के सृजनात्मक क्रियाकलापों और अनुभवों

की व्यवस्था करके और इसके साथ-साथ यदि बिना किसी पूर्वाग्रह के जो शिक्षक कक्षा को पढ़ाते हैं, यदि वे बारीकी से अवलोकन करें तो प्रतिभाशाली बच्चों और उनकी योग्यताओं का पता लगा सकते हैं।

अभी तक हमने चर्चा की है कि शिक्षक और माता-पिता किस प्रकार उनका पता लगा सकते हैं जिनमें प्रतिभा की संभावनाएं हैं। ऐसे अनौपचारिक अवलोकन सुस्पष्ट नहीं होते। स्कूल में जिन बच्चों को शिक्षकों ने प्रतिभाशाली माना है उन्हें मनोवैज्ञानिक के पास मनोवैज्ञानिक परीक्षण के लिए भेजना चाहिए।

प्रतिभाशाली बच्चों का पता लगाने की औपचारिक विधियों में विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का उपयोग किया जाता है, जैसे :

1. **वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण** : बौद्धिक प्रतिभा का पता लगाने के लिए वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण सबसे अच्छे तरीकों में से एक हैं यह एक व्यक्तिगत साक्षात्कार के समान है। किन्तु सभी बच्चों पर उपयोग के लिए यह बहुत खर्चीला है, क्योंकि इसके लिए विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं की आवश्यकता पड़ती है और परीक्षण में बहुत समय लगता है। अपने देश में हम इसका उपयोग उन्हीं बच्चों के लिए कर सकेंगे जिनमें अन्य विधियों से प्रतिभाशाली होने के संकेत मिले हों।

2. **सामूहिक बुद्धि परीक्षण** : सामूहिक बुद्धि परीक्षण मानकित परीक्षण है जो समान आयु और कक्षा के बच्चों पर विकसित किए गए हैं। ये परीक्षण उतना अच्छा विभेदीकरण नहीं करते जितना बुद्धि परीक्षण, किन्तु उन बच्चों को छांटने में मदद कर सकते हैं जो औसत से काफी ऊपर और औसत से काफी नीचे हैं। इन परीक्षणों के परिणामों की पूर्ति अन्य आधारों से प्राप्त तथ्यों से करनी चाहिए। इन परीक्षणों में कुछ कमियां हैं। प्रतिभाशाली बच्चे जिन्हें पढ़ने की कठिनाइयाँ हैं, या जो पढ़ाई में अच्छा कार्य नहीं कर पा रहे, या जिनमें भावात्मक या अरुचि की समस्याएं हैं, वे परीक्षण में सामने न आ सके क्योंकि ये कारक उनके सामूहिक बुद्धि परीक्षण के निष्पादन पर भी प्रभाव डालेंगे। इसलिए संभव है कि परीक्षण के परिणाम सही तस्वीर प्रस्तुत न कर सकें।

3. **सृजनात्मक चिन्तन के परीक्षण** : सामान्यतया बुद्धि परीक्षण सृजनात्मकता का मापन नहीं करते। इसलिए हाल में ऐसे परीक्षणों की ओर ध्यान दिया जाने लगा है जो मौलिकता और उत्पादक चिन्तन का मापन करते हैं। किन्तु इन परीक्षणों से प्राप्त तथ्यों को माता-पिता और शिक्षकों के अवलोकनों से मिलाना चाहिए क्योंकि सृजनात्मकता अकसर अनौपचारिक परिस्थितियों में व्यक्त होती है।

4. **निष्पत्ति परीक्षण** : ये मानकित परीक्षण हैं जो विभिन्न आयु और कक्षा स्तर पर बच्चों के निष्पादन का परीक्षण करने के लिए बनाए गए हैं। इनमें से बहुत

अपने देश में उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इनके स्थान पर शिक्षक द्वारा बनाए गए वस्तुनिष्ठ निष्पत्ति परीक्षण की सिफारिश की जा रही है। कुछ बच्चे जो प्रतिभाशाली हैं और जो अपनी योग्यता के अनुरूप निष्पादन कर रहे हैं, इनका पता इन परीक्षणों द्वारा लगाया जा सकता है।

व्यापक उपागम की आवश्यकता

भावात्मक स्थिरता, पारिवारिक परिस्थितियां, पढ़ने की आदतें, भाषा, पृष्ठभूमि आदि बहुत से कारक हैं जो बच्चे के शैक्षिक निष्पादन पर प्रभाव डालते हैं। यह भी देखा गया है कि कुछ प्रतिभाशाली बच्चे परीक्षण परिस्थितियों में अच्छा कार्य नहीं कर पाते, जबकि अन्य जो औसत बुद्धि के हैं अच्छे अंक प्राप्त कर सकते हैं यदि उनमें पढ़ने की अच्छी आदतें हैं, निष्पादन के लिए तीव्र प्रेरणा है और उनके परिवार परिश्रम करवाने के लिए उन पर दवाब डालते हैं। यह पता करने के लिए कि इनमें से कौन है जिनमें वास्तव में बौद्धिक संभावना और योग्यता है, हमें कई तरीकों, औपचारिक और अनौपचारिक, को अपनाना होगा। केवल एक प्रकार के मूल्यांकन के परिणाम भ्रामक हो सकते हैं।

प्रतिभाशाली बच्चों की विशेष समस्याएं

वृद्धि के दौरान, अन्य बच्चों के समान, प्रतिभाशाली बच्चे भी अनेक समसयाओं का सामना करते हैं। उनकी कुछ समस्यसाएं उनकी बौद्धिक श्रेष्ठता के कारण होती हैं।

बहुत बार ऐसा होता है कि इन बच्चों के हमजोली इनकी बात को समझ नहीं पाते और इनके कार्यों के गलत मतलब निकालते हैं, क्योंकि इनकी रुचियां बौद्धिक होती हैं और अपने आयु वर्ग से भिन्न होती हैं। वे अपनी आयु से अधिक आयु के बच्चों का साथ पसन्द करते हैं और इस कारण हो सकता हैं कि इनकी आयु के बच्चे उन्हें दम्भी समझें या अन्य बच्चे उनका मजाक उड़ाएं और उन्हें किताबी कीड़ा कहें। शिक्षक उनके उच्च बुद्धि स्तर और किसी विषय पर अधिक ज्ञान दिखाने के कारण बुरा मान सकते हैं, और उन्हें नीचा दिखाने की कोशिश कर सकते हैं। उनके अनेक प्रश्न पूछने से शिक्षक नाराज होकर, हो सकता है उनको डांटे या झिड़की दे। कक्षा का कार्य और गृह कार्य, जो कि औसत बच्चों को ध्यान में रख कर निर्मित किए जाते हैं, इन बच्चों को नीरस लगते हैं। क्योंकि इन कार्यों में सृजनात्मक विचारों के प्रयाग की जगह समृति और बिना समझे रटने पर अधिक बल है। इसके अलावा इन बच्चों के कार्य की गति अधिक तीव्र होती है ये अपना कार्य अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक पहले समाप्त कर लेते हैं। जब इनका मन रचनात्मक कार्य में पूरी तरह लगा हुआ नहीं होता, वे किसी शैतानी में संलग्न हो सकते हैं और स्कूल के कार्य में अपनी रुचि गंवा सकते हैं।

दूसरे सिरे पर, कुछ शिक्षक और माता-पिता उच्च मानसिक योग्यता के बच्चों पर उनके जाग्रत काल का अधिकांश समय बौद्धिक कार्यों में लगे रहने के लिए अत्यधिक दबाव डालते हैं। यह भी बच्चों के लिये अनुचित है। व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का विकास होना चाहिए, और उन्हें अपनी पसन्द के क्रियाकलापों में समय व्यतीत करने की छूट चाहिए।

माता-पिता और शिक्षकों को इस बात से सतर्क रहना चाहिए कि इन बच्चें का उपयोग सदैव इन्हें आगे लाकर कक्षा या स्कूल के नाम के प्रचार के लिए, या अपने परिवार की लोकप्रसिद्धि के लिए, नहीं किया जाए। इससे प्रतिभाशाली बच्चे पर न केवल बोझा बढ़ता है, बल्कि अन्य बच्चे अन्तर-कक्षा और अन्तर-शालेय प्रतिस्पर्धा में भाग लेने के अवसर से वंचित रह जाते हैं। जिसके कारण उनके मन में ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न होता है। प्रतिभाशाली बच्चों को स्वाभाविक और सामान्य रूप से विकसित होने देना, और उन्हें अपनी योग्यता का स्वतंत्र रूप से विकास करने के अवसर प्रदान करना, और स्वतंत्र चिन्तन विकसित करना इन बच्चों की मदद करने की सर्वोत्तम विधियां हैं।

शैक्षिक प्रावधान जो अकसर प्रतिभाशाली बच्चों के लिए किए जाते हैं

कोई भी पद्धति सभी प्रतिभाशाली छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करेगी क्योंकि इनमें भी आपस में काफी अन्तर होता है। शिक्षा में विशेष प्रावधान करने से पहले बच्चों की वैयक्तिक विशेषताओं और आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना होगा। इन बच्चों की शिक्षा समस्याओं के समाधान के लिए तीन विभिन्न उपागम साधारणतया प्रस्तुत किये गए हैं।

1. विशिष्ट स्कूल या कक्षा का आयोजन

विशिष्ट. स्कूल या कक्षाओं का आयोजन, एक विधि है जिसके द्वारा अधिकारियों ने इन बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास किया है। इन स्कूलों और कक्षाओं में सारा कार्यक्रम इन बच्चों के लिए विशेष रूप से आयोजित किया जाता है और पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियों में इनकी आवश्यकताओं के अनुकूल परिवर्तन किए जाते हैं। इन विशिष्ट स्कूलों को चलाने में काफी खर्च आता है और इसलिए इस प्रकार के स्कूल भारत में बहुत कम हैं। सामान्य स्कूलों में विशिष्ट कक्षाएं संलग्न करना, जहा प्रतिभाशली बच्चे दिन का एक भाग उन कार्यों को करने में लगाते हैं जो उनकी आवश्यकताओं के लिए अधिक उपयुक्त हैं, हमारी परिस्थितियों में अधिक व्यावहारिक होगा।

2. त्वरण का उपयोग (Use of Acceleration)

त्वरण का अर्थ है बच्चों की शिक्षा में प्रगति में सामान्य से अधिक तेजी लाना। त्वरण कई प्रकार से लागू किया जा सकता है।

(अ) स्कूल में शीघ्र प्रवेश : इसके अर्थ यह हुए कि प्रतिभाशाली बच्चों को किंडरगार्टन या पहली कक्षा में उनकी मानसिक विकास की गति के अनुरूप अधिक छोटी आयु में प्रवेश देना। मानसिक आयु का पता बुद्धि परीक्षण द्वारा किया जा सकता है और इसलिए इस कार्य में मनोवैज्ञानिक की आवश्यकता पड़ेगी। अध्ययनों के आधार पर पता चला है कि प्रतिभाशाली बच्चों का अधिक छोटी आयु में प्रवेश कि प्रकार भी हानिकारक नहीं हैं।

(ब) कक्षाएं लांघना (Skipping Grades) कक्षाएं लांघाना या दोहरी तरक्की (double promotion) दिलाना शैक्षिक त्वरण का एक दूसरा तरीका है। उदाहरण के लिए एक बच्चा जिसने पहली कक्षा में बहुत अच्छा कार्य किया है, उसको दूसरी के बजाए तीसरी में चढ़ा दिया जाता है। कुछ वर्ष पहले यह बहुत आम प्रथा थी। अब इसे अधिकतर स्कूलों में बन्द कर दिया गया है क्योंकि इसमें कुछ कमियाँ हैं। बच्चा एक कक्षा से बिलकुल अनभिज्ञ रह जाता है। इससे उसके ज्ञान और अनुभवों में एक अन्तराल रह जाता है। प्राथमिक स्तर पर मूल कौशल सिखाए जा रहे हैं और आधारभूत संकल्पनाएं विकसित की जा रही हैं। इस अवस्था में एक वर्ष के कार्य से वंचित रह जाने से, चाहे बच्चा कितना बुद्धिमान क्यों न हो, नींव कमजोर रह जाएगी।

(स) अन्तः सर्पी कक्षाएं (Telescopic Grades) : यह त्वरण की एक अन्य विधि है। इसमें प्रतिभाशाली छात्र अन्य छात्रों की अपेक्षा अधिक तेजी से आगे बढ़ता है और अपनी कक्षा का कार्य एक वर्ष स्थान पर तीन से छः माह में पूरा कर लेता है या दो कक्षाओं का कार्य एक वर्ष में पूरा करता हैं। इस विधि में कक्षा के किसी कार्य से वह अछूता नहीं रहता ओर साथ ही साथ औसत बच्चों की गति से काम करने की ऊब से बच जाता है। प्राथमिक स्तर पर परीक्षाओं को समाप्त करना, जिसकी सिफारिश शिक्षा मंत्रालय ने की है, पद्धति की अनम्यता को दूर करने में मदद करके, शिक्षकों को सभी स्तर पर बुद्धि छात्रों के लिए व्यवस्था करने में मदद कर सकेगा। बिना श्रेणियों की कक्षा (ungraded class) एक दूसरा उपाय हो सकता है जिसमें सभी बच्चे अपने मानसिक विकास के अनुसार आगे बढ़ें।

त्वरण उन बच्चों के लिए उपयोगी है जिनका शारीरिक, सामाजिक और भावात्मक विकास भी उनके बौद्धिक विकास का साथ देते हुए आगे है। किन्तु वे बच्चे जिनका बौद्धिक विकास उनकी शारीरिक, सामाजिक और भावात्मक विकास से काफी आगे है, बजाए अपनी आयु से अधिक आयु के बच्चों के साथ, शायद अपने ही आयु-वर्ग में ज्यादा ठीक रहेंगे।

1. पाठ्यक्रम का संवर्धन

संवर्धन के अर्थ हैं प्रतिभाशली छात्रों को वे अनुभव प्रदान करना जो नियमित कार्यक्रम के अतिरिक्त है। उदाहरण के लिए अतिरिक्त पठन कार्य या नियत कार्य दिए जा सकते हैं और सहगामी क्रियाकलापों में भाग लेने के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं। दिन के एक भाग में योग्यता के आधार पर बच्चों के समूह बना कर ऐसे क्रियाकलापों में भाग लेने की छूट दी जा सकती है जो उनकी रुचियों के अनुकूल हों। संवर्धन के यह भी अर्थ होंगे कि जिनकी विशिष्ट प्रतिभा खेल, कला, संगीत, नाटक, सृजनात्मक लेखन, समस्या समाधान और सामाजिक नेतृत्व में हैं, उनको विशेष अवसर प्रदान करना। इसमें यह बात भी सम्मिलित है कि बच्चे के सामने निष्पादन के उच्च मापदण्ड रखे जाएं, और उनको स्वतंत्र रूप से कार्य करना और सर्जनशील होने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

प्रतिभाशाली बच्चों द्वारा अपनी सक्षमताओं का पूरा उपयोग कराने में शिक्षकों का योग

1. प्रतिभाशाली बच्चे अधिक तेजी से सीखते हैं और इसलिए उनको बार-बार दोहराने और ड्रिल की कम आवश्यकता होती है। अधिक बल पठन और समस्या समाधान पर दिया जाना चाहिए। जितनी आवश्यक ड्रिल हो उसे अर्थयुक्त नियत कार्य और उपयुक्त खेलों द्वारा देनी चाहिए।

2. केवल तथ्य और सूत्र प्रस्तुत करने के बजाए शिक्षकों को सूत्र के पीछे कारणों की विवेचना करनी चाहिए, क्योंकि बच्चों की समस्याओं को समझने में दिलचस्पी है और वे अपने स्वयं निष्कर्षों पर पहुंचना चाहते हैं। शिक्षकों को इस बात के लिए भी तैयार रहना चाहिए और इसका बुरा नहीं मानना चाहिए। यदि वे बच्चे उसकी सभी बातों को स्वीकार न करें, और शंकाए उठाएं, क्योंकि जब तक बात उन्हें युक्तिसंगत नहीं लगती और उसके सही होने के वे कायल नहीं होते, वे उसे स्वीकार नहीं करते।

3. ये बच्चे अपना नियत कार्य अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक शीघ्र पूरा कर लेते हैं, इसलिए शिक्षक को इन्हें कठिन नियत कार्य, जिसमें सोचने और समस्या समाधान की आवश्यकता पड़े, दें जिससे इनकी दिलचस्पी बनी रहे।

4. प्रतिभाशाली बच्चों का अधिकतर शब्द भण्डार बड़ा होता है और शाब्दिक योग्यता अधिक होती है। उन्हें अपने को स्वेच्छा से वार्तालाप, विचार,-विनिमय और सर्जनात्मक लेखन द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

5. क्योंकि इन बच्चें का प्रेक्षण बहुत तीक्ष्ण होता है, ये पर्यावरण में बहुत सी बातें देखते हैं अनेक प्रश्न पूछते हैं और जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं

जब ये पढ़ने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, ये अन्य की अपेक्षा बहुत अधिक पढ़ते हैं। इनके पास विभिन्न विषयों पर बहुत सी जानकारी होती है। इस जानकारी का नियत कार्य और कक्षा की चर्चा में उपयोग में लाने के लिए शिक्षकों को इन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्हें यदि केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित रखा गया तो पढ़ाई में ये रुचि गंवा देंगे।

6. प्रतिभाशली बच्चों में तीव्र कुतूहल होता है। वे वस्तुओं को छूना, देखना, सुनना और धरना-उठाना पसन्द करते हैं। वे विभिन्न घटनाओं के पीछे कारणों का पता करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, "घड़ी टिक-टिक कैसे करती है ?" "मौसम क्यों बदलते हैं" इत्यादि। वे अपने कुतूहल का उपयोग कारण और प्रभाव के संबंधों का पता करनें में, कल्पनाशील क्रियाकलापों में, विभिन्न प्रकार की सामग्री लेकर छान-बीन और प्रयोग करने में विभिन्न यंत्रावली के कार्य के पीछे कारणों का पता करने में, और दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों के द्वारा विज्ञान पढ़ने में कर सकते हैं। इसके लिए एक क्रियाप्रधान कार्यक्रम बनाना होगा जिसमें अवलोकन द्वारा सक्रिय भाग लेना, वस्तुओं का उपयोग करने के अवसर, रचनात्मक क्रियाकलाप, भ्रमण के लिए जाना, और शिक्षकों तथा अन्य छात्रों से विचार-विनिमय, ये सब शिक्षण-अधिगम परिस्थिति के आवश्यकं अंग हैं।

7. प्रतिभाशाली बच्चों में विविध रुचियां होती हैं, अधिकतर बौद्धिक क्षेत्र में। शिक्षकों को चाहिए कि जहां संभव हो इन रुचियों को कक्षा की पढ़ाई से जोड़ें। कक्षा का कार्य समाप्त होने पर, कभी-कभी बच्चों को अपनी रुचि के अनुरूप कार्य करने देना चाहिए। इससे उन्हें अपनी रुचियों को विकसित करने में प्रोत्साहन मिलेगा।

8. अधिकतर प्रतिभाशली बच्चों के साथ काम करना सरल होता है और वे अन्य बच्चों में काफी लोकप्रिय होते हैं। किन्तु यदि उन्हें अपनी सृजनात्मक योग्यता, विशिष्ट प्रतिभा और बौद्धिक संभावनाओं को विकसित करने के अवसरों से वंचित रखा गया तो वे कुंठित महसूस करेंगे और उसके कारण व्यवहार की समस्याएं उठ सकती हैं। शिक्षक, उनको यह जानने में कि उनकी क्या अच्छाइयां और क्या कमजोरियां हैं तथा वे क्या कर सकते हैं और क्या नहीं कर सकते, मदद कर सकते हैं।

9. अनेक प्रतिभाशली बच्चों में यह प्रवृत्ति होती है कि वे अपने निष्पादन से असंतुष्ट रहते हैं ओर अपने कार्य में उन्हें बहुत कमियां दिखाई देतीं हैं। शिक्षकों को, इन बच्चों को अपन कार्य के प्रति, यदि उन्होनें सर्वोत्तम प्रयास किया है, संतोष अनुभव करने में मदद, करनी चाहिए। उन्हें ये समझने में मदद करनी चाहिए कि

पूर्णता विकास और अनुभव के साथ आएगी, और उन्हें अपनी तरफ से सर्वोत्तम प्रयास करते रहना चाहिए।

10. अधिकतर प्रतिभाशली बच्चे सृजनात्मक योग्यता प्रदर्शित करते हैं। हमें इन बच्चों में सृजनात्मक व्यवहार के लक्षणों की ओर ध्यान देना चाहिए और इन योग्यताओं के विकास के लिए रचनात्मक अवसर देने चाहिएं। हमारा शिक्षण केवल तथ्य और विचार प्रस्तुत करने के लिए ही नही है, इससे तर्क को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। बच्चों की रुचि के विषयों को लेकर परियोजनाएं (projects) आयोजित करना, और उनकी मदद करना जिससे कि विस्तार से वे योजना बनाएं, योजनाओं को कार्यान्वित करें, समस्याएं जो उठती हैं उनके हल निकालें, इन सब से बच्चों को अपनी प्रतिभा के विकास में मदद मिलेगी। वादविवाद द्वारा, समस्या प्रस्तुत करके बच्चे उनके हल निकलवाने से सृजनात्मक चिन्तन को विकसित किया जा सकता है। उनहें भ्रमण पर ले जाकर वस्तुएं दिखाकर, उनके पहले के अनुभव और अब जो अनुभव कर रहे हैं उनमें समानताएं नोट करने को कह कर, उनकी प्रेक्षण की क्षमता को अधिक तीक्ष्ण किया जा सकता है। विचारों का प्रवाह (fluency) और मौलिकता की प्रशंसा और स्वीकृति व्यक्त करके पुरस्कृत करना चाहिए। सृजनात्मक कार्य, जैसे, आरेखन, चित्रकला, संगीत; मिट्टी के नमूने बनाना, रद्दी सामान से वस्तुएं बनाने के लिए समय और अवसर प्रदान करने चाहिए।

11. एक आयु के सभी बच्चे जिन सामान्य समस्याओं का सामना करते हैं उनके अतिरिक्त प्रतिभाशाली बच्चे की अपनी कुछ विशिष्ट समस्याएं होती हैं। इसलिए इन बच्चों के लिए वैयक्तिक और शैक्षिक निर्देशन आवश्य हैं और उसे शिक्षकों या परामदर्शदाता द्वारा दिया जाना चाहिए।

अध्याय 20

धीमे शिक्षार्थी

लीला एच. मन्हास

हम में से जो बच्चों को पढ़ाते हैं वे इस बात को जानते हैं कि हमारी पूरी कोशिश के बाद भी कुछ बच्चे ऐसे हाते हैं जो स्कूल के कार्य से लाभ नहीं उठा पाते। वे शैक्षिक कार्य में बराबर निम्न परिणाम प्राप्त करते है, और स्कूल में उनका निष्पादन अपनी आयु वर्ग से सार्थकरूप से कम होता है। ऐसे बच्चों को पिछड़े बच्चे कहते हैं। अध्ययनों के आधार से पता चला है कि इनमें से बहुत से ऐसे बच्चे होते हैं जिनमें इतनी बुद्धि होती है कि वे कक्षा का कार्य कर सकें। सामान्यतया इनकी असफलता के पीछे वैयक्तिक कारण होते हैं, जो या तो वैयक्तिक विशेषताएं या पर्यावरण के कारण या दोनों ही हो सकते हैं। हमें यह समझाना चाहिए कि वैयक्तिक विशेषताएं और पर्यावरण मिल कर कार्य करते हैं (इन कारकों का वर्णन ''अल्पार्जक'' के अन्तर्गत अध्याय 21 में दिया जाएगा) काफी अधिक संख्या में ऐसे बच्चे होते हैं जिनकी स्कूल की अफलता का कारण उनकी मानसिक और शैक्षिक कार्य के लिए निम्न मानसिक योग्यता है। इस सामान्य मानसिक योग्यता को हम बुद्धि कहते हैं। बच्चे, जो स्कूल करने में सीमित बुद्धि के कारण असफल रहते हैं, जिन्हें ''धीमें'' शिक्षार्थी कहते हैं।

धीमें सीखने वाले मूल संकल्पनाओं को और सामान्यत विचारों को देर से समझ पाते हैं। यह समझ स्कूल के बहुत से कार्यों का आधार है, विशेषकर भाषा और गणित में। इनकी शाब्दिक योग्यता, जो बोलने में और व्याख्या करने में व्यक्त होती है, अकसर कम होती है। इन्हें अमूर्तिकरण, वर्गीकरण और सामान्यीकरण में कठिनाई होती हैं। अक्सर, जो पढ़ाया जा रहा है उसमें यदि इनकी गहरी रुचि न हुई तो इन्हें याद नहीं रहता। शिक्षक कक्षा में क्या बता रहें हैं, यह समझने में इन्हें काफी कठिनाई होती है। न केवल वे धीमी गति से सीखते हैं, बल्कि जो कुछ भी सीख पाते हैं वह सरल स्तर का ही होता है। अमूर्त चिंतन इनकी क्षमता के बाहर

की बात है। इस कारण, जिस प्रकार की शैक्षिक योजना हम बनाते हैं, उसमें इनके सफल होने की संभावना कम रहती है।

मानसिक मन्दन एक विस्तृत श्रेणी है और धीमे शिक्षार्थी इसकी एक उपश्रेणी हैं। मन्दन की उपश्रेणियों का वर्णन आगे किया जाएगा।

मानसिक मन्दन की संकल्पना

बच्चों को हम मानसिक मन्दित तब कहेंगे जब उनकी मानसिक क्रियाशीलता और संज्ञान का विकास उनकी आयु वर्ग के औसत बच्चों से काफी नीचे हो। वे अपनी शारीरिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरी तौर से सक्षम नहीं होते। यह याद रखना चाहिए कि यह समूह समरूप (homogeneous) नहीं होता। इसमें योग्यताओं का परास (range) होता है। इसलिए मानसिक मन्दन का उपश्रेणियों में वर्गीकरण आवश्यक है, जिससे इनकी शिक्षा और देख-रेख के लिये उचित प्रावधान किया जा सके।

ये उपश्रेणियां नीचे दी जा रही हैं।

1. **मन्द या सीमारेखीय बच्चे (The Dull or Borderline Children)** ये वे हैं जिनकी बुद्धिलब्धि 70-75 से 85-90 के बीच है। देखने में ये सामान्य बच्चों जैसे लगते हैं इनमें से अधिकांश, काफी हद तक, अपनी शारीरिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं। यद्यपि इनका बौद्धिक विकास सामान्य बच्चों से धीमा है, और वे केवल सरल आमूर्त चिन्तन कर पाते हैं, फिर भी वे समाज के स्वावलम्बी सदस्य बन सकते हैं। स्कूल के कार्य से लाभ उठाने के लिए, और समाज की मांगों से समंजन के लिए, उन्हें विशेष सहायता, निरीक्षण और परामर्श की आवश्यकता होती है।

2. **किंचित अवसामान्य बच्चे (Mildly Subnormal Children)** इनकी बुद्धिलब्धि 55-60 से 70-75 की सीमा के बीच होती है। ये बच्चे थोड़े निरीक्षण और विशिष्ट शिक्षा से, कुछ हद तक, स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकते हैं, आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सकते हैं और सामाजिक तथा व्यावसायिक सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

3. **मामूली अवसामान्य बच्चे (Moderately Subnormal Children)** इनकी बुद्धि लब्धि 40-45 से 55-60 के बीच होती है। इस श्रेणी की ऊपरी सीमा पर बच्चे कुछ मूल कौशल सीख सकने योग्य होते हैं, और "उत्तरजीविता शब्दावली" (survival vocabulary), यानी जीवन को कायम रखने में काम आने वाले शब्द सीख सकते हैं। इसके अर्थ हुए कि कुछ निर्देशन और प्रशिक्षण से वे सड़कों के संकेत, स्टेशन, बस डिपो, रेस्तरां, और ऐसे शब्द, 'प्रसाधान', 'स्त्रियां', 'पुरुष' इत्यादि

पहचान सकेंगे। वे कुछ सीमा तक अपनी शारीरिक और सामाजिक आवश्यकताओं की देखभाल कर सकते हैं।

4. गंभीर अवसामान्य (Severely Subnormal) : इनकी बुद्धि लब्धि का विस्तार 25-30 से 40-45 के बीच होता है शिक्षा के औपचारिक अर्थ में इन्हें शिक्षित नहीं किया जा सकता। इन बच्चों में जो इस श्रेणी के ऊपरी स्तर पर हैं, वे कुछ उत्तरजीविता शब्दावली सीख सकते हैं। मामूली अवसामान्य बच्चों के समान ये अपनी देख रेख सीख सकते हैं। भावात्मक और सामाजिक समंजन में प्रगति और कुछ आदतें और कौशल उपार्जित कर सकते हैं। इन बच्चों को निरंतर निरीक्षण और निर्देशन की आवश्यकता होती है।

5. गहन अवसामान्य (Profoundly Subnormal) : ये 25 बुद्धि लब्धि के नीचे होते हैं। इनकी पूरी देखभाल किसी अन्य व्यक्ति को करनी होती है, यद्यपि निरन्तर प्रशिक्षण से स्वयं की देखरेख में कुछ प्रगति हो सकती है।

गंभीर अवसामान्य और गहन अवसामान्य बच्चों में गंभीर रूप से मंदित और दूसरों पर पूरी तौर से निर्भर होने के अलावा कुछ अन्य कमियां भी होती हैं। ये कमियां बोलने के दोष, इन्द्रियों के दोष, गामक समन्वय में कमजोरी, शारीरिक दोष या विकृतियां, इत्यादि के रूप में देखने में आती हैं। इन कमियों को बाहर से ही पहचाना जा सकता है। सामान्य बच्चों के स्कूल में इन बच्चों के प्रवेश की शायद ही कोई संभावना होगी।

इस बात को याद रखना चाहिए कि जिन श्रेणियों का वर्णन ऊपर किया गया, वे केवल व्यावहारिक आशय से निर्मित की गई है, जिससे हम विभिन्न श्रेणियों के लिए कुछ सामान्य और कुछ शैक्षिक प्रवाधान कर सकें। वास्तव में कार्यान्वियन में हम सभी पिछड़े बच्चों को निश्चित श्रेणी-समूहों में बांट नहीं सकते, क्योंकि प्रत्येक बच्चे का अलग व्यक्तित्व होता है और श्रेणियां एक दूसरे में विलीन हो जाती हैं। इसके अलावा, अन्य बहुत से व्यक्तिगत कारक हैं जिनसे, समान बुद्धि स्तर के होते हुए भी, ये बच्चे एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसके अर्थ ये हुए कि प्रत्येक बच्चे के मामले का अलग निदान करना होगा, शिक्षा में उसके लिए व्यवस्था उसकी आवश्यकता के अनुरूप करनी होगी। यूरोप के बहुत से देशों और यू. के. में मन्द, किंचित अवसामान्य को धीमे शिक्षार्थी की श्रेणी में रखा जाता है। इस समूह का विस्तार से वर्णन किया जाएगा, क्योंकि सामान्य स्कूलों मैं शिक्षकों को इन बच्चों के सम्पर्क में आने की अधिक संभावना है, और इसलिए इनको ध्यान में रख कर शैक्षिक कार्यक्रम और क्रियाकलापों की योजना बनानी चाहिए।

धीमे शिक्षार्थी (The Slow Learners)

धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की बुद्धि लब्धि 50/55 से 80/85 तक होती है। इसके अर्थ यह हुए कि इस समूह के बच्चों में मानसिकता योग्यता और शैक्षिक क्षमता में काफी अधिक और सार्थक अन्तर होंगे। जो बच्चे इस श्रेणी के ऊपरी छोर की ओर हैं उन्हें सामान्य स्कूलों में पढ़ाया जा सकता है बशर्तें उन्हें धीमी गति से आगे बढ़ने दिया जाए और अधिक मात्रा में मूर्त सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाए। जो निचले छोर की ओर हैं उनके लिए अलग शिक्षण व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि उनकी सीखने की क्षमता सीमित है। इसलिए हम धीमे सीखने वालों की दो उप-श्रेणियों के अन्तर्गत चर्चा करेंगे (अ) मन्द (dull) और (ब) किंचित अवसामान्य (mildly subnormal)।

मन्द

मन्द बच्चों की बुद्धि लब्धि 70/75 से 80/85 तक होती है। ये सीमान्त रेखा (borderline) के मामले हैं और इन्हें अधिकतर मानसिक मन्दन की श्रेणी में नहीं रखा जाता। ये कुछ शैक्षिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं किन्तु इन्हें अपनी गति से आगे बढ़ने की छूट होनी चाहिए। इन्हे सामान्य कक्षा में पढ़ाया जा सकता है, यदि कक्षा के कार्यक्रम शिक्षण विधियां, और पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन उनकी योग्यता के अनुरूप किए जाएं। क्योंकि इनमें से कोई उच्च शास्त्रीय शिक्षा के लिए नहीं जा पाएगा। इन्हें उपयोगी चीजें सिखने पर विशेष बल देना होगा। इनके लिए जो अनुभव और क्रियाकलाप स्कूल में प्रस्तुत किए जाएं, वे दिन-प्रतिदिन की परिस्थितियों से संबंधित होने चाहिए। इन बच्चों के लिए हमें सैद्धान्तिक विषयं और अमूर्त कार्य को कम करना होगा और ऐसे कौशल सिखाना और जानकारी देनी होगी जिसका वे आने वाले जीवन में उपयोग कर सकें।

व्यावहारिक कार्यों और ऐसे व्यवसायों में जहां वस्तुएं और मूर्त परस्थितियों का सामना करना होता है। मन्द बुद्धि के बच्चे काफी सक्रिय रहते हैं। इसलिए इनकी शिक्षा मूर्त सहायक सामग्री क्रिया-प्रधान विधियों और जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में उपयोग के संदर्भ में सिखाना और अभ्यास कराना चाहिए। इसके मतलब यह हुए कि बच्चों की आवश्यकताओं और रुचियों के अनुरूप पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना होगा। इसमें वैयक्तिक विकास सामाजिक क्षमता, व्यावसायिक कुशलता और अवकाश के समय सदुपयोग पर बल होगा। जो विधियां अपनाई जाएं उनमें करने और सक्रिय भाग लेने पर बल देना होगा। विषयों को समन्वित ढंग से प्रस्तुत करना होगा। प्राथमिक स्तर पर रुचियों को केन्द्र बना कर परियोजनाओं पर कार्य करवाना अधिक उपयुक्त पाया गया है। कक्षा के घण्टे छोटे छोटे होने चाहिए। पठन सामग्री को

क्रमिक सोपानों में उत्तरोत्तर कठिनाई के आधार पर विभक्त करना होगा जिससे इन बच्चों को सफलता प्राप्त हो सके। विभिन्न रोचक क्रियाकलापों द्वारा पर्याप्त अभ्यास और ड्रिल की व्यवस्था करनी होगी। खेल, संगीत, सृजनात्मक कार्य और सामाजिक सम्पर्क के अवसर प्रदान करना बहुत वांछनीय है। स्कूल कार्यक्रम में इन्हें महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए। शिक्षक को अलग अलग बच्चों की ओर ध्यान देकर शिक्षण व्यक्तिपरक बनाना होगा।

मन्द बच्चों का पहले से ही पता लगाना चाहिए, संभव हो तो सात वर्ष की आयु के पहले, जिससे इनकी शिक्षा और वैयक्तिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया जा सके। अन्यथा असफलता और कुण्ठा के कारण विभिन्न प्रकार के आचरण की कठिनाइयां उत्पन्न होंगी। यदि इन्हें अपनी लगातार असफलता के कारण अशान्ति का अनुभव होता रहा और स्वीकरण, स्नेह और सराहना के स्थान पर उपेक्षा और तिरस्कार ही मिला तो अपराध की ओर इन्हें सरलता से बहकाया जा सकता है। इन बच्चों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि ये दूसरों के प्रभाव में आसानी से आ जाते हैं, और उनके सुझावों को बिना यह सोचें कि वे उचित हैं या अनुचित, लाभप्रद हैं या हानिकारक, मान लेते हैं इसका कारण यह है कि इनमें विवेचनात्मक चिन्तन और विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता की कमी होती है। इसके अलावा समूह द्वारा स्वीकार किए जाने, प्रशंसा पाने और समूह का सदस्य माने जाने के लिए, वे जो अन्य लोग उनसे करवाना चाहते हैं उसे करने को तैयार हो जाते हैं। इससे उनकी अपनत्व की भावना की पूर्ति होती है। उनमें यह योग्यता नहीं होती कि अपने कार्यों के परिणाम के बारे में सोच सकें, और अकसर उन्हें एक प्रजातान्त्रिक देश के नागरिक होने के नाते अपने कर्तव्य, अधिकार और सुविधाओं के बारे में पता नहीं होता। इसलिए लोग इनसे अनुचित लाभ उठा सकते हैं। इसलिए हमारे स्कूलों पर इन बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति का काफी बड़ा दायित्व है।शिक्षकों को उनके प्रति अधिक समझदारी का व्यवहार करना चाहिए। और उन्हें ऐसे कार्य देने चाहिएँ जिनमें ये सफलता का अनुभव कर सकें। उनको सृजनात्मक कार्यों, खेल, क्रीड़ा, उंगली से चित्र बनाना, पानी के खेल, आदि में लगाना चाहिए जिससे उनके तनाव को निकास मिल सके। अच्छे नागरिक की शिक्षा इनके लिए बहुत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इन्हें सामाजिक परिस्थितियों में सही अनुक्रिया करने के लिए, आत्मनिर्भर बनाने के लिए और सामाजिक योग्यता अर्जित करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इनकी मदद और मार्गदर्शन किसी नौकरी या धंधें की तैयारी करवाने के लिए भी आवश्यक है।

किंचित-अवसामान्य (The Mildly Subnormal)

धीमें शिक्षार्थी श्रेणी की दूसरी उपश्रेणी किंचित अवसामान्य की है। ये बच्चे शिक्षक के लिए सबसे बड़ी चुनौती हैं, और इनकी शिक्षा को विशेष स्थान देना आवश्यक है। उनकी समस्याओं को पूरी तौर से समझना आवश्यक है। ये बच्चे 55/60 से 70/75 बुद्धि लब्धि के बीच आते हैं। इनकी बौद्धिक क्रियाशीलता 90/95 से 110/115 बुद्धि लब्धि के औसत बच्चों से काफी नीचे के स्तर की होती है। ये बच्चे सामान्य स्कूल के नियमित कार्य से लाभ नहीं उठा पाते। फिर भी, बुद्धि की इन सीमाओं के बीच कुछ विकास करने की संभावनाएं हैं। यदि उन्हें उचित अवसर और प्रोत्साहन मिले तो ये पढ़ना, लिखना, वर्तनी, और अंक गणित की मोटी-मोटी बातें सीख सकते हैं। ये सामाजिक रूप से इतने सक्षम हो सकते हैं कि समाज में स्वतंत्ररूप से कार्य कर सकें। व्यावसायिक दृष्टि से भी वे इतने कुशल हो सकते हैं कि आंशिक या पूरी तौर से अपनी जीविका अर्जित कर सकें।

किंचित अवसामान्य की विशेषताएं

सभी किंचित् अवसामान्य में वे सारी विशेषताएं नहीं होतीं जिनका जिक्र यहां किया जा रहा है, लेकिन इससे शिक्षक यह जान लेगा कि यदि इन बच्चों का पता लगाना है तो किन बातों पर ध्यान देना होगा।

शारीरिक विशेषताएं

1. ऊपरी तौर से देखने में पूर्व प्राथमिक अवस्था पर किंचित् अवसामान्य को आसानी से मंन्दित बच्चे के रूप में नहीं पहचाना जा सकता। ये देरी से बैठना, खड़े होना, चलना, बोलना, इत्यादि सीखते हैं। इनकी भाषा का विकास अन्य बच्चों की अपेक्षा काफी धीमी गति से होता है। ऊंचाई, वजन और गामक समन्वय में वे सामान्य बच्चे के समान होते हैं। ऐसे मामलों में बौद्धिक कमजोरी का तभी पता लगता है जब ये प्राथमिक स्तर पर असफल होने लगते हैं।

2. कुछ मामलों में किंचित् अवसामान्य में मन्दन का कारण मस्तिष्क की क्षति का होना होता है। ये बच्चे अकसर सामान्य बच्चों से शारीरिक विकास में हीन होते हैं।

3. किंचित् अवसामान्य शारीरिक दृष्टि से बहुत स्वस्थ नहीं होते। इसके कारण ये जल्दी थक जाते हैं और आसन की विकृतियां इनमें अधिक आ जाती हैं।

4. इस समूह में दृष्टि, श्रवण, और गामक समन्वय के दोष सामान्य बच्चों की अपेक्षा अधिक पाए जाते हैं। किन्तु बहुत से किंचित् अवसामान्य बच्चे ऐसे भी होते हैं जो इन दोषों से मुक्त हैं।

किंचित अवसामान्य बच्चों के बौद्धिक लक्षण और शिक्षा में इनके निहितार्थ

1. किंचित् अवसामान्य अशाब्दिक और शाब्दिक दोनों मानकित बुद्धि परीक्षणों में निम्न निष्पादन करते हैं।

2. उनका मानसिक विकास सामान्य बच्चों की अपेक्षा धीमा होता है और कुछ पहले ही इसका बढ़ना समाप्त हो जाता है। इसके यह अर्थ हुए कि विशिष्ट बौद्धिक क्रियाएं, जिनकी स्कूल के कार्य में आवश्यकता पड़ती है, इनमें धीमी गति से परिपक्व होती हैं। इसलिए धीमी गति से सीखने वाला पठन, लेखन, और संख्या के औपचारिक शिक्षण के लिए पांच या छः वर्ष की आयु पर तैयार नहीं होता। बाद में, करीब आठ या नौ वर्ष की आयु पर जब वह तैयार होता है, तब भी एक वर्ष के कार्य को वर्ष में ही पूरा नहीं कर पाता। उसको अपनी गति से आगे बढ़ने देना चाहिए।

3. क्योंकि किंचित् अवसामान्य बच्चे का विकास कम आयु पर ही अपनी उच्चतम सीमा पर पहुंच जाता है, वह अमूर्त चिन्तन की अवस्था तक नहीं पहुंच पाता। उसकी औपचारिक स्कूल की शिक्षा की समाप्ति के बाद भी किंचित् अवसामान्य बच्चे का निष्पादन अपनी आयु के बच्चों से काफी नीचे होगा। पंद्रह साल की आयु तक, अपनी अक्षमता और मानसिक आयु के आधार पर वह पांचवी या छठी कक्षा तक ही पहुंच पाएगा।

4. किंचित् अवसामान्य, अधिकतर जो सुनते हैं और देखते हैं उसे स्पष्ट याद नहीं रख पाते, और विभिन्न वस्तुओं और परिस्थितियों में समानताएं और अन्तर सरलता से नहीं देख पाते। इस कारण वे अपने पहले के अनुभव का उपयोग वर्तमान को समझने में नहीं कर पाते। उनका प्रत्यक्षज्ञान (perception) और सामान्यीकरण की योग्यता कम रहती है। फलस्वरूप संकल्पनाएं निर्मित करने का कार्य धीमी गति से चलता है और संकल्पनाएं भी बहुत परिशुद्ध नहीं होती। इसलिए इनकी भाषा की योग्यता, जो संकल्पनाओं के विकास में निकट से जुड़ी हुई है, काफी निम्न कोटि की रह जाती है।

5. किंचित् अवसामान्य में कल्पना और अन्तर्दृष्टि की कमी होती है इसका मतलब है कि इन बच्चों के बारे में हम कुछ भी मान कर नहीं चल सकते कि इनको आता होगा। जो कुछ भी इन्हें सिखाना है उसे बिलकुल स्पष्ट करके उसके प्रत्येक पहलू को सिखाना होगा। प्रत्येक बात स्पष्ट करके विस्तार से बच्चे को बतानी होगी, और उसके कार्य के परिणामों के बारे में प्रत्येक बच्चे से चर्चा करनी होगी।

6. किंचित् अवसामान्य एक चीज पर या एक क्रियाकलाप पर अधिक देर तक ध्यान नहीं दे पाता। उसका ध्यान थोड़े समय तक ही एक कार्य पर केन्द्रित रह सकता है। जो सामग्री या कार्य उसके समझ में नहीं आते या उसकी रुचि उनमें नहीं होती, उन पर वह ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। जब सामग्री, विधि और शैक्षिक

मांगें उसकी योग्यता और रुचि के स्तर के अनूकूल होती हैं, तब वे इन चीजों पर अधिक देर तक ध्यान दे पाते हैं।

7. इन बच्चों की स्मृति अकसर कमजोर होती है। इसलिए इनके लिए बार-बार दोहराना, और खेल तथा क्रियाकलाप द्वारा विभिन्न प्रकार से अभ्यास करवाना आवश्यक है। इनकें लिए स्कूल के कार्य को रोचक बना कर और दैनिक जीवन से उसका संबंध जोड़ कर, इन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है।

किंचित् अवसामान्य की वैयक्तिक, सामाजिक और भावात्मक विशेषताएं

1. ऐसे कोई सामाजिक लक्षण नहीं हैं जिनके आधार पर सामान्य और पिछड़े हुए बच्चे में अन्तर किया जा सके। जो भी अन्तर है उनका कारण यह है कि किंचित् अवसामान्य वह प्राप्त नहीं कर पाते जिसकी अपेक्षा सामाजिक परिपक्वता और सामाजिक व्यवहार के रूप में उनकी आयु के बच्चों से समाज करता है। अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं की परवाह करने में, अपने आप कार्य करने में, अपनी चीजें मिल बांट कर उपयोग करने में, अपनी पारी की प्रतीक्षा करने में, दूसरों के साथ सहयोग करने में, सामाजिक दृष्टि से सक्षम होने में और जिन्दगी की मांगों का सामना करने में इन्हें अधिक समय लगेगा और अधिक समय तक लगकर कार्य करना होगा। इसके अर्थ यह हुए कि वे अपनी आयु के बच्चों की अपेक्षा सामाजिक दृष्टि से अपरिपक्व होते हैं।

2. उनकी संवेगात्मक अनुक्रियाएं सामान्य बच्चों के समान होती है, केवल अन्तर इतना होता है कि संवेगों की विभिन्न प्रकार की और सुक्ष्म अभिव्यक्ति में ये कम सक्षम होते हैं। ये कुठा और अवहेलना के प्रति बहुत कुछ औरों के समान प्रतिक्रिया करते हैं। सीमित बौद्धिक योग्यता के कारण, ये सामान्य स्कूल के पाठ्यक्रम की मांगों की पूर्ति नहीं कर पाते। इसके कारण ये हतोत्साहित और उद्विग्न हो जाते हैं, और हीनता महसूस करते हैं। शिक्षक इन्हें डांट कर, उपहास करके, ताने और शारीरिक दण्ड देकर जिस कड़ाई से अक्सर इनके साथ पेश आते हैं, उससे स्थिति और भी बिगड़ जाती है। इससे इनकी भावात्मक तृष्णा और भी गहन हो जाती है और इनके मन में अपनी कमी के कारण असुरक्षा की भावना पैदा होती है। कुण्ठा को सहन कर सकने की शक्ति बढ़ाई जा सकती है, यदि घर और स्कूल ऐसे वातावरण का संचार करें जहां बच्चे को कार्य के क्षेत्र में कुछ सफलता का अनुभव हो, और अपनी सीमित योग्यताओं और स्कूल में असफलता के होते हुए भी अपने हमजोलियों, शिक्षक और माता-पिता द्वारा स्वीकार किया जाए।

3. किंचित अवसामान्य में मूल आवश्यकताए सामान्य बच्चों की तरह होती हैं। उदाहरण के लिए, सुरक्षा की आवश्यकता, स्नेह का आदान-प्रदान, अन्य बच्चों द्वारा

स्वीकार किया जाना, आत्म-सम्मान और आत्म-निर्भरता प्राप्त करना, जिम्मेदारी वहन करना, नए अनुभव अर्जित करना, क्रियाकलापों में भाग लेना, ये सब अन्य बच्चों के समान हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक आवश्यकता की मात्रा में कुछ अन्तर होगा जो विभिन्न मानसिक स्तर और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित है। स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए इन आवश्यकताओं की प्रत्येक बच्चे के लिए पूर्ति की जानी चाहिए। ऐसी ही स्थिति में बच्चे पढ़ने के लिए प्रेरित होंगे। सामान्य रूप से यह पता लगा है कि मन्दित बच्चों की आवश्यकताएं संतोषजनक रूप से पूरी नहीं होती। उनकी सीमित मानसिक योग्यता और सामाजिक अक्षमता के कारण, माता-पिता द्वारा या तो वे उपेक्षित होते हैं या इनकी अत्यधिक देखरेख होती है और इनके हमजोली इनका मजाक बनाते हैं। शिक्षक को इन्हें सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए और इनके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करने चाहिए और वातावरण को ऐसा बनाने के प्रयास करने चाहिए जिसमें इन्हें स्वीकार किया जा सके। जब इनकी भावात्मक आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति होती है, ये संतोषजनक संमजन कर सकेंगे। स्कूल के कार्यक्रम में विभिन्न स्तर पर विविध कार्यक्रमों का प्रावधान होना चाहिए जिससे इनको सफलता के अनुभव मिलें और इनका आत्म-विश्वास बढ़ सके।

4. इन बच्चों के मूल्य और सामाजिक अभिवृत्तियां उनके परिवार के सदस्य, पड़ोसी, खेल के साथी और शिक्षकों के बहुत कुछ समान होती हैं। मुख्य रूप से प्रारंभिक लालन पालन का इन पर प्रभाव पड़ता है और कुछ हद तक रहने की परिस्थितियां, और सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि का भी प्रभाव पड़ता है। जीवन की विभन्न परिस्थितियों के प्रति ये सही और उपयुक्त अनुक्रिया करने में सक्षम हो सकते हैं यदि इस ओर इन्हें प्रशिक्षित किया जाए।

5. इनकी खेल की रुचियां अधिकतर इनकी तैथिक आयु के बजाए मानसिक आयु के अनुरूप होती है।

6. औसत बुद्धि के बच्चों की तुलना में किंचित् अवसामान्य में अधिक व्यवहार की समस्याएं और थोड़ा अधिक अपचार (delinquency) मिलता है। इसका आंशिक कारण तो मूल आवश्यकताओं का कुंठित होना है जो बच्चे की निष्पादन योग्यता और पर्यावरण की मांग के बीच विसंगति पैदा करती है, और आंशिक रूप से उनमें उचित और अनुचित के बीच भेद करने के विवेक की कमी होती है। जिस प्रकार का व्यवहार उनके प्रति हमजोलियों और बड़ों द्वारा किया जाता है, जिसमें माता-पिता और शिक्षक सम्मिलित हैं, वह भी उनके समस्यात्मक व्यवहार का कारण हो सकता है। व्यंग्यात्मक, क्रूर और असहिष्णु शिक्षक जो सदैव डांटते और ताना देते रहते हैं बच्चों के व्यक्तित्व को बहुत क्षति पहुँचाते हैं और दुःखी करते हैं। यदि धीमें

शिक्षार्थियों की शैक्षिक और भावात्मक आवश्यकताओं की संतोषजनक पूर्ति होती है तब इनकी सामाजिक, शैक्षिक और समंजन करने की योग्यता सामान्य बच्चों के समान हो सकती है।

व्यावसायिक पक्ष

किंचित अवसामान्य वयस्क स्तर पर कुछ कुशल और अर्ध-कुशल कार्य करना सीख सकते हैं और यदि इन्हें उपयुक्त परीक्षणं और निर्देशन दिया जाए, तो आंशिक या पूरी तौर से अपना जीविकोपार्जन कर सकते हैं। उनका किसी नौकरी या काम में सफल होना, उनके कार्य करने की अपेक्षा, व्यक्तित्व के गुणों और अन्तर्सम्बन्धों पर अधिक निर्भर करेगा।

शैक्षिक निष्कर्ष और सुझाव

1. किंचित् अवसमान्य के लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता है, जिसकी व्यवस्था विशिष्ट स्कूलों में या सामान्य स्कूलों में विशिष्ट कक्षाओं को खोल कर की जा सकती है।

2. शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए कि वे स्वयं समुचित और सामाजिक रूप से सक्षम हो सकें और अपनी क्षमताओं के अन्तर्गत किसी कार्य को करने के लिए तैयार हो सकें।

3. ऐसे बच्चों का पहले पता लगाना और निदान आवश्यक है जिससे बच्चे के शैक्षिक कार्यक्रम की योजना बनाई जा सके। कुछ कालावधि के बाद पुनर्मूल्यांकन करके यह देखना चाहिए कि वह कैसी प्रगति कर रहा है और उसका शैक्षिक कार्यक्रम कितना उपयुक्त है।

4. प्राथमिक स्तर पर औपचारिक कार्य विलम्ब से, जब बच्चा उसके लिए तैयार हो जाए, प्रारंभ करना चाहिए। इस बीच संकल्पलाओं का विकास, उन्हें बढ़ाने वाले और तत्परता को विकसित करने वाले उपयुक्त क्रियाकलापों की व्यवस्था करके और बच्चे की अपने पर्यावरण की जानकारी बढ़ाकर, किया जा सकता है।

5. इन बच्चो की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेष सामग्री की व्यवस्था करनी होगी। शैक्षिक सामग्री के चयन में इस बात पर ध्यान देना होगा कि बच्चे की आयु, योग्यता और रुचि का स्तर क्या है और किस गति से वे सीखते हैं। उदाहरण के लिए, एक शब्द को सिखाने के लिए अवसामान्य बच्चों की किताब में सामान्य बच्चों की तुलना में, अधिक बार उसे दोहराना पड़ेगा।

6. पढ़ाई को विधिवत और व्यक्तिगत बनाना होगा। अनायास सीखने पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। शिक्षा का स्तर प्रत्येक बच्चे के लिए निदानात्मक अध्ययन

पर आधारित करना चाहिए। प्रत्येक बच्चे को अपनी गति से सीखने की स्वतंत्रता होनी चाहिएं।

7. अधिगम के विशेष सिद्धान्त जो इन बच्चों के मामले में उपयोगी पाए गए हैं, वे हैः

(क) ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना, और मूर्त सामग्री तथा प्रत्यक्ष अनुभवों का उपयोग संकल्पनाएं विकसित करने में करना चाहिए।

(ख) बच्चों ने जो कुछ एक परिस्थिति में सीखा और विकसित किया, उसे दूसरी परिस्थिति में उपयोग करने के लिए बच्चे की मदद करनी चाहिए।

(ग) अधिगम को मजबूत करने के लिए अनेक बार विभिन्न अनुभवों को दोहराना चाहिए।

(घ) रोचक परिस्थितियों, अनुभवों और क्रियाकलापों द्वारा बच्चों को सीखने की ओर प्रेरित करने के लिए पूरी कोशिश करनी चाहिए। सृजनात्मक क्रियाकलाप और संवेदी अनुभव इन बच्चों के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इनमें वे सक्रिय भाग ले सकते हैं।

(ड.) सीखने की विषय वस्तु को क्रमबद्ध सोपानों में, जिसमें छात्र धीरे-धीरे आगे बढ़े, रखना चाहिए। एक बार में एक ही विचार प्रस्तुत करना चाहिए।

(च) अधिगम को दृढ़ करने के लिए विभिन्न इन्द्रियों का जैसे देखना, बोलना, सुनना, छूना, पेशियों का उपयोग, इत्यादि करना चाहिए। इसके लिए विभिन्न कार्यक्रमों का प्रावधान किया जा सकता है।

(छ) सफलता का अनुभव विशेषकर प्रारंभ की अवस्था पर अत्यन्त आवश्यक है। इससे उनका आत्मविश्वास पुनर्गठित होगा और कुण्ठा को सहन करने की शक्ति में वृद्धि होगी।

8 पाठ्यक्रम में निम्न के लिए प्रावधान होना चाहिएः

(क) स्वास्थ्य और स्वच्छता की आदतें विकसित हों।

(ख) कार्य करने की अच्छी आदतें विकसित हों जैसे, ध्यान से सुनना, प्रेक्षण करना, जो काम कर रहे हैं उस पर ध्यान केन्द्रित करना, जब तक और पूरा न हो उस पर काम करते रहना, काम सफाई से करना समय की पाबन्दी रखना इत्यादि।

(ग) पढ़ने, लिखने और संख्या के मूल कौशल को अर्जित करना।

(घ) दूसरों से भाषा के माध्यम से बात करना।

(ड.) कोई विशेष गुण यदि हो तो उसे विकसित करना।

(च) वे योग्यताएं और अभिवृत्तियां विकसित करना, जिनसे अच्छे सामाजिक संबंध

बन सकें और दूसरों के साथ सामंजस्य स्थापित हो सके।

(छ) उसे स्कूल, घर और काम की जगह में अपने कर्तव्यों, अधिकारों और सुविधाओं से परिचित कराना, और विभिन्न प्रकार के सामाजिक अनुभवों और क्रियाकलापों द्वारा उसे सामाजिक दृष्टि से सक्षम बनाना।

(ज) 'हाबी' और रुचियों को विकसित करके अवकाश का सदुपयोग सिखाना।

सारांश में हम देखते हैं कि धीमे शिक्षार्थी 55/60 से 70/75 की बुद्धि लब्धि के बीच होते हैं। इन बच्चों की योग्यताओं में काफी अन्तर मिलता है, और ये आपस में इतने भिन्न होते हैं जितने सामान्य बच्चे आपस में भिन्न होते हैं। निम्न मानसिक योग्यता इनकी मुख्य विशेषता है। इसके निहितार्थ यह हुए कि (I) औपचारिक कार्य के लिए जिस आयु पर सामान्य बच्चे तैयार होते हैं ये नहीं हो पाते (II) ये एक सत्र का कार्य एक वर्ष में पूरा नहीं कर पाते। (III) ये शायद ही कभी अमूर्त चिन्तन की अवस्था पर पहुंच सकेंगे। इनकी विचार-क्रिया मूर्त स्तर पर ही रहती है।

धीमे शिक्षार्थी स्कूल में शैक्षिक विषयों में लघुतम शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, ये समुदाय में संतोषप्रद समंजन के लिए सामाजिक रूप से सक्षम हो सकते हैं और ऐसे व्यावसायिक कार्यों को सीख सकते हैं जो कौशल (skill) अर्ध-कौशल या अकौशल (unskilled) के स्तर पर हों। मन्द (70-75 से 85-90) किंचित् अवसामान्य की तुलना में काफी उच्च कोटि के निष्पादन के लिए सक्षम होते हैं और इसलिए सामान्य स्कूल के अनुभव से लाभान्वित हो सकते हैं, बशर्ते स्कूल के कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन किए जाए। किंचित् अवसामान्य के लिए विशिष्ट शिक्षा, विशिष्ट स्कूलों, या विशिष्ट कक्षाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। इन बच्चों को प्रारंभ से ही पहचानना बहुत आवश्यक है। शिक्षकों पर इस बात का बहुत बड़ा दायित्व है। उन्हें माता-पिता के सहयोग से कार्य करना चाहिए।

अध्याय 21

अल्पार्जक

लीला एच. मन्हास

शिक्षक और माता-पिता अकसर यह कहते सुने गए हैं, अशोक तेज और बुद्धिमान है। पता नहीं स्कूल में उसके अंक इतने कम क्यों आते हैं, या आशा यदि कोशिश करती और पढ़ाई में रुचि लेती तो कहीं अच्छा कार्य कर सकती थी। उसमें योग्यता है, किन्तु स्कूल के कार्य में सफल होने की इच्छा नहीं है,। इस प्रकार की टिप्पणियां दर्शाती हैं कि हममें से बहुत से इस बात को जानते हैं कि बहुत से स्कूल के बच्चे, उनकी बौद्धिक क्रियाशीलता के स्तर से जितनी अपेक्षा की जा सकती थी, उससे काफी निचले स्तर पर कार्य करते हैं। परिणामस्वरूप, अपने देश में अनेक बौद्धिक संभावनाएं बेकार हो जाती हैं। अध्ययनों के आधार पर पता चला है कि 14 से 17 वर्ष की आयु वर्ग में आठ में से केवल एक किशोर माध्यमिक स्तर पर पहुंच पाता है। इस चुने हुए समूह से भी प्रति वर्ष केवल पचास प्रतिशत माध्यमिक स्कूल की परीक्षा में सफल हो पाते हैं। यह एक गंभीर परिस्थिति है। न केवल असफल होने वालों का प्रतिशत बहुत अधिक है, बल्कि जो किसी प्रकार पास भी हो जाते हैं, उनमें काफी ऐसे होते हैं जो अपनी क्षमता से कम अंक लाते हैं। इसे अल्पार्जकता (underachievement) कह सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि अल्पार्जक का पता शुरू से ही लगाया जाए और उनके काम में प्रगति लानें में उनकी मदद की जाए।

अल्पार्जकता की संकल्पना

अल्पार्जकता के अर्थ हैं कि व्यक्ति का शैक्षिक निष्पादन एक विशिष्ट मानदण्ड या मानक के नीचे है। यह मानदण्ड निष्पादन का वह स्तर है जिसकी अपेक्षा संभावित योग्यता के आधार पर की जा सकती है। इसके निहितार्थ यह हुए कि हमारे सामने इस बात की काफी तस्वीर है कि शैक्षिक दृष्टि से बच्चे की क्या उपलब्धि हो सकती थी किंतु किसी कारण से वह इस स्तर से काफी नीचे है। एक बच्चे को

अल्पार्जक माना जाता है यदि उसका निष्पादन उसकी बुद्धि के अनुरूप न होकर उससे सार्थक रूप से नीचे हो। अल्पार्जकता की विस्तृत संकल्पना के अन्तर्गत वे बच्चे भी आते हैं जो, बुद्धि को छोड़कर किसी अन्य क्षेत्र में अच्छी संभावनाएं रखते हैं, किंतु इनका समुचित उपयोग नहीं कर रहे हैं।

जान होल्ट (John Holt)[1] के अनुसार इसका एक तीसरा पक्ष है। वह कहता है, कुछ थोड़े से बच्चों को छोड़कर जो अच्छे छात्र हो सकते हैं या न भी हों, एक अर्थ में, जो महत्वपूर्ण है, सभी बच्चे असफल होते हैं। यह असफलता इस बात में है कि सीखने, समझने और निर्माण करने की जितनी विशाल क्षमता को लेकर वे पैदा होते हैं और जिसका पूरा उपयोग अपने जीवन के प्रथम दो या तीन वर्षों में उन्होंने किया, उस क्षमता के बहुत छोटे भाग से अधिक को वे विकसित नहीं कर पाते।[1]

अल्पार्जक कौन हैं?

अल्प क्रियाशील (Under Functioning) श्रेणी में वे बच्चे आते हैं: (1) जिनकी बुद्धि श्रेष्ठ है किंतु स्कूल के विषयों में निष्पादन औसत ही है, (2) जो औसत बुद्धि के हैं किंतु जिनका निष्पादन आयु पर जितनी अपेक्षा की जा सकती है उससे कम है, और जो अधिक प्रगति करते नहीं दिखाई देते और (3) मन्द और धीमें शिक्षार्थी जो अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य नहीं कर रहे और जिनमें प्रगति करने की क्षमता है।

ऊपर दिए गए समूहों के अलावा अल्पार्जक बच्चों की एक और श्रेणी होती है जो बौद्धिक क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में अत्यन्त प्रतिभावान और सृजनात्मक होते हैं, किंतु जो अपनी प्रतिभा और सृजनात्मक शक्तियों को पूर्णतया विकसित नहीं कर पाए हैं। एक अन्य श्रेणी उन बच्चों की है जिनका पूर्व-बाल्यकाल लम्बे समय तक ऐसी परिस्थितियों में बीता है जिनमें वंचन तथा सीमितताएं थीं तथा जहां प्रेरणा की कमी थी और इस कारण से बुद्धि परीक्षा में वे निम्न अंक प्राप्त करते हैं। स्कूल की परिस्थितियों में वे अकसर असफल होते हैं किंतु क्योंकि भूल से उन्हें मन्द मान लिया गया है, उन्हें अपने निष्पादन में प्रगति करने के लिए अवसर और परामर्श नहीं मिलता। इन सभी बच्चों को अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिए, और अपनी संभावनाओं को अधिक से अधिक उजागर करने के लिए विशिष्ट सहायता या उपचारी शिक्षा और परामर्श की आवश्यकता होती है।

अल्पार्जकता का आपात

भारत में एक संस्था से दूसरी संस्था में मापदण्डों में इतना अन्तर है कि जिसे

1. John Holt, How Children Fail, New York: Pitman Publishing Corporation, 1964.

हम एक स्कूल में संतोषजनक मानक मानते हैं वही दूसरे स्कूल में निम्न माना जाता है। इसलिए अल्पार्जक की देश भर के लिए संख्या का पता लगाना कठिन है। पाश्चात्य देशों में कम से कम चार से पांच प्रतिशत पिछड़े या असफल होने वाले बच्चे औसत या श्रेष्ठ बुद्धि के होते हैं। अपने देश में अल्पार्जक का प्रतिशत कहीं अधिक है। इस वैज्ञानिक और तकनीकी युग में इन बच्चों का, जिन्हें हम अल्पार्जक कहते हैं, असफल होना शिक्षाविदों के लिए गंभीर विषय है। हमारे सामने प्रश्न है बच्चे, जब उनके पास स्कूल के पाठ्यक्रमों से लाभान्वित होने की आवश्यक स्तर से अधिक क्षमता है, तब वे कुछ विशिष्ट विषयों में या सामान्यतया सभी विषयों में क्यों असफल होते हैं। जाहिर है कि स्कूल में सफलता के लिए बुद्धि के अलावा भी कुछ अन्य गुण चाहिएं। कुछ अन्य कारक हैं जिनका स्कूल की सफलता या असफलता पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

स्कूल में सफलता के कारण

अल्पार्जकता की समस्या को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए, हमें यह जानना चाहिए कि कौन से कारक हैं जो स्कूल के निष्पादन में योग देते हैं या प्रभावित करते हैं। एक बच्चे का स्कूल के कार्य में निष्पादन केवल उसकी आनुवंशिक बौद्धिक क्षमता पर निर्भर नहीं करता। यह उसके व्यक्तित्व के गुणों के अलावा उसकी प्रेरणा, अध्ययन की आदतों, उसके शिक्षक के साथ संबंध, उसकी बाह्य पर्यावरण में रुचियों का विस्तार, उसकी भावात्मक स्थिरता, उसकी स्कूल के प्रति अभिवृत्ति, उसकी आकांक्षाओं का स्तर, उसके तात्कालिक पर्यावरण के प्रेरक पर निर्भर करता है। यह सब सही प्रकार के मार्ग निर्देशन के महत्व को दर्शाता है, जो बच्चे, उसके माता-पिता और उसके शिक्षकों को भी मिलना चाहिए।

अल्पार्जकों के लिए उपचारी शिक्षा और मार्गनिर्देशन के कार्यक्रम की योजना बनाने के लिए, हमें उन कारकों के बारे में, जो अल्पार्जकता से संबंधित हैं या उनके कारण हैं, जानना चाहिए। इन कारकों को अलग अलग करना सरल नहीं है। इसका एक कारण तो यह है कि बहुत कम ऐसा होता है कि एक ही कारक या परिस्थिति से अल्पक्रियाशीलता या शैक्षिक पिछड़ापन उत्पन्न हो अधिकतर यह बहुत सी दुर्भाग्य पूर्ण परिस्थितियों का सम्मिलित प्रभाव होता है। दूसरा, हम बहुधा यह नहीं बता सकते किसे कारण कहा जाए और किसे परिणाम। उदाहरण के लिए, कुछ मामलों में भावात्मक असन्तुलन के कारण असफलता हो सकती है, अन्य में असफलता के कारण भावात्मक सन्तुलन बिगड़ सकता है। तीसरा, सीखने की कठिनाइयों के पीछे जो कारण हैं वे कभी कभी सूक्ष्म होते हैं और उनका पता नहीं लगता। इसलिए, निदान और उपचार के लिए विशेषज्ञ की सहायता की आवश्यकता होगी।

1. बच्चे से संबंधित कारक

क. शारीरिक कारक

शारीरिक कारक जैसे कमजोर शारीरिक गठन, सामान्य अक्षमता, लगातार बीमारी, शक्ति की कमी, इत्यादि, के कारण बच्चे को उत्तम करने में अड़चन पड़ती है। शारीरिक कमजोरियां, सुनने और देखने के दोष, गंभीर बीमारियां या ग्रन्थियों का सही कार्य न करना बच्चे की शैक्षिक निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं।

ख. बौद्धिक कारक

बौद्धिक कारकों के अन्तर्गत संज्ञानात्मक क्रियाशीलता की कोई विशिष्ट दुर्बलता होती है। उदाहरण के लिए दुश्य या श्रव्य विवेध करने में अक्षमता, या दृश्य या श्रव्य की स्मृति में कमजोरी, ध्यान केन्द्रित न कर सकना, किसी विशिष्ट विषय के लिए क्षमता का अभाव, उत्सुकता और सीखने के लिए उत्कण्ठा का अभाव, प्रारंभिक सीखने की कमजोर, प्रत्यक्षज्ञान की कमजोरी पृष्ठभूमि, ये सब शैक्षिक प्रगति को मंदित करते हैं।

ग. भावात्मक कारक

वैयक्तित्व गुण जिनमें स्वभाव, भावात्मक असुरक्षा और भावात्मक अपरिपक्वता (प्रारंभिक अनुभवों के कारण से), अत्यधिक चिंता और तनाव, अभिरुचि और प्रेरणा का अभाव, अकारण डर, अत्यधिक संकोच, इत्यादि सम्मिलित हैं, ये सब निम्न निष्पादन से संबंधित हैं। भावात्मक और सामाजिक कुसमंजन का शैक्षिक निष्पादन से घनिष्ठ संबंध हैं। कुछ मामलों में भावात्मक कुसमंजन स्कूल की असफलता का कारण होता है। कुछ अन्य में, सफलता से भावात्मक और सामाजिक कुसमंजन होता है।

2. घर से संबंधित कारक

क. भौतिक परिस्थितियां

घर की प्रतिकूल परिस्थितियां और आवश्यक सुविधाओं की कमी बच्चे की स्कूल की प्रगति में बाधा डाल सकती हैं। इसके अतिरिक्त गरीब घरों में पारिवारिक आय में पूर्ति करने के लिए बच्चे को स्कूल के पहले और स्कूल के बाद कार्य करना पड़ता है। इसका बोझ बच्चे पर पड़ेगा और उसके स्कूल के कार्य पर प्रतिकूल असर पड़ेगा।

ख. घर का भावात्मक वातावरण

घर का प्रतिकूल वातावरण जो तनाव, चिंता, घबराहट और परिवार के सदस्यों के बीच कलह से भरा हो, बच्चे के निष्पादन को भौतिक और आर्थिक कमियों से कहीं अधिक नुकसान पहुंचाता है। माता और पिता के बीच, माता-पिता और बच्चे के बीच, और भाई बहन के बीच कटुता के संबंध, और बच्चों को अनुशासित करने

के असंयत और अनिश्चित विधियां अल्पार्जकता के महत्वपूर्ण कारण हैं।

ग. बौद्धिक वातावरण

माता-पिता का बच्चे के स्कूल के कार्य में रुचि न लेना और प्रोत्साहन का अभाव, और घर का प्रेरणाविहीन पर्यावरण शैक्षिक मन्दन के महत्वपूर्ण कारक हैं। माता-पिता का शैक्षिक स्तर, ज्ञान प्राप्ति को जो महत्व देते हैं, उनके अपने आप के लिए और अपने बच्चों के लिए लक्ष्यों, आकांक्षाओं और अभिलाषाओं का, बच्चे के स्कूल में निष्पादन से घनिष्ट संबंध है। इन पर निर्भर करते हैं अनुभव जो बच्चे को प्रदान किये जाते हैं, भाषा का नमूना जो माता-पिता प्रस्तुत करते हैं, जन-संचार के माध्यम जिनके सम्पर्क में बच्चा आता है, और शैक्षिक कार्यों में जो मदद उसे मिलती है। माता-पिता की सांस्कृतिक रुचियां, उनकी जाति और धार्मिक विश्वास का भी बच्चे के शैक्षिक कार्य पर प्रभाव पड़ता है।

3 स्कूल की परिस्थितियां

स्कूल का प्रेरणाविहीन वातावरण, भौतिक सुविधाओं की कमी, कक्षाओं में छात्रों की अत्यधिक संख्या, निम्न कोटि की पाठ्य पुस्तकें, सहायक सामग्री का अभाव इन सबसे बच्चे पढ़ाई से ऊब जाते हैं, और उन्हें लगता है कि कोई उनकी परवाह नहीं कर रहा। स्कूल में अनियमित उपस्थिति, स्कूल को बार बार बदलना, असंतोषप्रद शिक्षक-छात्र और छात्र-छात्र संबंधों का होना, अनुपयुक्त शिक्षण विधियां, प्रेरणा का अभाव, शिक्षा में मार्गदर्शन का अभाव, और स्वयं पढ़ने की कुशलता के लिए तैयारी की कमी, ये सब सामान्यतया निम्न शैक्षिक निष्पादन की जड़ में हैं।

4. समुदाय के कारक

पड़ोस के समाजिक समूहों के मानक और मूल्य बच्चों की रुचियों और निष्पादन पर प्रभाव डालते हैं। माता-पिता का व्यावसायिक स्तर बच्चों की स्कूल के क्रियाकलापों के प्रति अभिवृत्तियों, आकांक्षाओं का स्तर और आत्मसंकल्पना को प्रभावित करता है। संभव है कि बच्चे की क्षमता और योग्यता की ओर ध्यान दिए बिना पारिवारिक परम्परा और सामाजिक पृष्ठभूमि ही उसके व्यवसाय को निर्धारित कर दें। इसका निष्पादन के प्रति प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

मनोरंजन के साधन, पुस्तकालय की सुविधा और समुदाय द्वारा अन्य सुविधाएं भी बच्चे के निष्पादन को प्रभावित करती हैं।

5. माता-पिता का स्थानान्तरण

एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में माता-पिता के स्थानान्तरण से बच्चों का स्कूल बदल जाता है। भाषा और सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण समंजन की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं और बच्चे की शैक्षिक प्रगति में बाधा पड़ती है।

भारत में जो भाषा पढ़ाई का माध्यम है उसमें प्रवीणता बच्चे के निष्पादन को निर्धारित करने का महत्वपूर्ण कारक हैं।

कठिनाइयों का निदान

जब हम किसी विशिष्ट मामले में अल्पार्जकता के कारणों का पता लगाने का प्रयास कर रहे हों, तब हमें छात्र के व्यक्तित्व के विशेषकों, उसका व्यवहार, उसका भावात्मक और सामाजिक समंजन, उसके कार्य करने की आदतें और अभिवृत्तियां, उसका स्वास्थ्य, संवेदी, गामक और तंत्रिका संबंधी कमियां यदि हों, उसकी ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता, सीखने के लिए उसकी प्रेरणा, उसका स्कूल की शिक्षा के लिए तत्परता का स्तर और उसकी अभिरुचियों पर विचार करना होगा। उसके पर्यावरण में भौतिक सुविधाएं, घर की भावात्मक और बौद्धिक वातावरण और बच्चे पर उसका प्रभाव पड़ोस का प्रभाव जिसमें हमजोली और समुदाय के प्रभाव सम्मिलित हैं, और उपकरण, भौतिक साधन सुविधाओं का उपलब्ध होना, पाठ्यपुस्तकों और सहायक सामग्री की गुणात्मकता और मानदण्ड, समय-सारणी और उसकी उपयुक्तता, कक्षा में छात्रों की संख्या, सृजनात्मक और मनोरंजक क्रियाकलापों की व्यवस्था, इत्यादि पर ध्यान देना होगा। कुछ अन्य स्कूल के महत्वपूर्ण कारक जिनका अध्ययन करने की आवश्यकता है वे हैं शिक्षक के व्यक्तित्व के विशेषक, शिक्षक-छात्र-संबंध, शिक्षण विधियां और मुख्य बातें जिन पर बल दिया जा रहा है और विभिन्न बौद्धिक स्तर के छात्रों के लिए पाठ्यक्रम की उपयुक्तता। क्योंकि प्रत्येक मामले में कारकों का सम्मिश्रण अलग अलग होगा, इसलिए प्रत्येक मामले का अलग से निदान करना होगा।

1. अल्पार्जकों का पता लगाने में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि जहां तक शैक्षिक कार्य का संबंध है, वह उनके निकट के सम्पर्क में आता है। न केवल उसे अल्पार्जकता के निदान में मदद करनी है, किन्तु उसे प्रत्येक मामले में समस्या को भी समझना है। इसके लिए, उसे कुछ समय तक विभिन्न परिस्थितियों में बच्चों का सावधानी से अवलोकन करना है। उसे बच्चे के संचयी अभिलेख का अध्ययन करके उसमें से संबद्ध जानकारी निकालनी चाहिए जिससे बच्चे के विकास और स्वास्थ्य के पूर्ववृत का पता लग सके। इसके अतिरिक्त उसे माता-पिता से जानकारी एकत्रित करनी चाहिए।, और इस जानकारी की पूर्ति घर की परिस्थितियों के अपने अवलोकन से करनी चाहिए। उसे अन्य शिक्षकों और बच्चे के हमजोलियों से भी जानकारी एकत्रित करनी चाहिए। यह सब जानकारी बच्चे के शैक्षिक अभिलेख के साथ स्कूल के परामर्शदाता (counsellor) को देनी चाहिए, और उससे यह अनुरोध करना चाहिए कि बच्चे को मानकित बुद्धि और निष्पत्ति परीक्षण दिए जाएं

और बाद में विभिन्न विषयों में निदानात्मक परीक्षण। इससे अल्पार्जकता की सीमा का और साथ ही साथ अधिगम की विशेष कठिनाइयों का भी पता चल सकेगा। परामर्शदाता अल्पार्जक के व्यक्तित्व के विशेषकों का अध्ययन करके बच्चे की आवश्यकताओं के अनुरूप उपचारी कार्यक्रम बना सकता है। इससे शिक्षक बच्चे के साथ उपचारी कार्य में कार्यान्वित कर सकता है।

2. छोटे बच्चों के शिक्षक को बच्चों में अच्छी आदतों और अभिवृत्तियों की बुनियाद डालने की कोशिश करनी चाहिए। उन्हें बच्चों का सावधानी से अवलोकन करने और सुनने, जो कार्य कर रहे हैं उस पर ध्यान देने, विचार करने और ध्यान केन्द्रित करने, और जो प्रारम्भ किया है उसे जब तक पूरा न हो जाए कार्य में लगे रहने में मदद करनीं चाहिए।

3. एक शिक्षक को बच्चों को सामान्य बृद्धि के विकासात्मक कार्यों को करने में भावात्मक सहारा देना चाहिए। उसे उन बाधाओं को भी जानना चाहिए जो बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति में उठती हैं और जिनसे आंन्तरिक संघर्ष होता है। इससे उसकी बच्चों के साथ व्यवहार में समझ बढ़ेगी।

4. यह शिक्षक का दायित्व है कि बच्चों के तनावों के लिए, खेल, क्रीड़ा, नाटक और आत्म-अभिव्यक्ति के क्रियाकलापों और सृजनात्मक कार्यों के द्वारा निकास का मार्ग प्रस्तुत कर सके। उसको चाहिए कि बच्चे के वातावरण में अत्यधिक तनाव संचित न हो सके।

5. शिक्षक को चाहिए कि कक्षा में भावात्मक सुरक्षा के ऐसे वातावरण की रचना करे जिसमें बच्चे एक दूसरे से और शिक्षक से बेखटके बात कर सकें, कक्षा एक ऐसा स्थान हो जहां उन्हें लगे कि लोग उनसे स्नेह करते हैं, और जहां उनको सीखने में इस बात का डर नहीं लगे कि कहीं उनसे कोई गलती न हो जाए। ऐसी कक्षा में सहयोग और टीम में कार्य करने को प्रोत्साहित किया जाता है और आपस में प्रतियोगिता को सीमित रखा जाता है।

6. उसे चाहिए कि स्कूल के कार्य को चुनौतीपूर्ण और रोचक बनाए और नियत कार्य (assignments) और शिक्षण विधि को कक्षा में योग्यता के विभिन्न स्तर के अनुरूप निर्धारित करें। विभिन्न नियत कार्यों की योजना बनाई जा सकती है।

7. शिक्षकों को अल्पार्जक को एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में स्वीकार करना चाहिए और उसकी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। उसे उसके साथ न्यायोचित किन्तु दृढ़ता का व्यवहार करना चाहिए और अच्छे से अच्छा प्रयास करने के लिए, न कि कम से कम के लिए, प्रोत्साहित करना चाहिए। उससे बच्चे में सीखने के कौशल को विकसित करना चाहिए और एकात्मीकरण

(identification) और अनुकरण के लिए एक स्वस्थ नमूना प्रस्तुत करना चाहिए। उसे बच्चे के ज्ञान के आधार को विस्तृत करना चाहिए और जो कुछ वह सीख रहा है, उस पर स्वयं विचार करने और समझने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यह कोशिश की जानी चाहिए कि बच्चे का अपने में विश्वास पुनर्स्थापित हो सके और उसे अपने कार्य की मूलभूत भूलें सुधारने में सहायता मिल सके। इससे उसके निष्पादन का स्तर ऊंचा उठेगा।

8. बच्चों को प्रेरित करने के लिए उपचारी कार्यक्रम में प्रयोग की जाने वाली शैक्षिक सामग्री, पाठ्यपुस्तक, इत्यादि का चयन या सामग्री का निर्माण बहुत सावधानी से करना चाहिए। इसका आधार बच्चे की आयु और रुचियों का स्तर होना चाहिए।

9. बच्चे को प्रगति करने में वास्तव में मदद करने के लिए शिक्षक को अन्य शिक्षकों और माता-पिता के सहयोग से कार्य करना चाहिए।

10. उन मामलों में जहां गहरी भावात्मक समस्याएं अल्पार्जकता की जड़ में हैं, बच्चे को, माता-पिता की अनुमति लेकर, बाल निर्देशन निदानगृह (child guidance clinic) भेजना चाहिए।

बच्चों के कल्याण में सच्ची रुचि उस शिक्षक के लिए सबसे महत्वपूर्ण योग्यता है जो उपचारी कार्य करना चाहते हैं।

अध्याय 22

शारीरिक रूप से बाधाग्रस्त बच्चे

लीला एच. मन्हास

बच्चे एक दूसरे से जिस प्रकार विकास के अन्य आयामों और व्यक्तित्व में भिन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीर और स्वास्थ्य के स्तर में भी भिन्न होते हैं। ये भिन्नताएं विविध प्रकार और आयाम की होती हैं, इनका विस्तार बहुत मामूली से लेकर अत्यधिक हो सकता है। कुछ शारीरिक अन्तर बच्चे के लिए किन्ही परिस्थितियों में अन्य बच्चों की तुलना में लाभप्रद हो सकते हैं, जबकि कुछ अन्य अलाभकारी। एक सीमा पर खूब हट्टे कट्टे, शक्तिशाली, स्वस्थ, और भली प्रकार से कार्य करने वाले व्यक्ति हैं, तो दूसरी ओर ऐसे हैं जिनकी, शारीरिक कारणों से, शक्ति और योग्यताएं सीमित हैं। अधिकतर बच्चे इन दोनों सीमाओं के बीच के होते हैं। क्योंकि बच्चे की शारीरिक दशा उसके अधिगम और वैयक्तिक, सामाजिक, और व्यावसायिक समंजन को प्रभावित करती है, इसलिए शिक्षकों के लिए यह अच्छा होगा कि वे विभिन्न शारीरिक अक्षमताओं का, जो दैनिक जीवन के कार्यों में बाधाएं उत्पन्न करती हैं, निहितार्थ समझें। वे इस समझ के आधार पर अपने शिक्षण को बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल सकेंगे और उनकी अधिक मदद कर सकेंगे।

शारीरिक बाधाग्रस्त कौन हैं?

जब बच्चे लम्बी बीमारी से या अशक्त करने वाली विकृतियों से इतने ग्रस्त होते हैं कि उनकी शैक्षिक प्रगति, सामाजिक क्रियाशीलता और व्यावसायिक या नौकरी के अवसरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो अपनी आयु के शारीरिक रूप से सक्षम साथियों की तुलना में, उन्हें शारीरिक बाधाग्रस्त कह सकते हैं। उदाहरण के लिए एक अन्धा बच्चा दृष्टिवान साथियों से प्रतिस्पर्धा में केवल उन्हीं क्रियाकलापों में पिछड़ जाता है जिनमें दृष्टि की आवश्यकता पडती है, किन्तु अन्य अन्धे बच्चों के साथ रहने और प्रतिस्पर्धा करने में यह बात लागू नहीं होती।

शारीरिक बाधाग्रस्त श्रेणी में अनेक प्रकार की अशक्तताए (disabilities) आती

हैं। इनमें बधिर या जिन्हें कम सुनाई देता है, अन्धे, आंशिक दर्शी (partially-sighted), वाक् में बाधाग्रस्त अपंग, प्रमस्तिष्कीय अर्धांग रोगी (cerebral palsied) और विकलांग सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त जो लम्बी बीमारी से ग्रस्त हैं जैसे तपेदिक, हृदय का रोग, अवयवों की विकृतियां, मिरगी, एलर्जी, मधूमेह, गठिया, इत्यादि वे भी बाधाग्रस्त श्रेणी में आते हैं। कुछ शारीरिक बाधाग्रस्त एक या अधिक अशक्तताओं के साथ पैदा होते हैं, अन्य जन्म के बाद दुर्घटना, छूत आंगिक दोष (organic defects) या ग्रन्थियों की अक्रियाशीलता से इन्हें प्राप्त कर लेते हैं। प्रत्येक मामले में अशक्तता बहुत हल्की, जहां बच्चा सामान्य बच्चों से अलग नहीं दिखता, से लेकर इतनी अधिक हो सकती है कि बच्चा अन्य लोगों पर इतना निर्भर हो कि अनकी मदद के बगैर शायद वह जीवित ही न रह सके।

शैक्षिक विचार

शारीरिक बाधाग्रस्त बच्चे बौद्धिक योग्यताओं और अधिगम की विशेषताओं में एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। इनमें से अधिक ऐसे होते हैं जो सामान्य बच्चों के समान सीख सकते हैं जब उनकी विशेष समस्याओं का सामना करने के लिए और समंजन के लिए आवश्यक सुविधाएं, उपकरण और सामग्री प्रदान की जाए। कुछ को विशेष चिकित्सा की आवश्यकता होगी जैसे वाक् सुधार (speech therapy) भौतिक चिकित्सा (physiotherapy), मनौवैज्ञानिक मार्गदर्शन या क्रमगत दवा सेवन जैसे तपेदिक या मिरगी में। शिक्षक को इन बच्चों के लिए ये विशेष सेवाएं जुटानी होंगी। जिनमें केवल मामूली बाधाएं हैं और बुद्धि पर्याप्त है उन्हें सामान्य स्कूलों में पढाया जा सकता है, बशर्ते, पढ़ाने की विधियों में अनुकूल परिवर्तन किए जाएं और पाठ्यक्रम को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ढाला जाए। उदाहरण के लिए जिन कक्षाओं में विकलांग बच्चे हैं (यानि ऐसे बच्चे जिन्हें अपने हाथ पैर की तकलीफ है या जिन्हें पोलियों हो चुका है) इन्हें पहली मंजिल पर ही पढ़ाया जा सकता है। विकलांग बच्चों को सामान्य बच्चों के खेल और क्रीड़ा से छुट्टी दी जा सकती है लेकिन इनकी जगह ऐसे सहगामी और आत्म अभिव्यक्ति के क्रियाकलापों का प्रावधान किया जा सकता है जिनमें इनकी शक्तियों को अभिव्यक्ति मिल सके और इनके तनावों का निकास हो सके।

बच्चे जिनमें दृष्टि या श्रवण के मामूली दोष हैं उन्हें कक्षा में आगे पहली पंक्ति में बैठाया जा सकता है। दृष्टि के दोष वालों को बड़े अक्षरों में छपी पढ़ने की सामग्री दी जा सकती है और पढ़ना श्रवण के माध्यम द्वारा सिखाया जा सकता है। जिन बच्चों में सुनने का दोष है उन्हें सुनने का यंत्र लगवा देना चाहिए। शिक्षक को शब्दों का स्पष्ट और धीमी गति से उच्चारण करना चाहिए और दृश्य माध्यम का

उपयोग करना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि जो बच्चे बोलने में बाधाग्रस्त हों उन्हें कक्षा में जोर से पढ़ने के लिए नहीं कहा जाए और दैनिक स्कूल के कार्य के अतिरिक्त उनके बोलने के सुधार के लिए व्यवस्था की जाए।

जो गंभीर रूप से बाधाग्रस्त हैं उन्हें विशिष्ट स्कूलों या कक्षाओं में भेजना चाहिए। जहां विशेष अशक्तता का उपचार होता हो। कभी कभी घर पर विशिष्ट शिक्षा प्राप्त शिक्षक से पढ़वाना होता है। जिन बच्चों को काफी समय तक अस्पताल में रहना है उनके लिए वहीं पर, जैसा पाश्चात्य देशों में होता है, पढ़ने की व्यवस्था अस्पताल कर सकता है। इसका कोई नियम नहीं है कि शारीरिक बाधाग्रस्त को सामान्य स्कूल या विशिष्ट स्कूल भेजा जाए। यह निर्भर इस बात पर करेगा कि बाधा पड़ने की परिस्थितियां क्या हैं, कहां तक इन बाधाओं से बच्चा प्रभावित होता है, उसकेघर की परिस्थिति, उसका स्वभाव और व्यक्तित्व और कक्षा में क्या साधन सुविधाएं उपलब्ध हैं। यह भी देखना चाहिए कि विशिष्ट स्कूल बच्चे के घर से कितनी दूर है और वहां पढ़ाने में कितना खर्च आएगा। हम इसका भी कोई नियम नहीं दे सकते कि किस आयु पर शारीरिक बाधाग्रस्त बच्चे को स्कूल भेजा जाए। यह निर्णय समग्र परिस्थिति को देख कर लेना पड़ेगा।

प्रत्येक बाधाग्रस्त बच्चा एक नन्य (unique) व्यक्ति होता है और उसकी अनन्य समस्या होती है। इसलिए उसका अध्ययन इसी रूप में करके उसके प्रति व्यवहार करना चाहिए। महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें बच्चे की मूल शैक्षिक और अन्य आवश्यकताओं के बारे में जानना चाहिए। और फिर यह निर्णय लेना चाहिए कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार हो।

शारीरिक बाधाग्रस्त बच्चों की आवश्यकताए

सामान्य रूप से शारीरिक बाधाग्रस्त बच्चों की आवश्यकताएं अन्य बच्चों के समान शारीरिक, सामाजिक और भावात्मक क्षेत्रों में होती हैं। वे चारों ओर दौड़ना, चढ़ना, कूदना और क्रियाशील होना चाहते हैं। वे मजा लेना चाहते हैं और दूसरों का साथ चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उनके प्रति स्नेह किया जाए, उन्हें स्वीकारा जाए और उन्हें ऐसा लगे कि वे अपने ही हैं। वे निष्पादन करना और सफल होना चाहते हैं। उन्हें सुरक्षा की भावना चाहिए और अपनी आयु के अन्य बच्चों के समान होना चाहते हैं और जो अन्य कर सकते है वो वे भी करना चाहते हैं। दूर्भाग्यवश उनके बाधाग्रस्त होने के कारण बहुत सी इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। उन्हें अपनी शारीरिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति में दूसरों की मदद की जरूरत पड़ती है। अकसर इन बच्चों की परिवार में या तो उपेक्षा की जाती है या अत्यधिक देख-रेख की जाती है। दोनों प्रकार के व्यवहारों को उनके व्यक्तित्व पर हानिकारक

प्रभाव पड़ता है। उन्हें लगता है कि वे दूसरों से भिन्न हैं और इस कारण वे उद्विग्न हो जाते हैं। वे ऐसे अनेक कार्य नहीं कर पाते जो सामान्य बच्चे कर लेते हैं। इन सबसे भावात्मक रूप से उद्विग्न और व्याकुल रहने की संभावना बढ़ जाती है।

बौद्धिक दृष्टि से अन्य बच्चों के समान इन्हें भी पर्यावरण से प्रेरणा चाहिए। जिनमें इन्द्रीयगत समस्या है उन्हें यह सीखना होगा कि जो कमी एक संवेदी अंग के कार्य न करने से हो रही है, उसकी पूर्ति दूसरे के द्वारा कैसे की जा सकती है। उदाहरण के लिए एक अन्धे बालक को, जिसे दृश्य उद्दीपन का अभाव रहता है, अन्य संवेगी अंग जैसे स्पर्श या सुनने को विकसित करना चाहिए। सीमाओं के अन्तर्गत बाधाग्रस्त बच्चे को ऐसे अवसर चाहिए कि अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास कर सके।

बाधाग्रस्तता के बच्चों पर विभिन्न प्रभार

कोई भी शारीरिक बाधा के होने से परोक्ष या अपरोक्ष रूप से बच्चों और माता-पिता के लिए विशेष समस्याएं उत्पन्न होती है। ये परिणाम और समस्याएं निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रतिबिम्बित होती हैं।

1. **बौद्धिक मापनः** बुद्धि के परीक्षणों में हो सकता है कि बाधाग्रस्त बच्चों की संभावनाओं का सही पता न चले क्योंकि बाधा से उनके कार्य पर प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए जिनमें बोलने की अशक्तता और श्रवण की निम्न योग्यता है ऐसे बच्चे शाब्दिक बुद्धि परीक्षण में अच्छा कार्य न कर पाएं। जो अपंग हैं वे समय की सीमाओं में कार्य नहीं कर पाते।

2. **शैक्षिक निष्पादन :** (क) ये बच्चे अधिकतर अपनी योग्यता के स्तर से नीचे कार्य करते हैं, विशेषकर पठन में। इसका एक आंशिक कारण प्रारंभिक वर्षों में स्कूल में उनकी अनियमित उपस्थिति है और दूसरा उनकी देखने और सुनने की अशक्तताएं हैं। निम्न पठन योग्यता और अनियमित हाजिरी का विषयों में निष्पादन पर, विशेष-कर अंकगणित पर पड़ता है। शिक्षक समय-समय पर इन बच्चों की कठिनाइयों का पता लगा कर उपचारी कार्यक्रम द्वारा इनकी मदद कर सकता है।

(ख) इनमें से कुछ बच्चे अमूर्त संकल्पनाओं को कठिन पाते हैं, क्योंकि प्रारंभिक वर्षों में उनकी बाधाग्रस्तता के कारण मूर्त शिक्षण के कम अवसर मिले हैं। इन बच्चों को स्कूल द्वारा ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए कि स्थूल वस्तुओं को देख सके और उनका परिचालन करके प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकें।

3. **भावात्मक प्रतिक्रियाएं और सामाजिक संबंध :** (क) अधिकतर शारीरिक बाधाग्रस्त बच्चे हीन भावना और अपने आप में अपर्याप्त महसूस करते हैं। क्योंकि वे इस बात पर सोचते रहते हैं कि वे अपनी आयु के अन्य साथियों से भिन्न हैं।

अपने अन्दर असफलता के भाव से वे ग्रस्त होते हैं और वे कोई भी नया कार्य करने के लिए इच्छुक नहीं रहते। इसके कारण न केवल वे दुःखी, असुरक्षित अनुभव करते है और शर्मिलें हो जाते हैं, बल्कि इसका प्रभाव उनके कार्य के उत्पादन पर भी पड़ता है। शिक्षकों को चाहिए कि इन बच्चों की योग्यताओं का पता लगा कर उन्हें प्रकाश में लाएं। शिक्षकों को इनके कार्य के ऐसे क्षेत्र चुनने चाहिए जिनमें ये बच्चे सफल हो सकें और उन्हें ऐसा लगे कि वे भी कुछ अच्छा कार्य कर सकते हैं। उदाहरण के लिए एक बच्चे को, जो चल नहीं सकता, तैरना सिखाना उसकी इस विशेषता, सीमितता की पूर्ति का एक रास्ता हो सकता है।

(ख) सामान्य बच्चे अकसर इन बच्चों की ओर क्रूरता का रूख अपनाते हैं, जो अकसर बिना सोचे समझे होता है। वे इनकी हानि पहुंचाते हैं जिसके कारण वे या तो चिन्तातुर, एकाकी, और पलायनवादी हो जाते हैं या दूसरों की ओर आक्रामक और बिरोधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं। शिक्षक को इन बच्चों की ओर अनुकूल अभिवृत्तियां निर्मित करने के लिए अपने व्यवहार को एक नमूने के तौर पर प्रस्तुत करके और अनुग्रह दिखा कर करना चाहिए। उसे, बाधाग्रस्त बच्चों की कुण्ठा को कम करके और उसे वास्तविकता को बगैर कड़ुवाहट के समझने में मदद करके, सहारा देना चाहिए।

(ग) बाधाग्रस्त बच्चों में तनाव और आक्रामक संवेग मन में भरते जाते हैं क्योंकि इनकी अभिव्यक्ति वस्तुओं के साथ क्रियाकलापों या खेलों इत्यादि में नहीं हो पाती। उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त क्रियाकलापों का प्रावधान करना चाहिए जिससे उनके तनावों का निकास हो सके। इस दिशा में सृजनात्मक क्रियाकलापों, जैसे, संगीत, उगली से चित्रकला, रेत या मिट्टी के खेल के अवसरों की व्यवस्था करनी चाहिए।

4. बाधाग्रस्त बच्चों के माता-पिताओं की समस्याएंः (क) माता-पिता की अभिवृत्तियों से शारीरिक बाधाग्रस्त बच्चों को ऐसा लग सकता है कि वे माता-पिता पर भार स्वरूप हैं या माता-पिता उनकी उपेक्षा करते हैं। कुछ माता-पिता स्नेह की कमी दर्शाते हैं और बच्चों की गलतियां निकालते या आलोचना करते रहते हैं। कभी कभी कुछ विरल मामलों में ऐसा भी हो सकता है कि बाधाग्रस्त बच्चे के साथ क्रूरता का व्यवहार किया जाता हो। अन्य मामलों में माता-पिता अति-रक्षात्मक हो सकते हैं जिसके फलस्वरूप बच्चा उन पर अत्यन्त मिर्भर हो जाता है और अपने बूते पर जीवन की समस्याओं का सामना नहीं कर पाता। शिक्षक को माता-पिता की इस बात में सहायता करनी चाहिए कि वे अपने बच्चे की ओर एक स्वस्थ और घनात्मक दृष्टिकोण अपना सकें।

(ख) कभी कभी अच्छी भावना से माता-पिता बच्चों की शारीरिक बाधाग्रस्तता की पूर्ति के लिए शैक्षिक कार्य पर अत्यधिक दबाव डालने लगते हैं। वे जितनी उसकी भावात्मक और बौद्धिक क्षमता है उससे काफी अधिक उपलब्धि की अपेक्षा करने लगते हैं। इस प्रकार का व्यवहार बच्चे पर अधिक बोझ डाल सकता है, जिससे वह कुढ़ना और प्रयास करने के प्रति अनिच्छा व्यक्त करने लगता है। उसे काम पूरा करने के लिए जितने समय की आवश्यकता हो देना चाहिए। यह बेहतर होगा कि उसे अपनी अभिरुचियों को और विकसित करने और संबंधित ज्ञान प्राप्त करने के अवसर प्रदान किए जाएं जिससे उनका मन अपनी अशक्तताओं से हट सके।

(ग) बाधाग्रस्त बच्चे दुर्घटना में फंसने और चोट लगने की ओर अधिक प्रणत होते हैं। इसलिए उन्हें दैनिक जीवन के आवश्यक क्रियाकलापों में दुर्घटनाओं से बचाने और शारीरिक मदद की आवश्यकता होती है। लेकिन अत्यधिक देखरेख और अत्यधिक स्वत्वबोधकता (possessiveness) के कारण बहुत ज्यादा दूसरों पर निर्भर हो जाना बाधाग्रस्तता से अधिक हानिकारक होगा। माता-पिता को सलाह देनी चाहिए कि वे जितनी छोटी आयु में हो सके उतना पहले बच्चे को अपनी आशक्तता को स्वीकार करके जीना और अपनी योग्यताओं का, जो स्वस्थ हैं, उपयोग करके जो कमी है उसकी पूर्ति करना सिखाएं।

(घ) कुछ माता-पिता ये आशा लगाए रहते हैं कि उनका बच्चा सामान्य हो जाएगा, और इसलिए बजाए इसके कि वह अपनी अशक्तता के साथ सामंजस्य करे उसे एक डाक्टर से दूसरे के पास ले जाते हैं। इससे बच्चा अव्यवस्थित और संवेगात्मक दृष्टि से असतुलित हो जाता है। शिक्षक को चाहिए कि वे माता-पिता को बच्चे की अशक्तता को स्वीकार करने में और उसके साथ समंजन करने में मदद करें।

बाधाग्रस्त बच्चों के निर्देशन के मुख्य उद्देश्य

आरंभिक वर्षों में बाधाग्रस्त बच्चों को निर्देशन के उद्देश्य वैसे ही हैं जैसे सामान्य बच्चों के होते हैं। फिर भी, बाधाग्रस्त बच्चों में इन पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है। मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. बाधाग्रस्त बच्चों में जो भी क्षमताएं है उनका पूरा उपयोग करना।
2. ऐसे अनुभवों को प्रस्तुत करना जिनसे ये बच्चे अपने कौशल को विकसित कर सकें, ज्ञान का विस्तार करें और उनकी अशक्तता के कारण जो सीमाएं हैं उनके अन्दर उन्हें संतोष प्रदान करें।
3. अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक सम्पर्क के अवसर प्रदान करना जिससे बाधाग्रस्त बच्चे में आत्म-विश्वास विकसित हो सके।

4. अनुभवों और क्रियाकलापों द्वारा उनमें ऐसी भावना विकसित करना कि वे दूसरों द्वारा स्वीकार किए जाते हैं और दूसरों के विश्वास पात्र होने लायक हैं, और वे कुछ सार्थक उपार्जन कर सकेंगे।

इन उद्देश्यों को शैक्षिक और प्रशिक्षण कार्यक्रम में, जो इन बच्चों के लिए विशेष रूप से निर्मित किए गए हों, प्राप्त किए जा सकते हैं।

बाधाग्रस्त बच्चों की शिक्षा में निम्न बातों पर बल दिया जाना चाहिए।

1. सामान्य शिक्षा : औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा दोनों जो बाद में इनके जीवन में लाभदायक होगी उसकी सावधानी से योजना बनानी चाहिए। इसके मतलब यह हुए कि बाधाग्रस्त बच्चों के लिए स्कूल के सामान्य पाठ्यक्रम को उपयुक्त बनाने के लिए उसमें काफी फेरबदल करना होगा। उनको बुनियादी कौशल तो सिखाने ही होंगे, उन्हें सामाजिक कौशल भी सिखाने चाहिए जिससे उनके जीवन का स्तर बेहतर हो सके। उदाहरण के लिए उन्हें सिखाना होगा कि दूसरों के साथ सामंजस्य करके कार्यानुभव, इत्यादि में कैसे शामिल होना चाहिए, और अवकाश का समय बिताने के लिए उनकी योग्यताओं के अनुरूप रुचियां विकसित करनी होंगी।

2. चिकित्सीय सहायताः बच्चों को, जो भी योग्यताएं उनमें हैं, उनसे पूरा फायदा उठाने और सही उपयोग करने के लिए चिकित्सीय कार्य आवश्यक हैं। उन्हें इन योग्यताओं के विकास में वाक् चिकित्सा (speech theraphy), भौतिक चिकित्सा (physiotherapy), मनौवैज्ञानिक मार्गदर्शन, खेल चिकित्सा, इत्यादि के विशिष्ट कार्यक्रमों द्वारा मदद करनी चाहिए।

3. विशिष्ट प्रकार की जीवन विधियों की शिक्षाः अन्धे बच्चों के लिए, जिन्हें ब्रेल (Braille) विधि द्वारा पढ़ना लिखना सिखाना होता है, यह आवश्यक है कि दृश्य की जगह अन्य इन्द्रियों को प्रशिक्षित किया जाए, विशेषकर चलने की छड़ी का उपयोग सिखाया जाए।

जो एकदम बधिर हैं उन्हें ओंठ पढ़ना (lip reading) सीखना होता है। जो ऊंचा सुनते हैं उन्हें श्रवण सहाय (hearing aid) का उपयोग करना और दृश्य विधियों पर मुख्य रूप से निर्भर होना सीखना होता है। लंगड़े बच्चे को बैसाखी इत्यादि के सहारे चलना सीखना होता है। इसी प्रकार अन्य उपाय और कौशल जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए सीखना चाहिए। इनमें से कुछ चीजें कठिन हो सकती हैं और उन्हें सीखने में अधिक समय लगेगा। अन्य को अल्प अवधि में सिखाया जा सकता है।

4. व्यावसायिक तैयारीः बाधाग्रस्त बच्चे को जहां तक संभव हो अच्छी से अच्छी तैयारी करनी चाहिए जिससे बाद में कोई नौकरी मिल सके या कोई अच्छा धन्धा

किया जा सके। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में इसके मतलब होंगे कार्य करने की अच्छी आदतें, अभिवृत्तियां और मूल्य विकसित करना, दूसरों के साथ मिल कर कार्य कर सकना, सहयोग कर सकना, दायित्व वहन कर सकना, अध्यवसायी होना, अपनी ओर से उत्तम कार्य करने में लगे रहना और आदेशों का पूरी तौर से पालन करना।

बाद की अवस्था में जीवकोपार्जन बच्चे की मोटे तौर पर मानसिक और शारीरिक योग्यताओं को अनुमानित करना और विभिन्न कामों की आवश्यकताओं से मेल मिलाना होगा। इससे शिक्षक को कुछ अनुमान लगेगा कि किस प्रकार के काम बच्चा कर सकता है और किस प्रकार के नहीं कर सकता। सामान्य शिक्षा तो स्कूल के पूरे काल में चलती ही रहनी चाहिए।

5. अपनी अशक्तता को स्वीकार करके जीना या सामाजिक समन्वय के लिए शिक्षाः बच्चे को अपनी अशक्तता को निसंकोच स्वीकार करने में मदद करनी चाहिए। उसे अपनी परिसीमा, अपनी योग्यता और सबल पक्षों को जानना चाहिए। इससे उसे समंजन में सहायता मिलेगी, और अप्रियता का सामना करते हुए, बिना कड़वाहट के जी सकेगा।

बाधाग्रस्त बच्चों को सामान्य व्यक्तियों की दुनिया में जीना है। उन्हें इनके घनिष्ठ संपर्क में कार्य करना है। उनका व्यवहार और जीवन की परिस्थितियों के लिए प्रतिक्रिया, इस पर निर्भर करेगी कि सामान्य लोग उनसे कैसा व्यवहार करते हैं, क्योंकि ये जल्दी बुरा मान जाते हैं। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि जो लोग बाधाग्रस्त बच्चों के साथ कार्य कर रहे हैं वे, अशक्तता के बारे में जानकारी और उससे प्रभावित बच्चों पर संभावित असर की जानकारी के अतिरिक्त, स्वयं समझदार और सुसमंजित हों।

अध्याय 23

समंजन की समस्या वाले बच्चे

लीला एच. मन्हास

पचास बच्चों की सामान्य कक्षा में हमें अधिक संख्या ऐसे बच्चों की मिलेगी जो अधिकतर खुश और संतुष्ट दिखाई देते हैं। ऐसा कभी कभी होता है कि वे उद्विग्न, चिन्तित या विध्वंसक हो जाते हैं। अपने मित्रों और सहपाठियों से झगड़ते हैं, अपने शिक्षकों के प्रति अशिष्ट और स्कूल तथा घर में चिड़चिड़े हो जाते हैं और सनकी जैसा व्यवहार करते हैं, किन्तु इनका इस प्रकार का व्यवहार अल्पकालिक होता है और इसे विकास की प्रक्रिया का एक अंग मात्र कहा जा सकता है। वे शीघ्र इससे उभर कर पूर्ववत खुश दिखाई देने लगते हैं। इन बच्चों के कुछ समय के अवांछित व्यवहार को सामान्य की ही सीमा के अन्तर्गत रखा जाएगा और इस प्रकार के मामलों में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसी कक्षा में कुछ अन्य बच्चे ऐसे भी हैं जो अन्य बच्चों की अपेक्षा अत्यधिक घबराते हैं और चिड़चिड़ाहट, आक्रामकता तथा विध्वंसक प्रवृत्तियां बार बार व्यक्त करते हैं। ऐसे भी बच्चे होते हैं जो अत्यधिक बेचैनी व्यक्त करते हैं और कक्षा में ध्यान एकाग्र नहीं कर पाते, तथा उनका ध्यान एक चीज छोड़ कर दूसरी, और दूसरी छोड़ कर तीसरी पर रहता है। कुछ बहुत शर्मीले और पलायनवादी होते हैं। वे दूसरों से अलग रहते हैं, सरलता से मित्र नहीं बना पाते और दूसरों से बात करने में संकोच करते हैं। कुछ बहुत चिन्तित, घबंराए हुए और तनाव में होते हैं। अपनी चिन्ता का नाखून चबाना, अंगूठा चूसना, और जरा जरा सी बात पर रोना और बेचैनी प्रदर्शित करना या इसी प्रकार के अन्य व्यवहार से व्यक्त करते हैं। हम यहां इन्हीं बच्चों के बारे में विचार करेंगे, जिनमें ऊपर वर्णन किए गए व्यवहारों में से एक या एक से अधिक दिखाई देते हैं, क्योंकि ये व्यवहार बाद में उठने वाली गंभीर भावात्मक कठिनाइयों का संकेत देते हैं।

समंजन की समस्या वाले बच्चों का पता लगाने के लिए हमें बच्चे की आयु, विकास का स्तर, उस अवस्था पर क्या सामान्य माना जाएगा, और जिस समुदाय में

बच्चे का पालन हो रहा है उसमें बच्चे से क्या अपेक्षाएं की जाती हैं, क्या प्रसामान्यताएं (norms) हैं, के बारे में जानकारी प्राप्त करनी होगी। इसका कारण यह है कि जो व्यवहार समस्यात्मक लगता है, हो सकता है कि उस आयु के लिए वह सामान्य व्यवहार हो। उदाहरण के लिए बिस्तरे में पेशाब करना बढ़ने की अवस्था की एक स्वाभाविक क्रिया है और तीन साल की आयु तक इसे समस्या नहीं माना जाता। दो से चार वर्ष की अवस्था के बीच बच्चे अकसर मचलते हैं। पांच वर्ष की अवस्था तक अंगूठा चूसना असामान्य नहीं है। अत्यधिक क्रियाशीलता तीन से छः वर्ष के बीच सामान्यतयादेखने में आती है। नाखून चबाना उत्तरबाल्यावस्था और प्रारंभिक किशोरावस्था में एक सामान्य बात है, जबकि पलायन, शर्मीलापन और भयभीत होना प्राथमिक शाला में अधिक देखने में आता है। यदि बच्चों का अपने माता-पिता और आस-पास के वयस्कों से सही मार्गदर्शन, स्नेह और प्रेम मिलता है तो वे इस प्रकार के व्यवहारों से जल्द ही बढ़ निकलते हैं और अधिक सकारात्मक ढंग से व्यवहार करना सीख लेते हैं। केवल तभी यह माना जाएगा कि बच्चे को समंजन की समस्या हो रही है जब इस प्रकार का कोई व्यवहार उस आयु को पार कर जाता है जिसमें उसे सामान्य माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसामान्य (normal) और समस्यात्मक व्यवहार को विभाजित करने वाली कोई स्पष्ट रेखा नहीं है। जो अन्तर है वह केवल मात्रा का है। किन्तु केवल व्यवहार की प्रवृत्तियों को गिनने से प्रसामान्य और अप्रसामान्य के बीच विभेद नहीं किया जा सकता। जो पूरी तस्वीर बच्चा प्रयुक्त करता है उसी के आधार पर हम कह सकते हैं कि बच्चा समस्यात्मक है अथवा नहीं।

प्रसामान्य व्यवहार क्या है?

समस्यात्मक व्यवहार को पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि हम समझें कि प्रसामान्य (normal) व्यवहार क्या है। प्रसामान्य व्यवहार वह व्यवहार है जो एक समुदाय में सर्वाधिक मिलता है। प्रत्येक संस्कृति में क्या अच्छा है और क्या बुरा है के अपने मानदण्ड होते हैं। जो एक समाज में सही और स्वीकार्य माना जाता है वही दूसरे समाज में दोषपूर्ण और अस्वीकार्य माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्कृति की मांग विभिन्न आयु पर अलग अलग हो सकती है। जो एक आयु स्तर पर स्वीकार्य है वही दूसरे आयु स्तर पर स्वीकार्य नहीं होता। उदाहरण के लिए मचलने को दो से चार वर्ष की आयु के बीच समस्यात्मक व्यवहार नहीं माना जाता। किन्तु यदि यह व्यवहार आगे भी चलता है तो इसे भावात्मक अपरिपक्वता का लक्षण माना जाएगा। इसलिए व्यवहार को सांस्कृतिक प्रतिरूप और आयु स्तर के परिप्रेक्ष्य में प्रसामान्य या अप्रसामान्य आंका जाता है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि प्रसामन्यता की धारणा समय के साथ बदल जाती है। जो तीस वर्ष पहले प्रसामान्य

माना जाता था यह आवश्यक नहीं कि वर्तमान में भी प्रसामान्य माना जाए। इसलिए प्रत्येक समाज को एक समय बिन्दु पर बच्चों को क्या वांछित है और क्या अवांछित है सिखाना पड़ता है।

विकास और वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति अपने निरन्तर प्रसरणशील (expanding) वातावरण के साथ बराबर समंजन करता जाता है। वह अपनी आन्तरिक शक्तियों द्वारा अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए क्रियाशील होता है। जब वह अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए समाज में स्वीकार्य विधियां अपनाता है, वह अच्छा समंजन करता हुआ माना जाता है, जब वह आवश्यकताओं की पूर्ति के अस्वीकार्य तरीके अपनाता है तब हम "समस्यात्मक व्यवहार", "समंजन की कमी", इत्यादि की बात करते हैं। ये अस्वीकार्य व्यवहार के तरीके ऐसे हो सकते हैं जिनका बच्चे के विकास और समंजन पर हानिकारक प्रभाव पड़ता हो, या जो दूसरों के जीवन में बाधा डालते हों। उदाहरण के लिए एक बच्चा जो अत्यधिक गैर-मिलनसार है, अन्य लोगों से सम्पर्क नहीं रखता, पर्यावरण के प्रति अनुक्रिया नहीं करता, वह अपने व्यवहार द्वारा अपने विकास में बाधा पहुंचा रहा है। दूसरी ओर, जब बच्चे के अपने भाई और बहन, माता-पिता, सहपाठियों, शिक्षकों और समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ अकसर और गंभीर रूप से लड़ाई झगड़े होते रहते हैं, तब वह दूसरों के अधिकारों में बाधा डाल रहा है। दोनों ही बच्चों को कुसमंजित बच्चों की श्रेणी में रखा जाएगा।

समस्यात्मक व्यवहार के कुछ सामान्य प्रकार

समस्यात्मक व्यवहार जो बच्चों में अकसर मिलता है वे हैं, बिस्तरे में पेशाब करना, अंगूठा या उंगली चूसना, नींद में गड़बड़, भोजन संबंधी कठिनाइयां, बोलने में कठिनाइयां घबराहट, बेचैनी, अवज्ञाकारी होना, हठ करना, मचलना, नाखून चबाना, निरुत्साही होना, मन्दता, विध्वन्सक होना, लड़ना, झूठ बोलना, चोरी करना, स्कूल से भागना, अत्यधिक तुनकमिजाजी, परेशान रहना, रोना, डरना, ईर्ष्यालु होना, पढ़ने में कठिनाइयां, स्कूल में पिछड़ापन; भावात्मक अपरिपक्वता, इत्यादि। शिक्षकों को कुसमंजन और असामाजिक व्यवहार के प्रारंभिक लक्षणों को पहचानना चाहिए, जिससे कि इसके पहले कि कुसमंजन अधिक उलझा हुआ और गहरा हो सके, बच्चे की मदद की जा सके।

समस्यात्मक व्यवहार क्यों होता है और उससे संबंधित कारक

सर्वप्रथम तो हमें यह समझना चाहिए कि व्यवहार, चाहे वह स्वीकार्य या अस्वीकार्य हो, बहुत से पारस्परिक अनुक्रिया करते हुए कारकों का परिणाम है। समस्यात्मक व्यवहार के निर्धारण में एक कारक अन्य कारकों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो

सकता है, किन्तु साधारणतया, कई अन्य सहायक कारक होते हैं। इनमें बच्चे का स्वभाव, उसके प्रारंभिक अनुभव, परिवार के सदस्यों, शिक्षकों, स्कूल के सहपाठी, सम्मिलित हैं। भौतिक वस्तुओं और पर्यावरण के भौतिक पक्ष का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, बच्चे की भौतिक विशेषताओं का जैसे उसके लिए कितनी जगह उपलब्ध है जिसके आधार पर घर को भीड़भाड़ वाला कहा जाए या पर्याप्त जगह वाला जहां स्वतंत्र रूप से वह कार्य कर सके कहा जाए, यह परिवार के सदस्यों के साथ संबंधों को प्रभावित करेगा। किसी एक कारक को बच्चें के समस्यात्मक व्यवहार के रूप में निश्चित करना असंभव है।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि बच्चों द्वारा व्यक्त किए गए एक ही प्रकार के व्यवहार के पीछे विभिन्न कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए तीन बच्चे चोरी करते हैं। एक चोरी इसलिए करता है कि वह भूख और गरीबी से त्रस्त है। दूसरा, इसलिए चुराता है कि वह अनजाने में उस स्नेह की पूर्ति कर रहा है जो उसे नहीं मिलता, और असुरक्षा की भावना के प्रति विद्रोह कर रहा है। तीसरा, इसलिए चुराता है कि उसमें कब्जा करने की तीव्र लालसा है। दूसरी ओर, समान मूल कारक से विभिन्न प्रकार के समस्यात्मक व्यवहार उत्पन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिए दो बच्चों के मामले देखिए जो ऐसे घरों से आते हैं जिनके माता-पिता या तो अलग हो गए हैं या उनका तलाक हो गया है। दोनों बच्चों के लिए स्नेह सुरक्षा और घर के स्थिर पर्यावरण का अभाव है। उनमें से एक आक्रामक हो जाता है जबकि दूसरा गैर-मिलनसार। इसलिए प्रत्येक बच्चे के मामले को संतोषप्रद सहायता या मार्गदर्शन देने के पहले वैयक्तिक आधार पर अध्ययन करना चाहिए।

यह देखा गया है कि बच्चा केवल एक समस्या शायद ही कभी प्रदर्शित करता है, और वह भी शुद्ध रूप में नहीं। संवेगात्मक रूप से विक्षुब्ध बच्चा सामान्यतया कई प्रकार के समस्यात्मक व्यवहार प्रदर्शित करता है। प्रत्येक मामले में बच्चे के बारे में जितनी जानकारी प्राप्त हो सके, उसके साथ-साथ उन व्यक्तियों के बारे में भी जिनके संपर्क में बच्चा आता है, जहां तक संभव हो, जानकारी प्राप्त करके, मूल कारकों का पता लगाना होगा। इसमें सतही तौर से जैसा लगता है उससे कहीं अधिक जानकारी को एकत्रित करना होगा।

कुछ महत्वपूर्ण कारक जो समस्यात्मक व्यवहार के साथ पाए जाते हैं और उनका वर्गीकरण

1. स्वभाव के कारक

हमारा स्वभाव या विभिन्न परिस्थितियों में, वस्तुओं, व्यक्तियों या घटनाओं की ओर 'प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति का' आनुवंशिक आधार है। एक बच्चा ऐसी

घटनाओं के प्रति 'अत्यधिक संवेदनशील' हो सकता है जिनकी ओर अन्य लोग कोई परवाह नहीं करते। या ऐसा भी हो सकता है कि उसे ऐसी बातों में बिल्कुल भी दिलचस्पी न हो और इसलिए दूसरों के प्रति कोई लगाव न हो। बाद वाले मामले में सामाजिक स्वीकृति या अस्वीकृति का बच्चे के व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह अन्य लोगों के विचारों और भावनाओं की ओर उदासीन है।

2. जन्मजात कारक

ऐसे कारक जो बच्चे के विकास को जन्म के पहले या जन्म के प्रक्रिया के समय प्रभावित करते हैं वे मस्तिष्क या केन्द्रीय स्नायुतंत्र पर प्रभाव डाल सकते हैं (चाहे वह बहुत मामूली क्यों न हो) और बच्चे को ऐसे व्यवहार की ओर प्रणत कर सकते हैं जो समस्यात्मक हो। उदाहरण के लिए, बच्चा जिसके मस्तिष्क को क्षति पहुची है वह बेचैन रहता है, अनियंत्रित ढंग से व्यवहार करता है और उसका ध्यान एकाग्र नहीं हो पाता। यह स्थिति शिक्षकों द्वारा समस्या को नहीं समझ पाने से और बच्चों को डांटने, या बच्चे साथ बुरा व्यवहार करने से और भी बिगड़ सकती है।

शारीरिक दशाएं, बीमारियां, दुर्घटनाएं, इत्यादि।

बीमारियों से जैसे इन्केफलाइटिस (encephalities) और मेनिज्जाइटिस (meningitis) या दुर्घटना से मस्तिष्क और स्नायु संस्थान पर असर पड़ सकता है, जिसके कारण बच्चा बेचैन, चिड़चिड़ा, सनकी और उद्विग्न हो जाता है। यदि वह शारीरिक दृष्टि से कमजोर है तो संवेगात्मक अशान्ति की संभावना और भी अधिक बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब वह मानसिक दृष्टि से उद्विग्न होता है, उस समय समस्यात्मक व्यवहार के प्रकट होने की संभाविता अधिक बढ़ जाती है। बीमारी के प्रारंभ में अकसर चिड़चिड़ाहट, तुनक-मिज़ाजी और प्रयास करने से इन्कार करना देखने में आता है। यदि ऐसा बच्चा माता-पिता या शिक्षक द्वारा दण्डित किया जाता है तो उसके मन में नाराजगी पैदा होती है और वह कुसमंजन की ओर प्रवृत्त होता है। दृष्टि और श्रवण के अज्ञान दोष भी बच्चों के लिए समस्याएं उत्पन्न कर सकते हैं। एक बच्चे के मामले का, जो निकटदर्शी (shortsighted) था काफी उल्लेख किया गया है। शिक्षिका बच्चे को सुस्ती और लापरवाही के लिए अकसर दण्डित करती थी, जिसका वास्तविक कारण अज्ञात दृष्टि दोष था। उसके अन्यायपूर्ण व्यवहार से बच्चे के मन में काफी नाराज़गी उत्पन्न हुई। उसने स्कूल जाना छोड़ दिया, बुरी सोहबत में पड़ गया और अन्त में अपचारी (delinquent) बन गया।

बीमारियों, और इन्द्रियों के दोषों के अतिरिक्त और भी शारीरिक दशाएं हो सकती हैं जिनका प्रभाव बच्चे के व्यवहार और अभिवृत्तियों पर पड़ता है। इसलिए कुसमंजन के सभी मामलों में अच्छी तरह डाक्टरी जांच आवश्यक है, जिससे यह पता

लग सके कि जो गड़बड़ी है उसका कहीं कोई शारीरिक कारण तो नहीं है।

शारीरिक दोष और अक्षमताओं का भावात्मक और सामाजिक समंजन से कोई सीधा संबंध नहीं है। फिर भी, शारीरिक अक्षमता से संवेगात्मक असंतुलन की आशंका, अपने को दूसरों से भिन्न महसूस करने का कारण, रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य बच्चों और वयस्कों की उनकी अक्षमता के प्रति व्यवहार का भी प्रभाव पड़ता है। जो कार्य अपनी आयु के बच्चे सरलता से कर लेते हैं उसे न कर पाना उनको निराश और दुःखी करता है।

घर के कारक

समंजन से संबंधित जितने भी कारक हैं उनमें घर सबसे महत्वपूर्ण है। पहले हम घर की माली हालत पर विचार करेंगे।

कुछ सीमा तक आर्थिक संपन्नता के कारक जैसे परिवार में रुपये पैसे का होना, रहने के लिए पर्याप्त जगह, जो साधन सुविधाएं उपलब्ध हैं उनकी गुणात्मकता, घर परिवार के सदस्यों की संख्या और पड़ोस के बच्चे के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। गरीब घरों के बच्चों को आर्थिक कमी, घर में भीड़-भाड़, और निवास की नीरस परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इनमें परिवार के सदस्यों के बीच तनाव बढ़ता है और झगड़े होते हैं, और इस प्रकार बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे अशान्त और चिंतातुर हो जाते हैं। इन परिवारों में जीवन के लिए संघर्ष इतना अधिक है, कि बच्चों की मूल आवश्यकताओं जैसे पर्याप्त भोजन, वस्त्र और निवास की पूर्ति के लिए माता-पिता के पास आवश्यक साधन, समय और शक्ति का अभाव रहता है। बच्चे माता-पिता के स्नेह, ध्यान और साथ से वंचित रह जाते हैं और सुरक्षित अनुभव नहीं करते। ऐसे बच्चे के कुसमंजित होने की संभावना अधिक हो जाती है।

फिर भी, घर की भौतिक परिस्थितियां उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी परिवार के लोगों के बीच आपसी संबंध की गुणात्मकता और घर का सामान्य वातावरण। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद गरीब घर के बच्चों को यदि अपने माता-पिता का स्नेह, देख-रेख मिल सके और वे अपने बच्चों को समझ सकें तो अकसर पाया गया है कि ये बच्चे काफी खुश और समंजित होते हैं। दूसरी ओर, कुछ बच्चे जो सम्पन्न परिवारों से आते हैं, जहां सभी साधन सुविधाएं हैं, फिर भी वे विभिन्न प्रकार के समस्यात्मक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। ये बच्चे अकसर नौकरों की देखरेख में छोड़ दिए जाते हैं, और माता-पिता के साथ और स्नेह से वंचित रह जाते हैं। अध्ययनों ने प्रदर्शित किया है कि जिन बच्चों को स्नेह मिलता है, स्वीकार किए जाते हैं और जिन्हें माता पिता सुरक्षित अनुभव करने में मदद करते हैं और जिनके अपने भाई

बहनों से अच्छे संबंध है, उनके समंजित होने की अच्छी संभावनाएं है। इन बच्चों की तुलना में जो स्नेह से वंचित रह जाते हैं, जिनके साथ कठोरता का या असंयत व्यवहार होता है, जिनके माता-पिता उनकी बात-बात में त्रुटियां निकालते हैं और आलोचना करते हैं और जिनके माता-पिता आपस में न बनने के कारण दुःखी रहते हैं, वे अकसर कुसमंजित हो जाते हैं। जो बच्चे भग्न परिवार से आते हैं जहां माता और पिता में से किसी एक की मृत्यु हो जाने के कारण, उनके अलग हो जाने या उनके बीच तलाक हो जाने के कारण बच्चे माता और पिता में से केवल एक के ही साथ रहते हैं, माता या पिता की लम्बी बीमारी, माता-पिता में से एक का लम्बे समय तक अनुपस्थित रहना, इन सब में भी बच्चे असुरक्षित और दुःखी अनुभव करते हैं।

अन्य व्यवहार भी हैं जिनके कारण, अनजाने में माता-पिता बच्चों के कुसमंजन में भागीदार होते हैं। ये हैं निरंतर डांटना, छोटी-छोटी बातों पर पीटना, अन्य बच्चों की अपेक्षा एक के प्रति विशेष अनुग्रह दिखाना, बच्चे से उसकी सामर्थ्य से अधिक कार्य की अपेक्षा करना, अधिक लाड़-प्यार करना या बच्चे को निर्णय लेने का अवसर न देकर स्वयं सारे निर्णय लेना, और बच्चे को स्नेह से वंचित रखकर उसकी उपेक्षा करना।

माता-पिता बच्चों के प्रति गलत अभिवृत्तियों को जन्म देती हैं। ये अभिवृत्तियां, माता-पिता, द्वारा बच्चों को पालने में और अनुशासित करने में प्रकट होती हैं। अभिवृत्तियों का बच्चे की आत्म संकल्पना और अंतःकरण (परामह) के विकास में महत्वपूर्ण योग है जो अन्ततोगत्वा बच्चे के व्यवहार और कार्यों को नियंत्रित करेंगे। माता-पिता बच्चे को परोक्ष और अपरोक्ष मार्गनिर्देशन द्वारा स्थाई नैतिक और सामाजिक मूल्यों के विकास में मदद करते हैं। यदि बच्चा व्यवहार के मानदण्ड के रूप में स्थाई मूल्य विकसित नहीं कर पाता तो ऐसे बच्चे की संवेगात्मक और सामाजिक दृष्टि से कुसमंजित होने की अधिक आशंका है।

बच्चे माता-पिता, खेल के साथी और अन्य लोग जिनके वे निकट के सम्पर्क में आते हैं अनुकरण करके बहुत कुछ सीखते हैं। क्योंकि, बच्चे का अधिक समय, प्रारंभिक और महत्वपूर्ण वर्षों में, जबकि उसके व्यक्तित्व के मूल आधार निर्मित हो रहे हैं, घर पर व्यतीत होता है, इससे इस बात की अधिक सभावना है कि परिस्थितियों के साथ वह उसी प्रकार की अनुक्रिया करना सीखेगा जैसी उसके माता-पिता और अन्य परिवार के सदस्य करते हैं। जो माता-पिता निरन्तर अधीरता और गुस्से को रोक नहीं पाते, बच्चों से भी इसी प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा कर सकते हैं।

पड़ोस का प्रभाव

अनेक समस्यात्मक व्यवहारों की उत्पत्ति पड़ोस से होती है। बच्चों के व्यवहार हमजोलियों के व्यवहार के प्रतिरूपों से अनुबन्धित होता है—प्रतिरूप जैसे झूठ बोलने की आदत, चोरी करना, सामाजिक सम्पत्ति नष्ट करना, गन्दी भाषा (भद्दे शब्दों का उपयोग) बोलना, स्कूल से भाग जाना, इत्यादि। ये असामाजिक प्रवृत्तियां खेल और मनोरंजन के उपयुक्त साधनों के अभाव में और भी बढ़ जाती हैं।

यह भी हो सकता है कि कुछ परिस्थितियों के कारण बच्चे को ऐसे लोगों के प्रतिदिन के सम्पर्क में रहना पड़े जिनके नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य बच्चे के परिवार से बिल्कुल भिन्न हों। इसके कारण बच्चे के मन में संघर्ष उत्पन्न हो सकता है और वह कुसमंजित होने की ओर प्रवृत्त हो सकता है।

स्कूल के कारक

आधुनिक युग में बढ़ते हुए बच्चे के लिए, उसके सामाजिक और भावात्मक समंजन को प्रभावित करने में, घर के बाद स्कूल का ही नम्बर आता है। यह पता लगा कि स्कूल की परिस्थितियों के कुछ पक्षों का कुसमंजन से सीधा संबंध है।

स्कूल में उत्पन्न कठिनाइयां जिनसे भावात्मक या व्यवहार की गड़बड़ियां पैदा होती हैं वे हैं: (क) जो स्कूल के कार्य से संबंधित हैं, (ख) जो शिक्षक और छात्र के बीच संबंधों की गुणात्मकता से उत्पन्न होती हैं, (ग) जो बच्चे के अन्य सहपाठियों के साथ संबंधों से संबद्ध हैं और (घ) अन्य कारक।

(क) स्कूल के कार्यक्रम और कार्य से संबद्ध कठिनाइयां: प्राथमिक शाला के अधिकतर जो कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं उनमें इस बात पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है कि जिन बच्चों के लिए ये निर्मित किए गए हैं उनकी विशेषताएं और आवश्यकताएं क्या हैं। इसके मतलब यह हुए कि बच्चों को कार्यक्रम के अनुरूप बनाना होता है, न कि कार्यक्रम को बच्चे के अनुरूप। विषय ज्ञान पर आधारित शैक्षिक निष्पादन पर बल दिया जाता है, विशेष रूप से उन तथ्यों की स्मृति पर जिन्हें परीक्षा के समय दोहराना पड़ता है। सक्रिय भाग लेने, खोज और प्रयोग करने को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। खेल और क्रीड़ाओं का अपनी बहुत सी प्राथमिक शालाओं में कोई नियमित स्थान नहीं है। अतः बच्चों की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक से नहीं होती। तनावों के निकास के लिए मार्ग नहीं मिलता। इसके बजाय उनकी असीमित शक्ति और स्वाभाविक उत्सुकता दब जाती है। इसके कारण अनावश्यक तानव और कुंठाएं पैदा होती हैं जिनसे कई प्रकार के समस्यात्मक व्यवहार उत्पन्न होते हैं, विशेषकर उन बच्चों में जिनमें कुसमंजन और उपचार की ओर झुकाव है।

(ख) शिक्षक छात्र संबंधों की कठिनाइयां: शिक्षक छात्र संबंध समंजन की समस्याओं के पीछे महत्वपूर्ण कारक हैं। संबंधों में जिन बातों से कठिनाइयां होती हैं उनमें : (I) जब बच्चा यह महसूस करता है कि शिक्षक एक छात्र की ओर पक्षपात करता है (II) जब वह अनुभव करता है कि उसके प्रति अन्याय पूर्ण व्यवहार हो रहा है या दण्डित किया जा रहा है और (III) जब शिक्षक बच्चे की मूल संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता। कुछ शिक्षक तंगदिल होते हैं और बच्चों के प्रति विरोध का रूख अपनाते हैं। वे व्यंग और मजाक उड़ा कर बच्चों को अनुशासित करने का प्रयास करते हैं। बच्चे ऐसे शिक्षकों से डरते हैं, और इस डर के कारण वे जो कुछ कर सकते है वह नहीं कर पाते। कुछ अन्य शिक्षक बच्चों के व्यवहार की ओर उदासीन रहते हैं, वे इस बात का पता करने की कोशिश नहीं करते कि एक बच्चा अमुक प्रकार का व्यवहार क्यों करता है। एक आक्रामक बच्चे को कठोर दण्ड दिया जाता है, शर्मीले और गैरमिलनसार बच्चे की अवहेलना की जाती है। प्रत्येक मामले में कारण पता लगाने का कोई प्रयास नहीं किया जाता, और बच्चे को अपने कौशल विकसित करने में और अधिक अच्छा आचरण करने में कोई मदद नहीं की जाती। बहुत कम शिक्षक बच्चे के घर और अनुभव की पृष्ठभूमि के बारे में पता करते हैं। अधिकतर शिक्षक इस बात को नहीं समझते कि इन कारकों का बच्चे के व्यवहार पर महत्वपूर्ण असर पड़ता है। इसके विपरीत उनके अपने पूर्वाग्रह और व्यक्तिगत की समस्याएं होती हैं जो बच्चों के साथ उनके व्यवहार में प्रतिबिम्बित होती हैं। वे बच्चों की भावनाओं को समझना और उनके प्रति संवेदन और स्नेह व्यक्त बहुत कम करते हैं।

अकसर शिक्षक स्कूल के विभिन्न स्तरों पर योग्यता और सीखने की तत्परता में वैयक्तिक अन्तरों को बहुत कम पहचान पाते हैं। इस कारण, वे सभी बच्चों से समान मानक स्तर के कार्य की अपेक्षा करते हैं। वे यह भी अपेक्षा करते हैं कि सभी बच्चे समान गति से कार्य करें। जो बच्चे बाकी कक्षा के साथ नहीं चल पाते, या तो सीमित मानसिक योग्यता या तत्परता की कमी के कारण या कोई वैयक्तिक और पर्यावरण के कारण, उनमें मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। डांटने, दण्ड देने, या बच्चे के निष्पादन की अन्य बच्चों से प्रतिकूल तुलना करने में बच्चे के मन में संवेगात्मक गड़बड़ी हो सकती है। एक व्यंग करने वाला, चिड़चिड़ा और गलती निकालने वाला शिक्षक उन कारकों में से है जो बच्चों में संवेगात्मक कठिनाइयां उत्पन्न करते हैं।

(ग) बच्चे की स्कूल के साथियों से संबंध की कठिनाइयां: प्राथमिक शाला के वर्षों के दौरान अपनी आयु और लिंग के साथियों से संबंध महत्वपूर्ण हो जाते

हैं। इस अवस्था पर हमजोलियों द्वारा स्वीकार किया जाना बच्चे की भावात्मक तंदुरूस्ती के लिए लाजिमी है। संभावना यह है कि जिन बच्चों को कक्षा का समूह स्वीकार नहीं करता यानी जो एकाकी (isolate) और अस्वीकृत (rejectees) हैं, यदि समूह में सम्मिलित कराने में उनकी मदद नहीं की गई तो उनमें संवेगात्मक विकास उत्पन्न होंगे। सबसे लोकप्रिय बच्चे वे होते हैं जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ है और खेल में अच्छे हैं। जो पढ़ाई में पिछड़े हैं और शारीरिक रूप से बाधाग्रस्त हैं उन्हें समूह के अन्य सदस्यों के साथ संतोषजनक संबंध स्थापित करने के लिए विशेष सहायता की आवश्यकता होगी।

(घ) अन्य कारकः अन्य परिस्थितियां जिनसे कुसमंजन की समस्याएं उत्पन्न होती हैं वे हैं शारीरिक क्रिया और खेल के अवसरों का अभाव, किसी रुचिकर और चिन्ताकर्षक कार्य पर बिना विघ्न के कार्य करने का अवसर न मिलना और जब बच्चा दायित्व ले सकता है और पहल कर सकता है तब इसके लिए कोई प्रावधान का न होना। इनके अतिरिक्त समुदाय में अप्रिय और दुःखद परिस्थितियां जैसे बेरोजगारी, विभाजन या युद्ध के दौरान जनता का प्रवसन आदि से भी समंजन की समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समंजन की समस्याएं तब उठती हैं, बच्चे की मूल संवेगात्मक आवश्यकताएं पूरी नहीं होती या किसी कारणवश अपूर्ण रहती हैं और जब उसे वे अवसर नहीं मिलते जिनमें तनावों का निकास हो सके या उसे संवेगों के निकास के ऐसे उपागम के बारे में नहीं बताया जाता जो समाज द्वारा स्वीकृत हैं।

कुसमंजित बच्चों की मदद करने में शिक्षक का कार्य

समस्यात्मक व्यवहार और व्यक्तित्व के कुसमंजन की समस्या से निपटने के लिए आधुनिक दृष्टिकोण निवारण पर बल देता है। इसका आधार यह सिद्धान्त है कि व्यक्ति के अच्छे समंजन का सर्वोत्तम तरीका उसके चारों ओर ऐसा पर्यावरण निर्मित करना है जिसमें वह अपनी संभावनाओं को पूरी तौर से विकसित कर सके, संवेगात्मक स्थिरता, और व्यक्तिगत और सामाजिक पर्याप्तता प्राप्त कर सके।

इसमें शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि बच्चे अपने क्रियाशील जीवन का महत्वपूर्ण भाग स्कूल में व्यतीत करते हैं।

शिक्षकों को बच्चों के प्रसामान्य लक्षणों को जानना चाहिए जिससे असमंजन के संकेतों को शुरू में ही पहचान सके। उन्हें ऐसे बच्चों की ओर सतर्क रहना चाहिए जो "अत्यधिक सुस्त", अत्यधिक आक्रमक, निरंतर दिव्य-स्वप्न देखने वाले, आलोचना के प्रति संवेदनशील, बहुधा साथियों के बगैर रहने वाले, और जिन्हें अकसर

संवेगात्मक विकलता होती है। उन्हें शिक्षक-छात्र संबंधों पर भी निगरानी रखनी चाहिए स्नेह के साथ दृढ़ता को संयुक्त करना चाहिए और बच्चों को यह बताना चाहिए कि उनसे क्या अपेक्षाएं हैं। शिक्षक की सत्तावादी मनोवृत्ति उतनी ही असहायक है जितनी दुर्बल और झुक जाने की मनोवृत्ति। इसके अलावा बच्चों के साथ व्यवहार में शिक्षक को बिल्कुल निष्पक्ष होना चाहिए। सामाजिक अनुमोदन और सफलता बच्चों को सहयोगशील बनाती है। इसलिए पाठ्योत्तर और सहगामी क्रियाकलापों को इस क्रम से रखना चाहिए कि कम समंजित छात्रों को किसी न किसी क्षेत्र में सफलता का अनुभव प्राप्त हो जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ सके और उन्हें कार्यसिद्धि की अनुभूति हो सके। उत्तेजित करने वाले प्रत्यक्ष कारकों को दूर करना चाहिएं सभी बच्चे, जिनमें मन्दित और बाधाग्रस्त सम्मिलित हैं, ऐसा महसूस करें कि उन्हें चाहा जाता है और वे स्नेह के पात्र हैं और उनमें विभिन्न प्रकार की अभिरुचियों को विकसित करना चाहिए। उन्हें खेल खेलने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, स्कूल के हाबी क्लब का सदस्य बनाना चाहिए और सृजनात्मक कार्यक्रमों में भाग लेने और अन्य बच्चों के साथ मेलजोल करने को प्रोत्साहित करना चाहिए। माता-पिता और शिक्षकों के बीच सहयोग और सलाह मशवरा बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य के आरक्षण और संवर्धन के लिए आवश्यक हैं।

भाग-4

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

शिक्षक अपना अधिक समय और प्रयास बच्चों को सिखाने में लगाता है। कक्षा में और कक्षा के बाहर के क्रियाकलाप बच्चों को सिखाने के लिए निर्धारित किए जाते हैं, या यों कहना चाहिए कि स्कूल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित किए जाते हैं।

ज्ञान की प्रमात्रा तेजी से बढ़ रही है। इसके साथ-साथ हमें बच्चों को क्या सिखाना है, इसकी धारणा में भी विस्तार हुआ है। अब हम केवल विषय ज्ञान सिखा कर ही संतुषट नहीं हो सकते, किन्तु हमें अन्य पक्षों, जैसे, विभिन्न कौशलों, आदतों, और अभिवृत्तियों आदि पर ध्यान देना होगा।

इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षण और अधिगम प्रगुणता से अग्रसर हों। यह तभी संभव हो सकता है जब शिक्षक इस बात को स्पष्ट समझें कि अधिगम की प्रक्रिया क्या है। आगे आने वाले अध्यायों में पहले अधिगम के सामान्य सिद्धान्तों की और बाद में शिक्षार्थियों के लिए किस-किस प्रकार के अधिगम आवश्यक हैं, विवेचना की जाएगी।

का (देखना, सुनना, छूना, सूंघना, चखना) उपयोग करने का अवसर यथासंभव मिल सके।

5. ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करके जिनमें बच्चे सक्रिय हो सकें और जिनमें उन्हें स्वयं समस्याओं के हल ढूंढ़ने पड़ें।
6. बच्चे अपने लक्ष्य तय करें।
7. बच्चों को अपने प्रयासों के परिणामों की जानकारी मिले।
8. बच्चों को सफलता के अनुभव प्रदान करके।
9. बच्चों को उनके कार्य के लिए पुरस्कृत करके और दण्ड को दूर रख कर।
10. ऐसी व्यवस्था करके कि बच्चे को प्रयास करने के तुरन्त बाद या शीघ्र पुरस्कार मिल सके।
11. कक्षा में एक प्रमुदित वातावरण का निर्माण करके।
12. अपने आप से और अन्य लोगों से प्रतियोगिता करने के अवसर प्रस्तुत करके।

अध्याय 26

अधिगम का अन्तरण

ईवलिन मार

दीपिका घर पर मिट्टी से खेल रही है। वह छोटे-छोटे प्याले, रकाबी छोटे जानवर, आदि बना रही है, और उन्हें धूप में रख कर सुखा रही है। सरिता की मां उसे मिट्टी से खेलने नहीं देती। जब दीपिका और सरिता दोनों बालकक्ष (nursery)में प्रवेश लेती हैं तो उन्हें प्लास्टेसीन दिया जाता है, सरिता को प्लास्टेसीन को आकार देने में कठिनाई होती है, जबकि दीपिका मिट्टी से खेलने से पूर्व-अुनभव के कारण तुरन्त प्लास्टेसीन के छोटे-छोटे खिलौने बनाने लगती है।

सरिता वर्तिका और पेन्सिल के आरेखण करती रहती है। दीपिका ने शायद ही कभी पेन्सिल पकड़ी हो। जब शिक्षक उन्हें पढ़ाता तो सरिता दीपिका की अपेक्षा अधिक आसानी से अक्षर बना लेती है।

बच्चों को बीजगणित में भिन्न (fraction) के जोड़ और घटा करने हैं। शिक्षक उन्हें बताता है कि यहां जो सिद्धांत है वह वही है जो अंकगणित के जोड़ने और घटाने में प्रयोग में आता है शिक्षक उदाहरण देकर बताता है कि $\frac{a}{c} + \frac{b}{cd}$ उसी प्रकार का जोड़ है जैसा 2/3 + 5/12। इस प्रकार उन्होनें सीखा कि बीजगणित सीखने में अंकगणित मदद करता है। जब एक परिस्थिति में या एक प्रकार की सामग्री में किसी दूसरी परिस्थिति से कार्य करने में मदद मिलती है, इसे सकारात्मक अन्तरण कहते हैं। ऐसा नहीं कि केवल ज्ञान या कौशल अधिगम को आगे बढ़ाते हों, बल्कि अध्ययन और सीखने की विधियों का भी अन्तरण होता है। यदि बच्चों को एक लेखांश को याद करने का कोई अच्छा तरीका सिखाया गया है, तो यह देखा गया है कि अन्य लेखांशों को याद करने मे इससे मदद मिलती है। एक समस्या का समाधान ढूंढ़ना सीखने से अन्य समस्याओं के समाधान ढूंढ़ने में मदद मिलती है। हम कह सकते हैं कि बच्चे किस तरह सीखना है यह सीख सकते हैं और आगे आने वाले कार्य के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है।

अन्तरण को सुसाध्य बनाने वाली स्थितियां

1. यदि दो कार्यों में कुछ समानता होती है तो अन्तरण होता है। एक हिन्दी भाषी बच्चा बंगला और अंग्रेजी दोनों सीख रहा है, उसे किसमें सरलता होगी ? बंगला सीखने में, क्योंकि बंगला और हिन्दी में बहुत से ऐसे शब्द हैं जो दोनों भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। मिट्टी के प्लास्टेसीन के खिलोने बनाने में समानता है। छोटे बच्चों के लिए आरेखण और अक्षर बनाने में समानता है। भिन्न के जोड़ और घटाने में अंकगणित और बीजगणित में समानता है। इसलिए इन सभी में कार्य का अनुभव दूसरे कार्य में समानता है।

2. दो कार्यों के बीच समानता का होना ही पर्याप्त नहीं है यह समानता शिक्षार्थी को दिखाई देनी चाहिए, यानी उसकी समझ में यह आना चाहिए कि दोनों में समानता है।

3. उदाहरण के लिए, यदि शिक्षक केवल यह लिख देता है कि a/c + b/cd और बच्चों को बिना यह बताए कि जोड़ कैसे करना है, जोड़ने को कहता है, तो केवल कुछ तेज बच्चे इसमें और अंकगणित में स्वयं समानता जान सकेंगे अन्य बच्चों के लिए शिक्षक को स्वयं बोर्ड पर अंकगणित और बीजगणित के जोड़ों को लिखना होगा और समानता समझानी होगी। समानता समझ में आने के बाद अपने वे शायद आप प्रश्न कर सकेंगे, यानी अधिगम का अन्तरण हो सकेगा।

अधिगम का अन्तरण अधिक होगा यदि शिक्षार्थी अधिगम का नई परिस्थितियों में उपयोग करने का इच्छुक है।

4. जब तक बच्चे बीजगणित में जोड़ के प्रश्न करना नहीं चाहते, वे अपने अंकगणित का ज्ञान उनके प्रयोग में नहीं करेंगे। प्रयास करने के लिए उनमें प्रेरणा होनी चाहिए। यदि उनकी आदत इस बात की पड़ी हुइ है कि शिक्षक बताए कि कैसे जोड़ करना है। यहां ज्ञान अन्तरण नहीं हुआ बल्कि कार्य करने की आदत अन्तकरण हुआ।

5. अधिगम का अन्तरण शिक्षार्थियों की योग्यता पर निर्भर करेगा। शिक्षार्थी जितना बुद्धिमान होगा उतनी ही अधिक संभावना अन्तरण होने की है।

जैसा पहले कहा गया है, तेज बच्चे अपने आप जान जाएंगे कि बीजगणित के जोड़ , जो उन्हें करने हैं, अंकगणित के जोड़ के समान हैं जो उन्होने पहले किए हैं, और बिना शिक्षक की सहायता के कर लेंगे। अन्य बच्चों के लिए शिक्षक को दोनों को साथ-साथ प्रस्तुत करना, यानी 2/3 + 5/12 और a/c + b/cd और इसी प्रकार के अन्य जोड़े बोर्ड पर लिखने होंगे। शिक्षक को समानता भी बरतनी होगी। इस सहायता के बाद अधिकांश बच्चे बीजगणित के प्रश्न कर लेंगे। किंतु संभवतया

धीमी गति से सीखने वाले बच्चे अभी नहीं कर पाएं। शिक्षक को उनहें बताना होगा कि प्रश्नों को कैसे करें।

जेम्स वाट का आविष्कार अन्तरण में योग्यता की भूमिका का अच्छा उदाहरण हैं कितने ही स्त्री पुरुषों ने उबलते हुए पानी की वाष्प से ढक्कन को ऊपर उठते हुए देखा होगा, किंतु एक व्यक्ति, जेम्स वाट, एक दूसरी परिस्थिति में जहां वाष्प इंजन को ढकेलती है, इसका अन्तरण कर सका, और इस प्रकार वाष्प इंजन का आविष्कार हुआ।

6. जितना अच्छा पहला कार्य सीखा जाएगा उतनी ही अधिक संभावना है कि अधिगम का अंतरण नई परिस्थिति में होगा।

जिन बच्चों ने अंकगणित में जोड़ना और घटना सही मानों में सीख लिया है, वे बीजगणित के उसी प्रकार के प्रश्नों को करने में अन्तरण कर लेंगे। एक बच्चा जो वर्तिका और पेन्सिल से आरेखण करता रहा है, यदि वह पेन्सिल से जैसी आकृति चाहता है वैसी बना लेता है, तो इस अनुभव से लिखना सीखने में मदद मिलेगी।

7. आधारभूत सिद्धान्तों को समझ लेना यानि सामान्यीकरण पर पहुंच जाना अधिगम में सहायक होता है।

केवल इतना सोच लेना कि वाष्प ढक्कन को ऊपर उठाती है पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि यह समझना चाहिए कि वाष्प ढकेलने की शक्ति है।

यदि एक बच्चा यह सीखता है कि शिमला दिल्ली से अधिक ऊंचाई पर है और दिल्ली से अधिक ठंडा है, डलहौजी ऊंचाई पर बसा है और वह भी ठंडा है, इससे वह मसूरी की जलवायू के बारे में, चाहे उसे यह भी बता दिया जाए कि मसरी ऊंचाई पर है, कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाएगा जब तक वह यह सामान्यीकरण नहीं समझ जाता है कि जो स्थान ऊंचाई पर स्थित हैं, वे मैदानी इलाकों से अधिक ठंडे हैं।

8. जब बच्चे सिद्धान्तों को बताए जाने के बजाए स्वयं सिद्धान्तों का पता लगा लेते हैं तब अन्तरण की संभावना बढ़ जाती हैं

उत्तोलक के सिद्धान्त का बच्चे स्वयं पता लगा सकते हैं। ढेंकी (seesaw) के खेल से या उत्तोलक द्वारा वजन उठाने से, सिद्धान्त स्वंय समझ में आ सकता है। ढेंकी के खेल में यदि एक तरफ भारी बच्चा और दूसरी ओर हल्का बच्चा हो तो बच्चों को अपने आप समझ में आ सकता है कि भारी बच्चे को केन्द्र के समीप होना चाहिए। इसी प्रकार बच्चे लम्बी भुजा, छोटी भुजा से बारी बारी से वजन उठाने का प्रयास करें और दोनों स्थितियों में वजन उठाने में अन्तर का अनुभव करें

तो इससे भी उत्तोलक का सिद्धान्त स्वयं समझ में आ सकता है। ऐसी स्थिति में सिद्धान्त का उपयोग नई परिस्थितियों में कर सकेंगे।

9. बच्चों को एक सिद्धान्त का विभिन्न परिस्थितियों में उपयोग का जितना अधिक अनुभव होगा उतना ही नई परिस्थितियों में उसका उपयोग करना सरल होगा।

उदाहरण के लिए यदि बच्चों को उत्तोलक (lever) का अनुभव केवल ढेंकी (seasaw) के खेल में हैं तो हो सकता है कि नई परिस्थितियों में वे इसका उपयोग नहीं कर सकें। किंतु यदि उत्तोलक द्वारा उन्होनें वजन उठाने की कोशिश की है, दरवाजे को खोलने में दरवाजे के कब्जे से विभिन्न दूरी पर हाथ रख कर धक्का दिया है, और इसी प्रकार के अन्य अनुभव भी किए हैं, तो इस बात की अधिक संभावना है कि नई परिस्थितियों में जैसे चक्के को सरलता से घुमाने में, या डिबों का ढक्कन चम्मच से खोलने में उत्तोलक के सिद्धान्तों का उपयोग कर सकेंगे।

ऋणात्मक अन्तरण

अभी तक हम सकारात्मक अन्तरण की विवेचना करते रहे हैं, यानी पहले का अधिगम बाद के अधिगम या निष्पादन में सहायक होता है। कभी-कभी जो हमने सीख लिया है वह नया कार्य सीखने में कठिनाई पैदा करता है। मान लीजिए कि एक हिन्दी के टाइपिस्ट ने पुराने माडल के टाइपराइटर पर टाइप करना सीखा है, और वह दफ्तर में कार्य करने आता है वहां उसे नया माडल मिलता है, उसे नया माडल पसन्द है किंतु इसमें कुछ अक्षरों का स्थान बदला हुआ है। जब वह टाइप करना प्रारभ करता है तो उन अक्षरों में, जिनका स्थान नए माडल में हुआ, गलती करता है। अब उसे नई अनुक्रिया करनी है, यानी उसी अक्षर के उद्दीपन के लिए अन्य स्थान पर अन्य उंगली चलानी है। पुरानी अनुक्रिया नए कार्य में बाधा डालती है।

कार्य और कठिन हो जाता है यदि उद्दीपन और अनुक्रिया दोनों में परिवर्तन आ जाए। मान लीजिए कि एक दिन यातायात के नियम बदले जाते हैं और हमसे कहा जाता है कि लाल बत्ती का मतलव है "जाओ" और हरी का "रुक जाओ"। जो चालक वर्षों से लाल बत्ती पर रुक रहे हैं और हरी बत्ती पर गाड़ी चला रहे हैं, उनसे निश्चय ही गलतिया होंगी।

यदि एक बार बच्चा किसी शब्द की गलत वर्तनी सीख लेता है तो उसे सही करना कठिन होता है, विशेष रूप से यदि बच्चा इसे काफी समय से लिख रहा हो। इसी प्रकार बच्चे ने यदि अक्षरों की आकृति गलत ढंग से बनाना सीखा है तो प्रारंभ से ठीक ढंग से लिखना सिखाने की अपेक्षा गलत ढंग को सही करना कठिन होता है। अध्ययन और सीखने के गलत ढंग आगे की पढ़ाई में बाधा बनतें हैं। यदि

बच्चों को समझने के बजाए रट कर याद करने की आदत पड़ गई तो यह आगे समझ कर सीखने में रुकावट बनेगी।

जैसा पहले कहा गया था अपने आप समस्याओं का हल ढूंढ़ने से इसी प्रकार की अन्य समस्याओं को हल करने में सहायता मिलेगी। किंतु कभी कभी जब समस्या हल करने के लिए एक क्रम की आवश्यकता है तब हो सकता है कि बच्चा पुरानी विधि का ही प्रयोग किए जाए और वैकल्पिक संभावनाओं को नहीं सोच सके। ऐसा तब होने की संभावना अधिक है यदि बच्चे ने केवल एक सीमित प्रकार की समस्याओं को हल करना ही सीखा हो।

अन्तरण का महत्व

अधिगम के सकारात्मक अन्तरण के लिए शिक्षण, प्रभावशाली शिक्षा का आवश्यक अंग है। हम बच्चों को जीवन की सभी परिस्थितियों के लिए तैयार नहीं कर सकते। उन्हें अपने अधिगम का उपयोग दुनिया की नई परिस्थितियों में निरंतर करते रहना चाहिए और बदलती हुई परिस्थितियों की मांग को पूरा करने योग्य बनना चाहिए।

अधिगम के अन्तरण का उदाहरण छात्र अध्यापकों के स्वयं के अनुभव में है। वे पढ़ाने की विधियों और बच्चों को सम्हालने के तरीके सीखते हैं। जब सचमुच शिक्षक के रूप में कक्षा में प्रवेश करते हैं, तब जो कुछ सीखा है, उसका नई परिस्थिति में उपयोग करना होता है। यहां अंतरण होना उतना ही उनका प्रशिक्षण उपयोगी सिद्ध होगा।

अधिगम का अन्तरण सभी सृजनात्मक कार्यों में महत्वपूर्ण है, क्योंकि सृजनात्मक कार्य में नई परिस्थिति में पुराने ज्ञान का उपयोग करनां होता है। इसलिए शिक्षण विधियां ऐसी होनी चाहिए कि वे अन्तरण को आगे बढ़ाएं। वे क्या होनी चाहिए ? स्वयं सोचने के प्रयास करिए और फिर खाने में सुझावों को पढ़िए।

अन्तरण के लिए शिक्षण में :

1. स्कूल की अधिगम की परिस्थिति के जीवन का वास्तविक परिस्थितियों से संबंध होना चाहिए।
2. बच्चों के लिए जो उन्होनें पहले सीखा है और नए सीखने के कार्य के बीच समानताओं और संबंधों को देखने के लिए पथ प्रदर्शन करना चाहिए।
3. बच्चों को निहित सिद्धान्तों का पता लगाने और सामान्यीकरणों पर पहुंचने में सहायता करनी चाहिए।
4. यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चों को इन सिद्धान्तों का सम्यक् समझ हो जाए।

5. सिद्धान्तों का उपयोग जितनी विविध परिस्थितियों में संभव हो सके उनमें करने के लिए अवसर देना चाहिये।
6. सीखने को सीखने पर (learning to learn) बल देना चाहिए। उन्हें अपने ज्ञान का नई समस्याओं के स्वयं हल ढूंढ़ने में उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
7. बच्चों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का हल ढूंढ़ने का अनुभव देना चाहिए।

अध्याय 27

मनोकौशल अधिगम

ईवलिन मार

एक तबला वादक को देखिए, उसकी उंगलियां तबले पर कैसे चलती हैं इसके पीछे उसका वर्षों का अभ्यास है। हममें से जिनको तबला बजाना नहीं आता, शायद ही एक बोल भी निकाल सकें। हम अपनी उंगलियां, एक व्यवस्थित ढंग से, उतनी तेज नहीं चला सकेंगे। किन्तु इसमें केवल उंगलियों की पेशियों का ही प्रशिक्षण नहीं है। तबला बजाने में कुछ और बातें भी आती हैं। एक तो यह समझ में आना चाहिए कि तबले के अलग-अलग भागों से विभिन्न बोल किस प्रकार निकाले जाते हैं। इसके साथ साथ संगीत की समझ भी, जिसमें लय, ताल, राग और स्वर का ज्ञान आते हैं, होनी चाहिए। मन और शरीर दोनों ही इस अधिगम में सम्मिलित हैं।

अब हम विचार करें कि खेल जैसे हाकी क्रिकेट या कबड्डी खेलना कैसे सीखते हैं। खेल के नियम सीखना आवश्यक है, कैसें बल्ला या हाकी स्टिक पकड़ी जाती है, कैसे गेंद को मारा जाता है, इत्यादि। किन्तु समझना ही पर्याप्त नहीं है। केवल आदेशों का अध्ययन करके हम खिलाड़ी नहीं बन सकते। पेशीय समन्वय स्थापित करने के लिए अभ्यास आवश्यक है तो इस प्रकार के अधिगम में हम देखते हैं कि समझ और पेशियों का प्रशिक्षण दोनों ही सम्मिलित हैं। कुछ आदतें हमारे जीवन का अंग बन गई हैं। हम उन्हें बार-बार करके सीखते हैं और साधारणतया प्रारंभ में समझ से। एक शिष्ट व्यक्ति खांसी आने पर अपने मुंह के आगे हाथ रखता है। ऐसा करने के लिए उसे सोचना नहीं पड़ता, किन्तु आदत के कारण स्वतः ऐसा हो जाता है। अब यह केवल हाथ की क्रिया ही नहीं है बल्कि एक आदत जो इसलिए बनी है कि उसने इस बात को समझ लिया था कि वह दूसरों को रोगाणु से बचाने का एक तरीका है। पहले इसने जानकर ऐसा किया, और बाद में उसने आदत का रूप ले लिया।

ये सभी अधिगम के रूप हैं, जिनमें समझ और पेशियों का प्रशिक्षण सम्मिलित

हैं, और इन्हें मनोकौशल अधिगम (psychomotor learinig) कहते हैं। कौशल और आदतें इसी प्रकार से सीखी जाती हैं। हमारे दैनिक जीवन में हमें इस प्रकार के अधिगम की काफी आवश्यकता रहती है। प्रातः हम कपड़े पहनते हैं और इस कार्य में हमें यह नहीं सोचना पड़ता कि कपड़ों को कैसे पकड़ें और पहनें, कैसे कंघी करें, इत्यादि। इसी प्रकार दिनभर, जौ कौशल और आदतें हमने सीखी हैं वे जो कार्य हमें करने हैं, उन्हें करने में मदद करती हैं।

निम्नलिखित में से कौन से मनोकौशल के दृष्टान्त हैं।

1. खेत में हल चलाना।
2. मानसून के कारण का पता करना।
3. अपने दांतो की सफाई करने का तरीका सीखना।
4. भोजन करना सीखना।
5. यह पता करना कि डीजल पम्प किस प्रकार कार्य करता है।
6. मवेशियों की बीमारियों के बारे में पता करना।
7. मोटर चलाना सीखना।

कौशल

सभी मुनष्यों को बहुत से कौशल सीखने पड़ते हैं। चलना, दौड़ना, साईकिल चलाना, बुनना, पढ़ना, लिखना, ये सब कौशल के उदाहरण हैं। कुछ कौशल जैसे चलना आवश्यक है। अन्य ऐसे हो सकते हैं जो कि आवश्यक तो नहीं किन्तु जीवन की सुगम बनाते हैं और जिनको जानने से समय तथा परिश्रम की बचत होती है। दो मित्र सड़क पर साइकिल चलाते जा रहे हैं और आपस में बातचीत कर रहे हैं। उनमें से किसी को यह सोचना नहीं पड़ता कि "अब मुझे दायां पैडल चलाना है और अब बायां।" इसी प्रकार जब हम लिखते है। तब हम केवल यह सोचते हैं कि हमें क्या लिखना है। हमें अपनी उंगलियों के संचालन के बारे में सोचना नहीं पड़ता। हम तेजी से और बिना परिश्रम के लिख लेते हैं।

मनोविनोद और आनन्द के लिए भी हम कौशल सीखते हैं। जैसे, बाजा बजाने, और खेल खेलने के लिए कौशल सीखते हैं

जब एक कौशल भली प्रकार सीख लिया जाता है तब उसे करने में गति और चरूता (grace) आ जाती है, तथा व्यक्ति उसे सुगमता से कर लेता है। खेल में हम देखते हैं कि कुशल खिलाड़ी तेज गति से संचलन करते हैं, जो सुचारू दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि जो कार्य वे कर रहे हैं वह बहुत सुगम हैं। जब हम स्वयं उसे करने का प्रयास करते हैं तो हमें पता लगता है कि कार्य कितना कठिन है।

यह बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चों की उन कौशलों को सीखने में मदद की जाए

जो जीवन में महत्वपूर्ण हैं। यह भी आवश्यक है कि वे प्रारंभ से सही ढंग से उन्हें करना सीखें। प्रारंभिक अवस्था में गलत सीखना बाद में एक अड़चन बन जाता है क्योंकि गलतियों को भुलाना कठिन होता है। उदाहरण के लिए यदि बच्चे ने अस्पष्ट लिखावट लिखना सीखा है तो बाद में उसकी लिखावट में सुधार लाना कठिन हो जाता है।

शिक्षक और अधिगम का शिक्षण

अब हम देखेंगे कि एक कौशल के शिक्षण और सीखने में कौन-कौन से तत्व सम्मिलित हैं। स्कूल के प्रत्येक बच्चे को लिखना सीखना होता है और इसलिए हम इसे मुख्य उदाहरणों के रूप में ले लेंगे।

अधिगम की तत्परता

किसी कौशल को तब सिखाया जा सकता है जब बच्चा उसे सीखने के लिए तत्पर हो। हम बच्चे को पांच या छः वर्ष की आयु के पहले लिखना नहीं सिखाते क्योंकि वह इसके लिए तत्पर नहीं होता। जब बच्चे पांच या छः वर्ष की आयु पर स्कूल आते हैं तब भी समानरूप से लिखने के लिए तत्पर नहीं होते। कुछ बच्चे तेज होते हैं और उन्हें पहले से पढ़ना सीखने का अवसर मिल जाता है। इसलिए, लिखना सीखना अपेक्षाकृत उनके लिए सुगम होता हैं। कुछ बच्चे धीमी गति से सीखते हैं। वे पढ़ नहीं पाते, इसलिए उनके लिए कठिन हो जाता हैं कुछ बचचों ने कभी किताबें नहीं देखीं। उनके लिए अक्षर पहचानना और बनाना कठिन होता है। कुछ बच्चों को पेन्सिल से आरेखन करने का अनुभव है। कुछ ने कभी पेन्सिल नहीं पकड़ी। कुछ बच्चों में सूक्ष्म पेशीय समन्वय की कमी होती है और इसलिए उनकी उंगलियां पेन्सिल पकड़ने के लिए अभी तैयार नहीं हैं। इस प्रकार बहुत से कारक हैं जो तत्परता को निर्मित करते हैं। कुछ कारक आनुवंशिक हैं, जैसे बच्चे की योग्यता और हाथ की बनावट। कुछ पूर्व अनुभव पर निर्भर करते हैं जैसे किताबों को देखने के और लेखन सामग्री का प्रयोग करने के प्राप्त अवसर।

तत्परता सीखने के लिए बच्चे की उत्कण्ठा पर निर्भर करती है। यदि बच्चा किसी कौशल को सीखना चाहता है तो वह उसे सीखने के लिए कठिन परिश्रम करेगा।

किसी बच्चे को कोई कौशल जबरदस्ती सिखाने की कोशिश करने से, जबकि बच्चा इसके लिए तैयार नहीं है, कोई लाभ नहीं होता। वास्तव में तो इससे वह हतोत्साहित हो जाता है और जब उसमें तत्परता विकसित हो भी जाएगी तब भी उसे प्रयत्न करने के प्रति भय बना रहेगा। जब तक वह तत्पर न हो, रुकना और तत्परता विकसित करने में उसकी सहायता करना, अच्छा रहेगा। उदाहरण के लिए, जिन बच्चों का किताबों से सम्पर्क नहीं हुआ, या पेन्सिल का प्रयोग करने का अवसर नहीं

मिला है, उन्हें किताबें देखने के लिए देकर और पेन्सिल से कागज पर जैसी रेखाएं वे खीचंना चाहें की खीचंना की अनुमति देकर, तत्परता विकसित करने में सहायता की जा सकती है।

जिन कौशलों की आवश्यकता खेल खेलने, तैरने, नृत्य करने, पढने, लिखने और इसी प्रकार के कार्या करने में पड़ती हैं, प्रत्येक में हमें यह देखना चाहिए कि बच्चा कब सीखने के लिए तत्पर होता है जब तत्पर हो, हम कौशल सिखाना प्रारंभ कर सकते हैं। इसमें निम्नलिखित शिक्षक-छात्र क्रियाएं सम्मिलित हैं।

1. मौखिक निर्देश : मौखिक निर्देश संक्षिप्त होने चाहिएं, विशेषकर छोटे बच्चों के लिए। लिखना सिखाने में हम एक दो वाक्यों में निर्देश दे सकते हैं, जैसे, "अपनी कलम पहली पंक्ति रखो", "या अपनी किताब में देखो अक्षर कैसे बना है" या "इस रेखा को *लम्बी बनाओ।" यह आवश्यक नहीं है कि निर्देश प्रारंभ में ही दिए जाएं।* निर्देश कभी भी आवश्यकतानुसार दिए जा सकते हैं, किन्तु वे संक्षिप्त और स्पष्ट होने चाहिएं। आयु में बड़े छात्रों को अधिक विस्तृत निर्देश, जिनको देने में अधिक समय लगता है, प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे एक प्रशिक्षक (coach) टीम से कई मिनट बात कर सकता है, किन्तु यदि यह लम्बी वार्ता हो जाती है, उन्हें इससे अधि क लाभ नहीं होगा।

2. प्रतिरूपण (Modelling) : प्रतिरूप किसी कार्य को करने के ढंग का प्रदर्शन है। एक प्रशिक्षक यह प्रदर्शित कर सकता है कि गेंद जाल में कैसे फेंकनी है। कूदने की तैयारी में पैर कैसे रखने चाहिए। लिखना सिखाने में प्रशिक्षक यह प्रदर्शित कर सकता है कि कलम कैसे पकड़ें। किसी अक्षर को लिखने के लिए कलम को कैसे चलाएं। बच्चों के सामने अक्षरों को, जिनकी वे नकल करें प्रस्तुत करना लिखावट के प्रतिरूपण के लिए एक आवश्य अंग है। इनको शिक्षक बोर्ड पर लिख सकता है या अभ्यास पुस्तकों में छपवाया जा सकता है। कभी-कभी अक्षर हलकी स्याही में छापे जाते हैं और बच्चा इसके ऊपर कलम चलाता है। इन सब से बच्चा अक्षर लिखना सीखता है।

3. शारीरिक परिचालन (Manipulation) : कभी कभी बच्चे का शारीरिक परिचालन करना सहायक होता है। हो सकता है कि गेंद फेंकने में बच्चा अपने हाथ को ठीक से नहीं फिरा रहा। ऐसी स्थिति में प्रशिक्षक बच्चे के हाथ को पकड़ कर फिरा सकता है जिससे उसे संचालन करने का सही ढंग पता चल सके। नृत्य का प्रशिक्षण बच्चे के हाथ और पैर को सही स्थिति में रखने में सहायता कर सकता है। लिखना सिखाने में शिक्षक को कभी कभी बच्चे का हाथ पकड़ कर सही परिचालन सिखाना होता है। यदि बच्चे का हाथ ढीला है तो इससे उसे सीखने में मदद नहीं

मिलती, किन्तु यदि बच्चा कोशिश कर रहा है तो शिक्षक अपने हाथ से बच्चे के हाथ को हलके से सही दिशा में आगे बढ़ा कर सीखने में सहायता कर सकता है।

4. भूलों को रोकना और सुधारना : सही संचालन का प्रारंभ से सीखना बहुत महत्वपूर्ण है। यदि ग़लतियां होती हैं और वे बार-बार होती हैं, तो उन्हें भुलाना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि एक बार ग़लत अक्षर बच्चा सीख लेता है, तो उसे सही करना कठिन हो जाता है। अक्षरों को सही बनाने में रेखाएं भी मदद कर सकती हैं। ऐसी अभ्यास पुस्तिकाएं बाजार में मिलती हैं जिनमें अनुप्रस्थ रेखाएं खिंची रहती हैं और इन रेखाओं के बीच में अक्षर लिखने होते हैं, किन्तु कुछ में रेखाओं के बीच पर्याप्त जगह छोड़ने पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। इसलिए इनका चयन सावधांनी से करना चाहिए। कभी कभी शिक्षक को बच्चों की अभ्यास पुस्तकों या तख्तियों पर रेखाएं खीचंनी होती हैं। कुछ स्कूल के शिक्षकों ने मोटे प्लास्टिक या सख्त कागज पर रेखाओं के स्टेंसिल कटवा लिए हैं। इनसे बच्चे बिना समय नष्ट किए रेखाएं खीचं सकते हैं।

5. अभ्यास : सभी जानते हैं कि कौशल के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। किन्तु अभ्यास केवल दोहराना ही नहीं है। दोहराने में भूलें मिटनी चाहिए और कार्य करने में सुधार होना चाहिए। प्रारंभिक अवस्था में सही संचलन करने में और भूलों के विलोपन पर बल होना चाहिए। जब तक यह न हो अत्यधिक दोहराना ठीक नहीं है। यदि बच्चों को, सही अक्षर बनाना सीखने के पहले, पूरे पृष्ठों को लिखने को कहा जाए तो उनकी लिखावट खराब बनेगी और अक्षरों की आकृति गलत होगी। ऐसा होने की संभावना और भी अधिक हो जाती है यदि वे किसी दबाव के अन्तर्गत और तेजी से लिखते हैं।

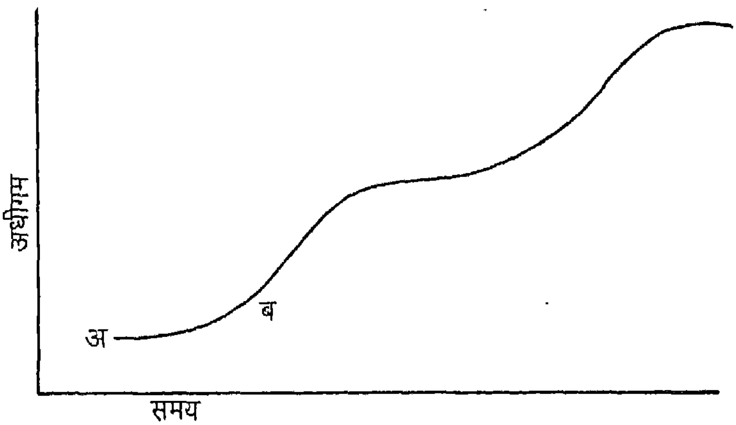
अभ्यास के साथ अनावश्यक संचलन धीरे-धीरे विलोपित हो जाते हैं। एक बच्चा लिखते समय ऐसा लगता है मानो अपने संपूर्ण शरीर का उपयोग कर रहा हो। बाद में पूरी भुजा और हाथ कार्य में आते हैं; और अन्त में वयस्कों के समान केवल उंगलियों का संचालन लिखने में होता है। हम यह भी देखते हैं कि कुशल कारीगर या अच्छे खिलाड़ी बहुत कम अनावश्यक संचलन करते हैं। इसी कारण उनके संचलन सुगम और सुचारू दिखाई देते हैं।

गति और परिशुद्धता प्राप्त करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। एक बार जब बच्चों ने सही परिचलन सीख लिया तब गति पर बल देना चाहिए। किन्तु शिक्षक को इस बात की ओर सावधान रहना चाहिए कि गति के कारण जो भूलें हों उनका सुधार होता रहे।

अभ्यास छोटे काल खण्डों में करना चाहिए। बीच में किसी अन्य क्रियाकलाप

को लगाया जा सकता हैं यदि अभ्यास बिना रुके बहुत देर के लिए चलता है तो थकान आ जाती है जिसके कारण गलतियां होने लगती हैं। यहां तक कि कार्य के प्रति अरुचि भी उत्पन्न हो सकती है। अभ्यास के कालखंड की लम्बाई क्रियाकलाप और बच्चों की आयु पर निर्भर करेगी। सामान्यतया जितनी बच्चों की आयु कम हो अभ्यास का कालखण्ड भी उसी के अनुरूप छोटा होना चाहिए।

किसी कौशल को सीखने में यह देखा गया है कि अभ्यास करते रहने पर भी ऐसी समयावधि आती है जब प्रगति प्रत्यक्ष में दिखाई नहीं देती। ऐसे कालों का पठार कहते हैं। किन्तु ऐसा लगता है कि इन समयावधियों में भी कुछ सीखना चाहता है, क्योंकि यदि शिक्षार्थी लगा रहता है, कुछ समय बाद प्रगति दिखाई देती है। कौशल का सीखना अधिकतर नीचे दिए गए वक्र के अनुसार होता है।



चित्र–12. कौशल वक्र

प्रारंभ में, यदि कार्य जटिल है, तो बहुत कम प्रगति होती है। एक छोटा बच्चा जो लिखना सीख रहा है, अक्षर बनाने में सामान्यतया काफी समय लेता है। किन्तु यदि कार्य प्रशिक्षार्थी के लिए सरल है, तो प्रारंभ से ही प्रयोग होगी और वक्र "ब" से प्रारंभ हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि दस या ग्यारह वर्षीय बालक डार्ट (dart) फेंकने का अभ्यास कर रहे हैं, तो वे तेजी से प्रगति करेंगे। इसी प्रकार, यद्यपि साधारणतया सीखने में पठार आते हैं, कुछ प्रशिक्षार्थी किन्हीं कार्यों में बिना पठार के बराबर प्रगति दर्शाते हैं। फिर भी, जैसे एक उच्च मानदण्ड पर पहुंचते हैं, प्रगति धीमी हो जाती है। उदाहरण के लिए, एक बालक दस फुट की दूरी से डार्ट

केन्द्र पर मार लेता है। कुछ और अभ्यास के. बाद वह यह दूरी ग्यारह या बारह फुट बढ़ा सकता है। किन्तु इसके बाद एक ऐसा बिन्दु आयेगा, जब दूरी को आधे फुट पर बढ़ाने के लिए घण्टों का अभ्यास उसे करना पड़ेगा। इसी प्रकार हम देखते हैं कि एक व्यक्ति प्रतिदिन कुछ घण्टो के अभ्यास के बाद शौकिया संङ्गीतज्ञ बन सकता है। किन्तु यदि उसे पेशेवर मानदण्ड प्राप्त करनें हों तो उसे दिन प्रति दिन लम्बे समय तक अभ्यास करना होगा और यह कार्य वर्षों चलेगा।

शिक्षक को देखना चाहिए कि प्रशिक्षार्थी पठार की अवस्था पर हतोत्साहित नहीं हो जाता, और अभ्यास चालू रखता है। उसे प्रशिक्षार्थी को बताना चाहिए कि पठार का आना एक सामान्य बात है और कुछ समय बाद प्रगति होगी।

कभी कभी प्रगति इसलिए नहीं होती कि प्रशिक्षार्थी गलत विधि अपना रहा होता है। हो सकता है कि बच्चा कलम को सही ढंग से पकड़ नहीं रहा, और इस कारण अक्षरों की बनावट और लिखने की गति में प्रगति नहीं होती एक दूसरा बच्चा ऊंची कूद में प्रारंभ मे गलती कर रहा है। शिक्षक को देखना चाहिए कि प्रगति की कमी क्या सामान्य पठार के कारण है, या विधि में कोई गलती है। उपरोक्त स्थिति में उसे बच्चों की गलती सुधारने में मदद करनी चाहिए।

6. प्रोत्साहन : कौशल के सीखने में आत्मविश्वास का महत्वपूर्ण कार्य है। यदि आप साईकिल चलाना सीख रहे होते और कोई कहता, "नहीं, ऐसा नहीं करिए, आप हैण्डिल को ठीक से नही पकड़ रहे हैं, " तब आप शायद गिर जाते। इसके विपरीत आप से कोई कहता, "बहुत अच्छा, आप ठीक चला रहे हैं, चलाते जाइए, तो यदि आप गिरने वाले होते तो भी नहीं गिरते और चलाते जाते। यदि व्यक्ति अपनी योग्यता पर संशय करने लगेगा, या शंकित जो जाएगा तो स्वाभाविक है कि वह डगमगा जाएगा और उसका निष्पादन उतना अच्छा नहीं रहेगा। एक कुशल व्यक्ति यह नहीं सोचता कि वह किस प्रकार का संचलन कर रहा है। उसका निष्पादन स्वचालित होता है। वास्तव में यदि वह अपने संचलन की ओर ध्यान देता है तो गलती होने की संभावना बढ़ जाती है। बच्चों में भी इस प्रकार आत्मविश्वास जगाना चाहिए। इसलिए प्रोत्साहिन और तनावरहित मन कौशल के प्रशिक्षण का बहुत महत्वपूर्ण अंग है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि निर्बाध, स्वचालित निष्पादन जिसमें परिशुद्धता और गति दोनों ही कौशल सिखाने के प्रशिक्षण का उद्देश्य हैं। इसके लिए अच्छा निर्देशन अभ्यास और आत्मविश्वास आवश्यक है।

आदतें

एक व्यक्ति ने अपनी घड़ी सुधारने दी है। किन्तु जब भी वह समय जानना

चाहता है वह अपनी कलाई की ओर देखता है। इन दिनों घड़ी उसकी कलाई पर नहीं बंधी है, किन्तु उसकी आदत है कि जब भी वह समय जानना चाहता है वह अपनी कलाई की ओर देखता है। वह ऐसा दिन में कई बार करता रहा है और इसलिए यह उसकी आदत बन गई है।

कोई आपको एक चीज देता है और आपके मुंह से निकलता है, अकसर बिना सोचे, "धन्यवाद," क्योंकि यह आपकी आदत है।

लीला ऊंची आवाज में बोलती है यह उसकी आदत है। यदि आप उससे धीमी आवाज में बोलने को कहते हैं, कुछ देर तो धीमी आवाज में बोलेगी, किन्तु फिर, आदत के अनुसार तेज आवाज में बोलने लगेगी।

हम जीवन में बहुत सी आदतें सीखते हैं, उनमें से कई बाल्यकाल में। व्यक्ति किस प्रकार बैठता, खड़ा होता, चलता, और बोलता है, उसकी आदत पर निर्भर करता है। शिष्ट और अशिष्ट व्यवहार भी आदतों पर निर्भर करता है। कुछ आदतें अच्छी होती हैं, कुछ बुरी, और कुछ न बुरी न अच्छी। जो आदतें बचपन में बन जाती हैं जीवन पर्यन्त चलती हैं। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि बच्चे अच्छी आदतें सीखें और बुरी आदतों से बचें। कुछ आदतें ऐसी हैं जिन्हें आदतों के रूप में नहीं पहचाना जाता। उदाहरण के लिए वर्तनी। हम शब्दों को लिखते हैं बिना उनकी वर्तनी के बारे में सोचे। ऐसा हम आदत से करते हैं। वास्तव में यदि हम वर्तनी सोचने के लिए रुकते हैं तो कभी-कभी जो शब्द हम सरलता से सही लिख लेते थे, उनकी वर्तनी का पुनः स्मरण कठिन हो जाता हैं सच बोलना या झूठ बोलना ये सभी कुछ सीमा तक आदतों पर आधारित हैं। हमें बच्चों में सच बोलने की आदत डालनी चाहिए।

कभी कई आदतों का एक समग्र किसी वांछित व्यवहार को बनाते हैं। उदाहरण के लिए शिष्ट व्यवहार में बहुत सी अच्छी आदतें आवश्यक हैं। इसी प्रकार कई आदतों से अच्छे अध्ययन की आदत बनती है।

आदतों का विरचन (Formation of habits)

आदतें पुनरावृत्ति से बनती हैं। हम कुछ व्यवहारों को बार बार दोहराते हें तो वे आदतों का रूप ले लेते हैं। कुछ आदतें अनजाने में बन जाती हैं और हमें पता भी नहीं चलता कि वे बन रही हैं। यदि हम जान कर कोई आदत डालना चाहते हैं तो इसके लिए सलाह दी गई है कि सीखने वाले को आदत बनाने के लिए दृढ़ संकल्प करना चाहिए, और संकल्प पर जितनी जल्दी हो सके कार्य करना चाहिए। शिक्षक छात्रों को आदतों का महत्व और उनके विरचन के लाभ बता कर संकल्प करने में मदद कर सकते हैं, जैसे, सच बोलने की आदत, स्वच्छ और सही वर्तनी के

प्रयाग की आदत, आदि बच्चों को अपने संकल्प पर जितनी जल्दी संभव हो सके कार्य करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। यदि शिक्षक ने स्वच्छता के महत्व पर विचार विमर्श किया और बच्चों ने स्वच्छता से कार्य करने का संकल्प किया है तो उन्हें तुरन्त ऐसा कार्य देना चाहिए जिसे वे स्वच्छता से करें। इसके विपरीत, यदि वे स्वच्छ कार्य करने का संकल्प करते हैं, और इसके बाद खेलने के लिये चले जाते हैं, और अगले दिन् तक लिखित कार्य करने का कोई अवसर नहीं मिलता तो उनकें संकल्प का प्रभाव कम होगा।

आदतों के बनने में निर्णायक कारक पुरावृत्ति है जिन व्यवहारों की पुनरावृत्ति हासेती है वे आदत बन जाते हैं। यदि हम बच्चों में किसी कार्य करने की आदत डालना चाहते हैं तो हमें वह कार्य उनसे बार-बार करवाना चाहिए जैसे, सामान्य शिष्टाचार की आदत डालने के लिए हमें बार-बार उसकी याद दिलानी होगी, या हम वे शब्द जिनकी वर्तनी सिखानी है बार-बार उनसे लिखवाएं। वांछित व्यवहार के पुनर्बलन या पुरस्कार द्वारा हम उनकी पुनरावृत्ति के लिए उन्हें प्रोत्साहित कर सकते हैं।

कभी कभी एक अच्छी आदत डालने में कोई बुरी आदत को समाप्त करना होता है। यदि बच्चा चलने में पैर घसीट कर चलता है, तो पैर घसीटकर चलने पर डांटने के बजाए यह अच्छा होगा कि जब वह ठीक से चले तो उसका अनुमोदन किया जाए। इसी प्रकार बच्चे को स्वच्छता के लिए पुरस्कृत करना अस्वच्छता पर डांटने से अच्छा है।

जब अच्छी आदत बन रही हो उस समय कोई चूक नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक चूक पीछे ढकेलने जैसी बात है। बच्चों को ऐसी स्थिति में नहीं डालना चाहिए जहां वे झूठ बोलने के लिए बाध्य हो जाएं। बच्चों से ऐसे शब्द लिखवाने से, जिनकी वर्तनी में वे गलती करेंगे, बचना चाहिए। उन्हें अवसर की मांग के अनुरूप सदैव शिष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए न कि कभी-कभी।

लगातार अभ्यास से आदत बनती है जो स्वभाव का अंग बन जाती है। अच्छी आदतें कार्यक्षेत्र में और एक प्रीतिकर व्यक्ति के विकास में, दोनों ही एक अनगोल गुण के रूप हैं।

अध्याय 28

ज्ञान का अर्जन

ईवलिन मार

स्कूल का प्रमुख कार्य छात्रों को ज्ञान अर्जित करने में मदद करना है। कक्षा का कार्य, गृह कार्य, ये सब ज्ञान प्रदान करने के लिए होते हैं। यह सही है कि छात्र स्कूल के अन्दर और बाहर भी अनुभव द्वारा ज्ञान अर्जित करते हैं। वास्तव में हम जीवन पर्यन्त ज्ञान अर्जित करते हैं। किन्तु स्कूल के कार्यक्रम विशेष रूप से ज्ञान प्रदान करने के लिए आयोजित किए जाते हैं और शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य ज्ञान प्रदान करना है।

ज्ञान का अर्थ अपने चारों ओर की दुनिया की जानकारी और समझ है। यह विभिन्न प्रकार से प्राप्त होता है जीवन के अनुभव द्वारा कक्षा में शिक्षण द्वारा किताबों से, तस्वीरों और चलचित्रों से। किताबों और कक्षा में शिक्षण से जो जानकारी प्राप्त होती है उसका माध्यम भाषा है। इन माध्यमों को बच्चे समझ सकेंगे। यदि उन्हें उन शब्दों के अर्थ समझ में आते हैं जिसका प्रयोग होता है जैसे, जब शिक्षक किलोग्राम, जलवायु वनस्पति की बात करता है तो बच्चों की समझ में यह आना चाहिए कि इनका क्या अर्थ है।

संकल्पनाएं (Concepts)

कोई वस्तु क्या है, उसके मूलभूत अर्थ को समझना संकल्पना है। जब हम जानवर या पेड़ की बात करते हैं हम जानते हैं कि इनका क्या अर्थ है संकल्पना वस्तुओं या विचारों की किसी श्रेणी से संबंधित होती है जिनमें एक या एक से अधिक सर्वनिष्ठ विशेषताएं (common characteristics) होती हैं।[1] जब बच्चा प्रारंभ में सोचता है कि मां का अर्थ केवल उसकी मा, उस समय मां की संकल्पना नहीं सीखी है। इसी प्रकार जब वह फूल देखता है और "फूल" कहना सीखता है,

1. U.P. De Ceco. The Psychology of Learning and Instruction : Educational Psychology, New Delhi, Print-Hall of India, 1970.

तो उसके मन में फूल का अर्थ केवल एक विशेष फूल तक ही सीमित हो सकता है। जब उसकी समझ में यह बात आती है कि समान वस्तुओं की एक विशेष श्रेणी को फूल कहते हैं और वह नए फूलों को पहचान लेता है, तब हम कह सकते हैं कि उसने फूलों की संकल्पना को प्राप्त कर लिया।



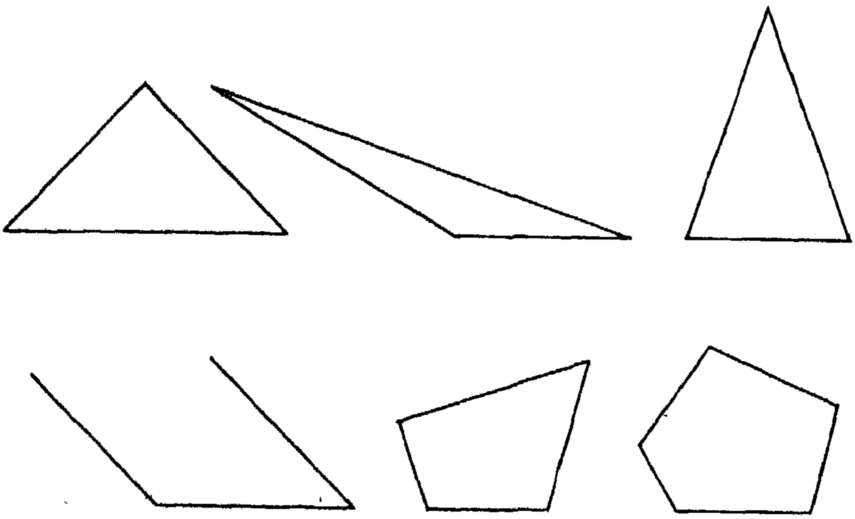
चित्र-13 संख्याओं को दोहराने की बजाए उनकी संकल्पना अधिक महत्वपूर्ण है

बच्चे अपने चारों ओर की वस्तुओं जैसे, दूध, पानी, पेड़, बिल्ली, कुत्ता आदि की सरल संकल्पनाएं प्राप्त कर लेते हैं। बाद में उन्हें ऐसी संकल्पनाएं सीखनी होती हैं जो उनके समीप नहीं होतीं और जिनके साथ उनका कोई संपर्क नहीं हुआ होता, जैसे, समुद्र, पहाड़ या हिमपात, जिन्हें भारत में बहुत से बच्चों को देखने का अवसर नहीं मिलता। इसके अलावा उन्हें संबंधात्मक संकल्पनाएं (relational concepts) जैसा आधा, अधिक बड़ा, आदि भी सीखनी होती हैं। जैसे बच्चे बड़े होते हैं उन्हें अमूर्त संकल्पनाएं सीखनी होती हैं, जैसे अच्छाई, दया, ईमानदारी।

बच्चों को संकल्पनाओं के बारे में क्या सीखना चाहिए

जब बच्चा कुत्ते को देखता है और उसे बताया जाता है कि यह कुत्ता है तो इससे वह सचमुच कुत्ते की संकल्पना सीख नहीं लेता। हो सकता है कि उसके मन में केवल यह धारणा बने कि यह अमुक जानवर का नाम है। जब यह बहुत से कुत्ते देखता है, जो छोटे और बड़े और विभिन्न सूरत शकल के होते हैं, तब उसकी समझ में आता है कि कुत्ता किसे कहते हैं। अब यदि वह बिल्ली देखता है तो पहले यह सोचता है कि यह कुत्ता है, किन्तु बाद में कुत्ते, बिल्ली और अन्य जानवरों के बीच अन्तर समझ में आ जाता हैं इसलिए कुत्ते की संकल्पना सीखने में उसे यह सीखना होता है कि कुत्ता क्या है, कुत्ते विभिन्न प्रकार के होते हैं, किंतु कुछ विशेषताएं सभी कुत्तों में होती हैं।

इसी प्रकार त्रिकोण की संकल्पना सीखने में बच्चा सीखता है कि त्रिकोण एक ऐसी जगह है जो तीन रेखाओं से घिरी हुई है। उसे पता चलेगा कि त्रिकोण विभिन्न आकृति के हो सकते हैं। इस प्रकार, नीचे दिए सभी त्रिकोण हैं।



चित्र-14. त्रिकोण की संकल्पना

चौथी आकृति तो इसलिए त्रिकोण नहीं हैं क्योंकि भुजाएं जुड़ी नहीं हैं और कोई जगह घिरी नहीं हैं पांचवी और छठी आकृति इसलिए त्रिभुज नहीं है क्योंकि उनमें तीन से अधिक भुजाएं हैं।

त्रिकोण की मूलभूत विशेषताएं दो हैं : (I) तीन भुजाएं होंगी और (II) प्रत्येक जुड़वां भुजा एक बिन्दु पर मिलेगी जिनसे एक जगह घिरेगी। आकृति त्रिकोण की मूलभूत विशेषता नहीं है।

इसी प्रकार बच्चे प्रत्येक संकल्पना की मूलभूत विशेषता सीख सकते हैं, उसके विभिन्न रूप पहचान सकते हैं, और उसका अन्य वस्तुओं से विभेदीकरण कर सकते हैं। [1]

जितनी अधिक मूलभूत विशेषताएं एक संकल्पना में होंगी उतना ही उसे समझना कठिन होगा। उदाहरण के लिए समद्विबाहु (isolesces) त्रिभुज की संकल्पना लीजिए। त्रिभुज की अपेक्षा इसे समझना कुछ कठिन है, क्योंकि एक विशेषता को बढ़ा दिया गया है। इसी प्रकार प्राणी की संकल्पना पत्थर की संकल्पना से अधिक कठिन है क्योंकि प्राणी में मूलभूत विशेषताएं पत्थर से कहीं अधिक हैं।

1 U. P. De Cecco, op.cit. The Psychology of Learning and Instruction : Educational Psychology,.

कुछ संकल्पनाओं की विशेषताओं को प्रत्यक्ष देखा या अनुभव नहीं किया जा सकता। ये संकल्पनाएं बच्चों के लिए कठिन हैं जैसे विषुवत्-रेखा, और अमूर्त संकल्पनाएं जैसे ईमानदारी।

संकल्पनाओं का शिक्षण और सीखना

संकल्पना सिखाने की सर्वोत्तम विधि बच्चों को उसका प्रत्यक्ष अनुभव होने देना। यदि उन्हें सिखाना है कि जड़ क्या है तो उन्हें विभिन्न प्रकार की जड़ों को देखने और छूने दीजिए और यदि संभव हो तो वे इन्हें खोद कर भी निकालें।

अपने अवलोकनों का शब्दों में वर्णन करने में उनकी मदद की जाए। जड़ की कुछ विशेषताएं दिखाई नहीं देती, जैसे उनका कार्य शिक्षक को इन्हें समझाना होगा। किन्तु यह अवश्य याद रखना चाहिए कि केवल शाब्दिक व्याख्या संकल्पनाओं के शिक्षण में बहुत प्रभावशाली नहीं होती।

प्रत्यक्ष अनुभव सदैव संभव नहीं होता। कुछ चीजें बच्चों के वातावरण में नहीं होती, उनका वे प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सकते इन संकल्पनाओं के शिक्षण के लिए सहायक सामग्री उपयोगी होती है। जैसे, भारत के अन्दरूनी इलाकों में रह रहे अधिकांश बच्चों ने समुद्र नहीं देखा। इसके बारे में उन्हें तस्वीरों द्वारा कुछ बोध कराया जा सकता हैं इसी प्रकार दुनियां के विभिन्न भागों की जमीन, वनस्पति, लोगों के घर, कपड़े आदि का बोध तस्वीरों और माडल तस्वीरों और माडल से कराया जा सकता है।

यदि कोई जटिल चीज सीखनी है जो उनके पर्यावरण में हो, उसमें भी सहायक सामग्री उपयोगी होती है। उदाहरण के लिए अधिकांश बच्चों ने रेल का स्टेशन देखा है। किन्तु उन्हें अधिक अच्छी तरह समझ में आएगा, यदि जो उन्होनें देखा है उसकी पूर्ति माडल और चार्ट द्वारा, जो मूल विशेषताओं को दर्शाते हैं, की जाए। माडल और चार्ट में दिखाया जा सकता है लाइन की स्थिति, पटरी बदलने की व्यवस्था, और सिगनेलों की स्थिति।। अन्य चार्ट और तस्वीरें इस बात को स्पष्ट कर सकती हैं कि जिस स्टेशन का अध्ययन किया गया है, सभी स्टेशन बिलकुल वैसे नहीं होते। कुछ अधिक और कुछ कम पेचीदे होते हैं। किन्तु सभी में कुछ मूल विशेषताएं एक जैसी होती हैं। इस अध्ययन के बाद बच्चे रेलवे स्टेशन भ्रमण के लिए ले जाए जा सकते हैं, और खास चीज़ों क़ो स्वयं देख सकते हैं।

संबंधात्मक संकल्पनाएं

कुछ संबंधात्मक संकल्पनाएं बच्चों को सिखानी होती हैं। बड़ा छोटा, लम्बा ऐसी संकल्पनाए हैं जो बच्चों को प्रारंभ में सीखनी होती हैं। बच्चे भारी और हल्का की भी संकल्पना सीखते हैं। दिशा की संकल्पना भी संबंधात्मक संकल्पना हैं, जिससे कुछ

समस्याएं उठ सकती हैं उदाहरण के लिए, बच्चों को यह समझाने में कठिनाई होगी की बर्मा भारत के पूर्व में है और यही देश थाईलण्ड के पश्चिम में। इसे समझाने के लिए बच्चों को बताया जा सकता है कि कुछ जगहें उनके स्कूल के पूर्व में हैं, किन्तु ये ही जगह यदि कोई अन्य सीमा चिन्ह लिया जाए तो उसके पश्चिम में हो सकती है। इतिहास पढ़ाने में "पहले" और "बाद" की संकल्पना की समझ आवश्यक है। इनको बच्चों की जानकारी में हाल में हुई घटनाओं को उदाहरण के रूप में लेकर पढ़ाया जा सकता है। भिन्न की संकल्पना अकसर बच्चों को स्पष्ट नहीं होती। आधा और चौथाई की संकल्पना छोटे बच्चों को प्रायोगिक उदाहरणों द्वारा पढ़ाया जा सकता है। उन्हें दिखाया जा सकता है कि आधी चपाती क्या है, चपाती के कोई दो भाग हो सकते हैं जो बराबर नहीं है और इसलिए आधे नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार आधी रेखा और रेखा के दो विभाजन नहीं हैं वे आधे नहीं हैं। धीरे-धीरे वे यह भी समझेंगे कि वजन में दो भाग बराबर हो सकते हैं किन्तु एक जैसे न हों। कभी कभी एक वस्तु के दोनों भाग बराबर हैं या नहीं इसका पता करने के लिए तुला की जरूरत पड़ सकती है। आधा और चौथाई की संकल्पना पढ़ानी होती है। यह भी व्यावहारिक उदाहरणों द्वारा सिखाया जा सकता है। जब बच्चे यह सीख लें तब उन्हें दस का एकवां हिस्सा, दस गुना, इत्यादि सिखाया जा सकता है। यह नाप और अंक पद्धति को भी समझने के लिए आवश्यक है।

अमूर्त संकल्पनाएं

बच्चों को कुछ अमूर्त विचार सीखने होते हैं। जैसे, प्रेम, ईमानदारी, दया, क्रूरता, आदि की संकल्पना। ये ऐसी चीजें नहीं है जिन्हें देखा या छुआ जा सके या जिन्हें हम तस्वीर में दिखा सकें। इन्हें उदारहण और विचार विनिमय, द्वारा सिखाया जा सकता है। जैसे त्रिभुज पढ़ाते समय हम विभिन्न आकृति के त्रिभुज दिखाते हैं उसी प्रकार एक अमूर्त संकल्पना सिखाने के लिए हमें अनेक उदारहण देने चाहिए। यदि हमें ईमानदारी की संकल्पना सिखानी है तो विभिन्न स्थितियों में और विभिन्न व्यक्तियों द्वारा हमें ईमानदारी के उदाहरण देने चाहिए। अन्यथा बच्चे सोचेंगे कि ईमानदारी केवल एक विशेष परिस्थिति के लिए ही, या किसी विशेष व्यक्ति तक ही सीमित है। अतः हमें ईमानदारी के दृष्टान्त, परीक्षा, गृहकार्य, रुपये-पैसे के मामले और सामाजिक संबधों से दे सकते हैं। जैसे त्रिभुज की संकल्पना सिखाते समय उन आकृतियों के उदाहरण दिए गए थे जो त्रिभुज नहीं थे, उसी प्रकार ईमानदारी की संकल्सपना सिखाने में हमें बेईमानी के कार्यों के उदाहरण देने चाहिएं और दोनों के बीच अन्तर विचार-विमर्श द्वारा बताना चाहिए।

जैसे बच्चे स्कूल में प्रगति करते हैं उन्हें अपनी संकल्पनाओं को विस्तृत और परिष्कृत करना होता है। उदाहरण के लिए बच्चा सोच सकता है कि बिल्ली एक

छोटा सा जानवर है जो घर में दिखाई देता है किन्तु बड़े बच्चे सीखते हैं कि शेर, सिंह, तेंदुआ ये सब भी बिल्ली की श्रेणी में आते है। उनके पंजे और नाखुन एक विशेष प्रकार के होते हैं जिन्हें बच्चे ने नहीं देखा होगा। इसी प्रकार बच्चे के लिए न्याय मातापिता द्वारा या शिक्षक द्वारा निष्पक्ष व्यवहार हो सकता है या जो न्याय अदालतों में दिया जाता है। बाद में सामाजिक न्याय संकल्पना में जुड़ जाता है।

त्रुटिपूर्ण संकल्पनाओं का संशोधन

कभी-कभी बच्चों की संकल्पनाएं की त्रुटिपूर्ण होती हैं। एक छोटा बच्चा जिसने सुना है कि पृथ्वी गोल है ऐसी कल्पना कर सकता है कि वह चक्र के समान गोल है। एक ग्लोब या गेंद की सहायता से शिक्षक पृथ्वी की आकृति समझा सकता है। बहुत से बच्चे सोचते हैं कि केवल सीधी रेखा पर कोण संलग्न (adjacent) कोण हैं। इस धारणा में संशोधन करने के लिए शिक्षक को विभिन्न प्रकार के संलग्न कोण जो अलग-अलग (degree) हों प्रस्तुत करना होगा। निदानात्मक परीक्षण यह पता लगाने में मदद करते हैं कि कौन सी संकल्पनाओं में सुधार की आवश्यकता है।

सामान्यीकरण

''कुत्ते के चार पैर होते हैं '' ''थल जल से अधिक गरम और ठंडा हो जाता है।'' ''एक त्रिभुज के अन्दर के तीन कोणों का जोड़ दो समकोण होता हैं। '' ये सब सामान्यीकरण हैं या संकल्पनाओं के बीच संबंध हैं जो कि सभी मामलों में सही हैं। ''यह कुत्ता छोटा है' , ''वह कुत्ता बड़ा है'' ये सामान्यीकरण नहीं हैं क्योंकि ये विशेष मामलों की ही ओर संकेत करते हैं। किन्तु ''कुत्ते के चार पैर होते हैं'' सभी कुत्तों पर लागू होता है और इसलिए यह एक सामान्यीकरण हैं। संकल्पना सीखने में सामान्यीकरण शमिल है। जब बच्चा कुत्ते की संकल्पना सीखता है तब वह यह भी सीखता है कि कुत्ते के चार पैर होते हैं।

विज्ञान के नियम, गणित की परिभाषाएं कुछ महत्वपूर्ण सामान्यीकरण हैं। ज्ञान सामान्यीकरणों के आधार पर बनता है। इनके द्वारा ही हम वस्तुओं और विचारों में सबंध देखते हैं।

सामान्यीकरण शिक्षण की विधियां

बच्चों को सामान्यीकरण रटवाना सामान्यीकरण शिक्षण नहीं है। सामान्यतया ऐसा करने से न तो वे सामान्यीकरण के अर्थ समझ पाते हैं और न उन कारणों को जिनके आधार पर सामान्यीकरण को निर्मित किया गया है। इसलिए वे इससे कोई सार्थक ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते। जो शब्द उन्होनें याद किए हैं वे भी शीघ्र विस्मृत हो जाते हैं।

सामान्यीकरण सिखाने की दो मुख्य विधियां हैं, एक निगनात्मक (deductive) और दूसरी आगमनात्मक (inductive)।

निगनात्मक तर्क

निगनात्मक तर्क में सामान्यीकरण से अन्य सामान्यीकरण निकाले जाते हैं। उदाहरण के लिए "सभी प्राणी सांस लेते हैं", कुत्ते प्रणी हैं इसलिए कुत्ते सांस लेते हैं।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए, पानी ठण्डे के बजाए गरम होने पर जल्दी वाष्पित हो जाता हैं पानी जो धूप में रखा जाता है वह गरम हो जाता है, जबकि जो छाया में होता है वह ठंडा रहता है। इसलिए, यदि पानी धूप में रखा जाए तो छाया में रहने के बजाए जल्द वाष्पित हो जाएगा।

आगमनात्मक तर्क

आगमनात्मक तर्क में सामान्यीकरण पर विशेष विषयों के अवलोकन के बाद पहुंचा जाता है। इस प्रकार बच्चे कुत्तों को सांस लेते देखते हैं और निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कुत्ते सांस लेतें हैं। ये बाहर गीला कपड़ा धूप में और छाया में छोड़ते हैं और यह देखते हैं कि कौन सा शीघ्र सूखता है। वे इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि पानी धूप में जल्दी सूखता है।

यह देखा गया है कि बच्चे सामान्यीकरणों को अधिक अच्छा समझते हैं और याद रखते हैं, जब वे आगमनात्मक विधि से सीखते हैं, यानी विशेष दृष्टान्तों को देखकर सामान्यीकरण पर पहुंचते हैं।

दोनों विधियों का उपयोग करना सबसे अच्छा होगा। बच्चे अवलोकन द्वारा सामान्यीकरण का स्वयं पता लगाएं और फिर उसके कारणों को निगनात्मक विधि से समझाया जाएं आगमनात्मक विधि से कभी कभी व्यक्ति गलत निष्कर्षों पर पहुंच जाता है। जो उदाहरण बच्चे देखते हैं हो सकता है सामान्यीकरण के लिए अपूर्ण आधार प्रस्तुत करें। मान लीजिए बच्चों ने केवल ईंट के बने हुए मकान देखे और वे सोचने लगते हैं कि सभी घर ईंट के बनते हैं। अन्य बच्चों ने केवल मिट्टी के मकान देखे हों और वे सोचें कि मकान केवल मिट्टी के होते हैं।

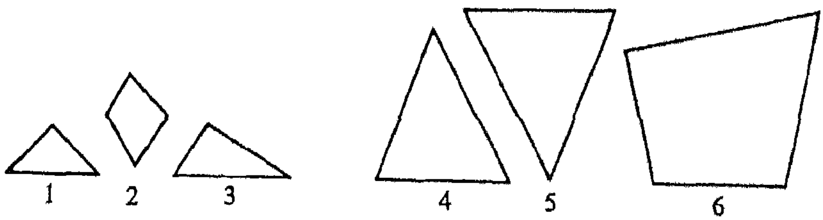
व्यक्ति के समूहों और समुदायों के बारे में जो सामान्यीकरण हम कुछ ही लोगों के सम्पर्क के आधार पर बनाते हैं उनके अकसर गलत होने की संभावना रहती है। हम किसी समुदाय में कुछ लोगों को गन्दा या चालाक पाते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उस समुदाय में सभी व्यक्ति चालाक या गन्दे होते हैं। इसी प्रकार समुदायों के बारे में अच्छे गुणों के सामान्यीकरण भी गलत निकल सकते हैं। हम अकसर तमिल भाषी, पंजाबी, सिन्धी, मुसलमान, हिन्दू, ईसाई आदि के बार में विभिन्न कथन उनके गुण या दोषों का सामानयीकरण करते हुए सुना करते हैं। इनका आधार कुछ व्यक्तियों के साथ अनुभव होता है। वास्तव में देखा जाए तो सभी समुदायों में बुद्धिमान और मन्द बुद्धि के, स्वच्छ और गन्दे व्यक्ति होते हैं, और

यह बात सभी गुणों पर लागू होती है। शिक्षक को गलत सामान्यीकरण को ठीक करना चाहिए। यह विचार विमर्श के द्वारा और यह बता कर कि ये माता-पिता या मित्रों से सुनी-सुनाई बातें हैं जो कुछ ही व्यक्तियों के सम्पर्क पर आधारित हैं और किसी समुदाय या वर्ग के सभी व्यक्तियों पर लागू नहीं होती, सुधारी जा सकती हैं।

वर्गीकरण

जीवन में अकसर वस्तुओं और विचारों का वर्गीकरण करना होता है। संकल्पनाओं के सीखने में वर्गीकरण सम्मिलित है। कुर्सी क्या है ? मेज क्या है ? इन प्रश्नों के उत्तर दे सकने के अर्थ हैं कि व्यक्ति फर्नीचर का कुर्सी और मेज में वर्गीकरण कर सकता है। वर्गीकरण के आधार में परिवर्तन किया जा सकता है कुर्सी और मेज के रूप में फर्नीचर का वर्गीकरण उपयोग के आधार पर है। फनीर्चर लकड़ी का या धातु का बना है इस आधार पर भी वर्गीकरण कर सकते हैं। ऐसा करने पर लकड़ी की बनी कुर्सी, मेज, अलमारी, एक वर्ग में होगी और लोहे या अन्य धातु की बनी दूसरे वर्ग में।

नीचे दी गई आकृतियों को देखिए।



चित्र—15. वर्गीकरण

यदि हम इन्हें बड़ी आकृतियों और छोटी आकृतियों में वर्गीकृत करें तो 1,2, और 3, एक समूह में आएंगी और 4,5, और 6, दूसरे में। यदि हम इन्हें तीन भुजा वाली और चार भुजा वाली आकृतियों में वर्गीकृत करें, जो 1, 3, 4 और 5, एक समूह में और 2, और 6, दूसरे समूह में आएंगी।

वर्गीकरण अमूर्त संकल्पनाओं में भी हो सकता है। उदाहरण के लिए दयालु, ईमानदार, निस्वार्थी, इत्यादि सद्गुणों की श्रेणी में आएंगे, जबकि क्रूर, बेईमान, और स्वार्थी बुराई की श्रेणी में रखे जाएंगे।

वर्गीकरण से जटिल संकल्पनाएं सीखने में मदद मिलती है। इससे संकल्पनाएं अधिक स्पष्ट भी होती हैं। उदाहरण के लिए, जब बच्चे विषम संख्याओं सम संख्याओं, दस के या पांच के गुणज (multiples) का वर्गीकरण करते हैं तो इससे उन्हें संख्या पद्धति समझने में मदद मिलती है। इसी प्रकार वस्तुओं को प्राणी,

वनस्पति, निर्जीव वस्तुओं के रूप में वर्गीकृत करने से अपने चारों ओर की दुनिया को अधिक भली प्रकार समझने में मदद मिलती है।

बच्चों को वर्गीकरण के अवसर प्रदान करने चाहिए। उन्हें वर्गीकरण का आधार देना चाहिए उसे बड़ा या छोटा, या सामग्री की प्रकार, या आकृति और उसके आधार वस्तुओं का वर्गीकरण करने को कहना चाहिए। यदि कुछ भूलें होती हैं तो शिक्षक को उन्हें नोट करना चाहिए। इन गलतियों से पता लगेगा कि बच्चों के मन में कहां पर अस्पष्टता है और किन बिन्दुओं की व्याख्या करनी चाहिए।

समस्या समाधान

बच्चों का एक समूह किसी पहेली पर कार्य कर रहा है। उनके सिर झुके हुए हैं। वे यह भी नहीं देखते हैं कि कोई कमरे में आया है। इस स्थिति में और जब कक्षा में शिक्षक पढ़ा रहा होता है और जहां बहुत से बच्चे ध्यान नहीं देते, कितना अन्तर है।

एक दूसरा समूह वालीवाल खेलने के लिए मैदार पर निशान डालना चाहता है। उनके सामने कई समस्याए आती हैं: कैसे सीधी लाइन डालें, कैसे दोनों ओर की लाइनों को बराबर करें। वे इन बातों पर सोच-विचार करते हैं और मैदान पर निशान डालने के तरीकों का पता लगाते हैं।

समस्या समाधान विधि के लाभ

समस्या समाधान शिक्षण में बहुत उपयोगी है। जब बच्चे ऐसी समस्या का सामना करते हैं जिसमें उनकी रुचि है तब वे उसका हल ढूंढने में दिलचस्पी लेते हैं। उन्हें "ध्यान दो" कहने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वे स्वतः मन को एकाग्र करके रुचि लेते हैं।

दूसरा, समस्या समाधान स्वयं विचार करने के लिए एक अच्छा प्रशिक्षण है। बच्चे हल ढूंढते हैं और अपने विचारों को प्रयुक्त करने का उन्हें यह अच्छा अवसर मिलता है। समस्याओं के हल ढूंढने में वे अपने पूर्व ज्ञान और कल्पना का प्रयोग करते हैं। इसमें क्रमशः तर्कसंगति (logical reasoning) की आवश्यकता पड़ सकती है। कभी कभी समस्या का उत्तर मस्तिष्क पर कौंध जाता हैं इसमें अकसर नए संबंध एकाएक दिखाई देते हैं। अतः समस्या समाधान तार्किक और सृजनात्मक दोनों ही हैं। इसमें वे महत्वपूर्ण चिन्तन प्रक्रियाएं हैं जिन्हें शिक्षा द्वारा विकसित करना चाहिए।

तीसरा, समस्या समाधान में बच्चों के स्वयं के प्रयासों से सीखना होता है। क्योंकि इसमें बच्चों को सतर्क रहना पड़ता है, वे अधिक सीखते हैं और अच्छा याद रखते हैं। उदाहरण के लिए, यदि बच्चे स्वंय पता लगा लेते हें कि जमीन पर सीधी लाइने कैसे डालें और समकोण कैसे बनाएं, तो वे कार्य-विधि को आसानी से नहीं भूलेंगे।

अन्त में, समस्या समाधान से आत्म-विश्वास बढ़ता है। यदि बच्चे एक समस्या का हल ढूंढ लेते हैं तो उनमें दूसरी के हल ढूंढने का विश्वास बनेगा।

समस्या समाधान द्वारा शिक्षण

समस्या समाधान द्वारा सीखने में इतने लाभ हैं कि जब भी संभव हो शिक्षकों को इस उपागम का उपयोग करना चाहिए। समस्या समाधान द्वारा शिक्षण के लिए बच्चों के सामने कोई समस्या रखनी चाहिए और फिर उसका हल ढूंढने में उनकी मदद करनी चाहिए।

समस्याएं गणित से हो सकती हैं या किसी अन्य विषय से जो कक्षा में चल रहा है, जैसे, "यह कागज की नाव पानी में क्यों तैर रही है जबकि कागज की गोली पानी में डूब जाती है ?" या समस्या इस प्रकार का प्रश्न हो सकता है जो विचारों को उत्पन्न करता हो "जैसे, जब थल गरम हो जाता है तो इसके साथ-साथ वायु भी गरम हो जाती है।" इसके क्या परिणाम होंगे ? समस्या जटिल भी हो सकती है, जैसे, "हम स्कूल में बगीचा कैसे बना सकते हैं ?" या, "हम अपने गांव की सफाई में सुधार कैसे ला सकते हैं ?" समस्या का कथन कक्षा के सम्मुख होना चाहिए। ऐसी समस्या जो बच्चों के जीवन से संबंधित है, उनके लिए अधिक रुचिकर होगी और उससे वे अधिक सीखेंगे। यह विषय-वस्तु से या जो कुछ शिक्षक पढ़ाना चाहता है उससे संबंधित होनी चाहिए। यह इतनी सरल नहीं होनी चाहिए कि बच्चों की रुचि जाग्रत न कर सके और न ही इतनी कठिन कि वे हतोत्साहित हो जाएं और उसे हल करना छोड़ दें। समस्या ऐसी होनी चाहिए कि उसके समाधान से संबंधित आवश्यक जानकारी और ज्ञान बच्चों ने प्राप्त कर लिया हो, जैसे, रेखागणित का कोई अभ्यास बच्चे तभी हल कर सकेंगे जब उन्होनें उन प्रमेयों (theorems) को सीख लिया हो जिस पर समस्या का हल आधारित है।

समस्या बच्चों को स्पष्ट होनी चाहिए। उन्हें यह निश्चत रूप से स्पष्ट होना चाहिए कि उन्हें क्या हल करना, और क्या जानकारी दी हुई है। यदि छात्र अपने शब्दों में समस्या का कथन करें, तो समस्या के स्पष्ट होने में मदद मिलेगी। एक बार जब समस्या स्पष्ट हो जाए तो छात्रों से उसे हल करने की विधि के बारे में विचार प्रस्तुत करने को कहा जाए। अपने विद्यालयों में छात्रों को अपने विचार प्रस्तुत करने की आदत नहीं है। इसलिए, शिक्षक को उन्हें काफी उत्साहित करना होगा। यहां तक कि यदि कोई छात्र मूर्खतापूर्ण विचार प्रस्तुत करता है तो शिक्षक को उसका मजाक नहीं उड़ाना चाहिए और उसे डांटना भी नहीं चाहिए, बल्कि नरमी से उसके सुझाव की कमियों को इंगित करना चाहिए। वह और प्रश्न भी पूछ सकता है जिससे बच्चे को स्वयं अपने सुझाव में गलती दिखाई दे। कभी छात्रों को कुछ संकेत भी देने पड़ते हैं जिनसे वे संबद्ध वैकल्पिक विचारों को सोच सकें।

इसके बाद का कदम है विचारों की उपयुक्ता के आधार पर उसका चयन करके हल पर पहुंचना। उदारहरण के लिए, कागज की नाव और कागज की गोली वाली समस्या में बच्चे नाव और गोली की आकृति के अन्तर को देखें और इससे उन्हें इस बात की अनुभूति हो सके कि इसका विस्थापित पानी पर क्या प्रभाव पड़ता है।

अन्त में जो हल निकलता है उसका परीक्षण विभिन्न परिस्थितियों में किया जाए जैसे, विभिन्न आकृतियों की वस्तुओं को पानी में रख कर देखा जाए कि पानी के विस्थापन के बारे में जो निष्कर्ष निकला था वह कहां तक इन पर लागू होता है।

समस्याए कई प्रकार की हो सकती हैं। स्कूल का बगीचा कैसे बनाया जाए यह एक परियोजना मानी जा सकती है जिसमें कई समस्याएं अन्तर्निहित है। खोदने के सामान की व्यवस्था करना, बीज और पौधों को प्राप्त करना और सींचने की व्यवस्था करना। बच्चे प्रत्येक के लिए अपने सुझाव दे सकते हैं। वे अपने पूर्व अनुभवों से और कल्पना का उपयोग करके उचित उपाय सोच सकते हैं।

प्रत्येक समस्या के लिए कुछ विचार स्वीकार किए जाएंगे। कहीं-कहीं एक से अधिक हल स्वीकार किए जाएंगे, जैसे पौधे और बीज कई जगहों से प्राप्त किए जा सकते हैं।

विचारों का परीक्षण परियोजना की वास्तविक परिस्थिति में यानी बगीचा लगाने में किया जा सकता है। अन्य स्कूलों के अनुभवों से भी, जिन्होनें बगीचा विकसित किया है, प्रारंभिक मिलान किया जा सकता है।

व्यक्तिगत और सामूहिक समस्या समाधान

जब कक्षा का कार्य सामूहिक समस्या समाधान पर केन्द्रित होता है तो बच्चे इसमें संलग्न हो जाते हैं, कक्षा में सजीवता आ जाती है, और शिक्षक तथा छात्र, दोनों, इस अनुभव का आनन्द लेते हैं। छात्र एक दूसरे के सुझावों से सीखते हैं, उनका मूल्यांकन करना सीखते हैं, और अपने सुझावों के बारे में दूसरों को राय से परिचित होते हैं। फिर भी, जब हम कक्षा में छात्रों की संख्या की ओर दृष्टि डालते हैं, हम इस बात को सुनिश्चत नहीं कर पाते की सभी उसमें भाग ले रहे हैं। सामान्यताः बहुत से छात्र कोई सुझाव नहीं देते। इसलिए, यद्यपि मिल कर समस्या समाधान उपयोगी है, व्यक्तिगत रूप से भी समस्या समाधान के अवसर प्रदान करने चाहिएं।

व्यक्तिगत रूप से समस्या समाधान का पहला लाभ तो यह है कि समस्या बच्चों की योग्यता के अनुरूप दी जा सकती है। शिक्षक को इस बात को सुनिश्चित करना चाहिएं कि प्रत्येक बच्चा उस समस्या को समझाता है जिसे उसे हल करना है।

यदि एक ही समस्या सभी बच्चों को दी जाती है, तेज बच्चे अन्य बच्चों की अपेक्षा उसे पहले हल कर लेंगे। उनको अधिक कठिन समस्याएं दी जा सकती हैं। धीमी गति से सीखने वालों को यदि संभव हो तो समस्याएं उनकी योग्यता के अनुरूप दी जानी चाहिए किन्तु यदि धीमी गति वालों को भी वे ही समस्याएं हल करनी हैं, जो बाकी



चित्र—16. गेंद क्यों तैरती है, डूबती क्यों नहीं, अपने हाथ से उसे नीचे दबाओ

छात्र कर रहे हैं, तो शिक्षक कुछ सुझाव देकर उनकी मदद कर सकते हैं। कुछ छात्रों से प्रश्न पूछना आवश्यक होगा जिससे पता चल सके कि वे संबद्ध संभावित हल करने की ओर विचार कर रहे हैं। यदि शिक्षक को पता लगता है कि वे प्रगति नहीं कर सकते हैं, वह समस्या पर उनके साथ विचार विमर्श कर सकता है और हल पर पहुंचने में उनकी मदद कर सकता है शिक्षक को यह विचार करना होगा कि प्रत्येक मामले में उसे कितनी मदद करनी है यदि शिक्षक स्वयं हल बता देता है या बहुत अधिक सहायता करता है तो बच्चे को स्वयं विचार करने और हल पता लगाने का अवसर नहीं मिलेगा, और समस्या समाधान विधि से जो वह सीखता उसका लाभ उसे नहीं मिल सकेगा। इसके विपरीत यदि शिक्षक उस समय मदद नहीं करता जब छात्र को समस्या अत्यन्त कठिन लग रही है, तो छात्र हतोत्साहित हो जाएगा और प्रयास करना छोड़ देगा।

संक्षेप में समस्या समाधान द्वारा सीखने से (क) बच्चे ध्यान देते हैं, (ख) विषय में रुचि उत्पन्न होती है, (ग) बच्चे चौकस रहते हैं और विचार करना तथा अन्तदृष्टि विकसित करना सीखते हैं, (घ) जो कुछ सीखते हैं वह याद रखते हैं और (ङ) आत्मविश्वास विकसित करते हैं।

समस्या समाधान विधि द्वारा शिक्षण में (क) समस्या जो प्रस्तुत की जाए छात्रों के ज्ञान और योग्यता के अनुरूप होनी चाहिए और उनके अध्ययन से संबंद्ध होनी चाहिए, (ख) शिक्षक को समस्या को स्पष्ट करना चाहिए, (ग) बच्चों को समस्या के हल के सुझाव देने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और (घ) अन्त में देखना चाहिए कि समाधान विभिन्न परिस्थितियों में कहां तक सही उतरता है।

समस्या का समाधान समूह में या व्यक्ति रूप से ढूंढा जा सकता है। दोनों ही के लाभ हैं। समूह में बच्चे एक दूसरे से और कक्षा में जो विचार विमर्श होता है उससे सीखते हैं। व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक छात्र को अपने स्तर पर कार्य करने का अवसर मिलता है और उसे इस बात का संतोष प्राप्त होता है कि वह अपने स्वंय के प्रयास से सफल हो सका।

अध्याय 29

स्मरण एवं विस्मरण

ईवलिन मार

शिक्षण और अधिगम के कार्य इस आशा से कराए जाते हैं कि जो कुछ सीखा है वह याद रहेगा। यदि कक्षा के तुरन्त बाद बच्चे वह सब कुछ भूल जाएं जो उन्होंनें कक्षा में सीखा था तो पढ़ाने का कोई औचित्य नहीं होगा। इसलिए यद्यपि हम कहते हैं कि शिक्षकों को केवल याद करवाने पर ही बल नहीं देना चाहिए फिर भी शिक्षा में स्मृति का महत्वपूर्ण कार्य है।

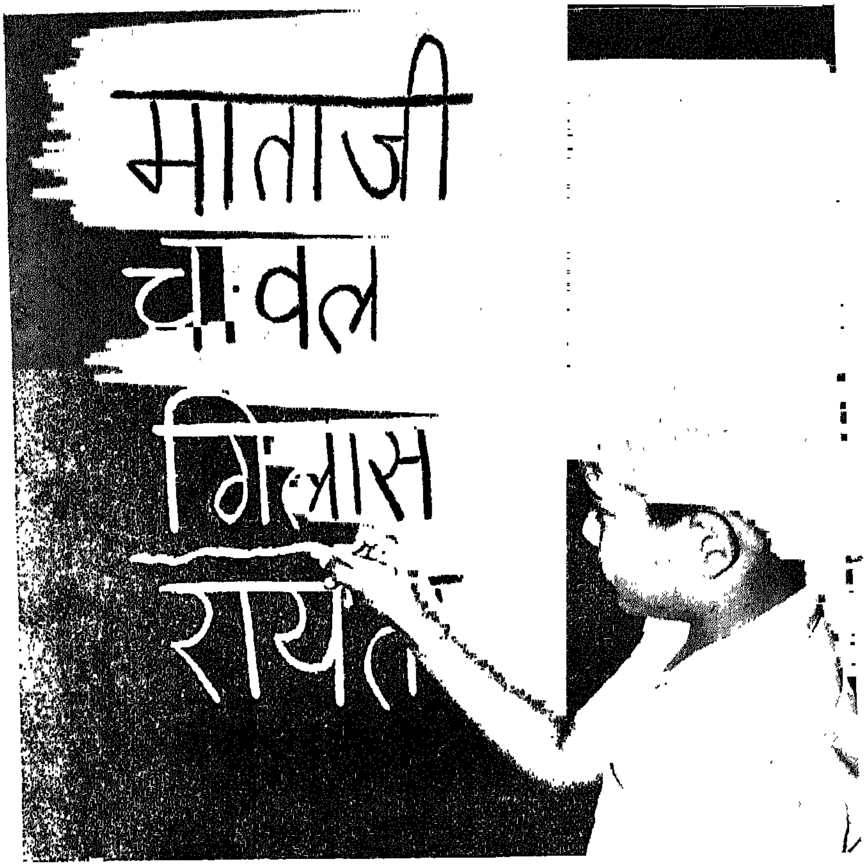
स्मृति में, पहले जो कुछ सीखना, उसे याद रखना, और कुछ समय बाद उसका पुनः स्मरण कर सकना और याद की हुई सामग्री को पहचान सकना आता है। यह देखा गया है कि समरण करने की अपेक्षा पहचानना सरल है। उदाहरण के लिए यदि आपसे किसी व्यक्ति का वर्णन करने को कहा जाए जिससे आप कई बार मिले हैं तो हो सकता है आप बहुत ठीक वर्णन नकरपाए किंतु यदि आपको उस व्यक्ति को पहचानने को कहा जाए तो आप तुरन्त पहचान लेंगे।

अधिगम की प्रगति

सामग्री जो याद करनी है उसे पहले सीखना होगा। अब हम देखें कि यह कार्य कैसे आगे बढ़ता है. और याद करने की उत्तम विधियां क्या हैं छात्रों को याद करने के लिए कोई लेखांश, शब्दों की सूची, या किसी समस्या को हल करने के पद हो सकते हैं।

अधिकतर प्रयोगों मे निरर्थक शब्दांश (nonsense syllables) जैसे, जेक, पिव, रित का उपयोग होता है, क्योंकि सभी बच्चे इनसे समानरूप से आनेभिज्ञ हैं। दी हुई सामग्री को बच्चे बार बार पढ़ते हैं, जब तक कि वे बिना किसी गलती के इसे दोहरा नहीं लेते। यह देखा गया है कि आरंभ में अधिगम की गति धीमी होती है, फिर गति में तीव्रता आती है, और बाद में फिर से गति धीमी हो जाती हैं याद करने के अधिगम को वक्र द्वारा दर्शाया जाता है जो कौशल के वक्र के समान होता है। इसमें

पठार हो भी सकता है और न भी। यदि पठार आता है तो वक्र जैसा पृष्ठ 261 पर दिखाया गया है वैसा होगा।



चित्र—17-पहचानना अनुस्मरण की अपेक्षा सरल है।

यदि सामग्री छात्रों के लिए अपेक्षाकृत सरल है तो वे प्रारंभ से ही द्रुत गति से प्रगति करेंगे। ऐसी स्थिति में आरंभ में धीमी गति जैसी वक्र में दिखाई गई है, नहीं उठेगी। किंतु यदि सामग्री काफी लम्बी है तो पठार की अवस्था आएगी।

याद करने की विधियां

याद करने की विधियां बहुत कुछ उस सामग्री पर, जिसे याद करना है, निर्भर करती हैं। छात्रों को एक कविता कंठस्थ करना है उस स्थिति में पंक्तियों और छन्दों का क्रम महत्वपूर्ण है, यदि वे पूरी कविता याद करते हैं तो कविता का एक भाग

अगले भाग के लिए एक संकेत का काम करता है। ये संकेत याद करने में सदैव उपयोगी होते हैं।

कभी-कभी क्रम महत्वपूर्ण नहीं होता, जैसे धातुओं या किसी वस्तु के गुण। किंतु याद करने में यह पाया गया है कि एक क्रम में याद करने से सुगमता होती है क्योंकि एक गुण अगले गुण के लिए संकेत बन जाता है।

कभी-कभी शिक्षार्थी के सामने शब्दों के या निरर्थक शब्दाशों के जोड़े प्रस्तुत किए जाते हैं। पुनः स्मरण करवाते समय बाईं ओर का शब्द या शब्दांश प्रस्तुत किया जाता है और सीखने वाले को स्मृति से दायां शब्द पड़ता है। जोड़े इस प्रकार के हो सकते हैं।

भारत	दिल्ली
फ्रांस	पेरिस
इटली	रोम

अपने देश में जहां बच्चों को कई भाषाएं सीखनी होती हैं युग्मन याद करने में सहायक हो सकता है। यदि उन्हें एक शब्दों की सूची उस भाषा में दी जाए जिसे वे नहीं जानते हैं, उन्हें उसे याद करने में कठिनाई होगी। इससे अधिक अच्छा होगा यदि उन्हें युग्म दिए जाएं जैसे:

हाथ	हैण्ड
कुरसी	चेयर
घर	हाउस

बाईं ओर के कालम के शब्द दाईं ओर के शब्दों के लिए, जो बच्चे के लिए नए हैं, संकेत प्रस्तुत करेंगे।

याद करने की प्रगुण (Efficient) विधियां

सीखने की ऐसी विधियां है जो समय और श्रम का अपव्यय करती हैं और कुछ ऐसी हैं जो अधिक प्रगुण हैं। निम्न कारक प्रगुणता में मदद करते हैं।

1. शिक्षार्थी जो कुछ सीख रहा है उसकी ओर उसे ध्यान देना चाहिए। केवल दोहराना पर्याप्त नहीं है। हम रोज किसी रास्ते से जाते हों किंतु हमें यह बात याद नहीं रहती कि कितने और किस-किस प्रकार के मकान और पेड़ रास्ते में पड़ते हैं। किंतु यदि किसी दिन हम घरों और वृक्षों को विशेषरूप से नोट करें, हम उनमें से अनेक को याद कर सकेंगे। मान लिजिए कोई इस रास्ते रोज बस से जाता रहा है, किंतु अगले दिन से उसे स्कूटर से जाना है और स्वयं रास्ते का पता लगाना है। वह उन मोड़ों को नोट करेगा जहां उसे मुड़ना है, और उस घर या पेड़ को ही विशेषरूप से याद रखेगा जो उस मोड़ पर है। जो कुछ वह याद करेगा वह उस व्यक्ति से

भिन्न होगा जो घरों और पेड़ों को किसी अन्य उद्देश्य से नोट कर रहा है। इसी प्रकार बच्चों को पता होना चाहिए कि उन्हें किस बात पर ध्यान चाहिए। उदाहरण के लिए भूगोल की कक्षा में ये तथ्य हो सकते हैं जिन्हें छात्रों को याद करना है। भाषा की कक्षा में ये वाक्य संरचनाएं हो सकती है।

2. समय का अन्तर देकर (spaced) अधिगम लगातार अधिगम की अपेक्षा अधिक लाभकारी होता है बच्चे तीन दिन में, प्रतिदिन आधा घण्टा याद करके। लगातार लम्बी अवधि के कालखण्ड में बच्चे ऊब और थक जाते हैं। अत्यावश्यकता होने पर जैसे परीक्षा, वादविवाद या रंगमंच पर अभिनय की तैयारी के लिए यदि घण्टों याद करना पड़े तो सीखने के अन्तराल में बीच बीच में विश्राम देना चाहिए।

3. संबंधित सामग्री को एक साथ लेकर याद करना खण्डों में याद करने से अधिक अच्छा है। जैसे यदि एक कविता याद करनी है तो पूरी कविता को एक साथ याद करना अधिक अच्छा है बजाय छन्दों को अलग-अलग याद करने के। किंतु, यदि कविता बहुत लम्बी है, या किसी बच्चे को कुछ भाग कठिन लग रहा है तो खण्डों में याद किया जा सकता है, किंतु बीच बीच में सारी कविता दोहराने का प्रयास करना चाहिए।

4. सक्रिय स्मरण बार बार पढ़ने से अधिक प्रभावशाली है। जब पढ़ने के बाद कुछ याद हो जाए, तो उसे बार-बार पढ़ने के स्थान पर यह अधिक अच्छा होगा कि शिक्षार्थी याद करने का प्रयास करे कि क्या पढ़ा था। जहां वह रुके वहां अनुबोधन (prompt) किया जाए या वह स्वयं सामग्री को देखे। स्मरण करने के प्रयास से अधिगम में काफी सहायता मिलेगी।

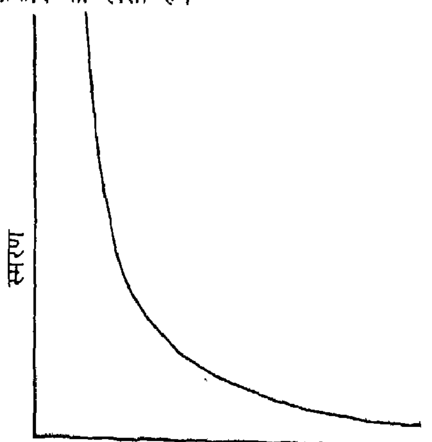
5. स्मरण केवल एक प्रकार की क्रिया है। यदि व्यक्ति क्रियाशील है तो अधिगम में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए आप चौबीसवें अध्याय में भूलभुलैयां को कुछ मिनट देखें और फिर उसे हल करने का प्रयास करें या आप उसे देखें और प्रारंभ करने के स्थान से लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयास करें चाहे वह कार्य मन में ही क्यों न करे। आप देखेंगे कि बाद की स्थिति में आपने अधिक सीखा।

विस्मरण

महत्वपूर्ण प्रश्न जिनके उत्तर हम ढूंढ रहे हैं वे हैं: जितना सीखा जाता है उसमें से हमें कितना याद रहता है? या इसका उल्टा हम कितना भूलते हैं? किस गति से विस्मरण होता है? इन प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए सीखने के बाद विभिन्न अन्तराल देकर शिक्षार्थी का परीक्षण किया गया है, जैसे सीखने के एक घण्टे के बाद, कुछ घण्टों बाद, दूसरे दिन, आने वाले दिनों में।

परीक्षण की एक विधि है शिक्षार्थियों ने जो कुछ सीखा है उसे अनुस्मरण (recall) करने को कहना। यहां यह देखते हैं कि कितना याद रहा। दूसरी विधि में यह पता लगाना होता है कि कहां तक याद की हुई विषय-वस्तु को वह पहचान सकता है। सामान्यतया यह देखा गया है कि अनुस्मरण से अधिक वे पहचानने का कार्य कर सकते हैं। एक तीसरी विधि में जो सामग्री याद करने को दी गई थी, कुछ समय के बाद उसके अनुस्मरण में भूले होने पर फिर ये याद करना, और यह देखना कि बिना भूल के अनुस्मरण तक पहुंचने में कितना समय लगा, पहले कितना लगा था, और दूसरी बार याद करने में समय की कितनी बचत हुई। इस विधि में समय की बचत स्मृति का माप होगी। इन तीनों विधियों के परिणामों में कुछ अन्तर हो सकता है, किंतु भूलने की समान्य गतिविधि में काफी समानता मिलती है।

याद करने के तुरन्त बाद विस्मरण की गति बहुत तेज होती है। काफी भाग पहले चौबीस घण्टे में विस्मृत हो जाता है। इसके बाद जो कुछ भी याद रह जाता है उसमें बहुत कम विस्मरण होता है। जो सामग्री व्यक्ति को याद रह जाती है उसका वक्र निम्न प्रकार का होता है।



चित्र-18 भूलने का वक्र

ये जानकारी शिक्षक के लिए काफी निराशाजनक हो सकती है। किंतु हमें यह याद रखना चाहिए कि ये अध्ययन अधिकतर निरर्थक सामग्री जैसे निरर्थक शब्दांशों को लेकर किए गए हैं, और सामग्री को उसी बिन्दु तक ही याद किया गया जब शिक्षार्थी पहली बार बिना भूल के दोहरा सका। जब इसके बाद भी याद किया जाता है या जब सामग्री अर्थपूर्ण हो तब स्थिति इससे भिन्न होती है। पहले हम विस्मरण की प्रकृति का परीक्षण थोड़ा और करें।

एक रोचक जानकारी जो प्राप्त हुई वह यह है कि रात को यदि सामग्री को याद करने के बाद व्यक्ति सो जाता है, और शिक्षार्थी का परीक्षण प्रातः किया जाता है तो इसके परिणाम प्रातः याद करके शाम को परीक्षण करने से अधिक अच्छे प्राप्त होते हैं। यह दर्शाता है कि निद्रा की अपेक्षा जागने में विस्मरण अधिक होता है। जब शिक्षार्थी जागा हुआ होता है, वह अन्य जानकारी और अनुभव प्राप्त कर रहा है जो याद की हुई सामग्री में रुकावट डालते है। इस प्रकार की रुकावट प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुई है। ऐसे दो प्रयोग जिनका वर्णन मन (Munn)[1] ने किया है नीचे दिए जा रहें हैं।

अग्र-व्यापी अन्तर्बाधा (Proactive Inhibition)

जब कुछ जो पहले ही सीख लिया गया है नए अधिगम में बाधा डालता है, उसे अन्तर्बाधा कहते हैं। अन्तर्बाधा का अध्ययन प्रयोगों द्वारा किया गया है जैसा आगे दिया जा रहा है। प्रयोज्यों के दो दल बनाए गए। दल 'अ' ने एक निरर्थक शब्दांशों की सूची याद की और उसके बाद एक दूसरी सूची याद की जो भी निरर्थक शब्दांशों की थी। दल 'ब' ने केवल दूसरी सूची याद की। यह देखा गया कि दल 'ब' ने अधिक तेजी से याद कर लिया और उनकी धारिता (retention) अधिक अच्छी निकली। ऐसा लगता है कि 'अ' दल ने जो पहली सूची याद की थी उससे दूसरी सूची के याद करने में बाधा पहुंची।

पूर्व-व्यापी अन्तर्बाधा (Retroactive Inhibition)

जब नई सामग्री के याद करने में जो कुछ पहले से सीख लिया गया है उसकी धारिता में बाधा पहुंचती है तो इसे पूर्व-व्यापी अन्तर्बाधा कहते हैं। इसको प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग आगे दिया जा रहा है। दल 'अ' और दल 'ब' निरर्थक शब्दांशों की एक सूची याद करते हैं। इसके बाद दल 'अ' निरर्थक शब्दांशों की एक दूसरी सूची याद करता है, जबकि दल 'ब' किसी अन्य कार्य, जो याद करने से संबंधित नहीं है, संलग्न रहता है। अब दोनों समूहों को पहली सूची दोहराने को कहा जाता है। 'ब' दल का निष्पादन 'अ' दल से अधिक अच्छा पाया गया।

आगे प्रयोगों से पता चला कि यदि 'अ' दल ने पहली सूची याद करने के तुरन्त बाद दूसरी सूची याद की होती, या दूसरी सूची को कुछ समय देकर याद की होती तो पहली अवस्था में अधिक अन्तर्बाधा उत्पन्न होती है।

अन्य प्रयोगों से पता चला है कि अग्र-व्यापी और पूर्व-व्यापी अन्तर्बाधा दोनों में यह देखा गया कि जितनी अधिक समानता दोनों कार्यों में होगी उतनी अधिक अन्तर्बाधा भी होगी। यदि एक सूची अंकों की हो और दूसरी सूची निरर्थक शब्दांशों

---

1. N.L. Munn, Introduction to Psychology, Calcutta, Oxford & I.B.H. Publishing Co., 1967.

की हो तो कम बाधा होगी बजाए इसके कि जब दोनों सूचियां निरर्थक शब्दांशों की हों या संख्याओं की हों।

विस्मरण के कारण

सामग्री जो एक बार याद कर ली गई वह क्यों भूली जाती है? विस्मरण के विभिन्न कारण बताए गए हैं।

1. विस्मरण को धीरे धीरे क्षीण होने की प्रक्रिया माना गया है। एक समय यह माना जाता था कि स्मृतियां मन्द हो कर लुप्त हो जाती हैं। किन्तु यह पाया गया है कि कोई घटना, जो अनेक वर्षों पूर्व हुई थी और जो लगता था कि व्यक्ति बिलकुल भूल गया है, कभी कभी सम्मोहन द्वारा या किसी अन्य स्थिति में स्मृति पटल पर पुनः लाई जा सकती है। इनसे ऐसा लगता है कि अनुभव स्मृति से सर्वथा लुप्त नहीं हो जाते।

2. मनोविश्लेषणवादी विस्मरण को दमन के रूप में देखते हैं। जो अप्रिय है, जिसे हम याद नहीं रखना चाहते विस्मृत हो जाता है। अनेक मामलों में यह संभवतया सही हो सकता है। ऐसा देखा गया है कि यदि हम वास्तव में किसी से मिलना नहीं चाहते, तो मिलने की निश्चित तारीख और समय पर हमें उनकी याद नहीं आती। दैनिक जीवन में इस प्रकार के अन्य उदाहरण हैं। किन्तु सारे विस्मरण की व्याख्या दमन के द्वारा नहीं की जा सकती। हम ऐसी बहुत सी बातें भूल जाते हैं जिनका कोई महत्व या भावात्मक अर्थ हमारे लिए नहीं है।

3. मनोवैज्ञानिक अब सामान्यतया यह मानते हैं कि भूलना अन्य अनुभवों द्वारा बाधा उत्पन्न होने के कारण होता है। व्यक्ति निरन्तर सूचनाओं और अनुभवों से घिरा रहता है। ये किसी कार्य के, जिसे सीखा गया है, अनुस्मरण में बाधा डालते हैं। अग्र-व्यापी और पूर्व-व्यापी अन्तर्बाधा, विशेषतया अवरोधन, विस्मृति के पीछे हैं।

कारक जो स्मरण को बढ़ाते हैं और विस्मरण को कम करते हैं

जिन प्रयोगों की विवेचना पहले की गई है उनसे लगता है कि भूलने की गति बहुत तीव्र होती है। फिर भी, कुछ परिस्थितियों में यह बहुत कम की जा सकती है और सामग्री की धारिता (retention) को बढ़ाया जा सकता है।

पहली बात तो यह है कि जिस चीज का अर्थ हम समझते हैं वह अधिक अच्छी तरह याद रहती है। अधिकतर याद करने के प्रयोग निरर्थक शब्दांशों पर किए गए हैं जिनका शिक्षार्थी के लिए कोई अर्थ नहीं होता। समझ कर याद करना धारिता के लिए सर्वोत्तम विधि है। ऐसा भी हो सकता है कि जो बात अन्तर्दृष्टि से उदय हुई वह एक बार भी बिना दोहराए याद हो जाए।

अति-अधिगम (over learning) धारिता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सामग्री

को उस बिन्दु तक याद करने के बाद, जहां पहली बार बिना भूल के उसे दोहराया जा सके, जितना भी याद किया जाता है वह अति-अधिगम या सामान्य भाषाओं द्वारा पक्का करना है। स्कूलों में हम सामान्यतया अति-अधिगम करवाते हैं। बच्चों को किसी चीज को कंठस्थ करने के बाद भी उनसे अनेक बार उसे दोहराने को कहा जाता है। अपनी पुस्तक में कोई नया शब्द सीखने के बाद वही शब्द अन्य पाठों में बच्चे बार-बार पढ़ते हैं या उन्हें उस शब्द के प्रयोग करने के अवसर मिलते हैं। पहाड़े याद करने के बाद उनका प्रयोग गणित के प्रश्नों में होता है। अति-अधिगम धारिता में सहायक होता है। यदि मानसिक तनाव की परिस्थितियों में सामग्री को याद से दोहराना है तो पक्का करना आवश्यक है। परीक्षा में या लोगों के सामने बोलने में घबराहट के कारण धारिता में बाधा पड़ सकती है। किंतु यदि सामग्री को काफी पक्का कर लिया गया है तो इससे व्यक्ति घबराहट जन्य अवरोध पर काबू कर लेगा।

संकेत स्मरण में मदद करते हैं। संकेत सामग्री में ही या उसके बाहर हो सकते हैं चारों ओर के परिवेश शिक्षार्थी के बैठने या खड़े होने की स्थिति भी संकेत दे सकते हैं।

शिक्षार्थी के मानसिक रुख (mental set) से भी अन्तर पड़ता है। यदि व्यक्तियां के दो दलों को निरर्थक स्वर याद करने को दिए जाते हैं और एक दल से कहा जाता है कि याद करने के तुरन्त बाद उनका परीक्षण होगा और दूसरे दल से कहा जाता है कि उनका परीक्षण अगले दिन होगा, तो याद करने के लिए समान समय देने पर भी दूसरा समूह अधिक अच्छा याद करेगा। यह शायद इसलिए होता है कि जब उन्हें ऐसा लगता है कि सामग्री अगले दिन तक याद रखनी है तो ऐसा करने के लिए ये कुछ संकेत निर्मित करते हैं जिनसे सामग्री अर्थयुक्त हो सके। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति को निम्न निरर्थक शब्दांश याद करने हैं जैसे रेज, जैप, मिन तो यह याद रखने के लिए संकेत बना सकता है 'राजा' 'जीप में' या 'रोज जापानी मीन खाते हैं।' इस प्रकार अर्थयुक्त करने से याद करना आसान हो जाएगा।

एक रोचक बात यह पता लगी है कि जो कार्य अधुरे छूट जाते हैं वे पूरे किए हुए कार्यों से अधिक समय तक याद रहते हैं। यदि आप कोई कार्य कर रहे हैं और किसी कारण आपको रुकना पड़ जाता है, तो ऐसा कार्य उन समस्याओं की अपेक्षा जिन्हें आपने पूरा कर लिया है, अधिक समय तक याद रहेगा। इसका कारण हमारी कार्य पूरा करने की इच्छा हो सकती है जो कार्य को हमारे मन में कायम रखती है।

तुकबन्दी और लय याद रखने में मदद करते हैं। इसका कारण कुछ हद तक तो यह है कि ये संकेत का कार्य करते हैं और कुछ इसलिए कि बच्चों को ऐसी

सामग्री जिसमें तुकबन्दी और लय हैं उसे दोहराने में मजा आता है और इस प्रकार वह पक्का हो जाता है।

कोई चीज जिसका भावात्मक प्रभाव पड़ता है याद रहती है। यह कारक स्कूल के विषयों की अपेक्षा जीवन की परिस्थितियों से अधिक संबद्ध हैं। फिर भी साहित्य और सामाजिक अध्ययन में अनेक पाठ ऐसे हैं जिनमें भावात्मक आकर्षण है और जिसका उपयोग किया जा सकता है।

धारिता के लिए अधिगम शिक्षण विधियां

हम चाहते हैं कि जो छात्र पढ़ते हैं उसे वे याद रखें, छात्र भी याद रखना चाहते हैं। स्मृति को अच्छा बनाने की कोई विधि नहीं है, किंतु अच्छी याद करने की विधियां हमारे प्रयत्नों को अधिक लाभकारी और धारिता को उन्नत बना सकती है। ऊपर की गई विवेचना से हम देखते हैं ये विधियां इस प्रकार हैं:

1. कक्षा के कालखण्डों को तीस या चालीस मिनट का और प्रत्येक विषय के लिए विभिन्न दिन रखने की परिपाटी शैक्षिक दृष्टि से सही है। सारा दिन या आधा दिन एक विषय पर लगाने के बजाए ये छोटे कालखण्ड याद करने की दृष्टि से अधिक अच्छे हैं।

2. दो समान विषयों के घण्टे एक दूसरे के बाद नहीं आने चाहिए। इतिहास के घण्टे के बाद गणित का घण्टा होना अधिक अच्छा है बजाए सामाजिक अध्ययन की एक के बाद एक दो कक्षाएं।

3. एक लेखांश यांद करने के लिए, सारा लेखांश एक साथ याद करना, अलग-अलग भाग करके याद करने से अधिक अच्छा है। यदि भागों में याद करना आवश्यक हो जाए तो बाद में सारा लेखांश एक साथ याद करके इसकी पूर्ति करनी चाहिए।

4. जितनी जल्दी हो सके, शिक्षार्थी को लेखांश बार-बार पढ़ने के बजाए, बिना पढ़े दोहराने की कोशिश करनी चाहिए।

5. याद करने के उत्तम तरीकों में एक तरीका समझ कर याद करना है।

6. जहां पर स्मृति पर बहुत बल है जैसे नाम, तिथियां, लेखांश को कंठस्थ करना, वहां अति-अधिगम धारिता के लिए आवश्यक है।

7. शिक्षार्थी के मन में यह स्पष्ट होना चाहिए कि उसे क्या सीखना है और किस पर उसे ध्यान देना है। उदाहरण के लिए उसे यह जानना चाहिए कि क्या उसे सारी सामग्री शब्दांशः याद करनी है या केवल कुछ बिन्दु याद करने है।

8. शिक्षार्थी को सक्रिय होना चाहिए और संबंध स्थापित करने चाहिए।

9. संकेतों का उपयोग करना चाहिए।

10. जहां संभव हो, विशेषकर छोटे बच्चों के लिए, तुकबन्दी का उपयोग करना ठीक होगा।

11. साहित्य में, सामाजिक अध्ययन में और जहां उपयुक्त हो शिक्षक को विषय का भावात्मक आकर्षण उजागर करना चाहिए।

12. कभी कभी शिक्षक किसी घटना के वर्णन को अगले दिन के लिए अधूरा छोड़ सकता है, या ऐसी समस्या दे सकता है, जिसका उत्तर तुरन्त नहीं निकल सके और बच्चों से कहा जाए की अगले दिन उत्तर ढूंढ कर लाएं। बच्चे इस सामग्री को अधिक अच्छा याद रखेंगे, बशर्ते यह उन्हें रुचिकर लगे।

अध्याय 30

सृजनात्मकता विकसित करना

सुरेन्द्र नाथ त्रिपाठी

सृजनात्मकता का चिन्तन से घनिष्ट संबंध है।[1] कोई नया विचार, आविष्कार, किसी कार्य को करने की नई विधि, ज्ञान में कोई वृद्धि ये सब सृजनात्मकता की उपलब्धियां हैं। उत्पादक चिन्तन का अध्ययन हमें सृजनात्मकता समझने में मदद करता है।

दो प्रकार का चिन्तन

चिन्तन दो प्रकार का होता है : कन्वर्जेण्ट और डाइवर्जेण्ट (divergent)। जिन समस्याओं में केवल एक सही उत्तर होता है उसमें व्यक्ति कन्वर्जेण्ट चिन्तन करता है। दूसरे शब्दों में उसका चिन्तन सही उत्तर पर अभिसरिक होता है। जिन समस्याओं के बहुत से सही उत्तर हो सकते हैं उनमें व्यक्ति डाइवर्जेण्ट चिन्तन करता है।

मान लीजिए किसी व्यक्ति को दिल्ली से कन्याकुमारी जाना है। रास्ते में वह हैदराबाद, मद्रास, बंगलौर, मैसूर, मदुरई और त्रिवेन्द्रम भी जाना चाहता है। वह अपने सफर की कैसे ऐसी योजना बनाए कि सबसे छोटा मार्ग अपना सके? एक ऐसा व्यक्ति जो दक्षिण भारत नहीं गया इस प्रश्न का उत्तर स्मृति के आधार पर नहीं दे सकता। उसे रेल की समय-सारणी देखनी पड़ेगी। उसे देखना पड़ेगा कि कौन सी ट्रेनें दक्षिण की ओर जाती हैं और अपना यात्राक्रम बनाना होगा। समस्या पर विचार करना होगा। इस समस्या में क्योंकि सबसे छोटे मार्ग को अपनाना है इसलिए एक ही सही उत्तर होने की संभावना है। समस्या इसलिए कन्वर्जेण्ट चिन्तन का रूप ले लेती है। इसी समस्या को हम डाइवर्जेण्ट चिन्तन की समस्या में बदल सकते हैं। मान लीजिए कि व्यक्ति से कहा जाए कि वह कुछ स्थानों को जाते हुए देख सकता है और कुछ को लोटते हुए, और उसे सबसे छोटा मार्ग अपनाना आवश्यक नहीं है बल्कि ऐसा जो उसके लिए सुविधाजनक हो। अब व्यक्ति कई यात्राक्रम बना सकता

[1] अध्याय 6 भी देखिए।

है। यहां वह डाइवर्जेण्ट चिन्तन करेगा। ऐसी अनेक समस्याएं है जो डाइवर्जेण्ट चिन्तन के लिए अवसर प्रदान करती हैं। मान लीजिए प्रश्न है, 'कागज के क्या विभिन्न उपयोग हो सकते हैं?' कागज के सामान्य उपयोग जैसे किताबें, पत्रिकाएं और अखबार छापने के अलावा कागज की तश्तरी, मुद्रा, कागज के फूल, ताश, इत्यादि हैं। जो व्यक्ति भिन्न भिन्न दिशाओं में सोचेगा वह अधिक उपयोग बता सकेगा। यदि वह कागज के गुणों के बारे में सोचने लगता है, तो वह और भी अधिक उत्तर दे सकेगा। उदाहरण के लिए, कागज सफेद होता है और इसलिए इसे मेज पर बिछाया जा सकता है। कागज के हल्केपन के कारण उसके लिफाफे और डिब्बे बनाए जा सकते हैं, पारदर्शी कागज का प्रयोग हम चित्रों के आवरण या आकृतियों की नकल करने के लिए कर सकते हैं, रंगीन कागज का उपयोग फूल बनाने और अन्य सजाने की सामग्री में किया जा सकता है। इस प्रकार की समस्याओं में जंहा कई सही उत्तर हो सकते हैं, जो मानसिक क्रिया होती है वह है डाइवर्जेण्ट चिन्तन।

हम अपने स्कूलों में डाइवर्जेण्ट चिन्तन पर बल नहीं देते हैं। हमारा जोर समझने और याद करने पर होता है। कक्षा में छात्र समझने की कोशिश करता है कि शिक्षक क्या पढ़ा रहा है। बाद में वह पाठ्यपुस्तक पढ़ता है और जो भी नोट्स उसने कक्षा में तैयार किए हैं उनको आवश्यकतानुसार विस्तृत करता है। बीच-बीच में उसे परीक्षाएं देनी होती हैं। वह पाठ्य-पुस्तक और नोट्स से तथ्यों और लेखांशों को याद करता है। इस प्रकार हमारा बल समझने और याद करने पर होता है। ये मानसिक क्रियाएं महत्वपूर्ण हैं, किंतु इनके अन्तर्गत उत्पादक चिन्तन नहीं आता। उत्पादक चिन्तन में समझने और याद करने के आगे और भी कुछ चाहिए। उत्पादक चिन्तन से नई जानकारी की रचना होती है। यदि छात्र को विज्ञान या गणित की कोई समस्या हल करने को दी जाती है तो वह उत्पादक चिन्तन करेगा, जो कि अधिकतर कनवजेण्ट होगा, क्योंकि अधिकतर ऐसी समस्याओं के केवल एक सही उत्तर होते हैं। यदि उसे जोड़ना, घटाना, गुणा या भाग करना है, या प्रतिशत निकालना है तो इन सब में केवल एक सही उत्तर होगा जिसे वह निकालेगा। छात्रों को डाइवर्जेण्ट चिन्तन के अवसर कम मिलते हैं। फिर भी, ऐसी परिस्थितियां निर्मित की जा सकती है। जहां डाइवर्जेण्ट चिन्तन की आवश्यकता होगी। मान लीजिए शिक्षक वृक्षों के बारे में पढ़ा रहा है। वह छात्रों से पूछ सकता है कि हमको वृक्षों से क्या-क्या लाभ प्राप्त होते हैं। यहां पर डाइवर्जेण्ट चिन्तन की आवश्यकता होगी। शिक्षक किसी विशेष लाभ के बारे में नहीं पूछ रहा किंतु विभिन्न उपयोगों और लाभों के बारें में। इसी प्रकार सामाजिक अध्ययन का शिक्षक पूछ सकता है कि गांवों में आवागमन के साधनों में कैसे सुधार लाया जा सकता है, या कैसे सामाजिक

बुराइंया जैसे भीख मांगने को कम किया जा सकता है। छात्र कई प्रकार के उपाय सुझा सकते हैं। यहां पर वे डाइवर्जेण्ट चिन्तन करेंगे।

गिल्फर्ड[1] के अनुसार डाईवर्जेण्ट चिन्तन का सृजनात्मकता से घनिष्ट संबंध है। इसका कारण यह है कि जब हम किसी समस्या को हल करने के विभिन्न उपायों के बारे में सोचते हैं तो हमारे मन में नवीन उपाय भी आ सकते हैं और नवीनता सृजनात्मकता के लिए आवश्यक शर्त है। कक्षा में डाइवर्जेण्ट चिन्तन के लिए बहुत से अवसर मिल सकते हैं किंतु इनकी ओर शिक्षकों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। यदि हमें सृजनात्मक चिन्तन विकसित करना है तो हमारा एक उद्देश्य डाइवर्जेण्ट चिन्तन विकसित करना होगा। स्कूल के प्रत्येक विषय के लिए शिक्षक विचार कर सकता है कि उसमें डाइवर्जेण्ट चिन्तन को किस प्रकार लाया जाए। गिल्फर्ड ने डाइवर्जेण्ट चिन्तन के स्थान पर डाइर्जेण्ट उत्पादन शब्द को बेहतर माना है। गिल्फर्ड ने कन्वर्जेण्ट चिन्तन के स्थान पर कन्वर्जेण्ट उत्पादन शब्द का सुझाव दिया है।

यद्यपि डाइवर्जेण्ट चिन्तन का सृजनात्मकता से घनिष्ट संबंध है, इसका अर्थ कन्वर्जेण्ट चिन्तन के महत्व को कम करना नहीं है। सामान्य कन्वर्जेण्ट चिन्तन में नए विचारों की प्राप्ति नहीं होती। किंतु ऐसी समस्याएं हैं, जहां केवल एक सही उत्तर है किंतु उत्तर ऐसा है कि उसमें एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ती है, अतः हम उसे सृजनात्मक कह सकते हैं।

डाइवर्जेण्ट चिन्तन और सृजनात्मकता

ऊपर बताया गया कि सृजनात्मकता का डाइवर्जेण्ट चिन्तन से घनिष्ट संबंध है। यहां पर यह बताना अधिक उपयुक्त होगा कि सृजनात्मकता की परिभाषा क्या है। सृजनात्मकता की परिभाषा के लिए दो उपागम हैं। एक उपागम सृजनात्मकता के उत्पादन पर बल देता है और दूसरा सृजनात्मकता की प्रक्रिया पर। जहां उत्पाद को आधार माना गया है वहां उत्पाद के वे गुण मुख्यरूप से ध्यान में रखे जाते हैं जिनके आधार पर उसे सृजनात्मक उत्पाद कहा जा सके। सभी इस विचार से सहमत होंगे कि सृजनात्मक उत्पदक में नवीनता होनी चाहिए। नवीनता सृजनात्मकता का मुख्य निष्कर्ष है। किसी परंपरागत चीज के उत्पाद को सृजनात्मक नहीं माना जाएगा। मान लीजिए कि एक व्यक्ति मोटर गाड़ी का एक ऐसा इंजन बनाता है जो पेट्रोल या डीजल के बजाए हाइड्रोजन से चलता है। यह एक नवीन उत्पाद होगा। इसी प्रकार एक दूसरा व्यक्ति एक ऐसा टाइपराइटर बनाता है जिस पर टंकन करने में कोई शोर नहीं होता। हाल में जापान के कुछ प्राध्यापकों ने एक ऐसी विधि निकाली

1. J.P Guilford and R. Hoepfner, The Analysis of Intelligence, New York, Mc Graw Hill Book Co., 1971, p 142

जिसमें खून देने में दाता और प्राप्त करने वाले के खून का मिलान करना आवश्यक नहीं। कुछ एन्जाइमों (enzymes) का उपयोग करके कोई भी किसी प्रकार का खून दे सकता है। इन सभी उदाहरणों में हमें नवीनता दिखाई देती है। किन्तु केवल नवीनता पर्याप्त नहीं है। नवीनता के अतिरिक्त उपयोगिता भी होनी चाहिए। जिस आविष्कारक ने नया मोटर का इंजिन बनाया उसे यह भी दर्शाना होगा कि इंजिन व्यावहारिक भी है। इसी प्रकार ऐसा टाइपराइटर बनाना संभव है जिसमें बहुत कम आवाज होती हो। किंतु यदि जिस साधन से आवाज कम होती है वह प्रगुण टंकन में बाधा डालता हो तो हम सचमुच में उसे सृजनात्मक आविष्कार नहीं कह सकेंगे। तीसरे उदाहरण, रक्त-आधान (blood transfusion) में, यदि बाद में यह पता चलता है कि इस विधि से रक्त देने के बाद कुछ हानिकारक परिणाम होते हैं तब हम रक्त-आधान की प्रचलित विधि में इसे कोई उपयोगी परिवर्तन नहीं कहेंगे। इस प्रकार जो भी नवीन है किंतु उपयोगी नहीं है उसे सृजनात्मक नहीं कहा जा सकता। दोनों निष्कर्ष महत्वपूर्ण हैं। उपयोगिता को एक विस्तृत अर्थ में लेना चाहिए। उपयोगिता प्रतिदिन के उपयोग की वस्तुओं, विधियों व तकनीक तक सीमित नहीं हैं। जिससे हमारी समझ या ज्ञान का विस्तार हो वह भी उपयोगी है। इसके साथ-साथ जो हमें कलात्मक आनन्द दे उसे भी उपयोगी माना जा सकता है।

सृजनात्मकता को परिभाषित करने का एक दूसरा तरीका सृजनात्मकता की प्रक्रिया का वर्णन करना है। कई मनोवैज्ञानिकों का, जिनमें मेडनिक[1] बैलेश और कोगन[2], क्यूबे[3] सम्मिलित हैं, विचार है कि सृजनात्मक प्रक्रिया में हमें कुछ असाधारण संयोजन निर्मित करने होते हैं या ऐसे तत्वों के बीच संबंध स्थापित करना होता है जो सामान्यतया संबंधित नहीं होते। इन असंबंधित तत्वों को मिलाना जिससे कुछ ऐसा बन सके जो किसी विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति करता हो या किसी प्रकार से उपयोगी हो, एक सृजनात्मक कार्य होगा। इसके क्या अर्थ हुए? उदाहरण के लिए हम कोई समस्या लें। एक समस्या जो हमारे सामने है, वह है ऊर्जा का संकट। पेट्रोलियम के दाम बढ़ने से और इस आशंका से कि ऐसा समय आ सकता है जब प्राकृतिक आपूर्ति समाप्त हो जाएगी, ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों की खोज हो रही है। यदि हम अपने चिन्तन को सामान्य स्रोतों से अलग कर लें तब हम किसी नए स्रोत के बारे में सोच सकते हैं। एक सुझाव जो उठ रहा है, वह है कि समुद्र की

1. U.S.A. Mednick and Martha Mednick. As associative interpretation of the creative process, In, C.W. Taylor (Ed) Wedening Horizons in Creativity, New York, John Wiley, 1964.
2. M.A. Wallack and N. Kogan. Modes of Thinking in Young children. New York, Holt, Rinehart and Winston, 1965.
3. L.S. Kubie, Neurotic Distortion of the Creative Process. New York, Noon Day Press, 1958.

लहरों की ऊर्जा को काम में लाया जाए। यह अभी प्रयोगिक अवस्था में हैं, किंतु जब किसी ने इस उपाय के बारे में सोचा होगा तब उसके मन में क्या मानसिक क्रिया हुई होगी? उसने दो तत्वों को जोड़ा, 'ऊर्जा का उत्पादन' और 'सागर की लहरें।' इन तत्वों को अकसर संयोजित नहीं किया जाता। जिस व्यक्ति ने सर्वप्रथम इनको मिलाया उसने एक सृजनात्मक कार्य किया। किंतु वास्तव में इसे सृजनात्मक तब माना जाएगा जब सुझाव की व्यावहारिकता को प्रदर्शित किया जा सके।

गोबर गैस एक दूसरा सृजनात्मक विचार है जिसे व्यवहार में उपयुक्त पाया गया। यहां पर जिन तत्वों का संयोजन किया गया उनके बीच अधिक दूरी नहीं थी। हम गोबर को जलाने के काम में लिया करते थे। जो नया विचार दिया गया वह गोबर को गैस में परिवर्वित करने का था।

एक तीसरा उदाहरण हम साऊदी अरेबिया का ले सकते हैं, जो धनी देश है किंतु जहां पानी की आपूर्ति की समस्या है। पानी आपूर्ति समस्या के सामान्य साहचर्य क्या है? ये हैं: कुआं झीलें, नदियां, नहरें, वर्षा के पानी को एकत्रित करना, इत्यादि। किसी ने सोचा कि दक्षिणी ध्रुव से हिमशैल (iceberg) को खींच करके लाया जा सकता है और गरम जलवायु में जैसे-जैसे यह घुलेगा उसके पानी का उपयोग किया जा सकता है। यहां पर संयोजन दो दूरस्थ तत्वों का होता है: पानी की आवश्यकता और 'हिमशैल'।

ऊपर दी गई दोनों परिभाषाओं से सृजनात्मकता का अर्थ कुछ स्पष्ट होता है। सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षक को प्रति-दिन के शिक्षण में डाइवर्जेण्ट चिन्तन के लिए अधिक अवसर देने चाहिए।

डाइवर्जेण्ट चिन्तन के अर्न्तगत अधिक विशिष्ट लक्ष्य प्रवाहपूर्ण चिन्तन (fluent thinking), विविधतापूर्ण चिन्तन (flexible thinking), मौलिक चिन्तन (original thinking), और विस्तारणात्मक चिन्तन (elaborative thinking) हो सकते हैं। किसी समस्या पर जितने सुझाव व्यक्ति दे सकता है वे उसके चिन्तन के प्रवाह के द्योतक हैं। कहां तक सुझाव अलग-अलग श्रेणी के हैं यह विविधता दर्शाता है। मान लीजिए एक समस्या उठाई जाती है मोहल्ले कि स्वच्छता में सुधार लाने के लिए सुझाव दीजिए। एक व्यक्ति निम्नलिखित सुझाव देता है।

1. भूमिगत मल-निर्यास की व्यवस्था करना।
2. जो वाहिका अवरुद्ध हो जाती है उनमें सफाई वाले के प्रवेश के लिए छेद (main hole) बनवाना।
3. मल बह कर किसी झील या नदी में न जाए।
4. मल प्रवाह को शुद्ध करने के संयत्र की व्यवस्था करना।

5. सारे शहर की मल निकासी की एक समग्र योजना बनाना
6. मल निकासी व्यवस्था का निरीक्षण करने के लिए कर्मचारी नियुक्त करना।

इस व्यक्ति ने छः सुझाव दिए हैं जो उसके विचार-प्रवाह के द्योतक हैं। ये सुझाव यदि अलग-अलग श्रेणियों के आते तो यह उसकी विविधता बताते किंतु ये सब मल-प्रवाह से ही संबंधित है। मान लीजिए एक दूसरा व्यक्ति है जिसने निम्नलिखित सुझाव दिए:

1. कूड़ा इक्टठा करने की व्यवस्था होनी चाहिए।
2. स्वच्छ पीने के पानी की आपूर्ति होनी चाहिए।
3. खाने की वस्तुएं मक्खियों के लिए खुली नहीं होनी चाहिए।
4. भूमिगत मल निर्यास को बनवाना चाहिए।
5. मकान ऐसे बने हों कि वायु-संचालन की पर्याप्त व्यवस्था हो।
6. जिन तालाबों में स्थिर पानी है वहां मच्छरों के डिमकों (larvae) को मारने के लिए कुछ मिट्टी का तेल डालना चाहिए।

दूसरे व्यक्ति ने भी छः सुझाव दिए हैं। उसके विचारों का प्रवाह यानी विचारों की संख्या उतनी ही है जितनी पहले व्यक्ति की, किंतु विचारों में विविधता अधिक है। वह अपने विचारों की दिशा को बदल लेता है, इसलिए विविधता में वह पहले व्यक्ति से आगे है। जबकि पहले व्यक्ति के छः सुझाव हम एक श्रेणी 'मल निकास' में सुधार में समूहित कर सकते हैं, दूसरे व्यक्ति के उत्तरों को हम अलग अलग श्रेणियों में बांट सकते हैं, (1) कूड़ा करकट (2) पीने का पानी (3) खाद्य सामग्री (4) मल निकास (5) मकानों की बनावट (6) कीट-नाशक दवाएं।

प्रवाह और विविधता मौलिकता के लिए आधार तैयार करते हैं। जब अनेक उत्तर होंगे (प्रवाह) और उनमें विविधता होगी, तो यह संभावना बढ़ जाती है कि उनमें कुछ उत्तर मौलिक पाए जाएं। मौलिक उत्तर में नवीनता होगी। सामान्यतया यह दुलर्भ उत्तर होता है। जो उत्तर ऊपर दिए गए हैं उनमें से कोई मौलिक उत्तर नहीं है। ये सामान्य सुझाव हैं जो कोई भी दे सकता था। हम स्थिर पानी की समस्या लें जिसका जिक्र दूसरे व्यक्ति ने किया है। इससे मच्छर पैदा होते हैं। इसलिए जो उपाय सुझाया गया वह था कि मिट्टी का तेल डाला जाए जिससे मच्छर के डिमक मर जाएं। मान लीजिए कि कोई सुझाव देता है इसमें ऐसी मछलियां पैदा की जाए जो डिमक खा जाए इस सुझाव में नवीनता का कुछ तत्व है और इसलिए कुछ हद तक इसे मौलिक माना जा सकता है। मौलिकता सृजनात्मक चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य है।

डाइवर्जेण्ट चिन्तन का चौथा पक्ष है विस्तरीकरण। विस्तरीकरण कर अर्थ है विविरण के विभिन्न बिन्दुओं पर तथा निहितार्थ पर विचार करना। उदाहरण के लिए

[illegible] विचार मछलियों को रुके हुए पानी के तालाब में पैदा करना। इसका [illegible] करने के लिए विभिन्न पक्षों पर विचार करना पड़ेगा, जैसे, कौन सी मछलियां [illegible] में जी सकेंगी? क्या सभी मछलियां डिमक खा जाती है? कौन सा मौसम [illegible] को तालाब में डालने के लिए सबसे अच्छा होगा? विचार का सफलतापूर्वक [illegible] करने के लिए विस्तरीकरण आवश्यक है। व्यक्ति जितने अधिक बिन्दुओं [illegible] पाएगा उतना ही अधिक उसकी विस्तरीकरण की योग्यता होगी।

[illegible] के प्रवाह, विविधता, मौलिकता और विस्तरीकरण को बढ़ावा देना [illegible] जहां तक संभव हो, स्कूल के विषयों द्वारा करना चाहिए। इसके कुछ [illegible] दिए जा रहे हैं। ये आगे विचार करने के लिए और डाइवर्जेण्ट चिन्तन [illegible] के लिए आधार प्रस्तुत कर सकते हैं।

सामाजिक अध्ययन

[illegible] का उद्देश्य नागरिक शास्त्र, इतिहास, और भूगोल को संघटित करने [illegible] सामाजिक शास्त्र डाइवर्जेण्ट चिन्तन के लिए बहुत उपयुक्त है। सामाजिक [illegible] समुदाय, देश में तत्कालिक घटनाएं अनेक डाइवर्जेण्ट समस्याएं उठाने के [illegible] अवसर प्रदान करती है। ये हो सकती है: जन साधारण में शिक्षा का प्रसार करने के लिए क्या करना चाहिए? स्वास्थ्य के सामान्य स्तर में वृद्धि लाने के लिए क्या करना चाहिए? झुग्गी झोपड़ी वासियों के लिए किस प्रकार अधिक अच्छे आवास [illegible] जा सकते हैं? इत्यादि।

[illegible] सुझाव प्राप्त करने के लिए, कभी कभी प्रत्यक्ष ज्ञान की आवश्यकता [illegible] लिए भ्रमण का आयोजन किया जा सकता है।। छात्र कुछ व्यक्तियों से [illegible] कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें स्वयं अनुसूची (schedule) तैयार करना [illegible] और साक्षात्कार करना चाहिए। इससे उनको पता लगेगा कि सामाजिक [illegible] से सम्बन्धित सामग्री कैसे एकत्रित की जाती है।

इतिहास

[illegible] इमारतों और संग्रहालयों को देखने जाना एक बहुत उपयोगी अनुभव [illegible] पुराने भवन को देख कर छात्र उस समय के जीवन की पुनः कल्पना [illegible] यहां पर उन्हें विस्तरीकरण का, जो डाइवर्जेण्ट चिन्तन का एक पक्ष [illegible] अवसर प्राप्त होगा। इसी प्रकार ऐतिहासिक वस्तु जैसे सिक्का, मूर्ति या [illegible] उस समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों [illegible] ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

भूगोल

[illegible] देखा जाता है कि प्राकृतिक कारकों का जैसे जलवायु, नदियाँ,

झीलें, समुद्र का तट, पर्वत, वन, खनिज आदि का मानव के जीवन पर काफी प्रभाव पड़ता है। बिना क्षेत्र या प्रदेश का नाम लिए शिक्षक वहां के भौतिक कारकों का विविरण दे सकता है। अब वह पूछ सकता है कि इन प्राकृतिक कारकों का मानव जीवन पर क्या प्रभाव होगा और व्यापार, व्यवसाय, कच्चे माल का निर्यात, शहरों का विकास, उद्योगों की स्थापना और विकास, देशों की प्राकृतिक सीमाएं, वाह्य आक्रमणकारियों के मार्ग, पोशाक, भोजन के पदार्थ और आदतें, इत्यादि के बारे में भविष्यकथन करने को कह सकता है। ब्रूनर[1] ने एक ऐसा ही प्रयोग पांचवी कक्षा के बच्चों पर किया था। वे अमरीका के उत्तरीमध्य राज्यों का, जहां बड़ी झीलें स्थित हैं, भूगोल अध्ययन कर रहे थे। छात्रों को मानचित्र दिए गए जिनमें नदियां, झीलें, और प्राकृतिक संपदा दिखाई गई थी। उनसे पूछा गया कि कहां-कहां बड़े शहर स्थापित होंगे और रेल तथा राजमार्ग कहां से कहां बनेंगे। छात्रों को किताबें और छपे हुए नक्शे, जिनमें शहर आदि दिखाए गए हों, देखने की अनुमति नहीं थी। अपने विचारों के आधार पर कार्य कर लेने के बाद छात्रों के बीच सामूहिक चर्चा हुई कि जहां-जहां शहरों के निर्माणस्थल और रेल तथा सड़कों के मार्ग उन्होंने इंगित किए, वे उन्हें किन आधारों से संगत ठहरा सकते थे। करीब एक घंटे के बाद छपा हुआ मानचित्र टांगा गया और अब बच्चे देख सकते थे कि वे कहां तक सही थे। कुछ भविष्यकथन नक्शे पर सही निकले। इस विधि से, परंपरागत विधि की अपेक्षा, शहरों के स्थापन के बारे में अधिक अच्छी जानकारी मिली। इससे पाठ में काफी उत्साह भी उत्पन्न हुआ जिससे जो कुछ सीखा गया वह अधिक स्थाई हो सकेगा।

जीवविज्ञान

जीवविज्ञान के शिक्षण में हम काल्पनिक समस्याए दे सकते हैं।

1. मान लीजिए मानव हवा में उड़ सकता है। उसके अस्थि-पंजर, शरीर, अवयव, और उनका कार्य अभी जैसे है उनसे किस प्रकार भिन्न होते हैं?

2. मान लीजिए आज कुछ मटर के पौधे उगा रहे हैं और कुछ समय बाद एकाएक उनकी बाढ़ रुक जाती है। इसके क्या संभावित कारण हो सकते हैं?

ऐसी काल्पनिक समस्याएं कक्षा में ली जा सकती हैं या उन्हें गृह-कार्य के रूप में दिया जाता है। इनके द्वारा छात्रों की जीवविज्ञान में अधिक गहरी अन्तर्दृष्टि विकसित होगी। इसके साथ-साथ वे डाइवर्जेण्ट चिन्तन का भी उपयोग करना सीखेंगे।

गणित

गणित में अधिकतर हल कन्वर्जेण्ट प्रकार के होते हैं यानी एक ही सही उत्तर

J.S.Bruner, Learning and thinking, In Judy F. Rosenblith and W. Allinsmith (Eds.) Causes of Behaviour, Boston, Allyn and Bacon, 1962.

होता है। इस सही उत्तर का पता लगाने में डाइवर्जेण्ट चिन्तन का उपयोग हो सकता है। ऐसी एक समस्या हो सकती है दो संख्याओं और लघुत्तम समापवर्तक और महत्तम समापवर्तक के बीच संबंध पता लगाना। हम 12 और 18 दो संखाएं लें। इनमें लघुत्तम समापवर्त्य 36 है और महत्तम समापवर्तक 6 है। अब ये चार संख्याएं हुई 12, 18, 36 (लघुत्तम समापवर्त्य), 6 (महत्तम समापवर्तक)।

छात्रों से कहा जाए कि इन चार संख्याओं के बीच संबंध का पता लगाएं और यह भी देखें कि क्या यह संबंध अन्य संख्याओं पर भी लागू होगा जिससे इसे एक नियम के रूप में कहा जा सके। यहां हम छात्रों को अटकल लगाने और फिर उसका परीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। जो संख्याएं दी हुई हैं उनसे एक अनुमान होगाः

$$\frac{12}{6} : 2, \quad \frac{36}{18} : 2 \qquad \frac{\text{छोटी संख्या}}{\text{महत्तम समापवर्तक}} \qquad \frac{\text{लघुत्तम समापवर्तक}}{\text{बड़ी संख्या}}$$

छात्रों से कहा जाए कि अन्य संख्याएं लेकर देखें कि क्या यह संबंध सही निकलते हैं। उदाहरण के लिए 4 और 6 लीजिए। लघुत्तम समापवर्तक 12 है और महत्तम समापवर्तक 2 हैं।

$$\frac{4}{2} = \frac{12}{6}$$

इसके आगे भी प्रमाणित करने के लिए दो संख्याएं 8 और 20 हो सकती हैं। लघुत्तम समापवर्तक 40 और महत्तम समापवर्तक 4 है।

$$\frac{8}{4} = \frac{40}{20}$$

दोनों में अनुमान सही निकाला। इससे निम्न नियम सही सिद्ध होता है:

$$\frac{\text{छोटी संख्या}}{\text{महत्तम समापवर्तक}} \qquad \frac{\text{लघुत्तम समापवर्तक}}{\text{बड़ी संख्या}}$$

इस संबंध को अधिक समुचित ढंग से कहा जा सकता है यदि तिर्यक गुणा का उपयोग किया जाए।

छोटी संख्या × बड़ी संख्या = लघुत्तम समापवर्तक × महत्तम समापवर्तक

अब हम नियम को इस प्रकार कह सकते हैं यदि दो पूर्ण संख्याएं दी हों तो उनका गुणनफल उनके लघुत्तम समापवर्त्य और महत्तम समापवर्तक के गुणनफल के बराबर होगा।

शिक्षक को सोचना होगा कि अन्य विषयों पर भी किस प्रकार ऐसी समस्याएं बनाई जा सकती हैं।

भाषा

भाषा शिक्षण में रचना का महत्वपूर्ण स्थान है। रचना में कल्पना और विस्तरीकरण के लिए अच्छी संभावनाएं हैं। बड़े बड़े लेखकों ने जो कहानियां और उपन्यास लिखे हैं अकसर उनकी शुरुआत किसी क्षणिक घटना या मुठभेड़ से होती है, बाकी की पूर्ति लेखक स्वयं अपनी कल्पना से करता है।

छात्रों को, जो वे लिखें उसके संबंध में प्रत्यक्ष अनुभव करने और अच्छी तरह अवलोकन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। विषय कोई सामान्य अनुभव हो सकता है जैसे नदी के ऊपर से सूर्य का अस्थ होना, या पूर्णिमा की चांदनी में झील के पानी की सतह का चांदी जैसा चमकना। जब लिखने की दृष्टि से कोई व्यक्ति अवलोकन करता है तो वह बहुत सी बारीकियां देखता है जो सामान्यतया उसकी दृष्टि से छूट जाती। छात्रों को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे अपने विचार और भावनाएं जिस प्रकार चाहें व्यक्त करें। आत्म-अभिव्यक्त को प्रोत्साहित करना चाहिए। इसमें शिक्षक के आदेश कि अमुक रूपरेखा के अन्तर्गत लिखो, आत्म-अभिव्यक्ति में बाधा डालेंगे। बच्चों का वस्तुओं को देखने का अपना दृष्टिकोण होता है। यह शिक्षक से भिन्न हो सकता है। इस कारण से भी शिक्षक को ऐसे सुझाव, कि अमुक विषय पर क्या लिखना है, नहीं देने चाहिए।

भाषा कल्पना को प्रेरित करने के लिए बहुत अच्छा माध्यम है। कैसे कल्पना को प्रेरित किया जा सकता है इसके लिए कुछ सुझाव 'कल्पना और उत्सुकता के अन्तर्गत दिए जा रहे हैं।

कल्पना और उत्सुकता

डाइवर्जेण्ट चिन्तन के अलावा कल्पना और उत्सुकता का सृजनात्मकता से घनिष्ट संबंध है। जिन अभ्यासों का वर्णन ऊपर किया गया उनमें डाइवर्जेण्ट चिन्तन और कल्पना दोनों ही की आवश्यकता होगी। कुछ अभ्यास इस प्रकार के हो सकते हैं जो मुख्यतः कल्पना को प्रेरित करें। ऐसे विषय जैसे लेखन, चित्रांकन, पार्ट करना (role playing) नाटक, काल्पनिक खेल, कठ-पूतली कल्पना की अभिव्यक्ति के उत्तम साधन हो सकते हैं। इन क्रियाकलापों के चयन में यह आवश्यक है कि ये बच्चों की स्वाभाविक रूचियों को प्रेरित कर सकें।

सृजनात्मक नाटक के लिए जी. ए. डेविस(G.A.Davis) और उनके साथियों ने अनेक सुझाव दिए हैं। इनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है (1) संचलन क्रियाएं (2) संवेदी और शारीरिक चेतना संबंधी क्रियाएं और (3) मूकाभिनय और खेल-रचना (play-making)

संचलन अभ्यासों के अन्तर्गत छात्र अभिन्य करें कि वे बहुत भारी बोरी उठाए हुए हैं। धीरे धीरे वे उसे नीचे लाते हैं और फिर ऊपर उठाते हैं। एक दूसरा

अभ्यास अक्षर को बनाने का हो सकता है। दो छात्र अपने शरीर द्वारा किसी अक्षर को बनाते हैं। अन्य छात्र अटकल लगाते हैं कि यह कौन सा अक्षर हो सकता है। इसी प्रकार अधिक बड़ा समूह कोई शब्द लिख सकता है जैसे स्वागतम्।

संवेदी और शारीरिक चेतना संबंधी अभ्यासों के लिए छात्रों को जोड़ी में विभाजित करते हैं। एक छात्र की आंख पर पट्टी बांध दी जाती है और वह विभिन्न वस्तुओं को छू कर सुंघ कर या आवाज से पहचानने का प्रयास करता है। छात्रों से कहा जाए कि वे एक डाक्टर, पुलिसमेन, इंजिनियर की दृष्टि से कक्षा को देखें और बताएं कि उन्हें क्या दिखाई देता है।

तीसरी श्रेणी मूकाभिनय और खेल रचना में छात्रों से नकल करने को कहा जाए—एक बिल्ली जो चूहा ढूंढ रही है, एक गाय जो खेत में चर रही है, एक घोड़ा जो तांगा खींच रहा है आदि।

सृजनात्मक अभिनय भयमुक्त खेल की परिस्थितियां प्रस्तुत करता है जिसमें छात्र अपनी कल्पना को पूरी छूट दे सकते हैं।

कुछ पाठ जो फ्रेंक ई. विलियम्स (Frank E. Williams)[1] के निर्देशन में प्राथमिक शाला की छोटी कक्षाओं से लिए गए हैं उनमें प्रत्येक छात्र से कहा जाता है कि अपने आप को एक दूसरे व्यक्ति की परिस्थिति में रखे। एक बार ऐसा सोचें कि वह दैत्य है, दूसरी बार एक कीड़ा है, तीसरी बार वह बहुत छोटा है और पतंग पर बैठा हुआ है। प्रत्येक परिस्थिति में उसे बताना है कि उसे अपना स्कूल, घर और पड़ोस कैसा दिखाई देगा। पतंग पर बैठे हुए वह क्या चीजें देखना चाहेगा, जैसे-जैसे पतंग एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाएगी उनके क्या क्या अनुभव होगें, पेड़ और बिजली के खंभे कैसे दिखाई देंगे। इससे दृश्यात्मक (Visualization) कुशलता विकसित होगी जो कल्पना का एक पक्ष है।

एक दूसरी रोचक सामग्री जो टोरेन्स और कर्निंगटन (Torrance and Cunnington)[2] ने चौथी कक्षा के लिए तैयार की है, एक अंतरिक्ष यान पर नाटक है। जो किसी ग्रह पर उतरने जा रहा है। नाटक टेप पर रेकार्ड किया गया है। प्रत्येक बच्चे से कहा जाता है कि वह कल्पना करे कि वह चालक दल का एक सदस्य है। यान ग्रह पर उतरता है। यहां पर 'टेप' रुक जाता है और प्रत्येक छात्र से कहा जाता है कि यान के उतरने वाले दल ने ग्रह पर क्या क्या देखा इसकी पूर्ति करें।

---

[1]F.E. Williams, Creativity: an innovation in the classroom, In Mary J. Ashner and C.E. Bish (Eds), **Productive Thinking in Education**, National Education Foundation and Carnegic Corporation, 1968

[2]B.F. Cunnington and E.P. Torrance, **Your Orientation Guide to Programmed Experience in Creative Thinking**, Minneapolis, Bureau of Educational Research, University of Minnesota, 1962

उत्सुकता नए नए अनुभवों को ग्रहण करने का आधार है। बच्चों में अपने चारों ओर जो कुछ हो रहा है उसे जानने और समझने की स्वाभाविक उत्सुकता होती है। वह अनेक प्रश्न करता है। इसे प्रोत्साहित करना चाहिए। नए अनुभव प्रदान करने चाहिए जो इन प्रश्नों के लिए आधार हो सकते हैं। टारेन्स[3] ने 100 क्रियाकलापों की एक सूची तैयार की है, जैसे, कविता, कहानी, नाटक, और गाना लिखना, कठपुतली का तमाशा प्रस्तुत करना, चिड़िया घर की सैर करना, किसी गुफा का पर्यवेक्षण करना, आदि। ये सब सृजनात्मकता के विकास में सहायक होंगे।

शिक्षक की अभिवृत्ति

सृजनात्मकता के विकास में शिक्षक की अभिवृत्ति बहुत महत्वपूर्ण है। अध्ययनों के आधार पर पता लगा है अपने देश में शिक्षक आज्ञाकारिता, समय पर काम करना, शिष्ट व्यवहार पर अत्यधिक बल देते हैं, जबकि वे स्वतंत्र चिन्तन और स्वतंत्र निर्णय को कम महत्व देते हैं। इसमें परिवर्तन लाना चाहिए। शिक्षकों को छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे अपनी स्वतंत्र राय व्यक्त करें। यदि छात्र उनसे सहमत नहीं होते तो इसका इन्हें बुरा नहीं मानना चाहिए।

हास्य और विनोद का सृजनात्मकता से घनिष्ठ संबंध है। इन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। विनोद से एक प्रमुदित और तनावमुक्त वातावरण का सृजन होता है। जो नवीन विचारों के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है।

सृजनात्मकता के विकास के लिए ऊपर कुछ सुझाव दिए गए हैं। यदि शिक्षक इस दिशा में सोचेगा तो वह डाइवर्जेण्ट चिन्तन, कल्पना और उत्सुकता को प्रेरित करने के अनेक नवीन सुझाव दे सकेगा।

---

[3]E.P. Torrance, Education and Creative Potential, Minneapalis University of Minnesota, 1963.

अध्याय 31

अभिवृत्तियों और मूल्यों का शिक्षण और सीखना

श्री एम.राम. मूर्ति
ईवलिन मार

अनेक अभिवृत्तियां और मूल्य स्कूल में सीखे जाते हैं। ये परीक्षा के विषय नहीं होते किन्तु जो कुछ बच्चे सीखते हैं उनमें इनका सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक को इस बात का आभास नहीं होता कि बच्चे कौन सी अभिवृत्तियां और मूल्य ग्रहण कर रहे हैं और कौन वे स्वयं अनजाने में उन्हें सिखा रहे हैं। इनमें से कुछ वांछनीय और कुछ अवांछनीय हो सकते हैं। शिक्षक को इस विषय पर विचार करना चाहिए। शिक्षकों को यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि कौन सी अभिवृत्तियां और मूल्य वे चाहेंगे कि बच्चे सीखें, और इन्हें कैसे सिखाया जाए। अपने दिन-प्रतिदिन के कार्य में उन अभिवृत्तियों और मूल्य को जिन्हें वे वांछित समझते हैं, सिखाने के लिए उन्हें समुचित प्रयास करना चाहिए।

अभिवृत्तियां निर्माण के महत्वपूर्ण आयाम

स्कूल, शिक्षक, स्कूल के विभिन्न विषयों और क्रियाकलापों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियों का निर्मित होना आवश्यक है। यदि छात्रों को स्कूल के विषय अच्छे लगते हैं तो पढ़ाई में भी वे अच्छी प्रगति करेंगे और अनुशासन की समस्याएं कम होंगी।

यह भी आवश्यक है कि बच्चे देश के विभिन्न संगठनों और संस्थाओं के प्रति सही अभिवृत्तियां विकसित करें, जिससे बाद में जिस संस्था में वे काम करें उसके प्रति उनकी सकारात्मक अभिवृत्ति हो सके।

अपने देश में धार्मिक, जातीय और राज्य के समूहों के प्रति सही अभिवृत्तियां विकसित करने की आवश्यकता है।। बच्चों में जैसी अपने समुदाय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति है वैसी ही अन्य समुदायों के प्रति भी होनी चाहिए।

अपने सम्पूर्ण देश के प्रति और अन्य देशों तथा मानव जाति के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियां विकसित करना आवश्यक है।

इसमें सावधानी बरतनी चाहिए कि ऐसे समूह जैसे गरीब, अमीर, स्त्रियां, विकलांग और वृद्धों के प्रति सही अभिवृत्तियां विकसित हो सकें।

वैज्ञानिक खोज और ज्ञान का, जीवन को बेहतर बनाने में उपयोग के प्रति भी, सकारात्मक अभिवृत्तियां विकसित करनी चाहिएं। किन्तु इसके साथ-साथ यह सावधानी रखनी चाहिए कि जो अज्ञानता के अन्धकार में हैं और जिन्हें शिक्षा के अवसर नहीं मिले हैं उनके प्रति अवहेलना की अभिवृत्ति विकसित न हो।

कुछ नकारात्मक अभिवृत्तियां भी उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए बच्चों में क्रूरता, बेईमानी, अन्याय और बुरी आदतों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियां होनी चाहिए।

नैतिक अभिवृत्तियां द्विध्रुवीय (bipolar) होती हैं। वे नैतिक अच्छाइयां जैसे ईमानदारी, सच्चाई, न्याय, दया के प्रति सकारात्मक और इनके विपरीत बेईमानी, झूठ, अन्याय और क्रूरता के प्रति नकारात्मक होती हैं

स्कूल और अभिवृत्तियों का बनना

बच्चे कुछ अभिवृत्तियां लेकर स्कूल आते हैं। किन्तु इनमें परिवर्तन लाया जा सकता है और नई अभिवृत्तियां विकसित की जा सकती हैं। जैसा पहले विवेचन किया जा चुका है (अध्याय 10), जो कारक अभिवृत्तियों के परिवर्तन और विकास में योग देते हैं वे हैं : (क) शिक्षकों और अन्य बच्चों की अभिवृत्ति, (ख) प्रिय और अप्रिय अनुभव, (ग) जानकारियां जो प्राप्त होती हैं और (घ) व्यक्ति की आवश्यकताएं और इच्छाएं। इनकी विवेचना कुछ मूलभूत क्षेत्रों को लेकर की जा रही है।

स्कूल और अध्ययन के प्रति अभिवृत्तियां

जब बच्चा नया-नया स्कूल आता है, उसके मन में कुछ अभिवृत्तियां, जिन्हें उसने अपने परिवार से सीखा है, स्कूल के लिए पहले से ही होती हैं। किन्तु इन अभिवृत्तियों के बहुत दृढ़ होने की संभावना कम है। स्कूल और स्कूल के कार्य के प्रति अधिक स्थाई अभिवृत्तियां बच्चे के स्कूल में अनुभव, शिक्षकों की और अन्य बच्चों की अभिवृत्तियों के आधार पर निर्मित होती हैं।

यदि बच्चे के प्रति अच्छा व्यवहार किया जाता है और स्कूल में उसे आनन्द आता है तो वह स्कूल को पसन्द करने लगेगा। यदि उसे लगता है कि शिक्षक और अन्य बच्चे भी स्कूल को पसन्द करते हैं तो वह सोचेगा कि स्कूल एक अच्छी जगह है। यदि वह यह पाता है कि शिक्षक और अन्य लोग जो सत्ता में हैं, उसकी परवाह करते हैं, तो वह स्कूल के साथ एकात्मीकरण करेगा। इस प्रकार वह स्कूल के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करेगा।

इसके विपरीत, यदि बच्चे के साथ कठोर व्यवहार होता है, और यदि शिक्षकों और अन्य छात्रों की स्कूल के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियां हैं, तो वह उसे नापसन्द

करने लगेगा, और मामूली सी बात को लेकर स्कूल न जाने का बहाना ढूंढेगा।

यदि बच्चों को कार्य में आनन्द आता है, और उन्हें सफलता के अनुभव होते हैं, वे पढ़ाई को पसन्द करने लगेंगे और स्कूल उन्हें लाभकारी लगेगा। यदि स्कूल का कार्य उनके लिए भार स्वरूप बना दिया जाता है, और वे उसे पूरा नहीं कर पाते, और यदि अक्षमता के लिए उन पर डांट पड़ती है तो वे पढ़ाई से नफरत करने लगेंगे। इसके अतिरिक्त बच्चों का कक्षा के कार्य और विभिन्न विषयों को पसन्द करना आंशिक रूप से इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या शिक्षक को पढ़ाने में आनन्द आता है या यह भारस्वरूप लगता है।

इसी प्रकार स्कूल के अन्य क्रियाकलापों के प्रति अभिवृत्तियां विकसित होंगी। कभी कभी स्कूल ऐसे कार्यक्रम जैसे बागवानी शारीरिक श्रम के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने के लिए आरंभ करता है। ऐसे कार्यक्रम तभी सफल होंगे जब छात्रों को कार्य में आनन्द आए, उसकी उपयोगिता दिखाई दे, और शिक्षक तथा कर्मचारी उसमें पूरे मन से सहयोग दें। इसके विपरीत यदि शिक्षक और छात्र इसे केवल अतिरिक्त भारस्वरूप माने तो ऐसे क्रियाकलापों से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

धार्मिक, राज्य और जातीय वर्गों के प्रति अभिवृत्तियां

धार्मिक, राज्य के और जातीय वर्गों के प्रति अभिवृत्तियों के बनने में घर और समुदाय का काफी प्रभाव पड़ता है। बच्चे मद्रासी, पंजाबी, हिन्दू, मुसलमान आदि के बारे में कथन सुनते रहते हैं। वे ऐसा सोचने लगते हैं कि इन वर्गों की कुछ विशेषताएं होती हैं, अच्छी या बुरी। वे देखते हैं कि उनके माता-पिता कुछ जातियों और समुदायों के साथ कैसे व्यवहार करते हैं। ऐसा हो सकता है कि माता-पिता केवल अपने समुदाय के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हों। बच्चे कुछ धारणाएं और पूर्वाग्रह बनाते हैं यानी, वर्गों के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक अभिवृत्तियां निर्मित होती हैं। ये बहुत शक्तिशाली और अनिष्टकारी भी हो सकती हैं। नकारात्मक अभिवृत्ति के कारण कभी कभी, अपने देश में एक छोटी सी घटना दंगे का रूप ले लेती है। शिक्षक को बच्चों में अवांछनीय अभिवृत्तियों को, जो उनके मन में जगह कर गई हों; निकालने में मदद करनी चाहिएं।

शिक्षक क्या कर सकता है ? पहला तो यह कि शिक्षक की स्वयं की अभिवृत्तियां सभी समुदायों के प्रति सकारात्मक होनी चाहिए। बच्चे यह देखें कि वह सभी समुदायों के प्रति समानता का व्यवहार करता है। उसके ब्राहमण और हरिजन बच्चे से बोलने में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार अन्य धार्मिक और राज्यों के वर्गों के साथ उसके व्यवहार में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।

स्कूल में बच्चे अन्य समुदायों, जातियों और राज्यों के बच्चों के सम्पर्क में आते हैं। इनके साथ उनके प्रिय या कटु अनुभव हो सकते हैं, जिसका उनकी अभिवृत्तियों पर प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिए किसी अन्य राज्य से आने वाला बच्चा अपनी धौंस जमाने वाला या बहुत मैत्रीपूर्ण व्यवहार और मदद करने वाला हो सकता है। जैसा भी उसका व्यवहार होगा उसका अन्य बच्चों की अभिवृत्तियों पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। शिक्षक बच्चों के अनुभवों को नियंत्रित नहीं कर सकता, किन्तु ऐसे अनुभवों पर जो छात्रों को मिले हैं और वर्गों के प्रति जानकारी जो उन्हें घर से प्राप्त हुई है, या स्कूल में मिल रही है, विचार-विनिमय आयोजित करके समुचित अभिवृत्तियां विकसित करने में महत्वपूर्ण और उपयोगी देन दे सकता है। वह बता सकता है कि सभी प्रकार के लोग होते हैं, जैसे, मदद करने वाले, स्वार्थी, ईमानदार, बेईमान, स्वच्छ, गन्दे और ये सभी वर्गों में पाए जाते हैं, और जो अनुभव बच्चों को व्यक्तियों से मिले हैं वे केवल संयोग पर निर्भर करते हैं। शिक्षक यह भी बता सकता है कि जो कथन वे किसी वर्ग के बारे में सुनते हैं, वे केवल व्यक्ति की राय हैं जो तथ्यों पर आधारित नहीं होती। बारह या तेरह वर्ष की अवस्था पर बच्चे दूसरों के मतों की आलोचना और छानबीन करने और अपनी राय कायम करने योग्य हो जाते हैं। इसलिए, यद्यपि शिक्षक का मार्गदर्शन तो आरंभ से ही चाहिए, इन बच्चों या इनसे बड़े बच्चों के साथ ऐसे विषयों पर खुल कर बातचीत हो सकती है।

जो बच्चे अपने आप को अरक्षित अनुभव करते हैं वे अपने समुदाय के साथ अनन्य एकात्मीकरण करते हैं। उनके तर्क और विचार-विमर्श करना, जब तक साथ-साथ उनका आत्मविश्वास विकसित नहीं किया जाता, बहुत मदद नहीं करेगा।

शिक्षक को बच्चों में अपने देश पर गर्व विकसित करना चाहिए, जिससे उनका सारे देश के साथ एकात्मीकरण संकुचित निष्ठा से अधिक शक्तिशाली हो सके।

स्त्रियों के प्रति अभिवृत्तियां

सारी दुनियां में स्त्रियों के प्रति अवांछित अभिवृत्तियां एक समस्या के रूप में हैं। अपने देश में कुछ स्त्रियों के उच्च पदों पर आसीन होने पर भी समस्या काफी गंभीर है। शिक्षकों के सामने यह एक कठिन समस्या है, क्योंकि घर में, समाज में, कहानी जो वे पढ़ते हैं, चलचित्र जो वे देखते हैं, सब में स्त्रियों को हीन-प्राणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह बात इतनी विस्तृत है कि न केवल पुरुष स्त्रियों को हीन मानते हैं बल्कि स्त्रियां स्वयं अपने को हीन समझने लगी हैं। घर में अकसर सबसे अधिक दादी लड़कों और लड़कियों के बीच पृथक व्यवहार करती है। कुछ पृथक व्यवहार मित्र और अन्य संबंधी भी करते हैं। कहानियों और फिल्मों में, जहां आदर्श नायिका को अकसर दुःख भोगते हुए दिखाया जाता है, इस अभिवृत्ति की

पुष्टि होती है। वह अपने पति को, चाहे वह कैसा भी व्यवहार क्यों न करे, देवता स्वरूप मानती है। वह पति के लिए अपना जीवन देने के लिए तत्पर रहती है, जबकि पति से किसी प्रकार के त्याग की अपेक्षा नहीं की जाती।

इन पृथक व्यवहारों का लड़कों और लड़कियों दोनों पर ही अहितकर प्रभाव पड़ता है: लड़कियों पर इसलिए क्योंकि उनके प्रति बेजा व्यवहार होता है, और लड़कों पर इसलिए क्योंकि उनके बाल्यकाल से ही उनसे कुछ विशिष्ट होने की अपेक्षा की जाती है, और उनके निष्पादन पर काफी अधिक बल दिया जाता है। इसके कारण उनके मन में बेचैनी पैदा हो सकती है। घर में अत्यधिक लाड़-दुलार के कारण जीवन की विफलताओं का सामना करना उनके लिए कठिन हो जाता है।

एक शिक्षक को घर और समाज के बहुत से अवांछित प्रभावों का, जो सामाजिक न्याय और प्रगति के मार्ग में बाधा डालते हैं, प्रतिकार करना होता है। सबसे पहले तो उसे पुरुष और स्त्रियों को समान मानना चाहिए और इस अभिवृत्ति को अपने सभी व्यवहारों में प्रदर्शित करना चाहिए। जो जानकारी बच्चे प्राप्त करते हैं, और जो पूर्वाग्रह समाज में व्याप्त हैं, इन पर विचार विनियम करना चाहिए। यदि किसी कहानी में पुरुष और स्त्री को कार्यों की अदला-बदली की जाती है तो कहानी कितनी बेतुकी हो जाती है। फिर भी, ऐसा कोई कारण नहीं है कि यह भेदभाव किया जाए।

बच्चों को तथ्यों की जानकारी देनी चाहिए। उनको यह बताना चाहिए कि बुद्धि परीक्षणों के आधार पर पता चला है कि पुरुषों और स्त्रियों की योग्यताओं में कोई अन्तर नहीं होता।

अन्य वर्गों के प्रति अभिवृत्ति

अमीर और ग़रीब के साथ समान व्यवहार करके, और हरिजन बच्चे की ओर उतना ही ध्यान देकर जितना वह उच्च जाति के प्रति देता है, शिक्षक बच्चों को सही अभिवृत्तियां सिखा सकता है। उसे इस ओर सावधान रहना चाहिए कि वह अनजाने में अमीर, उच्च जाति के, खूबसूरत और तेज बच्चों के प्रति विशेष अनुग्रह तो नहीं दिखाता। बच्चों के साथ इस प्रकार विचार विनिमय करना चाहिए जिसमें बच्चे देख सकें कि कोई ऊँचा या नीचा नहीं होता। बच्चों को यह समझने में भी मदद करनी चाहिए कि मानव के नाते तेज और मन्दबुद्धि न तो ऊँचे न नीचे व्यक्ति होते हैं विचार-विमर्श और कहानियों द्वारा शिक्षक विकलांगों के स्वयं के दृष्टिकोण को समझने में मदद कर सकता है, यह भी स्पष्ट कर सकता है कि अन्य सभी बातों में विकलांग सामान्य व्यक्तियों के समान होते हैं।

मूल्य

महत्वपूर्ण मूल्य

यह कहना कठिन होगा कि कौन से मूल्य शिक्षक को सिखाने चाहिएं। फिर भी, कुछ सार्वभौमिक मूल्य होते हैं जिन्हें हम कहते हैं सत्यम् शिवम्, और सुन्दरम्। इनकी यहां कुछ विस्तार से विवेचना करना आवश्यक है।

दैनिक जीवन के संदर्भ में सबसे प्रथम इनमें आते हैं मानव की गरिमा, सामाजिक न्याय, सभी के प्रति दिलचस्पी, दया, सहायता, सहकारिता और सामाजिक जिम्मेदारी। जिस व्यक्ति में ये मूल्य हैं वह जाति, धर्म, राज्य, राष्ट्रीयता, प्रजाति, लिंग की परवाह किए बगैर, सभी मनुष्यों के सुख और समृद्धि की कामना करेगा। यदि संसार में कहीं किन्हीं व्यक्तियों को मूल आवश्यकताओं की पूर्ति, न्याय और न्यायोचित अधिकारों से वंचित रखा जाता है तो उसे दुःख होगा। वह शोषित वर्ग की मदद करने की कोशिश करेगा।

दूसरा, ईमानदारी के मूल्य को विकसित करना होगा। यह ईमानदारी व्यक्तियों, संस्थाओं और कार्य के प्रति होनी चाहिए। जो ईमानदारी को महत्वपूर्ण मानते हैं वे दूसरों को धोखा नहीं देंगे और अपने काम के प्रति निष्ठावान रहेंगे। वे तथ्यों के आधार पर ईमानदारी से अपनी राय बनाएंगे, और अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर नहीं रखेंगे। वे सभी बातों में सत्य का पता लगाएंगे।

तीसरा, सौन्दर्य के मूल्य को भी विकसित करना होगा। सौन्दर्य हमारे चारों ओर है, कलाकृतियों में, व्यवहार में और मानवीय संबंधों में। यदि इस मूल्य को विकसित किया जा सके तो हमारे पास-पड़ोस में, मनोरंजन में, सामाजिक और निजी व्यवहार में और आपसी संबंधों में अधिक खूबसूरती आ सकेगी।

मूल्यों के विकास में स्कूल का कार्य

बच्चे, माता-पिता और अन्य लोग जिनके सम्पर्क में वे बचपन से आते हैं उनसे मूल्य सीखते हैं। स्कूल में मूल्यों में परिवर्तन आ सकता है और सही मूल्यों को विकसित करने में स्कूल का महत्वपूर्ण कार्य है।

1. शिक्षकों के मूल्यों का प्रभाव : एक शिक्षक जो बच्चों के मूल्यों को प्रभावित कर सके वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसके साथ बच्चे एकात्मीकरण कर सकें। दूसरे शब्दों में वह प्रफुल्लचित्त, बच्चों के प्रति लगाव रखने वाला, उनके कुशल-क्षेम में रुचि लेने वाला, उनकी रुचियों में भाग लेने वाला, और साथ ही साथ अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने वाला हो, जिससे बच्चों की दृष्टि में वह एक सम्मानित व्यक्ति बना रहे।

बच्चों से सम्मान और एकात्मीकरण प्राप्त करने में शिक्षक पर बहुत बड़ी

जिम्मेदारी आती है, क्योंकि यह उसे दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति देता है। उसे यह देखना चाहिए कि यह प्रभाव सही दिशा में है, और अपने शब्दों और स्वयं के उदाहरण द्वारा वह वांछित मूल्यों को सिखा रहा है।

अपनी कक्षा के दिन प्रतिदिन के व्यवहार में, शिक्षक को ऐसे अनेक अवसर मिलते हैं जिनके द्वारा वह दिखा सकता है कि वह उचित और न्यायसंगत कार्य करता है और इस प्रकार न्याय के मूल्य को बच्चों के मन में बैठा सकता है। वह स्कूल के बाहर जीवन की अन्य परिस्थितियों को भी लेकर न्याय की विवेचना कर सकता है।

शिक्षक सुन्दर चित्रों, फूलों, अच्छी कहानियों और कविताओं के प्रति रसास्वादन विकसित कर सकता है।

शिक्षक सौम्यता और दयालुता का उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है। और सौम्य तथा दया के कार्य की प्रशंसा कर सकता है। कभी कभी बच्चे एक दूसरे के प्रति क्रूरता प्रदर्शित करते हैं। शिक्षक को स्पष्ट बताना चाहिए कि ये वे व्यवहार नहीं हैं जिन्हें वह स्वीकार करेगा।

शिक्षक को सभी मामलों में ईमानदारी का दृष्टांत प्रस्तुत करना चाहिए और ईमानदारी के प्रति बच्चों में आस्था विकसित करनी चाहिए। जो बच्चे अपनी गलती मान लेते हैं उनके प्रति उदारता का रुख अपनाना चाहिए। बच्चों को तथ्यों की जांच करना और सत्य की खोज करना सिखाना चाहिए।

2. शिक्षक के अलावा अन्य लोगों का प्रभाव : स्कूल की पाठ्य-पुस्तकें ऐसे व्यक्तियों की जीवनियां प्रस्तुत करती हैं, जिन्होंने उच्च आदर्शों और मूल्यों को अपनाकर जीवन जिया है। शिक्षक अन्य कहानियों का भी चयन कर सकता है जो वांछित मूल्यों को प्रस्तुत करती हों। ये महान् संतों की उतनी न हों जितनी सामान्य व्यक्तियों की हों जिनके साथ बच्चे एकात्मीकरण कर सकें, और जिनके समान स्वयं व्यवहार करने की कल्पना कर सकें।

स्कूल में शिक्षक के अलावा अन्य लोगों का भी मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है विशेषकर कक्षा के हमजोलियों का। शिक्षक इन प्रभावों को पूरी तौर से नियंत्रित नहीं कर सकता, किन्तु इनके बारे में जानकारी रख सकता है। उसे उन छात्रों पर जो नेता हैं विशेष ध्यान देना चाहिए और वांछित मूल्य प्राप्त करने में उनकी मदद करनी चाहिए।

3. संतोषप्रद अनुभव : बच्चे उन चीजों को मूल्यवान मानते हैं जो उन्हें संतोष प्रदान करती हों। यदि स्कूल का कार्य उनके लिए रुचिकर बनाया जाता है तो वे स्कूल के कार्य को मूल्यवान और आनन्ददायकमानने लगेंगे।

बच्चों को विभिन्न प्रकार की कलाओं का रस लेने के अवसर प्रदान करने चाहिएं। उनका परिचय अच्छे साहित्य, संगीत, चित्र, और चलचित्र से कराना चाहिए। जिन्हें कभी भी इनका आनन्द लेने का अवसर नहीं मिला वे इनके मूल्य को नहीं समझ सकते। यही कारण है कि बहुत से व्यक्ति रद्दी चलचित्र और पुस्तकों से ही संतुष्ट हो जाते हैं।

अच्छे मानवीय संबंधों को मूल्यवान मानने के लिए, बच्चों के अन्य लोगों के साथ संतोषप्रद संबंध होने चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण संबंध घर में होते हैं। इनका प्रभाव स्कूल में अन्य बच्चों के साथ संबंधों पर पड़ता है। शिक्षक को बच्चों का अवलोकन करना चाहिए और उन बच्चों की मदद करनी चाहिए जिन्हें अपने हमजोलियों और शिक्षकों के साथ संबंध बनाने में कठिनाई हो रही है। जैसा पहले कहा गया है, उसे प्रत्येक बच्चे को स्वीकार करना चाहिए और प्रत्येक बच्चा दूसरों के द्वारा स्वीकार किया जाए इसमें मदद करनी चाहिए, जिससे सभी बच्चों को दूसरों के साथ संबंध स्थापित करने का संतोष प्राप्त हो।

बच्चों को दूसरों की मदद करने में जो संतोष मिलता है उसका भी अनुभव उन्हें करना चाहिए। शिक्षक समुदाय में से किसी व्यक्ति या परिवार का पता लगा सकता है जिसे ऐसी मदद की आवश्यकता है जो बच्चे दे सकते हैं। उसे बच्चों के सहायता कार्य को संगठित करके यह दर्शाना चाहिए कि कैसे उनकी मदद से किसी के जीवन में सुख का संचार हुआ। दूसरों के मददगार व्यक्तियों की कहानियों से भी बच्चों को मदद करने का आनन्द अपरोक्ष रूप से प्राप्त हो सकता है।

कुछ स्कूल सामुदायिक कार्य आयोजित करते हैं। इससे छात्रों को समाज के कमजोर वर्ग के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त होता है। ऐसे अनुभव से कि उनकी मदद से किसी को कुछ खुशी हुई हितकर अभिवृत्ति विकसित होगी।

4. आवश्यकताओं की तुष्टि : उच्च स्तर के मूल्यों के विकास के लिए मूल आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यदि कोई बच्चा भूखा है तो उसके लिए अपने कार्य में रस लेना या किसी सुन्दर वस्तु को देखने का आनन्द लेना कठिन है। यदि बच्चा इस बात से सदैव चिन्तित रहता है कि क्या शिक्षक उसके कार्य का अनुमोदन करेगा, तो उसे कार्य में कार्य के लिए रुचि नहीं उत्पन्न होगी, बल्कि वह इसी उधेड़बुन में रहेगा कि शिक्षक किस प्रकार उसके कार्य का मूल्यांकन करेगा।

5. नैतिक प्रशिक्षण : कुछ सीमा तक मूल्यों को शब्दों के माध्यम से सिखाया जा सकता है। विशेष रूप से छोटी कक्षाओं में जिसे शिक्षक अच्छा कहेगा उसे बच्चे भी अच्छा मान लेंगे। जैसे बच्चे बड़े होते हैं वे अपने आप विचार करना सीखते हैं।

ज़ो कुछ बताया जाता है उसका मूल्यांकन तथा अपने अनुभवों का मूल्यांकन उन्हें करना चाहिए। धीरे धीरे उन्हें अपने स्वयं के मूल्यों को विकसित करना चाहिए। अपने देश में दुनिया के सभी धर्मों के प्रतिनिधि हैं। यह सुलाभी हो सकता है। विभिन्न धर्मों द्वारा समर्थित मूल्यों की विवेचना की जा सकती है। महत्वपूर्ण समानताओं को बताया जा सकता है। जहां पर महत्व में अन्तर है वहां पर उन बच्चों को तटस्थता से विचार करने में मदद की जाए कि वे प्रत्येक धर्म की सबसे अच्छी बातें पहचान सकें। उन्हें खुला दिमाग रखने और स्वतंत्र रूप से तथा युक्तियुक्त निर्णय लेने के लिए मार्गदर्शन दिया जाए।

अध्याय 32

आकस्मिक अधिगम

श्री एम. राम मूर्ति

बहुत सी बातें माता-पिता और शिक्षक बच्चों को सिखाने की योजना बनाते हैं और उसके लिए कदम उठाते हैं। बच्चों को नहाना और कपड़े पहनना सिखाया जाता है। उन्हें शिष्टाचार सिखाया जाता है। उन्हें पढ़ना लिखना सिखाने के लिए और ज्ञानार्जन के कौशल और योग्यताओं को सिखाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन बातों को सिखाने का सप्रयोजन प्रयास किया जाता है और इसमें काफी साधनों का उपयोग किया जाता है।

ऊपर दी गई बातों के अतिरिक्त बच्चे और वयस्क भी बहुत सी ऐसी बातें सीख लेते हैं जिन्हें किसी ने उन्हें सिखाने का प्रयास नहीं किया था। इस प्रकार का अधिगम आकस्मिक है, या बहुत कुछ संयोग से होता है। यह विभिन्न स्तरों का होता है और व्यक्ति के सभी पहलुओं पर इसका प्रभाव पड़ता है।

भावात्मक व्यवहार

अनेक भावात्मक व्यवहार आकस्मिक रूप से सीखे जाते हैं। यदि मां उत्तेजित है तो बच्चा भी उत्तेजित होने लगता है, यद्यपि मां का उसे उत्तेजित करने का अभिप्राय नहीं था। यदि बच्चे को लगातार कुण्ठित किया गया, वह चिड़चिड़ा हो जाता है, यद्यपि किसी ने उसे चिड़चिड़ा होना नहीं सिखाया। इसके विपरीत, यदि बच्चे का लिहाज किया जाता है और उसे यथोचित स्वतंत्रता दी जाती है वह खुश रहना सीखता है।

भाषा

माता-पिता अधिकतर अपने बच्चों को सही और शालीन भाषा सिखाने का प्रयास करते हैं। विनोद के माता-पिता यही कर रहे हैं। किन्तु जब भी विनोद के पिताजी किसी से नाराज होते हैं वे उसे गाली देते हैं। एक दिन विनोद अपने खेल के किसी साथी पर गुस्सा होता है, और माता-पिता को आघात पहुंचता है जब वे

विनोद के मुंह से वही गाली सुनते हैं। विनोद की मां बहुत शालीन स्वभाव की है, किन्तु जब उन्हें नौकर पर गुस्सा आता है, वे तेज आवाज में बोलती हैं। जब विनोद उत्तेजित या क्रोधित होता है तब वह भी उन्हीं के समान ऊँची आवाज में बोलता है। विनोद को अकसर नौकर की देख रेख में छोड़ दिया जाता है। नौकर की बोली पर गांव का प्रभाव है और अनेक हिन्दी के शब्दों का वह गलत उच्चारण करता है। विनोद भी इन शब्दों का उच्चारण इसी प्रकार करने लगता है। नौकर जब किसी अन्य नौकर या विक्रेता से बात करता है तो अकसर गाली का प्रयोग करता है। विनोद भी अन्य बच्चों के साथ खेलते हुए वैसी ही भाषा का प्रयोग करता है।

हम देखते हैं कि विनोद के माता-पिता उसे शालीन, शुद्ध, और सही भाषा सिखा रहे हैं किन्तु आकस्मिक रूप से नौकर से वह गलत उच्चारण और गाली देना सीख रहा है। वह अपने पिताजी से कुछ अपशब्द सीख रहा है और मां से गुस्सा आने पर ऊंची आवाज में चिल्लाना। किसी का अभिप्राय यह सब सिखाने का नहीं था।

लोग देखते हैं कि विनोद के बोलने और हंसने का लहजा अपने पिता के समान है जिनके साथ वह एकात्मीकरण करता है। विनोद के माता-पिता काफी पढ़े लिखे हैं और उनसे विनोद काफी विस्तृत शब्द भण्डार प्राप्त कर रहा है। यद्यपि उसके माता-पिता इस बात से खुश हैं, उन्होंने जानकर उन बहुत से शब्दों को सिखाने का प्रयास नहीं किया जिनका उपयोग वह करता है।

जैसा विनोद के संबंध में देखा गया, बहुत भी भाषा जो बच्चे सीखते हैं वह आकस्मिक रूप से अर्जित की जाती है।

शिष्टाचार

शिष्टाचार व्यवहार का एक पहलू है जिसे जानकर सिखाया जाता है, किन्तु साथ ही साथ बहुत कुछ बच्चे आकस्मिक रूप से सीख लेते हैं।

विमल के माता-पिता उसे केवल शिष्ट व्यवहार ही नहीं सिखाते हैं बल्कि वे एक दूसरे के प्रति शिष्ट व्यवहार करते हैं। अतः विमल बहुत शिष्ट व्यवहार करने वाला लड़का है। सुनील विमल का मित्र है। उसके माता-पिता भी उसे शिष्टाचार सिखाते हैं, किन्तु वे और घर में रहने वाले अन्य लोग सदैव एक दूसरे के प्रति शालीनता का व्यवहार नहीं करते। दूसरों की बात को बीच में टोकना, और अपशब्दों का प्रयोग करना सुनील ने उनसे सीखा है। सुनील अकसर विमल के घर आता है। एक दिन वह विमल की मां से अभद्रता से बोला किन्तु उसे एहसास हुआ कि उसकी इस बात से सभी को बुरा लगा। इससे उसने सीखा कि बोलने में अधिक सावधान होना चाहिए। उसने देखा कि विमल के घर में सब एक दूसरे से शालीनता से बोलते

हैं। यह देखकर वह भी ऐसा करने की कोशिश करता है। धीरे धीरे वह बोलने और व्यवहार करने का अधिक शिष्ट तरीका सीख लेता है।

स्कूल में सुनील और विमल देखते हैं कि घण्टी बजती है, बच्चे एक दूसरे को धक्का देकर अन्दर घुसते हैं। जब स्कूल समाप्त होता है तब सभी बस में स्थान प्राप्त करने के लिए धक्का देते हुए घुसते हैं। सुनील और विमल यदि दूसरों के लिए रुकते हैं तो उन्हें बस में सीट नहीं मिल पाती, और इतना ही नहीं, अन्य बच्चे उन पर हंसते हैं। इसलिए सुनील और विनोद भी दूसरों को धक्का देकर घुसना सीख लेते हैं।

इस प्रकार सुनील और विमल दोनों शिष्ट और अशिष्ट व्यवहार घर में और स्कूल में सीखते हैं।

अभिवृत्तियां और मूल्य

अभिवृत्तियां और मूल्य दोनों ही मुख्यतया आकस्मिक अधिगम द्वारा अर्जित की जाती हैं। माता-पिता, शिक्षक और अन्य सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों की अभिवृत्तियों और मूल्यों का बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। आस-पास के लोगों के संयोग से कोई कथन और अनुभव जिनमें आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुभव सम्मिलित हैं, का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया इनमें से कोई भी नियोजित या नियंत्रित नहीं होते। इसलिए आकस्मिक अधिगम अभिवृत्तियों और मूल्यों के विकास में प्रस्तुत भूमिका निभाते हैं।

ज्ञान

बच्चे बहुत सी जानकारी आकस्मिक रूप से प्राप्त करते हैं। शहरी और ग्रामीण बच्चों तथा देश के विभिन्न भागों से बच्चों के ज्ञान में अन्तर होता है क्योंकि उनका पर्यावरण उन्हें अलग-अलग प्रकार के सीखने के अनुभव प्रदान करता है। जो बच्चे दिल्ली में रहते हैं वे विभिन्न प्रकार के हवाई जहाज, मोटर कार और मार्ग सूचक देखते हैं। गांव में बच्चों को ये सब सीखने का अवसर नहीं मिलता, किन्तु वे मिट्टी और फसल के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। परिवार में बच्चे विभिन्न विषयों पर वार्तालाप सुनते हैं। उन्हें अपने पिता और पिता के मित्रों के काम के बारे में जानकारी मिलती है। शिक्षित परिवारों में वे वैज्ञानिक, साहित्यिक और राजनैतिक विषयों पर विचार विमर्श सुनते हैं और इन विषयों से संबंधित बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करते हैं।

रुचियां

रुचियां भी कुछ सीमा तक आकस्मिक रूप से सीखी जाती हैं। एक बच्चा राजनैतिक विषय पर अपने परिवार में या बाहर विचार-विनिमय सुनता है और

उसकी रुचि राजनीति में जाग्रत होती हैं। घर पर कोई मिलने वाला भी, यदि उसमें संगीत, या कला में विशेष रुचि है तो वह बच्चे की रुचियों को प्रभावित कर सकता है।

व्यवहार के प्रतिरूप

व्यवहार के अनेक प्रतिरूप आकस्मिक रूप से सीखे जाते हैं। यदि बच्चा अपने आस-पास के व्यक्तियों को समय की पाबन्दी करते देखता है तो वह भी समयनिष्ठा की आदत सीखता है। वह सौम्य या कठोर व्यवहार करना सीखेगा यदि ऐसा व्यवहार वह सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों में देखता है। यदि अपने खेल के समूह में वह देखता है कि कठोर व्यवहार द्वारा व्यक्ति अपना काम निकाल लेता है तो, चाहे उसके माता-पिता और शिक्षक उसे शालीन व्यवहार करने को कितना क्यों न कहें, वह कठोर व्यवहार करना सीखेगा। इसके विपरीत, यदि अभद्र व्यवहार को खेल का समूह स्वीकार नहीं करता, तो वह एसा व्यवहार करना स्वयं छोड़ देगा। एक बच्चा जिसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता लड़ाकू हो जाता है, जिसे अत्यधिक अनुशासित किया जाता है वह पलायनवादी हो जाता है, यद्यपि किसी ने उन्हें इस प्रकार के व्यवहार सिखाना नहीं चाहा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आकस्मिक अधिगम विचार और व्यवहार के सभी पहलुओं में होता है। यह जन्म के कुछ समय बाद प्रारंभ हो जाता है और जीवनपर्यन्त चलता है। इसका प्रभाव माता-पिता, शिक्षक, हमजोली, समाज, पत्रिकाएँ, चलचित्र और भौतिक पर्यावरण द्वारा बच्चे तक पहुंचता है।

शिक्षक और आकस्मिक अधिगम

आकस्मिक अधिगम से शिक्षक को क्या सरोकार हैं? शिक्षक को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि आकस्मिक अधिगम कक्षा में और कक्षा के बाहर होता रहता है, और यह अच्छा या बुरा हो सकता है। शिक्षक सोचता है कि वह कक्षा में, केवल विषय पढ़ा रहा है, जैसे सामाजिक अध्ययन, किन्तु साथ ही साथ बच्चे विषय के प्रति पसन्दगी या नापसन्दगी भी सीख रहे हैं। अपनी शिक्षण विधि द्वारा शिक्षक बच्चों में एक खोज की प्रवृत्ति या रटने की आदत डाल सकता है। बच्चे कार्य करने में सहयोग या प्रतियोगिता करना सीख सकते हैं। यदि इस प्रकार के अधिगम के प्रति शिक्षक जागरूक हो जाता है, वह आकस्मिक कारकों को नियंत्रित करके, वांछनीय अभिवृत्तियों और व्यवहारों को सिखाने की योजना बना सकता है।

कक्षा के बाहर जो आकस्मिक सीखना चल रहा है उसके बारे में शिक्षक को जानना चाहिए। इसमें वह अच्छे व्यवहार को दृढ़ कर सकता है और अवांछनीय को परिवर्तित कर सकता है। यदि बच्चों ने कोई उपयोगी जानकारी कक्षा के बाहर प्राप्त

की है, तो कक्षा में इस पर विचार विमर्श किया जा सकता है। यदि उन्होंने कुछ गलत धारणाएं बनाई हैं, तो उन्हें सही करना चाहिए। जैसी ऊपर विवेचना की गई, शिक्षक को उपयोगी अभिवृत्तियों को प्रोत्साहित करना चाहिए और अवांछित मनोवृत्तियों में, जिन्हें शायद बच्चों ने कक्षा के बाहर सीखा है, परिवर्तन लाने का प्रयास करना चाहिए।

शिक्षक को बच्चों में स्वस्थ अभिरुचियों को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके विपरीत, यदि उसे पता लगता है कि बच्चों ने ऐसी अभिरुचियां सीखी हैं जिनका उन पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा, जैसे निम्न स्तर के चलचित्रों का देखना शौक, तो शिक्षक उसका प्रतिकार करने के लिए अच्छे चलचित्रों की ओर उनके मन में आकर्षण विकसित करने का प्रयास कर सकता है।

शिक्षक को बच्चों के व्यवहार के प्रतिरूपों का भी अवलोकन करना चाहिए, और वांछनीय को दृढ़ करना चाहिए जैसा निर्देशन के भाग में बताया जाएगा तथा ऐसे प्रतिरूपों को जो उनके सामंजस्य में कठिनाई उत्पन्न करेंगे, परिवर्तित करने में बच्चों की सहायता करनी चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षक को आकस्मिक अधिगम के प्रति जागरूक होना चाहिए। उसे एक सुनियोजित प्रयास करना चाहिए कि जो अच्छाइयां आकस्मिक रूप से बच्चों ने सीखी हैं उन्हें प्रोत्साहित किया जाए और जो अवांछनीय हैं उन्हें दूर करने में बच्चों की सहायता की जाए।

भाग–5

निर्देशन और परामर्श

यदि शिक्षक को बच्चों की मदद और उनका निर्देशन करना है तो इसमें मनोविज्ञान की जानकारी और समझ मूल्यवान है। दुर्भाग्यवश निर्देशन को अधिकांश प्राथमिक स्कूलों में महत्व नहीं दिया गया है, यद्यपि इस स्तर पर यह बहुत आवश्यक है। आगे आने वाले पृष्ठों में निर्देशन सेवा की विवेचना की गई है, और प्राथमिक स्तर पर इनकी संबद्धता को दर्शाया गया है। बच्चों को निर्देशन और माता-पिता से सहयोग प्राप्त करने के कुछ व्यावहारिक सुझाव दिए गए हैं।

अध्याय 33

प्राथमिकशाला में निर्देशन एवं परामर्श

चंचल मेहरा
ईवलिन मार

जब शिक्षा को केवल ज्ञान प्रदान करने का ही माध्यम न मान कर, उसे बच्चों के सर्वतोमुखी विकास के साधन के रूप में देखा जाता है, तब यह स्पष्ट है निर्देशन और परामर्श इसके प्रमुख अंग हैं। वास्तव में निष्ठावान शिक्षक जो सदैव अपने छात्रों का निर्देशन करते रहे हैं। फिर, हमें अलग से निर्देशन और परामर्श सेवा की क्यों आवश्यकता पड़ी? कारण यह है, स्कूल की नित्यचर्या में, शिक्षकों के अधिक कार्यभार और छात्रों को परीक्षा के लिए तैयार कराने के दायित्व के कारण, कुछ अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। इसलिए निर्देशन सेवा इन उद्देश्यों को महत्व देने के लिए और उन पर कार्यान्वियन के लिए आवश्यक है।

निर्देशन के उद्देश्य

निर्देशन सेवा इसलिए विकसित की जाती है कि बच्चों की मदद की जाए, जिससे वे प्रमुदित और स्वस्थ व्यक्तित्व विकसित कर सकें, अपनी समस्याओं से निपटना सीखें, अपनी योग्यताओं को विकसित करें और काम की दुनियां में अपने स्थान का पता लगा सकें। ये ही शिक्षा के उद्देश्य भी हैं। इन उद्देश्यों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करना निर्देशन की देन है। विशिष्ट रूप से निर्देशन कार्यक्रम से निम्नलिखित अर्जित करने का प्रयास किया जाता है।

(1) निर्देशन बच्चों की योग्यताओं और रुचियों को विकसित करने में सहायक होता है। बहुत से बच्चे अपनी क्षमताओं के अनुरूप कार्य नहीं करते हुए मिलते हैं। कुछ को अपने अध्ययन में कठिनाइयां हो रही हैं, यद्यपि उनमें जिस प्रकार के कार्य करने की अपेक्षा कक्षा में की जा रही है, उसे करने की क्षमता है। कुछ अच्छा कार्य कर रहे हैं किन्तु उससे बेहतर कर सकते हैं। ऐसे भी बच्चे होते हैं जिनमें विशेष योग्यता और प्रतिभा होती है जिसका विकास होना चाहिए। शिक्षक को यह पता लगाना चाहिए कि प्रत्येक बच्चे की अन्तर्निहित सम्भाव्यताएं क्या हैं। यानी, वह कौन

से कार्य भली प्रकार कर सकता है और उसकी विशेष अभिरुचियां क्या हैं। इनके आधार पर उसे उपयुक्त सीखने के अनुभव प्रदान करना चाहिए जिससे बच्चे का विकास उसकी योग्यताओं के अनुरूप हो सके।

(2)निर्देशन द्वारा प्रत्येक बच्चे की, अपने आप को अधिक अच्छी तरह समझने में और अपने को स्वीकार करने में, मदद करनी चाहिए। इससे वह अपने सबल और दुर्बल पक्षों को समझ सकेगा। वह इन्हें तभी जान सकेगा जब उसे अपनी योग्यताओं और रुचियों का परीक्षण विभिन्न क्रियाकलापों में करने का अवसर मिले। उसे अपने निष्पादन की सही जानकारी मिलनी चाहिए। उसके अच्छे कार्य की सराहना करने के साथ-साथ उसकी सीमितताओं की ओर बिना हीनता की भावना पैदा किए, संकेत करना चाहिए। यह भी याद रखना चाहिए कि प्राथमिक शाला की अवस्था पर योग्यताओं का विकास हो रहा है। यदि अभी कोई कार्य बच्चा नहीं कर पाता, जैसे लेख लिख पाना या ज्यामिति का किसी धारणा को समझ पाना, तो उसे ऐसा नहीं लगने देना चाहिए कि इन कार्यों को वह कभी नहीं कर पाएगा। उसे प्रयास करने और अपने कार्य को अधिक अच्छा करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

(3)निर्देशन द्वारा बच्चों में व्यवहार के वांछनीय प्रतिमान (patterns) विकसित करने चाहिए। शिक्षक को यह देखना चाहिए कि ऐसी आदतों को, जैसे शेखी बघारना, धौंस जमाना, मचलना और पलायन करना, प्रारंभ से ही सुधारने का प्रयास किया जाए। बच्चों को स्वस्थ, खुश और सुखद व्यवहार तथा मित्रों के साथ मिलकर आनन्द से रहना सीखना चाहिए। इसके साथ-साथ उन्हें शिष्टाचार, संवेगों पर नियंत्रण, दूसरों का लिहाज करना, अध्ययन और स्कूल के क्रियाकलापों में आनन्द लेना भी सीखना चाहिए।

(4)निर्देशन द्वारा बच्चों को दुश्चिंताओं और परेशानियों के ऊपर काबू पाने में मदद करनी चाहिए। सभी व्यक्तियों के जीवन में समस्याएं उठती हैं। बच्चों को वस्तुमूलक रूप से अपनी समस्याओं को देखना और उनके हल करने के तरीके ढूंढना सीखना चाहिए। उन्हें आत्मदया (self pity) से बचकर जीवन का आत्मविश्वास के साथ सामना करना सीखना चाहिए।

(5)जैसे बच्चे बड़े होते हैं, निर्देशन सेवा द्वारा उन्हें उनसे संबंधित विभिन्न विकल्पों और अवसरों के बारे में जानकारी देनी चाहिए। विकल्प हो सकते हैं हाई स्कूल में पढ़ाई के विषय, या मनोविनोद के साधन, या अपनी योग्यताएं विकसित करने के तरीके। कुछ के सामने यह विकल्प हो सकता है कि स्कूल की पढ़ाई जारी रखें, या स्कूल छोड़ कर कोई प्रशिक्षण या नौकरी ढूंढें। उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि कौन से संभावित व्यवसाय हो सकते हैं जिन्हें बाद में वे अपना

सकते हैं। उन्हें अपनी योग्यताओं और रुचियों का संबंध उन अवसरों के संदर्भ में समझना चाहिए जो उन्हें प्राप्त हैं या जो भविष्य में प्राप्त होंगे।

इस प्रकार हमने देखा कि यद्यपि निर्देशन का उद्देश्य बच्चों को उनकी समस्याओं को हल करने में सहायता करना है, इसका संबंध केवल समस्याओं तक ही नहीं है किन्तु प्रत्येक बच्चे के सर्वोत्तम विकास में मदद करने से है। यह इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक बच्चे को समझना चाहिए और मदद करनी चाहिए। इसलिए यह शिक्षक का कर्तव्य है कि अपनी कक्षा के प्रत्येक छात्र को जाने, उसके सबल और दुर्बल पक्षों को और आवश्यकताओं को समझे, और दिन-प्रतिदिन के सम्पर्क में उसकी मदद करे। इसके साथ-साथ बच्चों की विशिष्ट समस्याएं हैं उनकी ओर विशेष ध्यान और समय देना चाहिए।

प्राथमिक शाला में निर्देशन का महत्व

निर्देशन प्राथमिक स्कूल में क्यों महत्वपूर्ण हैं? हम कुछ मामले उदाहरण के लिए लेते हैं। मीनू अपनी कक्षा का कार्य नहीं कर पाती। उसने अपने पास बैठे हुए बच्चों के कार्य में बाधा डाली और लिखित कार्य में दूसरों की नकल की। श्रीमती कपूर जी शिक्षिका थीं उन्होंने मीनू का करीब से अवलोकन किया। उन्होंने देखा कि मीनू पीली और थकी हुई दिखाई देती थी। उन्होंने पुराने अभिलेख देखे जिनसे पता लगा कि पहले मीनू कक्षा में अच्छा कार्य कर रही थी। श्रीमती कपूर ने मीनू को बुलाया और धीरज से उससे बात की। मीनू ने बताया कि वह कुछ समय से बीमार थी और स्कूल में अनुपस्थित रही। अब जो कक्षा में पढ़ाया जा रहा था वह उसके समझ में नही आ रहा और उसे सारे समय थकान सी लगती थी। श्रीमती कपूर ने जो कुछ मीनू नहीं पढ़ पाई थी उसे पूरा करने में मीनू की मदद की। उन्होंने मीनू के माता-पिता से भी सम्पर्क किया और मीनू के लिए टॉनिक की व्यवस्था करवाई।

श्रीमती कपूर मीनू की समस्या समझ सकीं और उन्होंने मदद की। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो मीनू कक्षा में और भी पिछड़ जाती, और उसका स्वास्थ्य भी गिरा रहता। वह इतनी निराश हो सकती थी कि पढ़ाई में उसकी रुचि समाप्त हो जाती। तब उसकी मदद करना बहुत कठिन हो जाता।

विनोद एक चुप रहने वाला बालक है। पढ़ाई में वह ठीक नहीं चल रहा था। अधिकतर शिक्षकों का ख्याल था कि वह मन्द बुद्धि का है, किन्तु श्रीमती कपूर ने देखा कि वह पुस्तक अपनी आंख के बहुत पास रखता था। वह श्यामपट्ट पर क्या लिखा है वह भी नहीं पढ़ पाता था। विनोद की आंख की जांच की व्यवस्था की गई। उसे चश्मा दिया गया और अब वह सरलता से पढ़ने लगा और श्यामपट्ट भी उसे ठीक से दिखाई देने लगा। कुछ माह बाद शिक्षक को पता लगा कि विनोद

काफी तेज़ लड़का है। यदि श्रीमती कपूर ने यह नहीं देखा होता कि विनोद को अपनी आंखों से समस्या हो रही थी, तो वह कक्षा के साथ नहीं चल पाता और उसकी दृष्टि और भी खराब हो जाती।

ऊपर दिए गए दृष्टान्तों से पता लगता है कि प्रारंभिक कक्षाओं में निर्देशन कितना महत्वपूर्ण है। जो बच्चे यह नहीं समझ पाते कि कक्षा में क्या हो रहा है, शायद इसलिए कि वे कुछ दिन स्कूल नहीं जा सके, या उनके सामने कोई शारीरिक या भावात्मक समस्या थी, उनकी जितनी हो सके, मदद करनी चाहिए। इसमें जितनी देरी होगी उतना ही बच्चा पिछड़ जाएगा। इसी प्रकार धीमी गति से सीखने वाले छात्रों की भी मदद करनी चाहिए, और उन्हें ऐसा कार्य दिया जाए जो उनकी योग्यता के अनुरूप हो, नहीं तो वे भी पिछड़ जाएंगे और निरुत्साहित हो जाएंगे। दूसरी ओर यदि तेज़ बच्चों को उनकी योग्यता के अनुरूप चुनौतिपूर्ण कार्य यदि नहीं दिया गया तो वे ऊबने और अनमने होने लगेंगे। जिन बच्चों में कोई व्यवहार की समस्या है उनकी मदद भी प्रारंभ से ही करनी चाहिए जिससे वे अपनी कठिनाइयों से ऊपर उठ सकें।

अध्याय ३५

मार्गदर्शक के रूप में शिक्षक

इवलिन मार
चपल मेहरा

अपने देश में सभी स्कूलों में निर्देशन सेवा की अलग से व्यवस्था नहीं की जा सकती। इसलिए, निर्देशन की मुख्य जिम्मेदारी शिक्षकों को अपने स्तर के छात्रों के लिए निभाते रहना होगा। जहां निर्देशन कार्यक्रम जारी किया गया है, वह भी उनको शिक्षकों की मदद से ही सफल बनाया जा सकता है, क्योंकि शिक्षकों का छात्रों के साथ प्रतिदिन का सम्पर्क होता है, उन्हें छात्रों को जानने का अवसर मिलता है, और काफी समय तक वे उनकी मदद कर सकते हैं। ऐसी मदद शिक्षक कई प्रकार से कर सकते हैं।

कक्षा का वातावरण

हमने बताया है कि निर्देशन का उद्देश्य बच्चों के प्रमुदित और स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास में मदद करना है। शिक्षक के लिए पहली बात यह कि कक्षा और स्कूल में बच्चे खुश रहें। कक्षा का वातावरण मुक्त और खुशी का होना चाहिए; शिक्षक को तनावरहित वातावरण में आराम से बच्चों के साथ कक्षा का कार्य करना चाहिए। यद्यपि कुछ व्यवस्था तो बनाए रखनी होगी, फिर भी, बच्चे शिक्षक से इतना नहीं डरें कि वे दुःखी हो जाएं। उन्हें कक्षा में ऐसा लगना चाहिए कि वे अपनी बात निस्संकोच कह सकते हैं, अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं और प्रश्न पूछ सकते हैं। ऐसा करने से वे विचार करना सीखते हैं और गलतियां करने का जोखिम भी उठाते हैं। यदि शिक्षक उनकी गलतियों को सहजरूप से बताता है तो वे, बिना शरमिन्दगी, उठाए, उन्हें सुधार सकते हैं। इस प्रकार घबराहट और भय के वातावरण की अपेक्षा, जहां उन्हें बोलने में डर लगे, बच्चे एक स्वतंत्र और विश्वास के वातावरण में अधिक अच्छा सीखते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे वातावरण में वे तनावरहित होने के कारण दूसरों के प्रति आक्रामकता अनुभव नहीं करते। मुक्त और

प्रमोदित वातावरण उसके व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास को आगे बढ़ाता है। अपने प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार होने से वे दूसरों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना सीखते हैं। दूसरी ओर, यदि बच्चों को डरा कर रखा जाता है तो वे अपने विचारों की अभिव्यक्ति के बजाए चुप रहना पसन्द करते हैं। उन्हें स्वयं सोचने के लिए प्रोत्साहन भी नहीं मिलता। डांट या दण्ड से बचने के लिए वे धोखा देना या दूसरों को दोष देना या अन्य कोई ऐसा ही अस्वस्थ तरीका सीखते हैं। डर और घबराहट के कारण उनके विकास में निखार आने के बजाए, रुकावट पड़ती है।

प्रत्येक बच्चे को स्वीकार करना

दूसरी महत्वपूर्ण बात, जिसकी अपेक्षा शिक्षक से की जाती है, प्रत्येक बच्चे को स्वीकार करना है। उसे देखना चाहिए कि प्रत्येक बच्चा एक व्यक्ति के रूप में मूल्यवान है, और प्रत्येक बच्चा उसके लिए महत्व रखता है। ऐसे बच्चों को जो आज्ञाकारी, सुन्दर और बुद्धिमान हैं स्वीकार करना आसान होता है। किंतु कुछ बच्चों को पसंद करना कठिन होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि वे बहुत तेज न हों, या उनमें कोई ऐसी आदत हो जिस पर शिक्षक को झुंझलाहट आती हो, या कोई अन्य बात हो जिससे शिक्षक अप्रसन्न हो। किंतु इनमें से प्रत्येक को शिक्षक की अनुमोदन और स्वीकृति प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। यदि शिक्षक द्वारा किसी बच्चे की उपेक्षा की जाती है तो उसकी कठिनाइयां और भी बढ़ जाती हैं। उदाहरण के लिए, वह शिक्षक का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कक्षा में नटखटपन करता है, या हतोत्साहित हो जाता है और दिव्य'स्वपन में पलायन करता है, या कोई अन्य समस्यात्मक व्यवहार अपनाता है। शिक्षक को यह बात समझनी चाहिए कि यदि बच्चा तेज या सुन्दर नहीं है तो इसमें बच्चे का कसूर नहीं है, और न ही इसमें उसका कसूर है कि उसे शिष्टाचार सीखने का अवसर नहीं मिला। इसके अतिरिक्त यदि बच्चे में कोई समस्यात्मक व्यवहार है तो इसका कारण कुछ दुःखद अनुभव हो सकते हैं।

कभी कभी शिक्षक किन्हीं बच्चों को अपने पूर्वाग्रह के कारण स्वीकार नहीं कर पाता। हो सकता है कि वे किसी ऐसे समुदाय से आते हों जिसे वह पसन्द नहीं करता, या ऐसे घरों से जो आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से कमजोर और वंचित हों, जिसके कारण शिक्षक उनको तुच्छ समझता है। शिक्षक में यदि कोई पूर्वाग्रह है तो उनके बारे में उसे बोध होना चाहिए जिससे वह उन पर काबू पा सके।

बच्चों को समझना

शिक्षक को उसके संरक्षण में प्रत्येक बच्चे को समझना आवश्यक है। समझने से वह बच्चे को स्वीकार कर सकेगा। इससे शिक्षक बच्चे की अन्य समस्याओं में

मदद कर सकेगा। इसलिये शिक्षक को अपनी देख-रेख में सुपुर्द किए गए बच्चों को जानना चाहिए। हमने पिछले अध्याय में देखा कि किस प्रकार श्रीमती कपूर ने मीनू और विनोद की कठिनाइयों का पता लगाया। उसे पता लगा कि ये बच्चे केवल काहिला और नटखट ही नहीं थे और वह उनकी मदद कर सकी।

यदि किसी बच्चे की कोई समस्या है, तो महत्वपूर्ण बात है उसके कारणों का पता लगाना। बच्चों की कई समस्याएं होती हैं और एक ही समस्या के पीछे विभिन्न कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए विवेक, अर्जुन और ऋतु कक्षा में ध्यान नहीं देते। जांच करने पर पता लगा कि विवेक इसलिए ध्यान नहीं देता क्योंकि वह बहुत बुद्धिमान है और कक्षा के काम से वह ऊबता है, अर्जुन धीमी गति से सीखने वाला है और वह समझ नहीं पाता कि कक्षा में क्या हो रहा है, और ऋतु इसलिए नहीं क्योंकि वह दुःखी रहती है।

कठिनाई इस बात से उठती है कि कक्षा में चालीस पचास बच्चे हो सकते हैं, और प्रत्येक दूसरों से भिन्न होता है। प्रत्येक को जानना सरल नहीं है। इसके लिए विशेष प्रयास करना होगा।

शिक्षक एक समय में सभी बच्चों का अध्ययन नहीं कर सकता। वह कुछ का चयन कर सकता है जिन पर वह कुछ दिनों तक विशेष ध्यान दे। वह ऐसे बच्चों से प्रारंभ कर सकता है जिनमें कोई समस्या दिखाई देती हो, किंतु प्रत्येक बच्चे को कभी न कभी शिक्षक का ध्यान मिलना चाहिए क्योंकि कुछ बच्चों में ऐसी समस्याएं भी हो सकती हैं जो बाह्यरूप से प्रकट नहीं हो रही हों।

क्या अध्ययन करें

शिक्षक को बच्चे के व्यवहार और परिस्थितियों को विभिन्न पहलुओं से अध्ययन करना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि बच्चा खुश या दुःखी है, कक्षा में ध्यान दे रहा है अथवा नहीं, और क्या उसकी कोई स्वास्थ्य की समस्या है। उसे पता लगाना चाहिए कि बच्चे के अन्य बच्चों के साथ किस प्रकार के संबंध है और उसके घर की परिस्थितियां कैसी हैं।

बच्चे का अध्ययन किस प्रकार करें

बच्चे के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए शिक्षक को सभी स्रोतों का, जहां तक संभव हो, उपयोग करना चाहिए। इनमें अवलोकन, स्कूल के अभिलेखों का अध्ययन, निदानात्मक परीक्षण, माता-पिता और शिक्षकों के साथ परामर्श, और स्वयं बच्चे से बातचीत करना सम्मिलित है। कभी-कभी कक्षा के अन्य बच्चों से कुछ जानकारी प्राप्त करना उपयोगी होता है।

1. **अवलोकन :** शिक्षक को बच्चे का कक्षा में अवलोकन करना चाहिए, और

उसे ऐसे अवसर भी ढूंढने चाहिएं जब बच्चे का अवलोकन कक्षा के बाहर किया जा सके। उसे देखना चाहिए कि वह कैसे कार्य कर रहा है। क्या वह खुश दिखाई देता है या दुःखी? क्या वह कक्षा में ध्यान दे रहा है? उसका स्वास्थ्य कैसा है? कक्षा में और कक्षा के बाहर वह दूसरों से कैसा व्यवहार करता है और दूसरे उसके साथ कैसे पेश आते हैं।

शिक्षक बच्चे की कापी को लेकर देख सकता है कि क्या वह लापरवाही से कार्य करता है या वह अपने कार्य में रुचि ले रहा है। कापियों को देख कर यह भी पता लगेगा कि क्या पढ़ाई सम्बन्धी उसकी कोई विशेष समस्या है, जैसे, किसी प्रकार की गलतियां जिन्हें वह बार बार कह रहा हो।

2. **अभिलेखों का अध्ययन :** अभिलेखों से शिक्षक को पता चल सकता है कि क्या कभी वह लम्बे समय के लिए अनुपस्थित रहा। यदि स्कूल में स्वास्थ्य के रिकार्ड रखे जाते हैं तो उनसे स्वास्थ्य के बारे में पता लगेगा। निष्पादन के रिकार्ड से न केवल पता लगेगा कि अभी बच्चा किस प्रकार का कार्य कर रहा है बल्कि पूर्व में उसने कैसा कार्य किया है।

3. **शिक्षकों से परामर्श :** अन्य शिक्षकों से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। उनसे पता लग सकता है कि बच्चा कक्षा में, खेल के समय, आदि परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है। उस शिक्षक से जो कक्षा को पिछले वर्ष पढ़ाता था यह पता लगाया जा सकता है कि क्या बच्चे के व्यवहार में कोई परिवर्तन आया है।

4. **बच्चों से भेंट :** यदि शिक्षक और बच्चे के बीच एक दूसरे पर भरोसा और विश्वास का संबंध है तो सहानुभूतिपूर्वक बात करके शिक्षक पता लगा सकता है कि बच्चे की क्या कठिनाइयां हैं।

5. **अन्य बच्चों से पूछताछ :** कभी कभी अन्य बच्चों से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। किंतु यह काम सावधानी पूर्वक करना होगा। बच्चों को किसी भी हालत में ऐसा नहीं लगना चाहिए कि शिक्षक को अमुक बच्चा समस्यात्मक लग रहा है। बच्चों से जानकारी प्राप्त करने की एक विधि समाजमिति (sociometry) है। इस विधि द्वारा शिक्षक इस बात का पता लगा सकता है कौन बच्चे अन्य बच्चों द्वारा स्वीकार किए जाते हैं और कौन की वे उपेक्षा करते हैं। यदि समाजमिति या अवलोकन से उसे पता लगता है कि अमुक बच्चे को अन्य बच्चे पसन्द नहीं कर रहे, तो शिक्षक बच्चों से पूछ सकता है कि वे उसे अपने साथ खेल में क्यों नहीं सम्मिलित कर रहे। किंतु ऐसा करने में इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि बच्चों को ऐसा नहीं लगे कि किसी विशेष बच्चे के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है, बल्कि वे समझें कि बच्चों के व्यवहार के बारे में शिक्षक जानना चाह रहा है।

6. **माता-पिता से परामर्श :** माता-पिता घर की परिस्थितियों और आपसी संबंधों के बारे में मूल्यवान जानकारी दे सकते हैं। शिक्षक को मैत्रीपूर्ण ढंग से उनसे सम्पर्क करना चाहिए। उसे यह स्पष्ट करना चाहिए कि वह कोई शिकायत नहीं कर रहा है, और उसकी मंशा केवल बच्चे की मदद करने की है। कुछ माता-पिता ऐसे होंगे जिनकी शिक्षा बहुत कम या नहीं के बराबर हो, किंतु शिक्षक को उनके साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक को माता-पिता को इस बात से आश्वस्त करना चाहिए कि जो भी जानकारी वे देंगे, उसे गोपनीय रखा जाएगा, और इस मामले में उसे अपना वचन बिना भूले निभाना चाहिए।

7. **निदानात्मक परीक्षण :** कभी कभी जब बच्चों को पढ़ाई में कठिनाई हो रही हो, उस समय निदानात्मक परीक्षण देने से मदद मिलती है। निदानात्मक परीक्षण यह पता लगाने के लिए बनाया जाता है कि पाठ्य-विषय में बच्चे को किस प्रकार की कठिनाइयां हो रही हैं। उदाहरण के लिए यदि बच्चा भिन्न के जोड़ या घटाना नहीं कर पाता तो इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं, जैसे उसे पहाड़े याद नहीं हुए हैं, या उसने लघुत्तमं संमापवर्तक निकालना नहीं सीखा है, या वह भिन्न जोड़ने और घटाने की विधि को समझ नहीं पाया है। शिक्षक प्रत्येक प्रक्रिया का अलग-अलग परीक्षण करने के लिए छोटे-छोटे प्रश्न बना कर बच्चे को कहां समस्या हो रही है इसका पता लग सकता है। इसी प्रकार वह अन्य विषयों में भी छात्रों की कठिनाइयों का पता लग सकता है। शिक्षक बने-बनाये निदानात्म्क परीक्षणों का प्रयोग कर सकता है या उन्हें स्वयं बना सकता है।

बच्चों को समझने और मदद करने के कुछ दृष्टान्त

श्रीमती कपूर अपनी कक्षा के बच्चों की मदद करने में इन विधियों का उपयोग करती हैं। हम अब देखेंगे कि वे किस प्रकार अपना कार्य करती हैं, कैसे उन बातों का पता लगाती हैं जहां वे मदद कर सकती हैं, और किस प्रकार मदद करती हैं। बच्चे हैं ऋतु, विवेक, मोहन, मनोज और विमला। वे देखती हैं कि ऋतु और मनोज कक्षा में बहुत चुप रहते हैं। ऋतु खुश नहीं रहती और ऐसा लगता है कि वह कक्षा में बैठी-बैठी दिवा-स्वप्न देख रही हो। मनोज भी खुश दिखाई नहीं देता, वह घबराया सा दिखाई देता है। विवेक और मोहन कक्षा में शोर मचाया करते हैं। विमला कक्षा में ध्यान तो देती है किन्तु वह सदैव बोलना चाहती है, और जब अन्य बच्चे बोलते हैं तो उनको टोकती है। श्रीमती कपूर इन बच्चों का उनके खाली समय में अवलोकन करती है। उन्हें पता लगता है कि ऋतु को खेलने में रुचि नहीं है। मनोज दूसरों को खेलता हुआ उत्सुकता से देखता है किंतु घबराहट के कारण उसमें शामिल होने की हिम्मत नहीं करता। विवेक और मोहन अन्य बच्चों के साथ खेलते हैं किंतु

मोहन सदैव उन पर अपनी धौंस जमाता है। विमला अन्य बच्चों के साथ खेलना चाहती है किंतु अन्य बच्चे उसे अपने साथ खिलाना नहीं चाहते।

श्रीमती कपूर ने देखा कि इनमें से प्रत्येक बच्चे के साथ कोई समस्या है, किंतु उन्हें पता नहीं कि वह क्या है और इसलिए उन्होंने रिकार्ड देखने का निश्चय किया। श्रीमती कपूर को पता लगा कि ऋतु पहले पढ़ाई में अच्छी थी, मनोज पढ़ाई में कभी अच्छा नहीं था, और अकसर बीमार होने के कारण छुट्टी पर रहा है। विवेक, कक्षा में ध्यान न देने पर भी परीक्षा में बहुत अच्छे अंक प्राप्त करता है। मोहन का कार्य कभी अच्छा होता है और कभी खराब, विमला पढ़ाई में ठीक है। विवेक, मोहन और विमला स्कूल नियमित रूप से उपस्थित रहे हैं, और उन्हें स्वास्थ्य की कोई समस्या नहीं है।

श्रीमती कपूर अन्य शिक्षकों से परामर्श करने का निश्चित करती हैं विशेषकर उनसे जो इन बच्चों के पिछले वर्ष कक्षा-शिक्षक थे।

श्रीमती कपूर को पता चलता है कि पिछले वर्ष ऋतु खुश रहती थी और अच्छा कार्य करती थी। वे बताते हैं कि मनोज सदैव चुप रहता था, और ऐसा लगता था कि कक्षा में जो कुछ हो रहा था, वह उसके समझ में नहीं आ रहा। उनका विचार है कि विवेक होशियार है किंतु नटखट भी है। अधिकांश शिक्षकों को मोहन और विमला पर चिड़चिड़ाहट होती थी, और उन्होंने उनको डांटने और दण्डित करने का प्रयास किया, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ।

श्रीमती कपूर प्रत्येक बच्चे से मिलीं और **व्यक्तिगतरूप से सहानुभूतिपूर्वक उनसे बात की**। स्कूल के रिकार्ड और अन्य शिक्षकों की बातचीत से उन्हें यह मालूम हो गया है कि विवेक प्रखर बुद्धि का है और इसलिए कक्षा में उसका मन उकताता है। विवेक से श्रीमती कपूर को पता चला कि उसकी रुचि अंतरिक्ष यात्रा में है। वे विवेक के लिए कुछ अतिरिक्त प्रगामी (advanced) कार्य की तथा अंतरिक्ष यात्रा पर कुछ सामग्री प्राप्त करने की व्यवस्था करती हैं जिसे, अपना कार्य समाप्त करने पर, विवेक पढ़ सकता है। विवेक अतिरिक्त कार्य के करने में और पढ़ने में इतना लीन हो जाता है कि कक्षा में अब शोर नहीं मचाता।

जब श्रीमती कपूर ऋतु से बात करती हैं, ऋतु रोने लगती है और बताती है कि उसकी मां की मृत्यु हो गई है। श्रीमती कपूर उससे सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करती हैं। कक्षा में वे रोज कोई न कोई प्रश्न ऋतु से पूछने का निर्णय करती हैं। जब उन्हें लगता है कि ऋतु दिवास्वप्न देख रही है, वह डांटती नहीं, किंतु उसे ध्यान देने के लिए हलके से कहती है।

मनोज से मिलने पर उन्हें पता लगा कि वह थोड़ा ऊँचा सुनता है, और उसे

बराबर सुनाई नहीं देता कि शिक्षक क्या कह रहा है श्रीमती कपूर को मनोज थोड़ा कमजोर भी दिखाई देता है। उन्होंने मनोज को आगे बैठाने की व्यवस्था की जिससे वह शिक्षक की बात सुन सके। **वे उसके माता-पिता से भी सम्पर्क करती हैं** और डाक्टरी जांच और उपचार की भी व्यवस्था करती है। पढ़ाई में मनोज की कठिनाइयां अभी भी बनी हुई हैं। श्रीमती कपूर को इसका कारण यह समझ में आया कि जब मनोज पीछे बैठता था तो शिक्षक को सुन न सकने के कारण उसने बहुत कुछ जो कक्षा में सिखाया गया ग्रहण नहीं किया। यह पता लगाने के लिए कि उसके ज्ञान में कहां कहां कमी है उसे **निदानात्मक परीक्षण** देती हैं और उपचारी कार्यक्रम की व्यवस्था करती हैं। इस सहायता से मनोज बहुत शीघ्र ही अन्य छात्रों की बराबरी में आ जाता है।

श्रीमती कपूर मोहन से भी बात करती हैं किंतु वह उन्हें कुछ नहीं बताता। फिर भी, दो दिन बाद उसके व्यवहार में कुछ सुधार होता है और उसकी शैतानी में कमी आती है। श्रीमती कपूर मोहन के पिताजी को उनसे मिलने बुलवाती हैं। पिताजी आते हैं। उनसे बात करने पर श्रीमती कपूर को पता चलता है कि घर में काफी तनाव और संघर्ष है जिसके कारण मोहन अशान्त रहता है। श्रीमती कपूर उसे परामर्शदाता के पास भेजना चाहेंगी। इस बीच वे उससे हमदर्दी से व्यवहार कर रही हैं जिससे मोहन को कुछ बल मिल रहा है। श्रीमती कपूर ने इस बात की सावधानी बरती है कि किसी से भी मोहन के घर की परिस्थितियों का जिक्र न करें।

जब श्रीमती कपूर ने विमला से समझाकर बात की तो विमला ने बताया कि वह स्कूल में खुश नहीं है क्योंकि अन्य बच्चे उसे पसन्द नहीं करते। श्रीमती कपूर अन्य बच्चों से जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करती हैं। वे बताते हैं कि वे विमला को इसलिए पसन्द नहीं करते क्योंकि वह अपनी शान बघारती है और सदैव अपने आप को उनसे श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहती है। श्रीमती कपूर सुझाव देती हैं कि यदि वे विमला को अपने साथ मिल-जुल कर खिलाएं तब शायद वह अपनी शान जमाने की कोशिश न करे। वह विमला से भी बात करती हैं और उसे समझाती हैं कि वह अपनी आदतें बदले। विमला की समस्या को समझने के लिए श्रीमती कपूर माता-पिता के पास खबर भिजवाती हैं। दोनों ही उनसे मिलने आते हैं। उन्हें भी विमला समस्यात्मक लगती है और वे उसके भाई की प्रशंसा करते हैं। श्रीमती कपूर को लगता है कि उन लोगों ने भाई की ओर अधिक ध्यान दिया है। इस संभावना का वे उनसे जिक्र करती हैं। वे यह बात स्वीकार करते हैं और बताते हैं कि विमला की दादी, जो उनके साथ रहती हैं, भाई और बहन में काफी भेदभाव करती हैं। वे इस बात का निश्चय करते हैं कि घर में अब विमला को अधिक महत्व देंगे। श्रीमती

कपूर विमला को भी अपनी आदतों को बदलने के लिए निर्देशन देती हैं जिससे अन्य बच्चे उसे स्वीकार कर सकें। जैसे जैसे अन्य लोग विमला के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं, वह स्कूल में खुश दिखाई देती है। इससे उसके व्यवहार में और भी शालीनता आती है।

बच्चों को उनकी समस्याओं में मदद करना

बच्चों का अध्ययन करके श्रीमती कपूर उनको समझ सकीं और उनकी मदद कर सकीं। बच्चों की दृष्टि से समस्याओं को देखकर वे मोहन और विमला जैसे बच्चों को स्वीकार कर सकीं जिन पर अन्य शिक्षक झुंझलाते थे। वास्तव में बच्चों को अध्ययन करने का उद्देश्य उन्हें स्वीकार करना और मदद करना है। बच्चों को अपनी समस्याओं का हल करने में मदद करने की कोई एक विधि नहीं है। प्रत्येक बच्चे का अलग अध्ययन करने और समझने से पता लगता है कि कैसे उसकी मदद की जा सकती है, और जब तक बच्चे की मदद नहीं करनी है उसके अध्ययन का कोई अर्थ नहीं।

छात्र समूहों के साथ कार्य करना

सभी समस्याओं को व्यक्तिगतरूप से सुलझना आवश्यक नहीं है। अकसर तीन या चार बच्चों की एक जैसी समस्या होती है, और उनके समूह में शिक्षक उसका निराकरण कर सकता है। ऐसे कुछ समूहों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

प्रतिभाशाली

श्रीमती कपूर की कक्षा के केवल विवेक ही प्रतिभाशाली छत्र नहीं है। उसके समान अन्य छात्र भी हैं जिन्हें कक्षा का कार्य बहुत आसान लगता है और इससे उनका मन ऊबता है। उनको अतिरिक्त प्रगामी कार्य दिया जा सकता है जिससे उनका मन लगा रहे, वे उससे कुछ सीखें और अपनी योग्यताओं का कारगर उपयोग कर सकें। कुछ बच्चों में विशिष्ट क्षमता और प्रतिभा होती है। उनकी रुचियों और योग्यताओं से संबंधित कार्य और सामग्री उनको उपलब्ध करनी चाहिए। उन्हें अन्य छात्रों की मदद करने को भी कहा जा सकता है। वे सहायक सामग्री तैयार करने में शिक्षक की मदद कर सकते हैं।

धीमी गति से सीखने वाले छात्र

कुछ बच्चों को कक्षा का कार्य अत्यन्त कठिन लगता है। उनके लिए यह बहुत दुष्कर होता है कि जो कुछ शिक्षक पढ़ा रहा है, उसे बिना समझे और अपेक्षित कार्य न कर पाने पर भी वे कक्षा में बैठे रहें। जब कक्षा लिखित कार्य कर रही हो उस समय शिक्षक धीमी गति से सीखने वाले छात्रों की ओर ध्यान दे सकता है और उनकी कठिनाइयों को समझा कर दूर कर सकता है।

शिक्षक उन्हें उनकी योग्यता के अनुरूप कार्य दे सकता है जिससे उन्हें सफलता का अनुभव हो सके। धीरे-धीरे वे अधिक कठिन कार्य की ओर बढ़ सकते हैं। उनमें से कुछ ऐसे हो सकते हैं जिनको यह स्वीकार करना कठिन हो कि उनमें सीमित योग्यता है। किंतु सफलता का अनुभव और यह महसूस करना कि शिक्षक उनको भी उतना ही महत्वपूर्ण समझता है जितना तेज बच्चों को, उन्हें अपनी कमजोरियों का सामना करने में मदद करेगा।

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों को शिक्षक को विशेष प्रोत्साहन और मदद देनी चाहिए। उसे उनकी कठिनाइयों को दूर करने के प्रयास करना चाहिएं। कभी-कभी शिक्षक को उनसे अलग सें मिलना चाहिए जिससे वह सुनिश्चित कर सके कि उन्हें कक्षा का कार्य समझ में आ रहा है। वह यह व्यवस्था कर सकता है कि ये बच्चे अपना गृहकार्य स्कूल से जाने के पहले पूरा कर लें, क्योंकि घर में न तो कोई उनकी मदद करनें वाला होगा और पढ़ने के लिए आवश्यक सुविधाओं का भी अभाव हो सकता है।

ऐसे छात्र जिन्हें उपचारी कार्य की आवश्यकता है

ऐसे छात्र होते हैं जो कक्षा के अन्य छांत्रों के साथ-साथ नहीं चल पाते क्योंकि विषय ज्ञान की कोई बात वे नहीं सीख पाए। किसी बच्चे ने पढ़ना ठीक से नहीं सीखा। दूसरे ने अंकगणित का कोई कार्य नहीं सीखा जिसके कारण आगे का कार्य उसके लिए कठिन हो गया है। शिक्षक को समस्याओं का पता लगाना होगा और उपचारी कार्य के लिए समय की व्यवस्था करनी होगी। बच्चों का एक दल पढ़ने का अभ्यास कर सकता है। एक दूसरे दल में शिक्षक उनकी गणित की समस्याओं को समझा सकता है। तीसरे दल में वह भाषा में छात्रों की कठिनाइयों को दूर कर सकता है और इसी प्रकार अन्य दल भी बना कर कार्य कर सकता है।

अल्पार्जक

ऐसे कई बच्चे होते हैं, जो जिस प्रकार का कार्य कर रहे हैं उससे अच्छा कर सकते हैं। इनमें तेज, औसत और धीमी गति से सीखने वाले बच्चे हो सकते हैं। जो कुछ भी उनकी क्षमताएं हैं वे उनका पूरा प्रयोग नहीं कर रहे। अकसर बच्चों में आत्म-विश्वास की कमी होती है। उन्हें अपने प्रयासों पर विशेष प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है। बच्चों के अल्पार्जक होने के अन्य कारण भी हो सकते हैं। कुछ को उपचारी कार्यक्रम की आवश्यकता होती है, कुछ चिन्ताग्रस्त हो सकते हैं जिसके कारण वे अपने ध्यान को एकाग्र नहीं कर पाते हैं। इसलिए प्रभावशाली ढंग से मदद करने के लिए पहले ऐसे प्रत्येक छात्र का अध्ययन करके उसे समझना होगा।

नया भर्ती होने वाला छात्र

प्रत्येक वर्ष कुछ नए छात्र स्कूल में भर्ती होते हैं। अधिकतर ये छोटे बच्चे होते हैं जो प्रारंभ की कक्षाओं में भर्ती होते हैं। स्कूल की प्रत्येक बात उनके लिए नई होती है। उनमें से अधिकांश के लिए अपनी मां से इतने समय के लिए अलग होने का पहला अनुभव होता है। शिक्षक को ऐसे बच्चों की मदद करनी चाहिए जिससे वे अपने आप को सुरक्षित अनुभव कर सकें। उसे यह समझना चाहिए स्कूल आना बच्चे के लिए एक प्रमुख समायोजन है। उसे बच्चों के भावात्मक विस्फोट के प्रति सहनशील और जो बच्चे घर जाने के लिए रोते हैं। उनके प्रति सहानुभूतिशील होना चाहिए।

छोटी कक्षाओं के अलावा अन्य कक्षाओं में भी नए बच्चे भर्ती हो सकते हैं। हो सकता है कि पिता के स्थानान्तरण के कारण उन्हें नए स्कूल में प्रवेश लेना पड़ रहा हो। इन बच्चों को स्कूल के नियम बताने चाहिए, यह भी देखना चाहिएं कि वे सभी विषयों में स्कूल के स्तर के अनुरूप हैं अन्यथा इनके लिए उपचारी कार्यक्रम का प्रबन्ध करना चाहिए। जो छात्र एक राज्य से दूसरे राज्य में आए हैं, उन्हें भाषा सीखने में सहायता की आवश्यकता हो सकती है। कुछ के लिए सांस्कृतिक अनुकूलन की समस्या हो सकती है। कुछ को मित्र बनाने में कठिनाई हो सकती है। क्योंकि बच्चों ने अपने गुट्ट पहले ही बना लिए है। शिक्षक इन बच्चों से सामूहिक या वैयक्तिक रूप से मिल सकता है और उनको आवश्यक सहायता दे सकता है।

एक समूह के रूप में कक्षा के साथ कार्य करना

अधिकतर शिक्षक एक समूह के रूप में कक्षा के साथ कार्य करता है। यद्यपि वह बच्चों पर वैयक्तिक रूप से ध्यान देता है, फिर भी, एक समग्र के रूप में कक्षा के रुख (trend) की ओर ध्यान देना चाहिए, और शिक्षण के साथ-साथ कक्षा की आवश्यकताओं के अनुसार बच्चों को निर्देशन देना चाहिए।

इसके लिए शिक्षक को देखना चाहिए कि क्या बच्चों का व्यवहार और कार्य ऐसा है जिसकी अपेक्षा उस आयु पर की जाती है। उसे पता चलता है कि वे कुछ बातों में अच्छे हैं किंतु अन्य में कमजोर हैं। उदाहरण के लिए उसे पता चलता है कि बच्चों की लिखावट में सुधार की आवश्यकता है, या किसी अन्य कक्षा में लिखावट तो ठीक हो सकती है, किंतु बच्चों को मानचित्र समझ में नहीं आते हों। इस प्रकार की कई संभावित कमजोरियाँ हैं जिनमें से सामान्यतया एक या दो किसी कक्षा में मिलेंगी। इनमें से कुछ कठिनाइयों का पता लगाने के लिए पूरी कक्षा को निदानात्मक परीक्षण दिया जा सकता है। इससे पता लगाया जा सकता है कि अधिकतर बच्चों की क्या कमजोरियां हैं और क्या उन्हें आता है।

हो सकता है कि शिक्षक कक्षा को व्यवहार में शिष्ट पाए या उन्हें उचित शिष्टचार और बात करने का ढंग सीखने में मदद चाहिए। वे स्कूल के फर्नीचर का सम्हाल कर उपयोग करते हों या तोड़ फोड़ करते हों। उन्हें यह भी सीखने की आवश्यकता हो सकती है कि किस प्रकार शालीनता से उठे बैठें। उसे देखना चाहिए कि कक्षा में कितने समूह हैं। समूह के नेता कौन हैं। और कौन ऐसे बच्चे हैं जो किसी भी समूह में शामिल नहीं किए गए हैं। उसे देखना चाहिए कि विभिन्न दलों के बीच प्रतिद्वन्दिता के कारण कोई समस्या तो उत्पन्न नहीं हो रही।

कक्षा पर ध्यान देने से शिक्षक को पता लगेगा कि किस प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम की सबसे अधिक आवश्यकता है। शैक्षिक कार्यक्रम में वह उपचार कार्य ऐसे प्रकरणों में ले सकता है जिनमें बच्चों के सीखने में कहीं-कहीं रिक्ति रह गई है। अपने स्वयं के व्यवहार के दृष्टांत के द्वारा और सौम्य निर्देशन द्वारा वह उन्हें अच्छे आचार-विचार सिखा सकता है। उसे देखना चाहिए कि दलगत प्रतिद्वन्दिता बहुत अधिक बढ़ नहीं जाती। उसे यह भी देखना चाहिए कि बच्चा किसी न किसी दल द्वारा स्वीकार किया जाता है।

सकारात्मक निर्देशन

निर्देशन केवल समस्याओं के उपचार के लिए ही नहीं होता, बच्चों के चहुंमुखी और निरन्तर स्वस्थ विकास से भी इसका संबंध है। शिक्षक को अधिक परिपक्वता प्राप्त करने में बच्चों की मदद करनी चाहिए। उसे विभिन्न समस्याओं पर उनसे विचार-विमर्श करके चिन्तन करने में उनकी मदद करनी चाहिए। विवेचना और उपाख्यान (anecdote) द्वारा वह उन्हें दूसरों के प्रति संवेदनशील बना सकता है। जिम्मेदार लेने तथा आत्म-विश्वास विकसित करने के अवसर शिक्षक द्वारा प्रदान किए जाने चाहिएं जिससे छात्र ये गुण सीख सकें।

बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के अनुभवों का आयोजन करना आवश्यक है जिससे वे अपनी कुशलताओं को पहचान सकें और विकसित कर सकें, और उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति के अवसर मिल सकें।

अन्त में शिक्षक को बच्चों में दूसरों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियों के विकसित करने में मदद करनी चाहिए। विशेषरूप से ऐसे बच्चे के प्रति जो शारीरिक रूप से अक्षम हैं, जो धीमी गति से सीखते हैं और वो भी जो कुछ अजीब प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। बच्चों को यह देखना चाहिए कि उन्हें उन बच्चों का मजाक नहीं उड़ाना चाहिए जिनमें किसी प्रकार की कोई कमजोरी या कमी है, बल्कि उनके साथ सहानुभूति और हमदर्दी का व्यवहार करना चाहिए। ये बातें शिक्षक तभी सिखा सकता है, जब वह अपने स्वयं के व्यवहार में एक अच्छा दृष्टान्त प्रस्तुत कर सके और बच्चों की अन्य लोगों के नजरिये को समझने में मदद कर सके।

अध्याय 35

स्कूल के अभिलेख

ईवलिन मार

हम लोगों ने देखा कि किस प्रकार स्कूल में अभिलेखों से श्रीमती कपूर उन बच्चों को समझ सकीं जो उनकी देखरेख में थे। अभिलेखों से उन्हें पता लगा कि मनोज बीमारी के कारण छुट्टी पर था, और यह कि यद्यपि ऋतु आजकल अपनी पढ़ाई में अच्छी नहीं चल रही है, किंतु पहले वह अच्छी छात्रा थी, जिससे पता चलता है कि उसमें कुशलता है। इसी प्रकार श्रीमती कपूर अन्य बच्चों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकीं।

सभी स्कूलों में ऐसे अभिलेख, जो बच्चों के बारे में जानकारी दें, रखने चाहिएं। उनसे सभी शिक्षकों को अपना कार्य भली प्रकार करने में मदद मिलेगी।

जानकारी व्यवस्थित रूप से रखनी चाहिए, जिससे शिक्षक उसका सरलता से उपयोग कर सके। यदि उपस्थिति की जानकारी एक रजिस्टर में हो, परीक्षाओं में प्राप्त अंक दूसरे में, स्वास्थ्य के बारे में जानकारी कहीं और हो, तो शिक्षक को जानकारी एकत्रित करने में काफी समय लगेगा। किंतु इन सब को एक जगह एकत्रित किया जा सकता है और कई वर्षों की जानकारी एक जगह प्राप्त हो सकती है। इस व्यवस्था से शिक्षक को सरलता से बच्चों के बारे में पूरी तस्वीर मिल सकती है। ऐसे अभिलेखों को संचयी अभिलेख (cumulative records) कहते हैं। नीचे दिए गए उदाहरण से स्पष्ट होता है कि इनसे शिक्षक को कैसे मदद मिल सकती है।

पांचवी कक्षा में दो लड़कियां हैं सुषमा और प्रीती, दोनों ही को पहली त्रैमासिक परीक्षा में लगभग 50 प्रतिशत अंक मिलते हैं। कक्षा में सुषमा को पंद्रहवां और प्रीती को सोलहवा स्थान मिलता है। शिक्षक पुराना अभिलेख देखता है। उसे सुषमा के संबंध में निम्न जानकारी मिलती है।

		अंक	कक्षा में स्थान
कक्षा 3	पहली परीक्षा	80 प्र.	दूसरा
कक्षा 3	दूसरी परीक्षा	89 प्र.	तीसरा
कक्षा 4	पहली परीक्षा	80 प्र.	प्रथम
	दूसरी परीक्षा	45 प्र.	बीसवां

शिक्षक अनुमान लगाता है कि चौथी कक्षा के बाद के अर्ध सत्र में कोई घटना हुई जिससे सुषमा के निष्पादन में गिरावट आई। उपस्थिति की जानकारी, जो कार्ड में दी गई है, उससे पता लगा है कि चौथी में सुषमा बहुत समय के लिए कक्षा से गैरहाजिर रही। स्वास्थ्य संबंधी अभिलेख से पता चला कि इस समय सुषमा बहुत बीमार थी। शिक्षक के समझ में आता है कि सुषमा बहुत दिनों तक स्कूल में नहीं आ पाई इसलिए उसे अपने कार्य में कठिनाई हो रही है। वह सुषमा के लिए कुछ उपचारी कार्यक्रम की व्यवस्था करता है जिससे सुषमा आगे बढ़ पाती है और कक्षा में अपना पुराना स्थान प्राप्त कर लेती है।

शिक्षक अब प्रीती के अभलेख को देखता है। उसे निम्न जानकारी प्राप्त होती है।

		अंक	कक्षा में स्थान
कक्षा 3	पहली परीक्षा	54 प्र.	सत्तरहवां
	दूसरी परीक्षा	52 प्र.	सोलहवां
कक्षा 4	पहली परीक्षा	52 प्र.	सत्तरहवां
	दूसरी परीक्षा	51 प्र.	सोलहवां

उपस्थिति अभिलख से पता चलता है कि प्रीती नियमित छात्रा रही है और स्वास्थ्य अभिलेख से पता चलता है कि उसे कोई लम्बी बीमारी नहीं हुई। इससे पता लगता है कि प्रीती एक सामान्य छात्रा है, वह स्वस्थ्य और नियमित है।

यद्यपि पांचवी कक्षा में सुषमा और प्रीती का निष्पादन समान है, उनके मामले बिल्कुल भिन्न हैं। शिक्षक को इसका पता कुछ ही मिनटों में लग गया क्योंकि सारी जानकारी संचयी अभिलेख में एक जगह एकत्रित की हुई थी।

जानकारी जो संचयी अभिलेख में होनी चाहिए

स्कूल के अभिलेखों में किस प्रकार की जानकारी होनी चाहिए? इसमें वही जानकारी होनी चाहिए जो शिक्षकों के लिए उपयोगी हो। हम देखें कि इसमें किस प्रकार की जानकारी को सम्मिलित किया जाना चाहिए? ऐसी जानकारी जो उपयोग

में न आ सके, उस पर समय व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। हम उन मदों पर विचार करें जिन्हें सम्मिलित करना चाहिए।

(1) **पहचान सामग्री :** पहचान सामग्री में बच्चे का नाम, पिता का नाम, और घर का पता होना चाहिए। किस बच्चे का अभिलेख है यह पता करने के लिए यह आवश्यक है। यदि माता-पिता से मिलना हो तो पते की आवश्यकता होगी।

(2) **पारिवारिक पृष्ठभूमि :** पारिवारिक पृष्ठभूमि में इस प्रकार की जानकारी सम्मिलित की जाएगी जैसे माता-पिता की शिक्षा, उनका व्यवसाय, भाईयों, बहनों और अन्य लोग जो परिवार के साथ रहते हैं उनके बारे में जानकारी। इस जानकारी से परिवार की एक तस्वीर प्रस्तुत होगी। शिक्षक को पता लगेगा कि क्या परिवार में कोई अन्य शिक्षित व्यक्ति है, या बच्चा पढ़ने वालों की प्रथम पीढ़ी में से है। उसके पारिवारिक साधनों के बारे में भी पता लगेगा।

यदि बच्चे के माता-पिता में से किसी की मृत्यु हो गई है तो यह जानकारी कार्ड में लिखी जानी चाहिए। किंतु यदि कोई ऐसी जानकारी है जो बच्चे को लज्जित करेगी, जैसे भग्न परिवार तो ऐसी जानकारी को अलग कार्ड पर दर्ज करना चाहिए जो गोपनीय हो।

(3) **शैक्षिक अभिलेख :** विभिन्न विषयों में बच्चे की निष्पत्ति का अभिलेख रखना चाहिए। इसमें जानकारी केवल वर्तमान कक्षा की ही नहीं होनी चाहिए किंतु पहले की कक्षाओं की भी।

(4) **उपस्थिति अभिलेख :** इससे पता लगेगा कि बच्चा नियमित रूप से उपस्थित रहा अथवा नहीं। यदि वह बार-बार या लम्बे समय के लिए अनुपस्थित रहा तो यह भी पता लगेगा।

(5) **स्वास्थ्य अभिलेख :** स्वास्थ्य अभिलेख में, यदि बच्चे को कोई बीमारी हुई थी, विशेषरूप से लम्बी या गंभीर बीमारी, या मामूली बीमारियां जो बार बार होती रही हों, इनकी जानकारी मिलेगी। इसमें स्कूल में डाक्टरी जांच के मुख्य बिन्दु होने चाहिएं। स्वास्थ्य संबंधी कोई समस्या जैसे सुनना या दृष्टि की हो तो उसका उल्लेख होना चाहिए।

(6) **सहगामी क्रियाकलाप और विशेष रुचिया :** बच्चे का विभिन्न सहगामी क्रियाकलापों में भाग लेना, उसके शौक, विशेष रुचियों और क्षमताओं को आलेखित करना चाहिए। इससे शिक्षक को बच्चे की क्षमताओं के विकास में मदद करने के लिए भी आधार मिलेगा। यदि ऐसे कुछ बच्चे हों जो किसी सहगामी क्रियाकलाप में भाग नहीं ले रहे और उनके कोई शौक (Hobby) भी नहीं हैं, तो शिक्षक उनको अपनी रुचियों और क्षमताओं को समझ पाने में मदद कर सकता है।

ऊपर दी गई न्यूनतम जानकारी है जो संचयी अभिलेख में होनी चाहिए। यदि इसके अतिरिक्त भी कोई जानकारी उपलब्ध हो तो उससे भी सहायता मिलेगी। यदि कोई एप्टीटयूड (aptitude) परीक्षण बच्चों को दिए गए हों तो उनके परिणाम पत्रक पर लिख देने चाहिएं। यदि कोई महत्वपूर्ण व्यवहार को देखा गया है तो उसका भी उल्लेख करना चाहिए। यदि शिक्षक ने किसी कठिनाई में बच्चे की मदद की है तो जो कार्य किया गया उसे भी सम्मिलित कर लेना चाहिए।

संचयी अभिलेख कार्ड शिक्षकों के परामर्श से नियोजित किए जाने चाहिएं। कार्ड की योजना उनके ऊपर जबरदस्ती थोपनी नहीं चाहिए। जिन्हें जानकारी भरनी है और जिन्हें उसका उपयोग करना है उन्हें यह अवसर मिलना चाहिए कि वे अपनी राय दें कि इसमें क्या सम्मिलित किया जाए और इसकी व्यवस्था किस प्रकार से की जाए। कार्ड में जानकारी कैसे भरनी है और इसका उपयोग किस प्रकार करना है, इससे सभी शिक्षकों को अवगत कराना चाहिए।

अध्याय 36

माता-पिता के साथ कार्य संचालन

फ्रेनी जैड़ तारापौर

बच्चों को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं किंतु एक मूलभूत कारक, जिसके बारे में सभी विशेषज्ञ सहमत हैं, माता-पिता हैं। चाहे, शारीरिक विकास हो, चाहे व्यक्तित्व का, सामाजिक आचरण का, आदतों का, अभिवृत्तियों और मूल्यों का विकास हो, एक मानव को जीवन के प्रारंभ में, अच्छे या बुरे, जो भी आधार मिलते हैं वे उस पर्यावरण से प्राप्त होते हैं जो माता-पिता प्रदान करते हैं। माता-पिता संस्कृति को संप्रेषित करते हैं। ये प्रशिक्षकों और प्रतिमानों (models) दोनों ही का कार्य करते हैं। एक बच्चा विचार करना, भाषा का प्रयोग करना, अपने और दूसरों के बारे में धारणा बनाना, दुनियां और उसमें अपने स्थान की ओर दृष्टिकोण बनाना ये सब माता-पिता के साथ अनुक्रिया के आधार पर सीखता है।

क्या माता-पिता जानतें हैं कि उनका कितना गहरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है? क्या उनमें बच्चों को पालने का पर्याप्त ज्ञान और कुशलताएं हैं? विभिन्न कार्यों के संपादन के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम हैं जिनसे हमें अपनी कुशलताओं को उन्नत करने में मदद और निर्देशन मिलता है, किंतु पितृत्व या मातृत्व के लिए, जिससे इतनी अधिक अपेक्षा की जाती है, व्यक्ति के सामने केवल सीमित अनुभव हैं कि कैसे उसके माता-पिता ने उनका पालन किया था या व्यवहार किया था। इन सीमित आधारों पर माता-पिता अपने बच्चों का लालन-पालन करते हैं। इसके साथ ही साथ माता-पिता का ध्यान अन्य समस्याओं की ओर भी रहता है जैसे अपर्याप्त घर, पारिवारिक संघर्ष, नौकरी के दायित्व, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं और बढ़ती हुई मंहगाई जिसके कारण गुजारा करना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है। इन कठिन परिस्थितियों का सामना करने में माता-पिता लगे रहते हैं। आश्चर्य नहीं कि बच्चों के लालन-पालन में बहुत सी कमियां रह जाती हैं।

जहां तक बच्चों के पालन का प्रश्न है, यह मान लिया गया है कि माता-पिता

को यह स्वाभाविक रूप से आता है। किंतु अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि अनेक माता-पिता की इस बड़े दायित्व के लिए अपर्याप्त तैयारी है। उन्हें बच्चों के शारीरिक विकास का या उनकी मानसिंक आवश्यकताओं की बहुत कम जानकारी होती है। औद्योगीकरण के अलावा तकनीकी, राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन तथा गावों से घनी आबादी वाले शहरों की ओर प्रवसन, इन सभी ने व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित किया है। इन कारकों के कारण समाज में तेजी के साथ परिवर्तन हो रहे हैं और व्यक्तियों की समझ में नहीं आता है कि उनके प्रति अनुक्रिया किस प्रकार करें। यही हाल माता-पिता का अपने बच्चों के प्रति व्यवहार करने का है। बच्चों पर अपने हमजोलियों, संचार साधनों और पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। माता-पिता उसी प्रकार के अनुशासन और पालन की विधियों को अपनाकर, जिसमें वे बड़े हुए थे, एक दिन अपने को ऐसी स्थिति में पाते हैं जिसकी उन्हें अपेक्षा नहीं थी। पहले की अनेक बातें वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं। उदाहरण के लिए जो माता-पिता एक सत्तावादी पारिवारिक परंपरा में पले थे वे अपेक्षा करते हैं कि बच्चे अपने मां-बाप का आदर करेंगे और उनके प्रति आज्ञाकारी होंगे। वर्तमान में आदर और आज्ञाकारिता की धारणाएं बदल गई हैं। हम एक प्रजातान्त्रिक देश में जी रहे हैं। एक बच्चा अन्य बच्चों को अपने माता-पिता से खुल कर विभिन्न विषयों पर विचार विनिमय करते हुए सुनता है। शिक्षक भी कक्षा में बच्चों को विचार करने, प्रश्न करने और विवेचना करने के लिए प्रोत्साहित करता है। ऐसा बच्चा यदि माता-पिता के किसी आदेश का, जिसे वह गलत समझता है, पालन नहीं करता, माता-पिता से पूंछता है कि ऐसा वह क्यों करे, तो एक सत्तावादी पिता इसे अनादर और अवज्ञा का कार्य समझेगा। इस प्रकार का संघर्ष सामाजिक परिवर्तन से उत्पन्न हुआ है।

विभिन्न पालकों का बच्चों के प्रति अभिवृत्तियों और मनोभावों में अन्तर होता है। कुछ माता-पिता बच्चों को स्वीकार करते हैं और कुछ तिरस्कार करते हैं। अनेक बार दोनों का मिश्रण मिलता है।

1. स्वीकरण : स्वीकार करने वाले माता-पिता अपने बच्चों से स्नेह करते हैं और उनमें काफी रुचि लेते हैं। उनकी बच्चों से अपेक्षाएं बच्चे के विकास के स्तर के अनुरूप होती हैं। बच्चा जिसे स्वीकार किया जाता है, अधिकतर सहयोगशील, स्नेही, भावात्मक दृष्टि से स्थिर, आत्मविश्वासी, और प्रसन्नचित होता है।

2. अस्वीकरण : अस्वीकरण बच्चे की सुरक्षा के प्रति उदासीन रहने के प्रति उससे अत्यधिक अपेक्षाएं करने या स्पष्ट वैमनस्य करने में व्यक्त होता है। इसके कारण बच्चे में निस्सहायता, कुण्ठा, विकलता, व्यवहार वैचित्र्य या वैमनस्य उत्पन्न होते हैं, विशेषकर कमजोर और छोटे बच्चों में। फिर भी, ये सभी बच्चे बड़े होकर

कुसमंजित नहीं होते। कुछ, जीवन पर अन्य अच्छे प्रभावों के कारण स्थिर व्यक्तित्व प्राप्त करते हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि माता-पिता की अभिवृत्तियों का बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। जो बच्चे ऐसे घरों से आते हैं जहां माता-पिता की अभिवृत्तियां अनुकूल होती हैं वे अधिकतर प्रसन्न रहते हैं, स्नेही होते हैं, और अपेक्षाकृत चिंताओं से मुक्त रहते हैं, और समूह में स्वतंत्र सदस्यों के रूप में आचरण करते हैं।

बच्चे के स्कूल के कार्य में माता-पिता की अभिवृत्ति और रुचि में भी बहुत अन्तर मिलता है। ऐसे माता-पिता होते हैं जो, बच्चे के स्कूल के निष्पादन के बारे में, अत्यधिक चिन्तित रहते हैं,और बच्चे से अत्यधिक अपेक्षा करते हैं। बहुत से बच्चे इन दबावों का सामना नहीं कर पाते। ऐसे भी माता-पिता होते हैं जो बच्चे को सारी शारीरिक और अन्य सुविधाएं तो प्रदान करते हैं, किंतु बच्चे की स्कूल की प्रगति में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती और वे उस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। उनमें से कुछ का कहना है कि वे इतने व्यस्त रहते हैं कि उनके लिए बच्चे की शिक्षा के लिए समय निकालना संभव नहीं होता।

इसके विपरीत कुछ माता-पिता ऐसे होते हैं कि जो बच्चे की मदद तो करना चाहते हैं किंतु उनके समय की ओर आधुनिक शिक्षण विधियों में इतना परिवर्तन आ गया है, जैसे गणित में, कि बच्चे की शिक्षा में मदद नहीं कर पाते और न ही प्रोत्साहन दे पाते हैं।

आज के माता-पिता के सामने अन्य दुविधाएं भी हैं। उनके मन में यह संशय बना रहता है कि वे बच्चे का सही ढंग से पालन कर रहे हैं अथवा नहीं। यदि उनके बच्चे का आचरण उनके सहयोगियों के बच्चों के आचरण से भिन्न मिलता है तो वे अकसर सोचते हैं कि वे कहीं पर असफल रहे। वे इस बात से भी चिन्तित रहते हैं कि कहीं उनका बच्चा अपसामान्य तो नहीं है। विकास संबंधी समस्याओं से भी कुछ लोग चिन्तित रहते हैं।

बच्चों के पालन में और उनके साथ अन्तर्क्रिया में पालकों के बीच काफी व्यापक व्यक्तिगत अन्तर मिलते हैं। कुछ माता-पिता बच्चों के पालन में जो समस्याएं उठती हैं उनके प्रति जागरूक रहते हैं, और कुछ बच्चों के साथ अपने व्यवहार की कमजोरियों के बारे में अपनी अज्ञानता में ही खुश रहते हैं, और बाकी में यह विश्वास होता है कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह बिल्कुल सही है। उनकी कमियों को कौन बताए? यदि वे बात को जानें और मदद चाहें तब उनकी मदद किसको करनी चाहिए?

घर के बाद स्कूल एक दूसरी सामाजिक संस्था है जो बच्चों के जीवन पर दूरगामी प्रभाव डालती है। बच्चे का सबसे अच्छा विकास उस पर्यावरण में होगा जहां स्कूल और घर के बीच विचारों और व्यवहार में समन्वय हो। यदि अपेक्षाओं, मूल्यों, और व्यवहार में मूलभूत अन्तर है, तो बच्चे को लगेगा कि वह परस्पर विरोधी दिशाओं में खींचा जा रहा है।

शिक्षक स्कूल का मुख्य आधार है। जहां तक बच्चे के विकास, कल्याण और अधिगम का संबंध है माता-पिता और शिक्षकों के समान उद्देश्य हैं। शिक्षकों को माता-पिता की तुलना में यह लाभ है कि एक माता या पिता के रूप में अपने अनुभवों के अतिरिक्त, वे मानव व्यवहार की गतिशीलता से भी परिचित हैं, और अनेक बच्चों के साथ व्यवहार का उन्हें अनुभव है। इसके अलावा से यह भी जानते हैं कि समुदाय में क्या साधन उपलब्ध हैं, जिनसे माता-पिता और बच्चों के साथ व्यवहार का उन्हें अनुभव है। इसके अलावा वे यह भी जानते हैं कि समुदाय में क्या साधन उपलब्ध है जिनके उपयोग से माता-पिता और बच्चों की मदद की जा सकती है।

घर और स्कूल का बच्चे के विकास और स्कूल की सफलता में सम्मिलित दायित्व है, और इसमें शिक्षक की धुराग्रीय भूमिका है। शिक्षक बच्चे के केवल स्कूली कार्यक्रम से ही संबद्ध नहीं है। घर या स्कूल दोनों ही में जो कुछ होता है उसका बच्चे के समग्र व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि माता-पिता बच्चे की स्कूली प्रगति के लिए अत्यधिक चिन्तातुर हैं तो इससे बच्चे में तनाव उत्पन्न होगा। हो सकता है कि उसका शैक्षिक निष्पादन अच्छा हो किंतु संवेगात्मक दृष्टि से वह व्यग्रता के चिन्ह प्रदर्शित करता हो, या उसके मन में यह आत्म-संकल्पना विकसित हो जाए कि वह उतना होशियार नहीं है जितनी उसके माता-पिता उससे अपेक्षा करते हैं। यदि स्कूल में उसकी तुलना नाकारात्मक ढंग से उसके सहपाठियों से निरन्तर की जाती है, तो उसके मन में हीनता की भावना घर कर लेती है और समूह से पलायन की ओर प्रवृत्ति बन सकती है।

बच्चों के उस पर्यावरण से अधिक लाभ होता है, जहां माता-पिता और शिक्षक एक दूसरे पर भरोसा करते हैं और उनमें पारस्परिक विश्वास होता है। सम्मिलित प्रयास, सहयोग और आपसी भागीदारी के ही द्वारा बच्चे के सर्वोत्तम गुण बाहर लाए जा सकते हैं। अशोक का मामला पालक-शिक्षक सहयोग का अच्छा दृष्टान्त है। जब वह स्कूल में भर्ती हुआ तब स्कूल के कार्य में उसकी बहुत कम रुचि थी। वह चुप और अपने आप में सीमित रहने वाला बालक था। अन्य बच्चों के साथ खेलने में उसकी रुचि नहीं थी और उसके चेहरे पर उदासी छाई रहती थी। शिक्षिका ने उसकी

मां से बात करने का निश्चय किया। मां से पता लगा कि प्रारंभ में घर पर सब कुछ ठीक था और अशोक खुश रहता था। शिक्षक ने अशोक के बारे में अपनी चिंता उसकी मां को बताई। शिक्षिका ने कहा, ऐसा लगता है कि अशोक किसी बात से परेशान है और उसे मदद की जरूरत है। आखिरकार मां ने स्वीकार किया कि घर में समस्याएं थीं। वे एक संयुक्त परिवार में रह रहे थे जिसके कारण कुछ समस्याएं थीं और आपसी कलह होता रहता था, किंतु हाल में वे साल ससुर से अलग हो गए और एक बहुत छोटे से घर में रह रहे हैं। बोलते बोलते उसकी आंखों में आंसु आ गए। शिक्षिका ने सहानुभूतिपूर्वक उसकी बात को सुना और कहा कि वह उसकी समस्या समझ रही है, और यह भी जान रही है कि इससे सबको कितनी परेशानी हुई होगी। शिक्षिका ने मां को यह समझने में मदद की कि पारिवारिक कलह और तनाव ही अशोक की समस्याओं के लिए उत्तरदायी थे। उसने सुझाव दिया कि उनको अशोक के साथ अधिक समय बिताना चाहिए, उसके कार्य में रुचि लेनी चाहिए और पड़ोस के बच्चों को घर आने और अशोक के साथ खेलने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। बाद में मां कई बार शिक्षिका से मिली और अब वह अधिक सहजता से और निस्संकोच अपनी बात कहती थी। धीरे धीरे अशोक के व्यवहार में परिवर्तन दिखाई दिया। वह अब अधिक खुश और चुस्त दिखाई देता था और अपने पर्यावरण में उसने रुचि लेना प्रारंभ कर दिया था। शिक्षिका ने तो उसे प्रोत्साहित किया और माता-पिता ने भी उसके प्रयासों की प्रशंसा की। वर्ष के अन्त तक अशोक की कक्षा के निष्पादन में काफी प्रगति दिखाई दी।

इस मामले में यह देखा जा सकता है कि अशोक को शिक्षिका से कोई सीधी सहायता नहीं मिली। अशोक के माता-पिता ने उसके दादा दादी के घर से अलग रहने का निश्चय किया था। किंतु इसके कारण काफी तनाव रहा और इस संबंध में उनकी मिश्रित भावनाएं थी। मां को अपनी भावनाएं ऐसी महिला के सामने व्यक्त करने का अवसर मिला जो उसे स्वीकार करती थी। इससे उसके तनाव में कमी आई।

शिक्षक के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह बच्चे के समग्र व्यवहार का प्रेक्षण करे। यद्यपि अनेक व्यक्तिगत अन्तर होते हैं, अनुभव के साथ शिक्षक ऐसे व्यवहार को पहचान सकता है जो सामान्य से बहुत अधिक भिन्न हों, जिन्हें माता-पिता के सामने लाना चाहिए और जिसमें बच्चे की मदद करने के लिए विधियां ढूंढनी होंगी। माता-पिता शिक्षक की चिंता में साथ देंगे यदि वह उनका विश्वास प्राप्त कर लेता है। शिक्षक का व्यवहार स्नेही और मैत्रीपूर्ण होना चाहिए। माता-पिता के प्रति उसे बराबरी का व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक को माता-पिता की बात सुननी

चाहिए और बच्चे के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। एक सहानुभूतिशील शिक्षक ही माता-पिता से सम्पर्क स्थापित कर सकेगा और उनमें परिवर्तन लाने की आशा कर सकेगा। यदि वह माता-पिता की आलोचना करेगा या उन पर दोषारोपण करेगा, तो शायद ही वह उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन ला पाएगा। व्यवहार या अभिवृत्ति में परिवर्तन सरल बात नहीं है। व्यक्ति जब अपने आप में आश्वस्त नहीं होते वे परिवर्तन का प्रतिरोध करते हैं और नई विधियों को, जिनके बारे में वे अनिश्चित हैं, नहीं अपनाते। उन्हें एक सुदृढ़ सहारे वाला संबंध ऐसे व्यक्ति के साथ चाहिए जो उन्हें परिवर्तन का मार्ग प्रदर्शित कर सके। इस कार्य के लिए शिक्षक सबसे उपयुक्त व्यक्ति है।

शिक्षक को पहल करनी होगी और माता-पिता के साथ मिल कर कार्य करना होगा जिससे वे अपने बच्चों की समस्याओं को समझ सकें। पालक और शिक्षक का संबंध एक शैक्षिक संबंध है। शिक्षक को पालक के व्यक्तित्व का आदर करना चाहिए, और उनसे संग्रहीत जानकारी को गोपनीय रखना चाहिए। कभी-कभी, संबद्ध शिक्षक को अन्य शिक्षकों के साथ समस्या को लेकर विचार-विनिमय करना चाहिए किंतु यह बच्चे की निन्दा का विषय नहीं बनना चाहिए।

शिक्षक को कोशिश करनी चाहिए कि माता-पिता बच्चे की कमियों और सीमाओं की स्वीकार कर सकें। इसके विपरीत कभी कभी माता-पिता अपने बच्चों की असाधारण क्षमताओं को नहीं पहचान पाते। इसके बारे में भी उन्हें बताना चाहिए और यह निर्देशन भी देना चाहिए कि इनके पूर्ण विकास के लिए किस प्रकार अवसर प्रदान करने चाहिएं।

माता-पिता को बताना चाहिए कि बच्चे घर पर बिना अत्यधिक दबाव डाले, उसको घर में किस विशेष सहायता की आवश्यकता है। छोटे बच्चों को गृह-कार्य पूरा करने में सहायता और निर्देशन चाहिए। माता-पिता को बच्चे के कार्य में रुचि लेनी चाहिए। उन्हें इस बात से अवगत कराना चाहिए कि एक संतुलित दिनचर्या, जिसमें नियमित निद्रा और भोजन की आदतें हों और पढ़ाई तथा मनोरंजन के बीच संतुलन हो, स्थापित करनी चाहिए।

पालक को उस समय बुलाना चाहिए जब वे शिक्षक से मिल सकें। मैत्रीपूर्ण स्वागत से मदद मिलेगी। कोई शान्त स्थान होना चाहिए जहां निर्बाध बातचीत की जा सके। पालक के साथ वैयक्तिक रूप से कार्य करने के अलावा, शिक्षक बड़े समूहों में भी कार्य कर सकते हैं। एक बैठक बुलाई जा सकती है जिसमें किसी सामान्य समस्या पर बातचीत की जा सकती है या किसी विशेषज्ञ को ऐसे विषय पर, जिसमें पालकों की रुचि हो, बोलने बुलाया जा सकता है। गोष्ठियां, 'पैनल' वादविवाद,

शैक्षिक चलचित्र या प्रदर्शनी भी आयोजित की जा सकती हैं।

कुछ स्कूलों में शिक्षक और अभिभावकों के बीच अच्छे संबंध और समन्वय के लिए शिक्षक अभिभावक संघ आयोजित किए हैं। ऐसे संघ के लाभ हैं :

1. स्कूल और अभिभावकों के बीच अधिक अच्छी जानकारी और मेल-मिलाप स्थापित होता है।
2. माता-पिता और शिक्षक सहयोग से कार्य करते हैं जिससे स्कूल की समस्याओं को सुलझाने में मदद मिलती है। पाठ्य सामग्री तैयार करने में अभिभावकों की मदद ली जा सकती है।
3. माता-पिता की रुचि बच्चों की शिक्षा में विकसित होती है।
4. माता-पिता बच्चों के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।
5. माता-पिता को शिक्षानीति में परिवर्तन, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधि के बारे में नवीन जानकारी मिलती रहती है।
6. अनुशासन में सुधार आता है।
7. अभिभावक अन्य अभिभावकों के संपर्क में आते हैं और उनमें मित्रता बढ़ती है।
8. अभिभावकों को अपने कौशल, क्षमताओं और समय के सदुपयोग के अवसर मिलते हैं और वे सकूल के जीवन में अधिक दिलचस्पी लेने लगते हैं।

भाग–6

शिक्षक प्रभावशीलता

पिछले अध्यायों में चर्चा का मुख्य विषय बच्चे थे–उनका विकास और अधिगम, उनकी आवश्यकताएं और समस्याएं और शिक्षक किस प्रकार उनका निर्देशन और मदद कर सकते हैं। शिक्षक का कार्य, जैसा देखा गया, बहुत चुनौतीपूर्ण है, और उनका जो प्रभाव बच्चों पर पड़ता है, उससे उनका उत्तरदायित्व काफी बढ़ जाता है। वे इस कार्य को प्रभावशाली ढंग से कर सकते हैं, यदि उनका स्वयं का व्यक्तित्व प्रसन्न और स्वस्थ है और अपने कार्य के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट है। अगले तीन अध्यायों में हमारे विषय का केन्द्रबिन्दु शिक्षक होगा। यहां कारक जो शिक्षक को प्रभावशाली बनाते हैं और शिक्षक अपने कार्य को किस दृष्टि से देखते हैं, इनकी विवेचना की जाएगी।

अध्याय 37

मुख्य कारक जो शिक्षक को सफल और प्रभावशाली बनाते हैं

प्रमोद भाई यू. जोशी

एक शिक्षक का दृष्टान्त हम लें जिनकी वैयक्तिक उपलब्धियों में एक प्रभावशाली शिक्षक की विशेषताएं स्पष्ट होती हैं, और जिसे तीन अभिकरणों ने सफल और प्रभावशाली शिक्षक के रूप में स्वीकार किया। ये अभिकरण हैं: (I) छात्र, (II) छात्रों के अभिभावक और जनसाधारण और (III) प्रशासन विभाग।

यह दृष्टान्त उस शिक्षक का है, जिसने पहले कई वर्षों तक कालेज में काम किया था। हम इनका नाम श्री त्रिवेदी रख लेते हैं। वे अपने छात्रों में बहुत लोकप्रिय थे। उच्च वर्ग के लोग जैसे जमींदार, ग्राम पंचायत के पदाधिकारी, पुरोहित, दुकानदार, इत्यादि, और निम्न वर्ग के लोग भी जैसे गांव के कारीगर, लौहार, बढ़ई, खेतिहर मजदूर, गड़रिए और मिस्त्री सभी उन्हें पसन्द करते थे।

गांव के लोगों का उनके प्रति इतना स्नेह था कि अवकाशग्रहण करने के बाद ग्रामवासियों ने उन्हें गांव न छोडने के लिए राजी कर लिया। उन लोगों ने श्री त्रिवेदी के लिए एक मकान की व्यवस्था की। उनकी पत्नी की मृत्यु पर शोक में सभी सम्मिलित हुए थे। उनकी लड़की के विवाह की समस्या गाँव के नेताओं ने अपनी ही समस्या मान कर लड़की का विवाह करवाया। इसमें सारा गांव सम्मिलित हुआ।

स्कूल में उनके सभी शिक्षक उनसे स्नेह करते थे और उन्हें सत्ताधारी प्रधानाध्यापक के स्थान पर अपना बड़ा भाई मानते थें वे उन पर पूरा विश्वास और भरोसा कर सकते थे। उनके सुझावों को वे सहर्ष स्वीकार करते थे और इस प्रकार उन्हें पूरे मन से सहयोग प्राप्त होता था। स्वाभाविक है श्री त्रिवेदी सदैव दुःख-सुख में अपने शिक्षकों का साथ देते थे। बीमारी, मृत्यु, दैनिक जीवन की उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त करना, इत्यादि में उनका सहयोग बराबर मिलता था।

स्कूल का सामुदायिक जीवन इतना व्यवस्थित था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना दायित्व पता था। स्कूल में स्वच्छता का स्तर बहुत ऊंचा था। बच्चों को कातना और

बुनना भली भांति सिखाया जाता था। अपव्यय बहुत कम होता और उत्पादन अच्छा था।

इस स्कूल में शिक्षा का स्तर ऊंचा था। प्रतियोगी परीक्षा में स्कूल के छात्र सम्मिलित होते थे और अनेक को छात्रवृत्तियां प्राप्त हुईं। सातवीं कक्षा कें अन्त में शासकीय परीक्षा में बहुत अच्छा परीक्षा फल प्राप्त हुआ। स्कूल को उस क्षेत्र के सभी स्कूलों में बहुत अच्छा स्थान मिला।

हम देखते हैं कि श्री त्रिवेदी की सफलता केवल उनके व्यक्तिगत कार्य से ही नहीं प्राप्त हुई, किन्तु इसके पीछे पहल करना, दूरदर्शिता और नेतृत्व के गुण थे, जिनके द्वारा वे सभी स्तर पर अपने सहयोगियों को प्रेरित कर सके। उनमें .गांव वालों को, जिनमें पंचायत के अधिकारी सम्मिलित थे, साथ ले चलने की कुशलता भी थी। उनके अच्छे कार्य के लिए श्री त्रिवेदी को उत्तम शिक्षक का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला।

एक प्रभावशाली शिक्षक के इस सफलता के वर्णन से हम पता करने का प्रयास करें कि कौन से कारक हैं जो व्यक्ति को सफल शिक्षक बनाते हैं।

1. **निष्ठा, सच्चाई और अपने कार्य से लगाव :** श्री त्रिवेदी की सफलता के पीछे कार्य के प्रति लगाव, उसे पूरा करने में सच्चाई, और स्कूल के प्रति पूर्ण निष्ठा थी।

2. **अपने कार्य में प्रतिष्ठा और गौरव की अनुभूति :** अपने कार्य की प्रतिष्ठा और गरिमा को समझते हुए उन्होंने उसे, जहां तक संभव हुआ, उत्तम बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी।

3. **सब के साथ एकात्मीकरण कर सकना :** गांव में सभी वर्गों के लोगों के साथ एकात्मीकरण कर सकना सफल शिक्षक का एक महत्वपूर्ण गुण है। सभी उनसे स्नेह करते थे और अपना मानते थे। गांव वालों के सामाजिक और आर्थिक स्तर के अन्तर कभी उनके काम में आड़े नहीं आए। उनका सभी सम्मान करते थे।

4. **सभी के प्रति स्नेह और प्रेम :** अपने सहयोगियों, छात्रों और ग्रामवासियों के लिए उनके मन में स्नेह था। बिना किसी भेदभाव के वे अपने छात्रों और सहयोगियों को पूरे मन से चाहते थे, और उनका विश्वास उन्होंने प्राप्त कर लिया था। इसके परिणामस्वरूप शिक्षकों, छात्रों और गांव के लोगों के मन में उनके प्रति एक सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित हुई, जिसके कारण उनके सुझावों को सहर्ष स्वीकार किया जाता था, और उनके काम में कहीं से कोई बाधा नहीं आती थी।

5. **पूर्वाग्रह से मुक्ति :** श्री त्रिवेदी की सफलता का मूल राज इस बात में था कि वे अपने आप को आर्थिक, सामाजिक और जातीय भेदभावों और पूर्वाग्रहों से,

जो गांव में अकसर दिखाई देते हैं, दूर रखते थे। इसी कारण से उन्हें सभी वर्गों का सहयोग मिल सका और प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण में गांव के बच्चों को स्कूल में भर्ती कराने में उन्हें सफलता मिली।

6. विषयों और अध्यापन विधियों पर प्रवीणता : उनके छात्रों के अच्छे परीक्षाफल से पता चलता था कि त्रिवेदी का शास्त्रीयज्ञान और अध्ययन विधियां उत्तम थीं। वे प्रभावशाली शिक्षक थे क्योंकि कई विषयों का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था और स्कूल के सभी विषयों के बारे में सामान्य जानकारी थी। सामान्य अध्यापन विधियों पर उन्होंने काफी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। वे अपनी बात को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कर सकते थे। उनकी लिखावट भी बच्चों के लिए अनुकरणीय थी।

7. शिक्षा की व्यापक संकल्पना की समझ : स्कूल का संगठन, स्वच्छता, शिल्प कलाओं का विकास, और सबसे मुख्य श्री त्रिवेदी की प्रत्येक व्यक्ति में दिलचस्पी, यह दर्शाता है कि उन्होंने शिक्षा को केवल विषयज्ञान का अध्यापन ही नहीं माना, किंतु छात्रों के सर्वांगीण विकास को महत्व दिया।

8. स्वयं का दृष्टांत : श्री त्रिवेदी मृदुभाषी और विनयशील थे। अपने काम में वे इमानदार और स्पष्ट वक्ता थे। उन्हें किसी मादक पदार्थ की लत नहीं थी। जीवन में वे वही करते थे जिसकी शिक्षा वे छात्रों को देते थे, और एक प्रकार से उनके लिए आदर्श थे।

9. विनोदप्रियता : श्री त्रिवेदी विनोदप्रिय थे जिससे उनका अध्यापन कभी नीरस नहीं होता था। विनोदप्रियता के साथ साथ उनके स्नेह और सादगी ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया था।

10. दृढ़ता और सयम का पालन : स्कूल में ऐसी बातों का होना स्वाभाविक है जिनसे झुंझलाहट होती है, जैसे छात्रों का झूठ बोलना या छोटी मोटी चोरी करना, नकल करने की कोशिश करना, या छात्रों में आपसी झगड़े, इत्यादि। ऐसे समय में शिक्षक को संयम से काम लेना चाहिए और बिना उत्तेजित हुए या क्रोधित हुए ठंडे दिमाग से समस्या से निपटना चाहिए। इसी प्रकार जहां जरूरत हो शिक्षक को दृढ़ होना चाहिए, और वस्तुनिष्ठ निर्णयों में भावुकता के कारण बाधा नहीं पड़नी चाहिए। यह देखा गया है कि त्रिवेदी इस बात को समझते थे। उन्हें शायद ही कभी किसी ने गुस्सा होते हुए देखा।

ऊपर दिए गए वर्णन के संदर्भ में हम श्री त्रिवेदी के गुणों पर दृष्टि डालें। हमने देखा कि उनका अपने संवेगों पर नियंत्रण था, जैसा एक परिपक्व व्यक्ति में होना चाहिए। इसके अलावा उनमें नकारात्मक संवेग जैसे क्रोध और घृणा की अपेक्षा सकारात्मक संवेगों जैसे प्रेम और स्नेह का बाहुल्य था। हमने यह भी देखा कि अपने

कार्य और उससे संबंधित सभी कार्यों में उनकी तीव्र और स्थाई रुचि थी। उनको अच्छा शास्त्रीय ज्ञान था और अध्यापन कला में काफी दक्षता प्राप्त थी। शिक्षा के प्रति उनका व्यापक दृष्टिकोण था और छात्रों के प्रति स्कूल के सभी दायित्वों में उनकी दिलचस्पी थी।

श्री त्रिवेदी के अनेक गुणों से परिलक्षित होता है कि वे अपने आप को स्वीकार करने वाले व्यक्ति थे। वे अपने अध्यापकों और कर्मचारियों पर रोब नहीं जमाते थे, और न ही किसी को अपने पद की श्रेष्ठता जताते थे। वे इसलिए परिश्रम करते कि शिक्षा में उनकी दिलचस्पी थी, न कि अपने आप को प्रतिष्ठित करने के लिए। स्कूल शिक्षक के कार्य में उन्हें गौरव का अनुभव होता था और उनकी महत्वाकांक्षा किसी प्रतिष्ठित पद पाने या धनार्जन के लिए नहीं थी।

श्री त्रिवेदी की अपने अध्यापकों और छात्रों के प्रति स्नेह और उनमें दिलचस्पी, उनकी विनोदप्रियता और हंसमुख स्वभाव और गांव में उनकी प्रतिष्ठा के कारण न केवल छात्र, बल्कि अध्यापक भी, उन्हें एक ऐसा व्यक्ति मानते थे जिनके साथ वे एकात्मीकरण कर सकते थे और जो उनके लिए एक अनुकरणीय व्यक्ति थे। इस प्रकार लोगों पर उसका काफी प्रभाव था।

श्री त्रिवेदी का गरीब और अमीर के साथ समान व्यवहार, सभी समुदायों के प्रति आदर की भावना, कार्य के प्रति निष्ठा, ये सब दर्शाते हैं कि उनमें ऐसी अभिवृत्तियां और मूल्य थे जिनका बच्चों को अर्जित करना वांछनीय है। क्योंकि छात्र भी त्रिवेदी के साथ एकात्मीकरण करते थे, इस बात की अधिक संभावना थी कि वे उनके गुणों को भी अपनाएंगे। अपनी ईमानदारी, शिष्टता और किसी व्यवसन की आदत न होने के कारण, छात्रों के लिए वे अच्छा नमूना प्रस्तुत करते थे।

ऊपर एक सफल और प्रभावशाली शिक्षक, श्री त्रिवेदी, के जीवन पर आधारित कुछ कारकों का उल्लेख किया गया है। इसमें हम कुछ अन्य कारकों को जोड़ सकते हैं जो स्कूलों के अवलोकन और मनोविज्ञान से प्राप्त किए गए हैं।

1. शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों का निर्माण कर सकना : एक शिक्षक को शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों को कक्षा में और कक्षा के बाहर निर्मित कर सकना चाहिए। उन्हें विचार, करने, तर्क करने और समस्या हल करने के लिए मौका देना चाहिए।

2. छात्रों के योग्यता स्तर की जानकारी : एक अच्छा शिक्षक ऐसी विषय सामग्री, समस्या और विधि चुनेगा जो छात्रों के विकास स्तर के उपयुक्त हो। शिक्षक को छात्रों के व्यक्तिगत अन्तरों की भी जानकारी होनी चाहिए और उसे ऐसी विधियों और सामग्री का उपयोग करना चाहिए जो छात्रों के योग्यता स्तर के अनुकूल हो।

धीमी गति से सीखने वाले छात्रों को पढ़ाने में खासतौर से काफी धीरज की आवश्यकता होती है।

3. कक्षा में उपयुक्त वातावरण का सृजन कराना : कक्षा का वातावरण अनुकूल और प्रजातान्त्रिक होना चाहिए, जिसमें छात्रों को प्रश्न पूछने में और अपनी राय व्यक्त करने में पूरी स्वतंत्रता हो। छात्रों के विचारों को ध्यान से सुनना तथा उपयुक्त विचारों की सराहना करना तथा गलत धारणाओं को विचार-विनिमय और व्याख्या द्वारा सही करना चाहिए।

4. गलती स्वीकार करना : कभी कभी यह हो सकता है कि शिक्षक से कोई गलती हो जाए, जैसे श्यामपट्ट लेखन में कोई गलती हो जाए। ऐसे समय बच्चे आपस में कानाफूसी करने लगते हैं। उनको डांटने के बजाय शिक्षक को पता लगाना चाहिए कि बात क्या है। गलती पता लगने पर शिक्षक को परेशान नहीं होना चाहिए बल्कि बच्चों को धन्यवाद देते हुए और मुस्कराते हुए गलती को सुधारना चाहिए।

5. सहयोग की अभिवृत्ति : शिक्षक को एक टीम के सदस्य के रूप में कार्य करना चाहिए। उसे अपने सहयोगियों की मदद करनी चाहिए और साथ ही साथ उनकी क्षमताओं की सराहना। कभी-कभी यह आवश्यक हो जाता है कि आपसी ईर्ष्या पर काबू पा कर स्कूल के हित में ही काम किया जाए।

6. शिक्षक को सदैव एक छात्र भी होना चाहिए : एक शिक्षक उसी ज्ञान पर निर्भर नहीं कर सकता जो उसने स्कूल और कालेज में अर्जित किया था। ज्ञान का भण्डार शीघ्रता से बढ़ रहा है और एक विद्वान भी, यदि वह आधुनिक गतिविधियों के संपर्क में नहीं है तो वह सामयिक विचार धारा से अलग रह जाएगा। उदाहरण के लिए विज्ञान में जब हम छात्र थे तब पढ़ते थे कि पदार्थों की तीन अवस्थाएं होती हैं, ठोस, द्रव्य, और गैस। पिछले कुछ वर्षों में पता लगा है कि एक चौथी अवस्था भी देखी गई है जिसे प्लाजमा अवस्था कहते हैं। ऐसे ही अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इसलिए शिक्षक को उपलब्ध स्रोतों से अपने ज्ञान में आधुनिक गतिविधियों का समावेश करते रहना चाहिए।

अध्याय 38

छात्र विकास से संबंधित शिक्षक का कार्य

प्रमोदभाई यू. जोशी

पूर्ववर्ती पृष्ठों में उन कारकों की विस्तार से चर्चा की गई है जो अध्यापन कार्य को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। ये कारक शिक्षा की प्रक्रिया में निस्सन्देह बहुत प्रभावशाली हैं। किंतु इतनी ही महत्वपूर्ण यह बात है कि शिक्षक शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति में अपनी भूमिका को कितनी स्पष्टता से देखता है और इस कार्य की प्रभावशाली ढ़ंग से पूर्ति के लिए अपनी तैयारी किस प्रकार करता है। इसके लिए सुनियोजित और सुनिश्चित प्रयास आवश्यक हैं।

यह अकसर मान लिया गया है कि यदि शिक्षक कक्षा के लिए पूरी तैयारी कर लेता है, सभी संभव सहायक सामग्री को प्राप्त कर लेता है, व्यावहारिक पक्ष पर ध्यान देता है, कक्षा में कायदे से पढ़ाता है, तो शिक्षण की दृष्टि से जो कार्य आवश्यक था उसकी पूर्ति उसने की। यद्यपि इतना करना अच्छा है किंतु छात्रों के अधिगम और विकास की दृष्टि से इससे वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकेंगे।

शिक्षक से अपेक्षाएं स्पष्ट होंगी यदि हम उन सब पर ध्यान दें जिसका क्रियान्वयन बच्चों के लिए आवश्यक है।

अधिगम की दृष्टि से अपेक्षित छात्रों की उपलब्धियां

(क) शिक्षण से छात्रों को उपयोगी ज्ञान प्राप्त होना चाहिए जो स्थाई रह सके। यह ज्ञान ऐसा हो जिसका तुरन्त उपयोग हो सके या छात्र की भविष्य की प्रगति में एक बीच की अवस्था हो।

(ख) शिक्षण क्रियाओं द्वारा छात्रों में तर्कपूर्ण चिन्तन विकसित हो सके।

(ग) छात्र उपयोगी कौशल सीख सकें।

(घ) छात्र पढ़ने की अच्छी आदतें सीख सकें।

(ड़) छात्र विभिन्न स्रोतों से जिसमें पुस्तकें, समुदाय, और पर्यावरण सम्मिलित हैं, जानकारी और ज्ञान एकत्रित कर सकें।

(च) *छात्रों को विभिन्न माध्यमों जैसे लेखन, कला, संगीत के द्वारा आत्माभिव्यक्ति* और अपनी क्षमताओं के अनुरूप कार्य करने के अवसर मिल सकें।

ऊपर दिए गए उद्देश्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल शिक्षण की पर्याप्त नहीं है। बच्चों के विकास की अवस्थाओं से संबधित विभिन्न क्रियाकलापों का आयोजन भी आवश्यक है। छोटे बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षक को बच्चों में संकल्पनाओं का विकास, सामग्री का उपयोग, पर्यावरण की छान-बीन आदि सिखाना चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को पढ़ना, लिखना और गिनती सिखानी होती है किंतु शिक्षण यहीं तक सीमित नहीं रहना चाहिए। साथ ही साथ बच्चों को प्रकृति का अध्ययन करना चाहिए और अपने आप चीजों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए उन्हें आत्माभिव्यक्ति के अवसर भी मिलने चाहिएं। जैसे-जैसे वे पढ़ना सीखते हैं उन्हें पढ़ना रोचक लगना चाहिए। बच्चों को सोद्देश्य पढ़ना, आत्माभिव्यक्ति के लिए लेखन और गणित में केवल परिकलन ही नहीं बल्कि समस्याओं के हल ढूंढना सिखाना चाहिए।

जैसे बच्चे बड़े होते हैं उनमें रुचियों का विस्तार करना चाहिए और अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेना सिखाना चाहिए। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि स्कूल के बच्चों में खुजली की बीमारी महामारी के रूप में फैल गई है और स्कूल के समुदाय के सामने यह एक गंभीर समस्या है। छात्र परिषद् शिक्षकों की उपस्थिति में समस्या पर विचार कर सकता है और यह निर्णय ले सकता है क्योंकि इस समस्या के बारे में उनका ज्ञान सीमित है, वे एक स्थानीय डाक्टर या चिकित्सा विभाग के किसी अधिकारी को स्कूल में निमंत्रित करेंगे और उनसे सीखेंगे कि इस महामारी का कैसे सामना किया जाए और रोका जाए। यह अपने आप में एक कार्यक्रम हो जाएगा जिसमें कई क्रियाकलाप सम्मिलित रहेंगे या बच्चों से अपने मोहल्ले का जलनिकास समस्या का अध्ययन करने को कहा जा सकता है। उसमें क्या कमियां है, और क्या सुधार हो सकता है? इस प्रकार के कार्यक्रमों द्वारा बच्चे समस्याओं का पता लगा सकते हैं, उनके निराकरण के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए इसकी योजना बना सकते हैं, और अपने विचारों को क्रियान्वित कर सकते हैं। छात्र सीख सकते हैं कि कैसे सीखा जाता है।

स्वस्थ शारीरिक विकास से संबंधित छात्रों से अपेक्षित उपलब्धियां

(क) शिक्षा का अर्थ है बच्चे का सर्वांगीण विकास और इसलिए इसमें शारीरिक विकास भी सम्मिलित है। स्कूल में बच्चों को सही आसन, और बैठते, खड़े होते और चलते समय शरीर को कैसे रखा जाए सिखाना चाहिए। बच्चों को यह भी सिखाना चाहिए कि किताब को कितनी दूरी पर रखा जाए जिससे आंख पर जोर न पड़े।

(ख) छात्रों को दैनिक जीवन में स्वास्थ्य के मूलभूत तरीकों को सिखाना चाहिए जैसे वैयक्तिक और पर्यावरण की स्वच्छता, शौचालयों का उचित ढंग से उपयोग, इत्यादि।

(ग) छात्रों को निरोधक स्वास्थ्य विज्ञान में शिक्षित करना चाहिए। उन्हें सिखाना चाहिए कि छूत की बीमारियों से कैसे बचें। उन्हें प्राथमिक चिकित्सा का प्रारंभिक ज्ञान, होना चाहिए जैसे कटने या चोट लगने पर क्या करना हितकर होगा।

इस प्रकार शिक्षकों को छात्रों के साथ विवेचना करनी चाहिए कि स्वास्थ्य के लिए क्या करना आवश्यक है, बच्चों के आसन और स्वास्थ्य संबंधी आदतों पर निगाह रखनी चाहिए और स्वच्छ तथा स्वस्थ तरीकों को अपनाने के लिए बराबर निर्देशन करते रहना चाहिए।

भावात्मक और सामाजिक विकास संबंधी छात्रों से अपेक्षित उपलब्धियां

(क) छात्रों को विभिन्न भावात्मक और सामाजिक परिस्थितियों में समंजन सीखना चाहिए।

(ख) छात्र क्रमशः संवेगों पर नियंत्रण प्राप्त करें।

(ग) वे मित्र बना सकें और मित्रता कायम रख सकें।

(घ) वे आत्मनिर्भर होना, पहल करना सीख सकें और उपायकुशल (resourceful) बन सकें।

जब बच्चे पहले स्कूल आते हैं तब शिक्षक की मुख्य चिन्ता यह रहती है कि नए पर्यावरण में समंजन करने में और अपने आप को सुरक्षित अनुभव करने में उनकी मदद की जा सके। शिक्षक को स्नेही और सहानुभूतिशील होना चाहिए, जो उनकी घबराहट को शान्त कर सके, उनके संवेगात्मक प्रस्फोटन को समझ सके, और सभी बच्चों को स्कूल में खुश रहने में मदद कर सके। शिक्षक को मिलकर खेलने और संवेगों पर नियंत्रण प्राप्त करने में बच्चों का निर्देशन करना चाहिए।

जैसे बच्चे बड़े होते हैं उनके मित्र बनते हैं और वे अपना गुट बनाते हैं। शिक्षक को देखना चाहिए कि इन गुटों के क्रियाकलाप स्वस्थ हैं और कहीं हानिकारक तो नहीं हैं। जो बच्चे किसी गुट द्वारा स्वीकार नहीं किए जाते और जो रोब जमाते हैं उनकी वह मदद कर सके। कुछ बच्चे सदैव अधिकारी वर्ग से टकराते हैं, शिक्षक को उनकी समस्या समझनी चाहिए, और स्कूल की मांगों के साथ समंजन करने में उनकी मदद करनी चाहिए।

बच्चों को स्वतन्त्ररूप से कार्य करने और दायित्व लेने के अवसर प्रदान करने चाहिएं। पाठ्योत्तर और सहपाठ्योत्तर क्रियाकलापों द्वारा उनको ऐसे अवसर प्रदान

करने चाहिएं जिनमें पहल करना नेतृत्व लेना, जिम्मेदारी लेना, निर्णय लेना सीखें और छोटी-मोटी भूल करने से भी शिक्षा ग्रहण कर सकें।

नैतिक विकास संबंधी छात्रों से अपेक्षित उपलब्धियां

(क) छात्र सही और गलत में भेद कर सकें, और जो सही है उसे कार्यान्वित करने का संकल्प कर सकें।

(ख) छात्र वांछित मूल्य जैसे ईमानदारी, दया, न्याय, आदि को अर्जित कर सकें।

(ग) छात्र दूसरों की आवश्यकताओं और अधिकारों का लिहाज करें, और सभी के कल्याण में रुचि लें।

(घ) बुरी आदतों को सीखने में छात्र बचें।

जैसा ऐसे मामलों में पहले कहा गया है कि शिक्षक का उदाहरण सबसे महत्वपूर्ण है। शिक्षक को अपना कार्य निष्ठा और ईमानदारी के साथ करना चाहिए। यह आवश्यक है कि शिक्षक छात्रों के साथ व्यवहार में न्याय करें। छात्रों की दृष्टि में भी वह न्यायोचित लगे। कभी कभी गलतफहमी के कारण छात्रों को लगता है कि उनके साथ न्याय नहीं किया गया। इसलिए अंक, पुरस्कार और दण्ड देने के नियम छात्रों को स्पष्ट बताने चाहिएं। दूसरों का ख्याल करने में और मदद करने का एक अच्छा दृष्टान्त स्वयं शिक्षक को प्रस्तुत करना चाहिए। कहानियों और घटनाओं के द्वारा छात्रों में दूसरों का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्वक समझने में छात्रों की मदद करनी चाहिए। छात्रों को अवांछित आदतों से बचाना चाहिए। उदाहरण के लिए वे परीक्षा में नकल करने या धोखा देने की आदत में न पड़े। यह तभी संभव हो सकता है जब शिक्षक शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करे और जब परीक्षा ली जाए तब छात्र अपने आप को ऐसी परिस्थिति में पाएं जिसमें सफलता उन्हें असंभव लगे। परीक्षण ऐसे होने चाहिए जिनमें अनुचित तरीकों का प्रयोग कठिन हो।

धूम्रपान, नशीली दवांओं का सेवन और मदिरापान के खतरों पर बड़ी आयु के बच्चों के साथ बातचीत करनी चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि किस प्रकार कुछ नशीली दवाओं के खाने से शरीर में नशीली दवा के लिए मांग बढ़ जाती है, जिसके कारण लत पड़ जाती है और दवा से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। यही बात धूम्रपान और मदिरापान पर भी लागू होती है। इनके दुरुपयोग की विवेचना एक वर्णन के बजाए बीमारी के रूप में करनी चाहिए। ऐसा हो सकता है कि किसी छात्र के पिता को ऐसी आदतें हों किंतु इसके कारण उसे शरमिन्दा नहीं करना चाहिए।

सामुदायिक जीवन से संबंधित छात्रों से अपेक्षित उपलब्धियां

(क) छात्र मिल कर काम करना सीखें।

(ख) वे जिम्मेदारी लेना सीखें।

(ग) वे प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया सीखें
(घ) वे समुदाय में समस्याओं का पता लगाना सीखें।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्कूल के सामुदायिक जीवन को माध्यम बनाया जा सकता है। सत्र के प्रारंभ में ही स्कूल के सामुदायिक जीवन को संगठित करना होगा। मान लीजिए कि स्कूल ने सामुदायिक जीवन को आयोजित करने के लिए स्कूल में प्रतिनिधियों के चुनाव की व्यवस्था अपनाई है। स्कूल की प्रारंभ की तीन या चार सभाओं में शिक्षक स्कूल परिषद् के लिए प्रतिनिधि चुनने की विभिन्न विधियां बताएंगें, जैसे:

(1) नामांकन द्वारा।
(2) कक्षाओं के अनुसार अलग-अलग प्रतिनिधियों का चुनाव करना।
(3) सारे स्कूल से सामान्य चुनाव करना, जैसा ग्राम पंचायत के चुनाव में होता है।

शिक्षक प्रत्येक विधि के गुण और दोष बताएगा जिससे छात्र स्वयं उपयुक्त विधि का चुनाव कर सकें। यहां शिक्षक ग्राम पंचायत, सहकारी समितियों, संस्थाओं, विधान सभा के चुनाव के भी बारे में बताएगा, जिससे छात्र चुनाव की धारणा को भली प्रकार समझ सकें। उन्हें ग्राम पंचायत और नगरपालिका आदि के गठन के बारे में जानने का भी अवसर मिलेगा। इस प्रकार नागरिक शास्त्र के महत्वपूर्ण विषय का स्पष्ट ज्ञान दिया जा सकेगा। ऐसे व्यावहारिक अनुभवों से विभिन्न क्षेत्रों में धारणाओं और प्रक्रियाओं का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

स्कूल परिषंद् का संचालन छात्रों को ऐसे काफी अवसर प्रदान करेगा जिनमें वे प्रजातान्त्रिक प्रणाली से कार्य करना और जिम्मेदारी लेना सीखेंगे और अपनी क्षमताओं का उपयोग कर सकेंगे।

शिक्षक प्रभावशीलता और छात्र विकास में अभिभावक-शिक्षक सहयोग का स्थान

शिक्षक को सभी छात्रों, उनके अभिभावकों और समान्य जनता के साथ संपर्क रखने चाहिएं। प्रत्येक शिक्षक को यह समझना चाहिए कि इन संबंधों पर उसकी सफलता बहुत कुछ निर्भर करती है। जब हम कहते हैं "सभी छात्र" तो इसका मतलब यह है कि शिक्षक सभी छात्रों के प्रति चाहे वे गरीब हों या अमीर, सामान्य योग्यता वाले हों या बुद्धिमान, किसी भी जाति के हों बिना किसी भेदभाव के व्यवहार करता है। उसके मन में केवल बच्चे का हित ही होना चाहिए। तभी वह अपने सभी छात्रों का पूरी लगन के साथ काम करवा सकेगा, जो उसकी सफलता का आधार होगा। शिक्षक को प्रत्येक छात्र और उसके घर की पृष्ठिभूमि जाननी चाहिए। इस जानकारी के बिना सभी छात्रों के प्रति वह न्यायोचित व्यवहार नहीं कर सकेगा।

इसे प्राप्त करने के लिए शिक्षक को प्रत्येक छात्र के परिवार से परिचित होना चाहिए। इस सम्पर्क के द्वारा वह अपने शिक्षण को अधिक लाभप्रद बना सकेगा। अभिभावक–शिक्षक सहयोग शिक्षण को प्रभावशाली बनाने में बहुत महत्वपूर्ण कारक है।

स्कूल एक निश्चित समुदाय के बीच कार्य करता है यानी कोई गांव या शहर का मोहल्ला। इस गांव या मोहल्ले के नागरिक स्कूल को एक समुदायिक स्कूल में परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। यदि गांव या मोहल्ले का प्रत्येक व्यक्ति स्कूल और उसके क्रियाकलापों के प्रति लगाव अनुभव करता है तब हम कह सकते हैं कि स्कूल और शिक्षकों ने समुदाय पर वांछित प्रभाव डाला। इसे प्राप्त करने के लिए, स्कूल के शिक्षकों के प्रयास समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के पास पहुंचने चाहिएं।

जब शिक्षक अपने कार्य को सही ढंग से देखते हैं, और जब उन्होंने अपने कार्य में मफल होने का दृढ़ निश्चय किया है, तो इसके अर्थ होंगे, कि वे (1) निष्ठावान होंगे, (2) छात्रों के विकास के महत्व को समझेंगे और उसमें योगदान करेंगे और (3) अभिभावक–शिक्षक सहयोग के महत्व को समझेंगे और उसे बढ़ाएंगे।

अध्याय 39

शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों से संबंधित शिक्षक का व्यावसायिक और वैयक्तिक विकास

प्रमोदभाई यू. जोशी

प्राथमिक शाला का शिक्षक उस शास्त्रीय ज्ञान को लेकर, जिसे उसने स्कूल में प्राप्त किया, और जो प्रारंभिक व्यावसायिक ज्ञान उसने प्रशिक्षण संस्था में प्राप्त किया, व्यवसाय में प्रवेश करता है। प्रत्येक शिक्षक को समझना चाहिए कि यह उसके शिक्षण का स्थाई आधार नहीं बन सकता। क्यों? इसका कारण यह है कि ऐसे शिक्षक का वर्तमान ज्ञान, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र गति से विकास को देखते हुए अपर्याप्त है। इस विकास को वैज्ञानिक, औद्योगिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

वैज्ञानिक विकास अनेक हैं और बहुत तीव्र गति से हो रहे हैं। उदाहरण के लिए, पचास वर्ष पहले शिक्षक छात्रों द्वारा पहाड़े याद करने को काफी महत्व देता था। जब से बहुत छोटे कैल्कुलेटर निकले हैं। जो जेब में आ जाते हैं, सरलता से उपलब्ध हैं और परिणाम बहुत तीव्र गति से देते हैं, उनके संदर्भ में छात्र और अभिभावक दोनों ही अनुभव करेंगे कि अब पहाड़े याद करने पर अत्यधिक बल देना आवश्यक नहीं है। पदार्थ की चौथी अवस्था प्लाजमा का उल्लेख पिछले पृष्ठों पर किया गया है। दुनियां अब परमाणु युग में प्रवेश कर रही है। एक ग्रह से दूसरे पर मानव जा सकेगा। इस प्रकार के विकास के नए आयाम निकट भविष्य में सामने आएंगे। शिक्षक अपने विषय के साथ न्याय नहीं कर सकेगा जब तक वह उन सामान्य सिद्धान्तों के सम्पर्क में नहीं रहता जो इस वैज्ञानिक प्रगति के पीछे हैं और जिनके संभावित प्रभाव मानव जीवन और प्रचलित सामाजिक ढांचे पर पड़ेंगे।

हम जानते हैं कि परमाणविक शक्ति, एक्स किरण, मानव निर्मित रेशे, प्लास्टिक उद्योग, औषध-निर्माण-विज्ञान, इत्यादि, ने दुनियां के विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिए हैं। इसलिए शिक्षक इन परिवर्धनों और मानव जीवन पर उनके प्रभावों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता।

औद्योगीकरण से हमारे सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन आए हैं। उदाहरण के लिए, बहुत से मजदूर काम की तलाश में गांव छोड़ कर शहर आते हैं और वहां अनेक समस्याओं का सामना करते हैं, जिनमें समुचित आवास की कमी प्रमुख है। इसी प्रकार की अन्य बहुत सी समस्याएं उठेंगी यदि वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास पर नियंत्रण नहीं रखा गया, तो इससे मानव जीवन कष्टमय हो जाएगा। किंतु यदि इस विकास को नियंत्रित किया गया तो इससे एक बहुत स्वस्थ और सुखद सामाजिक व्यवस्था विकसित हो सकेगी। अपनी रोटी कमाने और संतोषप्रद जीविकापार्जन के लिए व्यक्ति का बहुत कम समय लगेगा और उसको काफी अवकाश का समय मिलेगा। स्वाभाविक है कि जब मानव रोटी कमाने के बोझ से मुक्त होगा तब उसे अन्य सांस्कृतिक दिशाओं, जैसे कला, साहित्य, संगीत, इत्यादि में तरक्की करने के लिए समय और शक्ति बचेगी। मानव जीवन को समृद्ध और सार्थक बनाने की ओर शिक्षक को अपनी देन के लिए तैयारी करनी चाहिए।

इसी प्रकार शिक्षा-शास्त्र में बहुत से परिवर्तन हो रहे हैं। उदाहरण के लिए मूल-प्रवृत्तियों की पुरानी धारणा अब मान्य नहीं है। अनुशासन की अव-धारणा में परिवर्तन आया है। शिक्षण विधि में आमूल परिवर्तन आया है। अब मैजिक लैण्टर्न का स्थान आधुनिक सहायक सामग्री ने ले लिया है, और अब विश्व की विभिन्न गतिविधियों को चलचित्रों और जनसंपर्क के साधनों द्वारा कक्षा में प्रस्तुत किया जा सकता है। आजकल हमें अनेक ज्ञानवर्धक, उपयोगी और रोचक कार्यक्रम आकाशवाणी और दूरदर्शन पर मिलते हैं। शिक्षकों को अपने ज्ञान का संबर्धन करने के लिए उनका उपयोग करना चाहिए।

यद्यपि शिक्षण बहुत रोचक हो गया है और शिक्षण सामग्री द्वारा सरल हो गया है, किंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि ज्ञान जिसे छात्रों को देना है, वह भी काफी बढ़ गया है। इसलिए शिक्षकों को विषय-सामग्री का सावधानी से चयन करना होगा और उसे प्रस्तुत करने की उपयुक्त विधियां निर्मित करनी होंगी।

शोधकार्य के आधार पर पता चला है कि गृहकार्य, सामूहिक कार्य और वर्कशाप कार्य करना शिक्षक द्वारा बताने से अधिक प्रभावशाली है। शिक्षाविदों ने अब यह स्वीकार किया है कि अध्यापन को रोचक और प्रभावशाली बनाने में छात्रों का पूरे मन से सहयोग बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए शिक्षक को मनोविज्ञान की उन नई खोजों की जानकारी होनी चाहिए जिनका संबध बच्चे के सीखने से है। इसके लिए उसे शिक्षण संस्थाओं में समय-समय पर सेवाकालीन पाठ्यक्रमों में शामिल होना और अपने ज्ञान को आधुनिकतम बनाते रहना होगा।

व्यावसायिक और वैयक्तिक विकास के लिए जिम्मेदारी

प्रशासन और शिक्षक दोनों को व्यावसायिक विकास के लिए कदम उठाने चाहिएं। शिक्षक जन-सम्पर्क माध्यम से उपयोगी शैक्षिक जानकारी प्राप्त कर सकता है। शिक्षक को अन्य व्यावसायिकों के समान, पुस्तकों, जर्नलों और पत्रिकाओं को संकलित करना चाहिए, यद्यपि यह कार्य एक छोटे स्तर पर ही किया जा सकेगा। अखबार से काटे हुए उद्धरण, तस्वीरे, चार्ट, ग्राफ और सांख्यिकी सारणियां कक्षा अध्ययन में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

यदि स्कूल शिक्षक के सक्रिय सहयोग से शिक्षण सामग्री और आधार सामग्री को संग्रहीत करता है तो यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगीं।

व्यावसायिक विकास के लिए सुविधाएं जो प्रशासनिक स्तर पर उपलब्ध करानी चाहिएं

कुछ सुविधाएं जिनकी आवश्यकता है तालुक, जिला, राज्य, या राष्ट्रीय स्तर पर प्रदान की जा सकती हैं। इनमें हैं व्यावसायिक पुस्तकालय की व्यवस्था करना, उपयोगी शैक्षिक सामग्री का सार संग्रह उपलब्ध कराना, बैठकों का आयोजन करना, प्रपत्रों को प्रस्तुत करने और लेख प्रतियोगिताओं में, जैसे राष्ट्रीय स्तर पर एन.सी. ई.आर.टी. आयोजित करती है, भाग लेने कें अवसर प्रदान करना। इसी प्रकार की प्रतियोगिताएं राज्य स्तर पर एस.सी.ई.आर.टी. और जिला स्तर पर स्कूल .बोर्ड आयोजित कर सकते हैं।

(1) **व्यावसायिक पुस्तकालय की सुविधा :** पुस्तकालय सरलता से शिक्षक की पहुंच के अंदर होना चाहिए। स्कूल पुस्तकालय के अतिरिक्त प्रशासन को, पास में स्थित स्कूलों के समूहों के लिए, एक अच्छे पुस्तकालय की व्यवस्था करनी चाहिए। इन पुस्तकालयों में समानान्तर पठन की पुस्तकें, शिक्षा-शास्त्र पर पुस्तकें, संदर्भ पुस्तकें, और संबंधित चित्रों और चार्टों की पुस्तकें होनी चाहिए। तालुका स्तर पर एक बड़ा पुस्तकालय होना चाहिए जहां से तालुका के सभी शिक्षक अपने उपयोग के लिए पुस्तक उधार ले सकें।

(2) **उपयोगी शिक्षण सामग्री का सारांश :** दूर के गांव के स्कूलों में जहां अखबार तक का मिलना कठिन होता है, वहां अच्छी पुस्तकों और पत्रिकाओं की बात करना निरर्थक है। इसलिए प्रत्येक जिला शिक्षा प्रशासन स्तर पर एक संगठन स्थापित करना चाहिए जो अखबारों, पत्रिकाओं और जर्नल में शैक्षिक लेखों का सार-संक्षेप, शोध के परिणामों का नवाचार और नए विचारों पर आलेख तैयार करे। ये प्रत्येक स्कूल को भेजे जाएं। अहमदाबाद की नगर पालिका के स्कूल बोर्ड और सूरत के जिला स्कूल बोर्ड ने इस दिशा में प्रयास किया है, और इसके अच्छे परिणाम मिले हैं। राज्य स्तर पर एस.सी.ई.आर.टी. भी शिक्षकों के लिए कोई पत्रिका प्रकाशित करती हैं किंतु इनमें संवर्धन की आवश्यकता है।

(3) **शिक्षकों की नियमित बैठकें :** देश के कुछ भागों में शिक्षकों की नियमित बैठकें प्रारंभ की गई हैं। गुजरात में एक शिक्षा अधिकारी के अन्तर्गत लगभग 50 स्कूल आते हैं। शिक्षा अधिकारी प्राथमिक शिक्षकों की बैठक करीब एक माह के अन्तर से, किसी ऐसे स्थान पर जो मध्य में पड़ता हो बुलाता है। इसका उद्देश्य व्यावसायिक चर्चा करना होता है जो स्कूल के कार्य में उपयोगी हो। इस बैठक में उपस्थित होना सभी शिक्षको के लिए अनिवार्य होता है। बैठक के दिन स्कूल प्रातः केवल तीन घण्टे के लिए लगता है। अपराह्न में सभा चुनी हुई जगह पर होती है। इन सभाओं में न केवल उपयोगी शैक्षिक जानकारी दी जाती है,किन्तु पूरे सत्र के कार्य की, शैक्षिक क्रियाकलापों की और परीक्षाओं की योजना बनाई जाती है, नवाचार और नए पाठ्यक्रम, मूल्यांकन की नई विधियां, नई संकल्पनाओं, आदि पर चर्चा होती है। महत्वपूर्ण विषयों पर भाषण देने के लिए विशेषज्ञ आमन्त्रित किए जाते हैं। विज्ञान के प्रयोग, वैज्ञानिक मेला, प्रदर्शन पाठ भी आयोजित किए जाते हैं। इन सभाओं की प्रभावशीलता अधिकारी के नेतृत्व और उससे भी अधिक जिस उत्साह से शिक्षक भाग लेते हैं और जितना सहयोग देते हैं, उस पर निर्भर करती है। गुजरात में ये ज्ञानवर्धक सभाएं काफी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इसी प्रकार के क्रियाकलाप अन्य राज्यों में भी आयोजित किए जा रहे हैं।

(4) **सेवाकालीन प्रशिक्षण का नियमित कार्यक्रम :** पांच या छः वर्ष के अन्तर से दो या तीन माह का अनिवार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम सभी प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए आयोजित करना चाहिए। प्रशिक्षण का एक पक्ष भाग लेने वाले शिक्षकों का मूल्यांकन होना चाहिए जिससे कार्यक्रम को सभी गंभीरता से ग्रहण करें। इसको किसी पारितोषिक से संलग्न करना चाहिए जिससे यह अधिक आकर्षक हो सके। इस दिशा में कुछ राज्यों में कार्य हो रहा है।

(5) **शास्त्रीय कार्यक्रमों में उपस्थिति :** शिक्षकों को शास्त्रीय कार्यक्रमों में जैसे कार्यशाला, बैठक, गोष्ठियां, आदि में भाग लेने के लिए पहल करनी चाहिए। इससे वे नवीन गतिविधियों से अवगत हो सकेंगे, और नए क्षेत्रों में उनकी रुचि जाग्रत होगी।

व्यावसायिक संघों का गठन

शिक्षकों के व्यावसायिक संघ जिला, राज्य और राष्ट्र के स्तर पर निर्मित किए जा सकते हैं। ये संघ उनसे भिन्न होना चाहिए जो मुख्यतया सेवा शर्तों में सुधार से ही जुड़े हुए हैं। संघों की दिलचस्पी शिक्षकों की व्यावसायिक प्रगति से होगी, और सदस्यों को अपने कार्य द्वारा इसका प्रमाण प्रस्तुत करना होगा।

व्यावसायिक प्रगति के सूचक

सामाजिक कार्यक्रम और उपलब्धियों की गणना की जा सकती है। जो व्यावसायिक विकास के सूचक होंगी। इनमें से कुछ को नीचे दिया जा रहा है :

(क) प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए कुछ कार्य करना।

(ख) योग्य छात्रों को कृतविद्य (scholar) बनाना और शिक्षा में उत्तम परिणामों को प्राप्त करना।

(ग) अपनी प्राथमिक शाला को सामुदायिक केन्द्र में परिवर्तित करना, जिससे कि समुदाय का विकास हो सके और सामुदायिक समस्याओं के हल ढूंढे जा सकें।

(घ) प्राथमिक शाला से संबंधित समस्याओं पर क्रियात्मक शोध करना और परिणामों को प्रकाशित करना।

(ड़) किसी विषय के अध्यापन का कोई अधिक प्रभावशाली तरीका विकसित करना, या समाज उपयोगी उत्पादक कार्य में योगदान करना।

(च) किसी सम्मेलन में शैक्षिक, शास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक महत्व के विषय पर प्रपत्र प्रस्तुत करना।

शिक्षकों की प्रगति के लिए पुरस्कार

उत्कृष्ट शिक्षकों को पुरस्कृत करने की प्रथा उनकी वैयक्तिक और व्यावसायिक प्रगति को प्रेरित करती है और उनको पूरी लगन और निष्ठा से कार्य करने को बढ़ावा देती है। किन्तु इस प्रथा का क्षेत्र बहुत सीमित रह गया है और इससे शिक्षकों के बहुत छोटे प्रतिशत को प्रोत्साहन मिला है। इसे और व्यापक करने की आवश्यकता है।